चेतना विकास मूल्य शिक्षा विश्वविद्यालय

शिक्षा

मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद वांग्मय से एक संकलन

८ फरवरी २०१८

श्री ए नागराज द्वारा प्रणेत मध्यस्थ दर्शन 'शिक्षा के मानवीयकरण' के लिए एक प्रस्ताव है. यह प्रस्तुति मध्यस्थ दर्शन के मूल वांग्मय में "शिक्षा-संस्कार" को लेकर जो लिखा गया है, उसका ही एक संकलन है. फिर भी यदि यहाँ लिखे हुए और मध्यस्थ दर्शन के मूल वांग्मय में कोई अंतर मिले तो मूल वांग्मय को ही सही माना जाए. यहाँ लिखे हुए में त्रुटियों के सुधार और इसको और उपयोगी बनाने हेतु भागीदारी करने के लिए रौशनी साहू (sahuroshani@gmail.com) से संपर्क करें.

Version history

Version 0.1	Draft document created	Roshani Sahu	20 Sept 2017
Version 0.2	Draft document created	Roshani Sahu	22 Oct 2017
Version 0.3	Draft document created	Roshani Sahu	08 Feb 2018

प्राक्कथन

सम्मानीय श्रेष्ठजनों ,

श्रद्धेय श्री ए. नागराज़ जी (प्रणेता-मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद) ने कहा है -

“शब्द का अर्थ होता है। अर्थ के मूल में अस्तित्व में वस्तु होता है. वस्तु को इंगित करना ही शब्द का काम है। उसको पहचान लेना व्यक्ति का काम है. पहचान लिया = समझ में आया। नहीं पहचाना = समझ में नहीं आया। पहचान पूरा हो जाना = अध्ययन पूरा होना। अध्ययन पूरा होना = सह-अस्तित्व रुपी अस्तित्व में बोध संपन्न होना.”

इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक मानव शब्द के अर्थ के जरिये अस्तित्व में शब्द द्वारा इंगित वस्तु को पहचान सके, समझ सके और सही समझ के साथ निर्वाह कर सके।

मध्यस्थ दर्शन के विद्यार्थियों की व स्वयं की आवश्यकता को देखकर और उनके कहने पर मैंने दर्शन में प्रयुक्त शब्दों के संदर्भों का वाङ्ग्मय में से संकलन करना शुरू किया. इसी क्रम में “शिक्षा” शब्द के संदर्भों का भी संकलन किया गया है. इस संकलन का उद्देश्य है कि जो भी भाई-बहन इस दर्शन का अध्ययन व शोध कर रहे हैं, उनको “शिक्षा” शब्द के अर्थ को समझने में सहायता मिले।

“शिक्षा” शब्द के संदर्भों के संकलन के पीछे प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से मध्यस्थ दर्शन के सभी विद्यार्थियों का योगदान है. इस संकलन के पीछे विशेष सहयोग हिमांशु भैया जी, राकेश भैया जी, सुरेन्द्र पाठक भैया जी, बसंत साहू भैया जी और मेरे परिवार वालों का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से रहा।

श्रद्धेय श्री ए. नागराज़ जी के प्रति तो परम कृतज्ञता है ही, क्योंकि उन्ही द्वारा रचित वाङ्ग्मय से ही यह संकलित है।

आशा है कि हम सभी विद्यार्थियों के लिए यह संकलन उपयोगी साबित होगा. यदि इस प्रयास में कोई कमी रह गई हो तो आप मुझे इस ईमेल पर अवगत करा सकते हैं. आपके द्वारा दिये गए सुझावों का स्वागत है।

रोशनी साहू

20/09/2017

भिलाई (दुर्ग)

ईमेल – sahuroshani@gmail.com

शिक्षा की परिभाषा

- शिष्टता पूर्ण दृष्टि का उदय का प्रक्रिया।
- अस्तित्व में जीवन सहज मूल्य, मानव मूल्य, व्यवसाय मूल्य, स्थापित मूल्य एवं शिष्ट मूल्य के प्रति निर्भ्रम जानकारी सहित व्यवसाय, व्यवहार चेतना की परिष्कृति **(परिभाषा संहिता, संस्करण: 2012 : मुद्रण: 2016, पृष्ठ नंबर:219)**

सन्दर्भ: परिभाषा संहिता (संस्करण: 2012, मुद्रण: 2016)

- **उन्मादत्रय शिक्षा** - लाभोन्मादी अर्थशास्त्र, भोगोन्मादी समाज शास्त्र और कामोन्मादी मनोविज्ञान का प्रवर्तन क्रिया कलाप। **(पृष्ठ नंबर: 48)**
- **मानवीय शिक्षा** - अस्तित्व, विकास, जीवन, जीवन-जागृति रासायनिक एवं भौतिक रचना, विरचना का अध्ययन।

  - अवधारणा सहित बौद्धिक विशिष्टता सहज सहअस्तित्व पूर्ण, विश्व दृष्टिकोण की क्रिया शीलता।
  - सर्वतोमुखी समाधान और प्रामाणिकता का वर्तमान और उसकी निरंतरता। **(पृष्ठ नंबर: 151)**
- **शिक्षा नीति** - सहअस्तित्व बोध, जीवन बोध, मानवीयतापूर्ण आचरण बोध सहित मानव लक्ष्य बोध, जीवन मूल्य बोध, लक्ष्य सफलता के लिए निश्चित दिशा बोध कराने के साथ - साथ स्वयं में विश्वास श्रेष्ठता का सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन व्यवहार में सामाजिक, उत्पादन में स्वावलंबन का बोध सर्व सुलभ होना। यहाँ बोध का तात्पर्य जीवन में समझने, स्वीकारने से है **(पृष्ठ नंबर: 219)**
- **शिक्षण** - शिक्षापूर्ण दृष्टि सहज विकास, जागृति की ओर दिशा, अध्ययनपूर्वक यथार्थ बोध निपुणता कुशलता, पांडित्य सहज शिक्षण। **(पृष्ठ नंबर: 219)**
- **शिष्य**- जिज्ञासु, मानवीय शिक्षा संस्कार को ग्रहण करने के लिए तत्पर। **(पृष्ठ नंबर: 219)**
- **शिक्षा संस्कार** - ज्ञान विवेक विज्ञान सहज बोध होना। (समझ में आना, स्वीकार होना) **(पृष्ठ नंबर: 219)**

अनुक्रमणिका

शिक्षा को लेकर मध्यस्थ दर्शन वांग्मय में आये सन्दर्भों को निम्न क्रम से संकलित किया गया है.

1.	मानव व्यवहार दर्शन	६
2.	मानव कर्म दर्शन	१०
3.	मानव अभ्यास दर्शन	१७
4.	मानव अनुभव दर्शन	४५
5.	समाधानात्मक भौतिकवाद	४६
6.	व्यवहारात्मक जनवाद	६२
7.	अनुभवात्मक अध्यात्मवाद	७८
8.	व्यवहारवादी समाजशास्त्र	९४
9.	आवर्तनशील अर्थशास्त्र	१२३
10.	मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान	१४४
11.	मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या	१६८
12.	जीवन विद्या –एक परिचय	१८६
13.	विकल्प	१९३
14.	जीवन विद्या- अध्ययन बिन्दु	१९५
15.	मानवीय आचरण सूत्र	१९९
16.	संवाद- 1	२०१
17.	संवाद-2	२०६
18.	श्री ए. नागराज जी द्वारा दिया गया पाठ्यक्रम	२११
19.	चेतना विकास मूल्य शिक्षा का लघु प्रस्ताव (मानवीय शिक्षा-नीति का प्रारूप)	२२३
20.	10 सोपानीय व्यवस्था के अंतर्गत शिक्षा संस्कार	२३१

सन्दर्भ : मानव व्यवहार दर्शन
(संस्करण: 2011, मुद्रण: अगस्त 2015)

- **शिक्षा में पूर्णता**

चेतना विकास मूल्यशिक्षा, कारीगरी (तकनीकी) शिक्षा

परंपरा में संपूर्णता

- मानवीय **शिक्षा** संस्कार।

- मानवीय संविधान।

- मानवीय परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था। **(मध्यस्थ दर्शन के मूल तत्व में से)**

- **कृतज्ञता**

उन सभी सुपथ प्रदर्शकों के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ जिनसे आज भी यथार्थता के स्रोत जीवित हैं. कृतज्ञता जागृति की ओर प्रगति के लिए मौलिक मूल्य है. कृतज्ञता ही मूलतः संस्कृति व सभ्यता का आधार एवं संरक्षक मूल्य है.

जो कृतज्ञ नहीं है, वह मानव संस्कृति व सभ्यता का वाहक बनने का प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सकता. जो मानव संस्कृति व सभ्यता का वहन नहीं करेगा, वह विधि एवं व्यवस्था का पालन नहीं कर सकता.

संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था परस्पर पूरक हैं. इनके बिना अखंड-समाज तथा सामाजिकता का निर्धारण संभव नहीं है. अस्तु, कृतज्ञता के बिना गौरव, गौरव के बिना सरलता, सरलता के बिना सह-अस्तित्व, सह-अस्तित्व के बिना कृतज्ञता की निरंतरता नहीं है.

जो मानव कृतज्ञता को वहन करता है, उसी का आचरण अग्रिम पीढ़ी के लिए शिक्षाप्रद एवं प्रेरणादायी है. यह मानवीयता में ही सफल है. जिस विधि से भी चेतना विकास मूल्य **शिक्षा** के लिए सहज सहायता मिला हो, उन सभी के लिए कृतज्ञता है.

“ज्ञानात्मनोर्विजयते”
ए. नागराज

- मानव मात्र में सुख की आशा अपरिवर्तनीय है, जिसकी अपेक्षा में ही चेतना विकास मूल्य **शिक्षा** से विधि व निषेध स्वीकार होता है. **(अध्याय: 14, पृष्ठ नंबर:93)**

- मानव गलती करने का अधिकार लेकर तथा सही करने का अवसर एवं साधन लेकर जन्मता है. उपरोक्तानुसार मानव को न्यायवादी बनाने हेतु तथा न्याय में निष्ठा उत्पन्न करने हेतु उसे स्वभाववादी बनाने के लिए व्यवस्था व **शिक्षा** संस्कार का योगदान आवश्यक है. **(अध्याय: 15, पृष्ठ नंबर: 111)**

- माता एवं पिता हर संतान से उनकी अवस्था के अनुरूप प्रत्याशा रखते हैं. उदाहरणार्थ शैशव-अवस्था में केवल बालक का लालन-पालन ही माता-पिता का पुत्र-पुत्री के प्रति कर्त्तव्य एवं उद्देश्य होता है तथा इस कर्त्तव्य के निर्वाह के फलस्वरूप वह मात्र शिशु की मुस्कुराहट की ही अपेक्षा रखते हैं. कौमार्यावस्था में किंचित **शिक्षा** एवं भाषा का परिमार्जन चाहते हैं. इसी अवस्था में आज्ञापालन प्रवृत्ति,अनुशासन,शुचिता, संस्कृति का अनुकरण, परंपरा के गौरव का पालन करने की अपेक्षा होती है। कौमार्यावस्था के अनंतर संतान में उत्पादन सहित उत्तम सभ्यता की कामना करते हैं. सभ्यता के मूल में हर माता-पिता अपने संतान से कृतज्ञता (गौरवता) पाना चाहते हैं तथा केवल इस एक अमूल्य निधि को पाने के लिए तन, मन, एवं धन से संतान की सेवा किया करते हैं. संतान के लिए हर माता-

पिता अपने मन में अभ्युदय, समृद्धि तथा सम्पन्नता की ही कामना रखते हैं, इन सबके मूल में कृतज्ञता की वांछा रहती है. जो संतान माता-पिता एवं गुरु के कृतज्ञ नहीं होते हैं, उनका कृतघ्न होना अनिवार्य है, जिससे वह स्वयं क्लेश परंपरा को प्राप्त करते हैं और दूसरों को भी क्लेशित करते हैं. **(पिता-माता एवं पुत्र-पुत्री सम्बन्ध से) (अध्याय: 16 (i), पृष्ठ नंबर:122)**

- जागृत मानव परंपरा में राज्य का स्वरूप अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था सूत्र अध्ययन से और आचरण से व्याख्या होने के आधार पर विधि को पहचानने के मुख्य रूप से पाँच मुद्दे पाए गए हैं. यह- (१) मानवीय **शिक्षा** संस्कार, (२) न्याय-सुरक्षा, (३) उत्पादन कार्य, (४) विनिमय कोष, (५) स्वास्थ्य-संयम के रूप में गण्य हैं.

राज्य प्रक्रिया में उक्त पाँचों व्यवस्थाएं सार्वभौमिकता के अर्थ में ही सार्थक होना पाया जाता है. मानवीय शिक्षा-संस्कार की सफलता अर्थ-बोध होने के रूप में है. न्याय-सुरक्षा की सफलता संबंधों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन पूर्वक उभय-तृप्ति के रूप में सार्थक होना पाया जाता है. उत्पादन-कार्य हर परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन के रूप में, समृद्धि के अर्थ में सार्थक होना पाया जाता है. विनिमय-कोष श्रम-मूल्य के पहचान सहित, श्रम विनिमय पद्धति से सार्थक होता है. और स्वास्थ्य-संयम मानव-परंपरा में जीवन जागृति को प्रमाणित करने योग्य शरीर की स्थिति-गति के रूप में सार्थक होता है. यह सब मानव सहज जागृति के अक्षुण्णता का द्योतक है अथवा सार्वभौम व्यवस्था, अखंड समाज और उसकी अक्षुण्णता का द्योतक है. यही राज्य वैभव का स्वरूप है. इस विधि से हर परिवार समाधान-समृद्धि पूर्वक जीना होता है. **(अध्याय:16 (ii), पृष्ठ नंबर: 130-131)**

- मानव परंपरा में जागृत मानव ही **शिक्षा** प्रदान करने में समर्थ है. **शिक्षा** का प्रयोजन है, अखंड-सामाजिकता का सूत्र एवं व्याख्या समाधान, समृद्धि, अभय व सह-अस्तित्व. इस विधि से समाज अखंडता और सार्वभौमता के रूप में वैभवित होता है.

उपरिवर्णित धर्मनैतिक तथा राज्यनैतिक व्यवस्था के लिए जो मानवीयतापूर्ण दृष्टि, स्वभाव तथा विषयों को व्यवहार में आचरित करने योग्य अवसर और साधन प्रस्तुत हो सके तथा रूचि उत्पन्न कर सके **शिक्षा** नीति है. **(अध्याय: 16(ii), पृष्ठ नंबर:131-132)**

- **विद्याध्ययन सुरक्षा:** - अस्तित्व मूलक मानव केंद्रित, मध्यस्थ दर्शन सह-अस्तित्ववादी विचार विधि से विधिवत स्थिति सत्य, वस्तुगत सत्य वस्तुस्थिति का अध्ययन कराने वाली जानकारी की 'विद्या' संज्ञा है.

- अध्ययन को सफल बनाने का दायित्व अध्यापक, अध्यापन, तथा शिक्षा-वस्तु और प्रणाली पर है, क्योंकि यह चारों परस्पर पूरक हैं।

- **शिक्षा** प्रणाली, अध्यापक, माता-पिता, तथा अध्ययन यह सब एकसूत्रात्मक होने से ही सफल विद्याध्ययन पद्धति का विकास संभव है, जिससे कृतज्ञता तथा सह-अस्तित्व का मार्ग प्रशस्त होता है।

- **शिक्षा**-प्रणाली के लिए शिक्षा-नीति का निर्धारण के लिए धर्म-नीति और अखंड-समाज सार्वभौम व्यवस्था रूपी राज्य-नीति का निर्भ्रम ज्ञान आवश्यक है।

- **शिक्षा** नीति का आधार एवं उद्देश्य मानव में मानवीयता तथा समाजिकता होना अनिवार्य है। मानवीयता ही समाजिकता है जो सार्वभौम तथ्य है। इसलिए इसके आधारित **शिक्षा** प्रणाली से मानवीयता सम्पन्न नागरिकों का निर्माण होगा जिनकी सहअस्तित्व तथा पोषण में दृढ़ निष्ठा होगी।

- शिक्षा नीति का लक्ष्य है: -

मानवीय दृष्टि, प्रवृत्ति व स्वभाव सहज ज्ञान-विवेक-विज्ञान संपन्न समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, भागीदारी संपन्न नागरिकों का निर्माण, जिनमे अतिमानवीयता का मार्ग प्रशस्त होता है.

शिक्षा-नीति की सफलता निम्न सूत्रों से है: -

1. विज्ञान के साथ चैतन्य पक्ष का अध्ययन
2. मनोविज्ञान के साथ संस्कार पक्ष का अध्ययन
3. अर्थशास्त्र के साथ प्राकृतिक एवं वैयक्तिक एश्वर्य के सदुपयोगात्मक तथा सुरक्षात्मक नीति पक्ष का अध्ययन
4. समाजशास्त्र के साथ मानवीय संस्कृति तथा सभ्यता का अध्ययन
5. राजनीति शास्त्र के साथ मानवीयता के संरक्षण एवं संवर्धन के नीति पक्ष का अध्ययन
6. दर्शन शास्त्र के साथ क्रिया पक्ष का अध्ययन
7. इतिहास एवं भूगोल के साथ मानव तथा मानवीयता का अध्ययन
8. साहित्य शास्त्र के साथ तात्विकता का अध्ययन **(अध्याय: 16 (ii), पृष्ठ नंबर:136-137)**

- यह विकल्प अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के रूप में है. इस प्रस्ताव में मानव ही अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का प्रमाण देना प्रतिपादित है. साथ ही मानव ही प्रमाण होने का साक्षी को भी संजो लिया है. इस मुद्दे पर सर्वमानव का ध्यानाकर्षण करना आवश्यक है ही. इस क्रम में समुदाय चेतना से मानव चेतना, मानव चेतना से समाज चेतना में परिवर्तित होना ही महत्त्वपूर्ण घटना है. ऐसे स्थिति की सफलता मानव ही, शिक्षा-संस्कार पूर्वक, सर्वतोमुखी समाधान संपन्न होना ही एक मात्र उपाय है. इसे सार्थक बनाने के क्रम में ही मानव व्यवहार दर्शन, मानव के सम्मुख प्रस्तुत है. इस प्रकार समग्र विकास और जागृति को परंपरा में प्रमाणित करने हेतु एक मात्र इकाई मानव है क्योंकि अस्तित्व में केवल मानव ही दृष्टा पद प्रतिष्ठा में है. भ्रमित मानव के द्वारा भ्रमित मानव के चार ऐश्वर्यों (रूप, बल, पद, धन) का शोषण होता है. **(अध्याय:17, पृष्ठ नंबर: 150-151)**

- जागृत मानव में मध्यस्थ व्यवहार, विचार व अनुभव पाया जाता है.
  - ❖ मध्यस्थ व्यवहार: - न्यायपूर्ण व्यवहार
  - ❖ मध्यस्थ विचार: - धर्मपूर्ण विचार
  - ❖ मध्यस्थ अनुभव: - सह-अस्तित्व रुपी परम-सत्य
  - ❖ न्यायपूर्ण व्यवहार ही मानवीयतापूर्ण व्यवहार है. मानवीयतापूर्ण व्यवहार से तात्पर्य है मानवीयता के प्रति निर्विरोधपूर्ण व्यवहार जिसको समझना व समझाना अखंड-मानव की दृष्टि से आवश्यक है. इसके लिए अध्ययन व **शिक्षा** आवश्यक है.
  - ❖ शिक्षण एवं प्रशिक्षण द्वारा केवल व्यवसाय का ज्ञान कराया जाता है, यह मात्र भौतिक-समृद्धि के लिए सहायक हुआ है.
  - ❖ मानवीयता और अतिमानवीयता का वर्गीकरण एवं पुष्टि मानव के साथ किये गए व्यवहार से ही सिद्ध हुई है, जिसके लिए अध्ययन तथा दीक्षा आवश्यक है.

    दीक्षा:- अनुभवमूलक विधि से सुनिश्चित व्यवहार पद्धति व आचरण पद्धति बोध की 'दीक्षा' संज्ञा है, जो व्रत है, जिसकी विश्रंखलता नहीं है, अथवा जिसमे अवरोध नहीं है. **(अध्याय:18, पृष्ठ नंबर: 156-157)**

- (मन सहज चौसठ (६४) क्रियाएँ – चयन व आस्वादन रूपी चौसठ (६४) क्रियाकलाप में से)

पुत्र-पुत्री: - शरीर रचना की कारकता सहज स्वीकृति और जीवन जागृति में पूरकता निर्वाह करने वाली मानव इकाई ही पिता है.

- पोषण, सुरक्षा की स्वीकृति

- संतानों के पोषण संरक्षण के लिए, उत्पादन हेतु सक्षम बनाने हेतु आधार के रूप में स्वयं को स्वीकारना.

- **शिक्षा-संस्कार** प्रदान करने में स्वयं को सक्षम स्वीकारना

- सम्पूर्ण ज्ञान प्रावधानित करने के लिए स्वयं में स्वीकारना **(अध्याय:18, पृष्ठ नंबर:174)**

- **गुरु, प्रामाणिक-**

गुरु: - **शिक्षा-संस्कार** नियति क्रमानुशंगीय विधि से जिज्ञासाओं और प्रश्नों को समाधान के रूप में अवधारणा में प्रस्थापित करने वाला मानव गुरु है.

प्रामाणिक: - प्रमाणों का धारक-वाहक, यथा अस्तित्व-दर्शन, जीवन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण समुच्चय को प्रयोग, व्यवहार, अनुभवपूर्ण विधि से प्रमाणित करना और प्रमाणों के रूप में जीना. **(अध्याय:18, पृष्ठ नंबर:176)**

- **शिष्य, जिज्ञासु**

शिष्य: - जागृति लक्ष्य की पूर्ति के लिए **शिक्षा-संस्कार** ग्रहण करने, स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत व्यक्ति, जिसमे गुरु का सम्बन्ध स्वीकृत हो चुका रहता है.

जिज्ञासु: - जीवन ज्ञान सहित निर्भ्रम **शिक्षा** ग्रहण करने के लिए तीव्र इच्छा का प्रकाशन। **(अध्याय:18, पृष्ठ नंबर:176)**

सन्दर्भ : मानव कर्म दर्शन

(संस्करण: 2010, मुद्रण: जनवरी 2017)

- प्रत्येक मानव का सहज प्रवृत्तन वातावरण, अध्ययन एवं संस्कार के योगफल के रूप में प्रत्यक्ष है।

प्रकृति एवं मनुष्य कृत भेद से वातावरण प्रसिद्ध है।
शिक्षा एवं व्यवस्था ही मानवकृत वातावरण का प्रत्यक्ष रूप है।
मानव मात्र का संस्कार "अन्वेषण-त्रय" (विषयान्वेषण, ऐषणान्वेशन, सत्यान्वेषण) की सीमा में स्पष्ट है।
प्राकृतिक वातावरण की गणना प्रत्येक भूमि पर पाये जाने वाले शीत-उष्ण एवं वर्षा मान ही का संतुलन सहित मानवेत्तर तीनों अवस्थाएँ संबन्धित रहता है।
प्रत्येक भूमि पर जो प्राकृतिक वातावरण वर्तमान है वह उस भूमि में पाये जाने वाले खनिज एवं वनस्पति की राशि पर आधारित है। यह उस भूमि के विकास पर आधारित है।
किसी भी भूमि पर ज्ञानावस्था के मानव की अवस्थिति घटना के पूर्व ही जीव व वनस्पतियों का समृद्ध होना अनिवार्य है। इसके पूर्व जल का होना आवश्यक है।
प्रत्येक भूमि पर किसी अधिकतम-न्यूनतम शीत-उष्ण और वर्षा मान की सीमा में ही जीव एवं मानव अपने जीवनी-क्रम और जीवन के कार्यक्रम को सम्पन्न करने में समर्थ हुए हैं।
प्राकृतिक वातावरण का संतुलन भी मनुष्य सहज जागृति के लिए सहयोगी है, इसलिए -
संतुलन के लिये आधार आवश्यक है।
अशेष प्रकृति का संतुलनाधार सत्ता ही है, जो पूर्ण है।
प्रत्येक क्रिया के संतुलन का आधार नियम है, जो पूर्ण है।
प्रत्येक व्यवहार के संतुलन का आधार न्याय है,जो पूर्ण है।
प्रत्येक विचार के संतुलन का आधार समाधान है, जो पूर्ण है।
प्रत्येक व्यक्ति में अनुभव का आधार सह-आस्तित्व रूपी परम सत्य है, जो समग्र है।
प्राकृतिक एवं मानव संतुलन एवं असंतुलन का प्रधान कारण मानव ही है, भ्रमित अवस्था में मानव कर्म करते समय स्वतंत्र एवं फल भोगते समय परतंत्र है। जागृत मानव कर्म करते समय तथा फल भोगते समय स्वतंत्र है। जागृत अवस्था में समझकर करने वाली परम्परा रहेगी तथा भ्रमित अवस्था में कर के समझने वाली परम्परा रहेगी। प्राकृतिक वैभव का विशेषकर मनुष्य ही उपयोग करता है जो प्रत्यक्ष है। इसलिए -
ऋतु-संतुलन को बनाये रखने के लिये भूमि में आवश्यकीय मात्रा में खनिज वनस्पति (वन) को सुरक्षित रखते हुए उपयोग करना, साथ ही उसकी उत्पादन-प्रक्रिया में विघ्न उत्पन्न नहीं करना और सहायक होना ही प्राकृतिक नियम का तात्पर्य है। यह पूर्णत: मानव का दायित्व है।
वनस्पति (वन) एवं खनिज जिनकी उत्पत्ति की संभावना एवं क्रम स्पष्ट है उनका उन्हीं के अनुपात में व्यय करना उचित है, अन्यथा प्राकृतिक दुर्घटनाओं से ग्रसित हो जाना स्वभाविक है।

शिक्षा एवं व्यवस्था ही सामूहिक (सामाजिक) संतुलन को बनाये रखने का एक मात्र उपाय है। (अध्याय:1, पृष्ठ नंबर:7-8)

- समग्रता के प्रति निर्भ्रमता को प्रदान करने, जागृति की दिशा तथा क्रम को स्पष्ट करने, मानवीय मूल्यों को सार्वभौमिक रूप में निर्धारित करने, मानवीयता से अतिमानवीयता के लिये समुचित **शिक्षा** प्रदान करने योग्य-क्षमता-सम्पन्न शास्त्र तथा **शिक्षा** प्रणाली ही शान्ति एवं स्थिरतापूर्ण जीवन को प्रत्येक स्तर में प्रस्थापित करने में समर्थ है। इसके बिना मानव जीवन में स्थिरता एवं शान्ति संभव नहीं है, जो स्पष्ट है।**(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर:13)**

- अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष और अभिमान सहित व्यक्ति, कुटुम्ब, समाज, राष्ट्र एवं अन्तर्राष्ट्र की नीति एवं तदनुकूल किये गये कर्म-उपासना, व्यवहार-व्यवस्था, प्रचार-प्रयोग-प्रदर्शन एवं **शिक्षा** असामाजिक सिद्ध हुई है। समाज एवं सामाजिकता के बिना मनुष्य जीवन में कोई मूल्य तथा कार्यक्रम सिद्ध नहीं होता है। **(अध्याय:1, संस्करण: प्रथम, 2001,पृष्ठ नंबर:)**

- दर्शन-क्षमता जागृति पर; जागृति, आकाँक्षा एवं आचरण पर; आकाँक्षा एवं आचरण **शिक्षा** एवं अध्ययन पर; **शिक्षा** एवं अध्ययन व्यवस्था पर; व्यवस्था, दर्शन क्षमता के आधार पर होना पाया जाता है। **(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर:16)**

- प्रत्येक आविष्कार एवं अनुसंधान व्यक्ति मूलक उद्घाटन है। यह **शिक्षा** एवं प्रचार के माध्यम से सर्व सुलभ हो जाता है। यही सर्व-सामान्यीकरण प्रक्रिया है।

जिसका विभव एवं वैभव है उसी का आविष्कार है क्योंकि उसके पहले उसका स्पष्ट ज्ञान मनुष्य कोटि में था ही नहीं। इसलिए, उस समय में अर्थात सन 2000 से पहले जो समझ मानव समुदायों में रहा उसकी तुलना में मध्यस्थ दर्शन आविष्कार, अनुसंधान है।
सह-अस्तित्व में, से, के लिए प्रकटन ही आविष्कार है। आविष्कार की सामान्यीकरण प्रक्रिया ही **शिक्षा** यही चेतना विकास मूल्य **शिक्षा** है।**(अध्याय: 1, पृष्ठ नंबर: 20)**

- व्यवहार उत्पादन कर्मों में तीन स्तर में प्रवृत्तियों को पाया जाता है:- (1) स्वतंत्र (2) अनुकरण (3) अनुसरण।

स्वतंत्र प्रवृत्तियों की क्रियाशीलता उन परिप्रेक्ष्यों में स्पष्ट होती हैं जिनके सम्बन्ध में ये विशेषज्ञता हैं।
जो विशेषज्ञ होने के लिये इच्छुक हैं उन्हें अनुकरण क्रिया में व्यस्त पाया जाता है।
जिनमें विशेषज्ञता के प्रति इच्छा जागृत नहीं हुई है उन्हें अनुसरण क्रिया में अनुशीलनपूर्वक ही कर्म एवं व्यवहार रत पाया जाता है। ये विकास एवं अवसर के योगफल का द्योतक है। अवसर प्रधानत:व्यवस्था एवं **शिक्षा** ही है। **(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर: 22)**

- सम, विषम, मध्यस्थ शक्तियाँ क्रम से रजोगुण, तमोगुण एवं सत्वगुण हैं।

सत्वगुण सम्पन्न व्यक्ति का आचरण व्यवहार के साथ दया, आदर, प्रेम जैसे मूल्यों सहित विवेक व विज्ञान क्षमतापूर्ण होता है।
रजोगुण सम्पन्न व्यक्ति में धैर्य, साहस, सुशीलता जैसे मूल्यों सहित विज्ञान का सद्उपयोग होता है।
तमोगुण सम्पन्न व्यक्ति में ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान एवं अहंकार जैसे अवांछनीय विकृतियों सहित विज्ञान क्षमता का अपव्यय होता है। इसलिये-
सत्य-संबद्ध-विधि-व्यवस्था, विचार, आचरण, व्यवहार, शिक्षा, दिशा, कर्म एवं पद्धति के अनुसार वर्तना ही मानव में व्यष्टि व समष्टि का धर्म पालन है। **(अध्याय: 1, पृष्ठ नंबर : 27)**

- मानव का स्व-धर्म पालन ही अखंडता सार्वभौमता है और सीमा विहीनता है, जो स्वयं में सह-अस्तित्व सामाजिकता, समृद्धि, संतुलन, नियंत्रण, संयमता, अभय, निर्विषमता, सरलता एवं उदारता है। इसी में दया, स्नेह, उदारता, गौरव, आदर, वात्सल्य, श्रद्धा, प्रेम, कृतज्ञता जैसे सामाजिक स्थिर मूल्यों का वहन होता है। यही मानव की चिर वाँछा भी है। यही स्वस्थ सामाजिकता की आद्यान्त उपलब्धि है।

सच्चरित्र पूर्ण व्यक्तियों की बाहुल्यता के लिये जागृत मानव का सहयोग व प्रोत्साहन, उनकी समुचित **शिक्षा** व संरक्षण एवं उनके अनुकूल परिस्थितियाँ ही विश्व शान्ति का प्रत्यक्ष रूप है। इसके विपरीत में अशान्ति है, जो स्पष्ट है।
"व्यवहार-त्रय" नियम का पालन ही सच्चरित्रता है। यही मानव की पाँचों स्थितियों में प्रत्यक्ष गरिमा है। यही सहज निष्ठा है और इसी में विज्ञान और विवेक पूर्णरूपेण चरितार्थ हुआ है। फलत: स्वस्थ व्यवस्था-पद्धति एवं शिक्षा-प्रणाली प्रभावशील होती है।
"व्यवहार-त्रय" का तात्पर्य जागृत मानव के द्वारा किया गया कायिक, वाचिक, मानसिक व्यवहार से है।**(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर: 27-28)**

- भोग एवं बहु भोगवादी जीवन में मनुष्य स्वयं को स्वस्थ बनाने तथा अग्रिम पीढ़ी के आचरणपूर्वक जागृति के लिये **शिक्षा** प्रदत्त करने में समर्थ नहीं है और न हो सकता है। यह ज्वलंत तथ्य ही विचार परिवर्तन एवं परिमार्जन का प्रधान कारण है। **(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर: 28-29)**

- उपासनायें कूटस्थ, रूपस्थ एवं आत्मस्थ भेद से होती हैं। पूर्ण अनुभव के लिये की गई प्रक्रिया कूटस्थ उपासना है। महिमा सहित रूप सान्निध्य के लिए की गयी प्रक्रिया रूपस्थ उपासना है। प्रत्यावर्तन प्रक्रिया ही आत्मस्थ उपासना है जिसके लिये मानव बाध्य है। इसलिये प्रवृत्तियों का परिमार्जन ही मानव जीवन का कार्यक्रम है। मानव में पूर्णता एवं परिमार्जनशीलता की अपेक्षा प्रत्येक स्थिति में पाई जाती है। परिमार्जनशीलता ही निपुणता एवं कुशलता है। पूर्णता ही पांडित्य है। पांडित्य से अधिक ज्ञान एवं निपुणता, कुशलता से अधिक व्यवहार एवं उत्पादन नहीं है। परिमार्जनशीलता उत्पादन व व्यवहार में पाई जाती है। पांडित्य ही प्रबुद्धता, प्रबुद्धता ही **शिक्षा** एवं व्यवस्था है। प्रबुद्धता से परिपूर्ण होते तक उपासना अत्यन्त सहायक है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर:33)**

- उपासना के लिये वातावरण का महत्व अपरिहार्य है, जिसमें से मानव कृत वातावरण ही प्रधान है, जो **शिक्षा** व व्यवस्था के रूप में ही है।

प्रबुद्धता से परिपूर्ण **शिक्षा** ही व्यक्तित्व के लिये दिशा प्रदायी महिमा है। उसके समुचित संरक्षण, संवर्धन के लिये योग्य व्यवस्था ही प्रभुसत्ता है।
प्रबुद्धता की सामान्यीकरण प्रक्रिया ही गुणात्मक परिवर्तन का प्रत्यक्ष रूप है। एक व्यक्ति जो उपासना पूर्वक प्रबुद्ध होता है, वह **शिक्षा** और व्यवस्था पूर्वक सामान्य हो जाता है। **(अध्याय:2, पृष्ठ नंबर: 44-45)**

- उपासना व्यक्ति में व्यक्तित्व तथा कर्त्तव्य का प्रत्यक्ष रूप प्रदान करती है क्योंकि उपासना स्वयं में **शिक्षा** एवं व्यवस्था है। इसलिये यही प्रबुद्धता है। प्रबुद्धता ही मानव की सीमा में **शिक्षा** एवं व्यवस्था है। सत्य व सत्यता में वैविध्यता नहीं है। **(अध्याय:2, पृष्ठ नंबर: 45)**

- मनुष्य के बौद्धिक क्षेत्र में पायी जाने वाली अनावश्यक कल्पनाओं का निराकरण ही दर्शन-क्षमता में गुणात्मक परिमार्जन है। यही गुणात्मक संस्कार-परिवर्तन, **शिक्षा** एवं जीवन के कार्यक्रम का योगफल है। **(अध्याय:2, पृष्ठ नंबर: 48)**

- मानव में यह वैभव देखने को मिलता है कि वह उपयोगी, सदुपयोगी, प्रयोजनशील प्रमाणित किया हुआ शोध अनुसंधान को **शिक्षा** पूर्वक, अध्ययन पूर्वक, अभ्यास पूर्वक लोकव्यापीकरण करता हुआ पाया जाता है। **(अध्याय:3 (3), पृष्ठ नंबर: 64)**

- सहअस्तित्ववादी विचार के अनुसार ज्ञान, विवेक, विज्ञान के अनुसार सर्वमानव को मानव लक्ष्य के अर्थ में **शिक्षा** संस्कार को अपनाना आवश्यक है। इसमें मानवीयता पूर्ण आचरण मानव लक्ष्य के अर्थ में स्पष्ट रहना आवश्यक है, क्योंकि सभी अवस्था में आचरण के आधार पर ही उन अवस्थाओं का लक्ष्य पूर्ण हुआ समझ में आता है। जैसे पदार्थावस्था में सम्पूर्ण वस्तु परिणाम के आधार पर यथास्थिति रूपी लक्ष्य का आचरण करता हुआ देखने को मिलता है। इसी प्रकार प्राणावस्था और जीवावस्था में भी कार्यरत सभी इकाई उन-उन अवस्थाओं के लक्ष्य के अर्थ में आचरण करती हुई स्पष्ट है, यथा प्राणावस्था अस्तित्व सहित पुष्टि के अर्थ में, बीज से वृक्ष, वृक्ष से बीज तक यात्रा करता हुआ देखने को मिलता है। इसी प्रकार सम्पूर्ण जीव संसार, अस्तित्व, पुष्टि सहित वंशानुषंगीय विधि से जीने की आशा में आचरण करता हुआ देखने को मिलता है। इतने सुस्पष्ट स्थितियों को देखने के उपरान्त यह भी आवश्यक रहा कि मानव का आचरण अस्तित्व, पुष्टि, आशा सहित सुख को प्रमाणित करने के अर्थ में होना है जिसके लिए ही मन:स्वस्थता प्रमाणित होना स्वाभाविक रही। **(अध्याय:3 (4), पृष्ठ नंबर: 68-69)**

- मानव लक्ष्य - समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व को प्रमाणित करने और उस आधार पर जीवन लक्ष्य (मन:स्वस्थता) – प्रमाण ही सुख, शान्ति, संतोष, आनन्द को सार्थक बनाने के अर्थ में मानव **शिक्षा** संस्कार की आवश्यकता सदा-सदा से बनी हुई है। इसकी सफलता ही मानव कुल का सौभाग्य है। **(अध्याय:3 (4), पृष्ठ नंबर: 70)**

- **'मानव कुल और रासायनिक-भौतिक क्रियाकलाप का सार्थक प्रमाण'**

शिक्षा की सम्पूर्ण वस्तु सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व में रासायनिक, भौतिक एवं जीवन क्रिया के रूप में ही है। इसमें से, इनके अविभाज्य रूप में मानव परम्परा का सम्पूर्ण क्रियाकलाप, व्यवहार, सोच विचार, समझ है। समझ के अर्थ में ही हर मानव का अध्ययन करना होता है। समझ अपने में जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित होती है। इसी अर्थ में सम्पूर्ण अध्ययन सार्थक होना पाया जाता है।
अस्तित्व में सम्पूर्ण इकाईयाँ, रासायनिक, भौतिक एवं जीवन क्रिया के रूप में परिलक्षित है ही। गठनशील परमाणु से लेकर अणु, अणुरचित पिंड, प्राणकोषा, वनस्पति संसार, जीव संसार सभी स्वयं में व्यवस्था में रहते हुए, अपने-अपने निश्चित आचरण को व्यक्त करते हुए समझ में आते हैं। ऐसे प्रमाण में से ये धरती सबसे बड़ा प्रमाण है। धरती एक व्यवस्था के रूप में काम करती है। व्यवस्था के रूप में काम करने का प्रमाण ही है, इस धरती पर भौतिक-रासायनिक और जीवन क्रियाकलाप पदार्थ, प्राण, जीव और ज्ञान अवस्था के रूप में प्रकाशित है। इससे बड़ी गवाही क्या होगी। इस गवाही के आधार पर अर्थात् पदार्थ, प्राण, जीव अवस्था के निश्चित कार्यकलाप के अनुसार, मानव अपने व्यवस्था में होने का भरोसा कर सकता है।

मनुष्य को सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व सहज विधि से स्वयं व्यवस्था रूप में जीने का सूत्र और व्याख्या स्वयंस्फूर्त विधि से समझ आता है।

सहअस्तित्ववादी विधि से सम्पूर्ण मानव को एक अखण्ड समाज के रूप में पहचानना हो पाता है। अखण्ड समाज मानसिकता का पूर्ण समझ ही ज्ञान, विज्ञान, विवेक रूप में सार्वभौम व्यवस्था का ताना-बाना स्पष्ट हुआ रहता है। ऐसे सर्वशुभ के अर्थ में ही मानव व्यवस्था के रूप में सार्थक होना पाया गया। इसलिये सार्वभौम व्यवस्था सम्पन्न होना, मानव कुल के लिये परम वैभव, सूत्र और व्याख्या है। इस प्रकार मानव कुल, मानव संचेतना पूर्वक ही अपने में से सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज में भागीदारी करने की प्रवृत्ति स्वयंस्फूर्त होना पाया जाता है। इसका एकमात्र कारण है कि सहअस्तित्ववादी विधि से मानव अपने को पहचानता है।

मानव जाति आचरण में धर्म प्रधान है, जीव जातियाँ स्वभाव प्रधान, वनस्पतियाँ गुण प्रधान, पदार्थ रूप प्रधान है। मानव धर्म अपने में सुख के आधार पर समाधान प्रमाणित होना आवश्यक हो चुका है। सर्वतोमुखी समाधान पूर्ण **शिक्षा** संस्कार ही इसके लिये परम्परा और स्त्रोत है। यही जागृत परम्परा है। **(अध्याय: 3 (4), पृष्ठ नंबर: 70 -71)**

- सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व स्थिर है। सहअस्तित्व में ही विकास और जागृति निश्चित है। इस धरती पर हम मानव इस तथ्य का अध्ययन करने योग्य स्थिति में हो चुके हैं। सर्व शुभ का दृष्टा, कर्त्ता, भोक्ता, उसके मूल में **शिक्षा** संस्कार से पाई गयी ज्ञान, विज्ञान, विवेक का धारक-वाहक केवल जागृत मानव ही है।... **(अध्याय:3(5), पृष्ठ नंबर:71)**

- मानव परम्परा जागृत होने में स्थिरता, अस्तित्व सहज विधि से प्रमाणित होता है, सुस्पष्ट होता है। निश्चयता मानवीयता पूर्ण आचरण विधि से प्रमाणित होता है, सुस्पष्ट होता है। इसकी अपेक्षा मानव में पीढ़ी से पीढ़ी में रहा आया है। इस प्रकार मानव का विकास और जागृति को प्रमाणित करने में समर्थ होना ही, मानव का उत्थान, वैभव, राज्य होना पाया जाता है। राज्य का परिभाषा भी वैभव ही है। उत्थान का तात्पर्य मौलिकता रूपी ऊँचाई में पहुँचने से या पहुँचने के क्रम से है। वैभव अपने स्वरूप में परिवार व्यवस्था और विश्व परिवार व्यवस्था ही है। ऐसी व्यवस्था में भागीदारी मानव का सौभाग्य है। इस क्रम में अध्ययन, **शिक्षा** संस्कार के रूप में उपलब्ध होते रहना भी व्यवस्था का बुनियादी वैभव है। वैभव ही राज्य और स्वराज्य के रूप में सुस्पष्ट होता है। स्वराज्य का मतलब भी मानव के वैभव से ही है। यह वैभव समझदारी पूर्वक ही हर मानव में पहुँच पाता है। यह **शिक्षा** पूर्वक लोकव्यापीकरण हो पाता है। ऐसी व्यवस्था अपने आप में द्रोह, विद्रोह, शोषण और युद्ध मुक्त रहना इसके स्थान पर समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व पूर्वक रहना पाया जाता है। यही सार्वभौम व्यवस्था का तात्पर्य है। **(अध्याय:3 (6), पृष्ठ नंबर: 75-76)**
- मानव जागृति पूर्वक स्थिति-गति में प्रमाणित होना चाहता है। ऐसे प्रमाण स्वयं के भी और सम्पूर्ण के भी संबंध में आशित हैं। सर्वप्रथम इस सिद्धान्त को हृदयंगम करना होगा कि स्थिति, गति अविभाज्य है। 'होना', 'गतित

रहना’ इसका मूल प्रमाण है। एक परमाणु भी होने के आधार पर गतित रहता है। ग्रह गोल भी होने के आधार पर गतित रहता है। सम्पूर्ण पदार्थ संसार ‘होने’ के आधार पर ही रचना विरचना रूपी गति को बनाये रखता है। सारे वनस्पति भी होने के आधार पर ही, पुष्टि के रूप में गतित रहते हैं। संपूर्ण जीव संसार भी होने के आधार पर ही गतित रहता है। मानव जागृति होने के आधार पर ही गति को प्रमाणित करता है। इस प्रकार सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व में नित्य प्रतिष्ठा प्राप्त संपूर्ण वस्तु स्थिति-गति के रूप में वर्तमान है। इस विधि से संपूर्ण स्थिति-गति अविभाज्य है। स्थिति में बल, गति में शक्ति अथवा स्थिति को बल, गति को शक्ति के रूप में देखा जाता है और बल और शक्ति अविभाज्य है ही।

इस स्थिति-गति की अविभाज्यता को मानव में होने वाली जीवन क्रियाओं में भी देखा जाता है। मानव में अनुभव के रूप में स्थिति, प्रमाण के रूप में गति दिखाई पड़ती है। यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता का बोध रूपी बुद्धि ही स्थिति, उसे प्रकाशित करने की प्रवृत्ति के रूप में संकल्प ही गति है। न्याय, धर्म, सत्य के साक्षात्कार/चिंतन करने के रूप में चित्त स्थिति और इसका चित्रण के रूप में चित्रित हो पाना गति है। चित्त क्रियाकलाप का सम्पूर्ण चित्रण तुलन के रूप में अर्थात् न्याय, धर्म व सत्य रूप में स्पष्ट होना वृत्ति सहज स्थिति है, वृत्ति में सम्पन्न हुये तुलन का विश्लेषण विधि में विश्लेषित होना व सम्प्रेषित होना वृत्ति सहज गति है। विश्लेषण के स्पष्ट अथवा सार रूप में मूल्य स्वीकृत होता है। इसे आस्वादन करना ही मन की स्थिति है, इसकी सार्थकता के लिये चयन क्रिया को सम्पादित करने के रूप में गतित होना हर मानव में सर्वेक्षित है। इस ढंग से मानव भी सभी प्रकार से स्थिति-गति में होना स्पष्ट होता है। इस प्रकार मानव समझदारी से सम्पन्न होने के उपरान्त प्रमाणित होना स्वभाविक होता है। इसका मतलब यही हुआ हम जब तक प्रमाणित नहीं होते, तब तक प्रमाणित होने के लिए ज्ञानार्जन, विवेकार्जन, विज्ञानार्जन कर लेना ही **शिक्षा** और शिक्षण का तात्पर्य है। इसके लिए सह अस्तित्ववादी **शिक्षा** क्रम समीचीन है। अतएव समझदार मानव होने के लिए ध्यान देने की आवश्यकता है। **(अध्याय: 3 (8), पृष्ठ नंबर: 87-88)**

- इस बात का उल्लेख अवश्य है कि हम मानव परिभाषा के रूप में मनाकार को साकार करने वाले हैं और मन:स्वस्थता को प्रमाणित करने वाले हैं। यही मानव की मौलिकता है इस मौलिकता को प्रमाणित करने के क्रम में ही मानव सुखी होने के तथ्य को हम अपने में जांच कर प्रमाणित कर चुके हैं। हर विधा में हम समाधानपूर्वक जीकर ही सुखी होते हैं। समाधान पूर्वक जीने का सूत्र समझदारी पूर्वक ही सार्थक होना पाया गया। समझदारी सहअस्तित्व पूर्ण दृष्टिकोण से सम्पन्न होता है। इस क्रम में समझदारी का नित्य स्रोत तीन विधा में होना पहले से हम समझ चुके हैं। यह तो पहले से अभी तक प्रस्तुत किया गया अध्ययन से विदित हो चुका है कि आदर्श वादी विधि, भौतिक वादी विधि से, तार्किक विधियों से समझदारी प्रमाणित नहीं हो पाती। प्रस्तावित सहअस्तित्व वादी विधि से ही, अनुभव मूलक विधि से हर नर-नारी समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और भागीदारी के रूप में मानवीय आचरण पूर्वक सर्वतोमुखी समाधान को प्रमाणित कर सकते हैं। स्वयं में सदा-सदा सुख का अनुभव कर सकते हैं क्योंकि सार्वभौम समाधान सम्पन्न होना ही समझदारी की सर्वप्रथम सीढ़ी है। हर जागृत मानव में यह विद्यमान रहता ही है। इसी कारणवश सदा-सदा सुखी होने की संभावना भी समायी रहती है। इसी आधार पर प्रमाणित होने की आवश्यकता बनी रहती है। इस प्रकार हर समझदार मानव परम्परा में, से, के लिए जिम्मेदार होना, उपकारी होना संभावित हो गया। उपकार का तात्पर्य भी स्पष्ट है। समझा हुआ को समझाना, किये हुए को कराना, सीखे हुए को सिखाना, यह सब समाधानकारी होना फलत: उपकार सार्थक होना होता है। इस ढंग से मानव कैसा उपकारी हो सकता है, स्पष्ट हुआ है। यह भी स्पष्ट हुआ कि हम सब समझदार मानने वाले, नासमझ मानने वाले कैसे समस्याओं को निर्मित किया। इसी के साथ यह भी स्पष्ट हो गया कि विज्ञान संसार मानसिकता, प्रबोधन कार्यों में जिम्मेदारियों से बहुत दूर पहुँचने के क्रम में, यंत्र के समान मनुष्य को पहचानने की कोशिश की, इसमें सर्वथा असफल हुआ। **(अध्याय:3 (8), पृष्ठ नंबर: 90-91)**

- सर्वमानव किसी आयु में सर्वाधिक लोगों के लिए अर्थात् सर्वमानव में शुभ चाहते रहे, इसके पुष्टि में सह अस्तित्व रूपी अध्ययन में इसकी संभावना सुलभ हुई है। अभी एक ही मनुष्य, किसी आयु तक सबका अथवा ज्यादा लोगों का सुख चाहता और कुछ अधिक आयु के अनन्तर अपने परिवार, स्वयं की सुविधा संग्रह पर तुल जाने के रूप में

देखने को मिलता है। इनमें सन्तुलन स्थापित करने के लिए मध्यस्थ दर्शन (सह-अस्तित्ववाद) के अनुसार **शिक्षा** सुलभ अर्थात् सह-अस्तित्ववादी **शिक्षा** का लोकव्यापीकरण करने की आवश्यकता है। चारों अवस्था में संतुलित बिन्दु में लाने के लिए सहअस्तित्ववादी विधि को अपनाना ही होगा। **(अध्याय:3 (9), पृष्ठ नंबर: 94)**

- मात्रा विधा में रूप, गुण, स्वभाव और धर्म के अध्ययन के सम्बन्ध में रूप चारों अवस्थाओं के लिए स्पष्ट हो चुकी है। अब गुण और स्वभाव के सम्बन्ध में स्पष्ट होना आवश्यक है। स्वभाव चारों अवस्थाओं में भिन्न देखा जा रहा है। पदार्थावस्था में संगठन-विघटन या किसी से संगठन किसी से विघटन क्रिया के रूप में स्वभाव को पदार्थावस्था में देखा जाता है। प्राणावस्था में स्वभाव सारकता मारकता के रूप में देखने को मिलता है। सारकता, स्वयं में विपुल होने के अर्थ में, दूसरा जीव संसार के लिए उपयोगी होने के अर्थ में। मारकता का मतलब अपने बीज व्यवस्था को विपुल बनाने में अड़चन पैदा करने की क्रिया और जीव संसार के लिए रोग, मृत्युकारक होने की स्थिति से है। जीव संसार में स्वभाव को क्रूर-अक्रूर के रूप में पहचाना गया है। अक्रूर का अर्थ है दूसरे किसी जीवों का हत्या न करना, मांस भक्षण न करना, वनस्पति आहारों पर जीते रहना। इस प्रकार से क्रूर-अक्रूर दोनों स्पष्ट होते हैं। दूसरे भाषा में मांसाहारी-शाकाहारी के रूप में जाना जाता है। तीसरी भाषा में हिंसक-अहिंसक भी कह सकते हैं। ज्ञानावस्था का स्वभाव धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करूणा होना पाया जाता है। ये ही मानव स्वभाव के रूप में स्पष्ट होता है। मानव विरोधी स्वभाव हीनता, दीनता, क्रूरता सहित परधन, परनारी/परपुरुष, परपीड़ा के रूप में गण्य है। जो इन प्रवृत्ति में रहते हैं, वे ही पशु मानव, राक्षस मानव में गण्य होते हैं। ये दोनों मानव विरोधी होना पाया जाता है। मानव विरोधी स्वभाव वाले शनै:-शनै: मानवीय स्वभाव में परिवर्तित होने की संभावना बनी रहती है। इसी आधार पर सार्थक **शिक्षा** का प्रस्ताव है, दूसरी भाषा में सहअस्तित्व वादी **शिक्षा** का प्रस्ताव है। **(अध्याय:3 (9), पृष्ठ नंबर:102-103)**

- धीरता का तात्पर्य मानव न्याय के प्रति सुस्पष्ट और प्रमाणित रहने से है। सुस्पष्ट होने के लिए अध्ययन और परंपरा ही एकमात्र आधार है। परंपरा, अध्ययन कार्य का धारक वाहक है, अध्ययन वर्तमान में होता ही रहता है। वीरता का तात्पर्य, स्वयं न्याय के प्रति निष्ठान्वित, व्यवहारान्वित, प्रमाणित रहते हुए लोगों को न्याय सुलभता के लिए अपने तन, मन, धन को अर्पित समर्पित करने से ही है। यह भी **शिक्षा** विधि से ही और लोक **शिक्षा** विधि से ही सार्थक होना पाया जाता है। उदारता का तात्पर्य है अपने में से प्राप्त तन, मन, धन रूपी अर्थ को उपयोगिता विधि से, सदुपयोगिता विधि से, प्रयोजनीयता विधि से उपयोग करना। उपयोगिता विधि का तात्पर्य शरीर पोषण, संरक्षण, और समाज गति में प्रयोग करना है। सदुपयोगिता का तात्पर्य अखण्ड समाज में भागीदारी करते हुए वस्तुओं का अर्पण-समर्पण करना है। प्रयोजनीयता का तात्पर्य सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी करना है, वह भी स्वयं स्फूर्त स्वायत्त विधि से।

दया का तात्पर्य पात्रता के अनुरूप वस्तुओं को उपलब्ध कराने की क्रिया से है। कृपा का तात्पर्य उपलब्ध वस्तु के अनुसार पात्रता को उपलब्ध कराना है। यह वस्तु के अनुरूप पात्रता के अभाव की स्थिति में हो जाना पाया जाता है। करूणा का तात्पर्य वस्तु भी न हो पात्रता भी न हो इन दोनों को स्थापित करने की क्रिया है। मानव दया, कृपा, करूणा पूर्वक मानव, देव मानव और दिव्य मानव के रूप में वैभवित होना पाया जाता है। ऐसे वैभव देश, धरती, मानव के लिए अत्यधिक उपयोगी होना पाया जाता है। **(अध्याय:3 (9), पृष्ठ नंबर:103)**

- हर मानव का समझदार होना एक साधारण घटना है, सामान्य घटना है, सबसे वांछित घटना है। समझदार होने के फलन में ही अन्य सभी कड़ियाँ अपने आप जुड़ती हैं। समझदारी के साथ ही फल परिणाम तृप्ति का स्रोत बनना आवश्यक है। फल परिणाम मानवाकाँक्षा सार्थक होने से है, समझदारी का प्रमाण भी मानवाकाँक्षा के सार्थक होने से है, मानव का सम्पूर्ण कार्य व्यवहार की सार्थकता भी मानवाकाँक्षा का सार्थक होना है। मानव की सम्पूर्ण व्यवस्था प्रक्रिया भी मानवाकाँक्षा के सार्थक होने से है। **मानवीय व्यवस्था, मानवीय शिक्षा, मानव के सोच विचार की सार्थकता यदि कुछ है तो वह केवल मानवाकाँक्षा पूरा होने से है।** इसमें मुख्य बात यही है अर्थात् यह सब कहने का मुख्य मुद्दा यही है कि मानवाकाँक्षा पूरा होने से जीवनाकाँक्षा पूरा होता ही है। **(अध्याय:3 (12), पृष्ठ नंबर: 116-117)**
- हर व्यक्ति अनुभवगामी विधि से अध्ययन, शोध, परीक्षण, निरीक्षण पूर्वक अनुभव और परावर्तन में अनुभवमूलक प्रणाली से मानवाकाँक्षाओं को प्रमाणित करना हो जाता है। इस प्रकार अध्ययन, बोध, अनुभवमूलक विधि से अनुभवमूलक प्रणाली पूर्वक मानवाकाँक्षा के अर्थ में जीना बन जाता है। यही अध्ययन का मूल उद्देश्य है।

अनुभव मूलक विधि से जीने वाले व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि होने के क्रम में ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का प्रमाण होना, क्रम से समाधान समृद्धि अभय सह-अस्तित्व का प्रमाण हो जाना, हर जागृत व्यक्ति का पहचान हो पाता है। इतना ही नहीं हर नर नारी जागृत होना चाहते ही हैं, इसीलिए जागृत होने योग्य **शिक्षा** का लोक व्यापीकरण करना ही एक मात्र उपाय है। मानवीय **शिक्षा** में मानव में, से, के लिए आवश्यकीय सभी मुद्दे अध्ययन के लिए वस्तु है।

इस ढंग से मानव परंपरा उत्तरोत्तर जागृत होने के रुप में परावर्तित रहता ही है। प्रत्यावर्तन में सुख, शान्ति, संतोष, आनन्द से सराबोर रहता ही है। मानवाकाँक्षा अपने आप में कार्य व्यवहार व्यवस्था विधि से प्रमाणित होता ही है। यही जीने का तात्पर्य है। अर्थात् कार्य, लक्ष्य और प्रयोजन प्रमाण होना, उसकी निरंतरता बने रहना ही जीने का तात्पर्य है। **(अध्याय:3 (12), पृष्ठ नंबर:118)**

- परावर्तन प्रत्यावर्तन क्रिया के संबंध में काफी अध्ययन संभव हो गया है। इसी क्रम में परंपरा में शिक्षा-संस्कार एक अनूस्युत क्रिया है। परावर्तन विधि से अध्यापन, प्रत्यावर्तन विधि से अध्ययन होना पाया जाता है। अध्यापन एक श्रुति अथवा भाषा होना सुस्पष्ट है। भाषा का अर्थ है अस्तित्व में वस्तु होना सुस्पष्ट हो चुकी है, भाषा के अर्थ के स्वरुप में अस्तित्व में वस्तु बोध होना ही मूल आशय है। यही प्रत्यावर्तन क्रिया है। सह अस्तित्व में हर वस्तु बोध अनुभव मूलक विधि से परावर्तित हो पाती है। इस विधि में अध्ययन कार्य अनुभवगामी पद्धति से होना स्पष्ट हुई। यही प्रत्यावर्तन की महिमा है अथवा उपलब्धि है। इस विधि से परावर्तन अध्यापन क्रिया है। अर्थ बोध होना और अनुभव होना अध्ययन का फलन है। अर्थ बोध तक अध्ययन, अनुभव, प्रत्यावर्तन का अमूल्य फल है। अर्थ बोध का अनुभव के अर्थ में प्रत्यावर्तित होना एक स्वभाविक क्रिया है। क्योंकि हर अर्थ का अस्तित्व में वस्तु बोध होता है। अनुभव महिमा की रोशनी से वंचित होकर अध्ययन में वस्तु बोध होता ही नहीं। अभी तक भी जितने वस्तु बोध हुई हैं, ये सब अनुभव में ही प्रमाणित होकर अध्ययन के लिए प्रस्तुत हुए हैं। **(अध्याय:3 (12), पृष्ठ नंबर: 119)**

सन्दर्भ : मानव अभ्यास दर्शन

(संस्करण: द्वितीय, मुद्रण: मार्च 2010)

- व्यक्ति की मूल-प्रवृत्ति विचार के रूप में, परिवार में आचरण के रूप में, समाज में सम्मति, प्रोत्साहन एवं भागीदारी के रूप में, राष्ट्र में **शिक्षा** व व्यवस्था के रूप में एवं अन्तर्राष्ट्रीय मूल-प्रवृत्ति परिस्थिति मानव चेतना के रूप में प्रत्यक्ष है। ये पाँचों स्थितियाँ मानवीय संचेतना में समन्वित, सफल होना पाया जाता है एवं इसके विपरीत अमानवीय प्रवृत्तिवश समस्त समस्याएँ दु:ख रूप में परिवर्तित होती है। **(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर:2)**

- "संस्कार" (प्रवृत्ति) तात्रय पूर्वक "अध्ययन" निपुणता, कुशलता एवं पांडित्य पूर्वक तथा "वातावरण" विशेषत: मानवकृत है। मानवकृत वातावरण ही व्यवस्था है। मानवीयता में संस्कार **शिक्षा** एवं व्यवस्था की एकसूत्रता, अमानवीयता में एकसूत्रता का अत्याभाव, अतिमानवीयता में मानव स्वतंत्रता पूर्वक एक सूत्रता सहज प्रमाण है, यही अभ्यास का तात्पर्य है। अर्थात् संस्कार सम्पन्न होना अभ्यास का फलन है। जागृत मानव ही स्वतंत्रित है। **(अध्याय: 1, पृष्ठ नंबर: 8)**

- सम्पूर्ण आस्वादन जड़ शरीर के लिए पोषक या शोषक सिद्ध हुए हैं। सम्पूर्ण स्वागत क्रियाएं चैतन्य सीमान्तवर्ती उपादेयी हैं, जो संस्कार है। यही शिक्षा, अध्ययन, अनुसंधान व अनुभूति है, जिसके बिना मानव जीवन की सफलता सिद्ध नहीं होती है। **(अध्याय: 1, पृष्ठ नंबर: 15)**

- आशा व प्रत्याशा में समाधान रूप में शुभ होना पाया जाता है, उसके अनुरूप कर्म और उपयोग में दक्षता व पात्रता का अभाव ही पराभव या असफलता का कारण है। यही पुन:प्रयासोदय है। यह क्रम तब तक रहेगा जब तक स्वस्थ व्यवस्था एवं **शिक्षा** से मानव सम्पन्न न हो जाए। अत: मानव द्वारा "वादत्रय" को सफल बनाने के लिए स्पष्ट एवं पूर्णतया मानव की परिभाषा, मानवीयता की व्याख्या, सामाजिक अनिवार्यता, समाज की परिभाषा, समाज का आधार, समाज का लक्ष्य, समाज का आचरण, सामाजिकता का अध्ययन, समाज की अक्षुण्णता के लिए प्राकृतिक एवं वैयक्तिक ऐश्वर्य के सदुपयोग एवं सुरक्षा का अध्ययनपूर्वक व्यवहारान्वयन आवश्यक है।
(अध्याय: 1, पृष्ठ नंबर:17-18)

- दर्शन क्षमता प्रत्येक मानव में किसी न किसी अंश में पायी जाती है। दर्शन क्षमता के जागृति की अभिलाषा से **शिक्षा** एवं अध्ययन की अनिवार्यता सिद्ध हुई है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 24)**

- न्यायपूर्ण व्यवहार चेतना विकास मूल्य **शिक्षा** मानवीयता पूर्ण समाज के लिए आवश्यक कार्यक्रम है। गुणात्मक स्थितिवत्ता की उपेक्षा ही अज्ञान, अभाव, असमर्थता एवं अक्षमता है। अज्ञानी को ज्ञानी में, अभाव को भाव में, असमर्थ को समर्थ में, अक्षम को सक्षम में परिवर्तित, परिमार्जित करने के लिए **शिक्षा** एवं व्यवस्था है। **(अध्याय:2, पृष्ठ नंबर: 24)**

- मानव ही इस पृथ्वी पर अधिकाधिक संचेतनशील है। परस्पर मानव की संचेतनशीलता में जो अंतरान्तर है, उसी में अनन्यता को स्थापित करने के लिए प्रयास भी किया है। यही **शिक्षा** और अध्यापन कार्य की प्रेरणा भी है।**(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 25)**

- मूल्यों की स्थिरता ही अखंडता एवं अक्षुण्णता है, जो नियति क्रम में पाये जाने वाले तथ्य हैं। समाज की पाँचों स्थितियाँ परस्पर पूरक हैं, जिसकी एकसूत्रता ही अखंडता है। अन्तर्राष्ट्रीय जीवन में "नीतित्रय" का संतुलन, राष्ट्रीय जीवन में मानवीयता के संरक्षण एवं संवर्धन योग्य विधि-व्यवस्था एवं शिक्षा-प्रणाली-पद्धति, सामाजिक जीवन में मानवीयता का प्रचार, प्रदर्शन, प्रकाशन एवं प्रोत्साहन; परिवार-जीवन में मानवीयता के प्रति समर्पण,

विश्वास एवं निष्ठा, व्यक्ति के जीवन में मानवीयता पूर्ण आचरण, व्यवहार, अभ्यास, अनुभव, विचार तथा आवश्यकता से अधिक उत्पादन ही लोक मंगल-कार्यक्रम है। यही चारों आयामों एवं पाँचों स्थितियों की एकसूत्रता का सूत्र है।**(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 27)**

- **जनाकाँक्षा को सफल बनाने योग्य शिक्षा व व्यवस्था (अध्याय-3, पृष्ठ नंबर:34)**

मानव लक्ष्य को सफल बनाने योग्य **शिक्षा** व व्यवस्था की अपेक्षा प्रत्येक व्यक्ति में किसी न किसी अंश में पायी जाती है जो चेतना विकास मूल्य **शिक्षा** पूर्वक राज्यनीति एवं धर्मनीति से ही सफल है। दोनों के मूल में मानवीयता पूर्ण व्यवस्था है ही जिसमें अर्थ के सदुपयोग एवं सुरक्षा की अवधारणा समायी है।

प्रेरक (नेतृत्व) के मूल में दर्शन एवं विचार क्षमता ही है, जो सफल होती है। प्रत्येक सुदृढ़ विचार का आधार दर्शन ही है। अन्ततोगत्वा दर्शन-क्षमता ही नेतृत्व-क्षमता सिद्ध होती है।

सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति रूपी अस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान और मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान ही सम्पूर्ण ज्ञान है। दर्शन में प्रकृति का विकासक्रम, विकास, जागृतिक्रम, जागृति रूप में अध्ययन मानव के लिए प्रस्तावित है जो स्वयं समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद तथा अनुभवात्मक अध्यात्मवाद को स्पष्ट करता है, जिससे "प्रमाणत्रय" (प्रयोग, व्यवहार एवं अनुभव) सिद्ध होता है। मानव जीवन में "चतुरायाम" उत्पादन, व्यवहार, विचार एवं अनुभूति अविभाज्य हैं जो प्रसिद्ध है, इसलिए व्यवहारात्मक जनवाद का प्रत्यक्ष रूप न्याय-सुलभ, समृद्ध जीवन में प्रतिष्ठित एवं अक्षुण्ण होना है। यही मानव में अखंडता को स्थापित करता है, जिसकी पूर्ण सभांवना व आवश्यकता है ही। जैसे :-

1. मानव संबंधों सहित ही जन्म लेता है।
2. स्थापित संबंध में स्थापित मूल्य है।
3. सामाजिक मूल्य अपरिवर्तनीय है।
4. मानवीयता में ही अर्थ का सदुपयोग एवं सुरक्षा सिद्ध होती है।
5. मानवीयता जागृत मानव परंपरा में ही प्रमाणित होता है।
6. जागृत मानव सामाजिक न्यायिक इकाई है।
7. सामाजिक मूल्य में, से, के लिए शिष्टता एवं वस्तु व सेवा की प्रयुक्ति सफल है।
8. मानव में स्वभाव सहज अभिव्यक्ति, धर्म सम्पन्नता अनुभूति प्रसिद्ध है।

समाधानात्मक भौतिकवाद की चरितार्थता आवश्यकता से अधिक उत्पादन है, जो अर्थ के सदुपयोग एवं सुरक्षा के रूप में मानवीयता में दृष्टव्य है। यही मानव की चिर-कामना है, जिसका पालन पाँचों स्थितियों में, मानवीयता पूर्वक होता है। अमानवीयता में इसकी अवहेलना होती है, अतिमानवीयता पूर्वक स्वभावत: चरितार्थ होती है। चरितार्थता ही मानव का अभीष्ट है।

आशा, आवश्यकता तथा अनिवार्यता पूर्वक किया गया प्रयास ही अभीष्ट है, इससे विहीन कार्यकलाप मानव में सफल नहीं होता है। अस्तित्व में जागृतिपूर्वक मानव स्पष्टाधिकार सम्पन्न एवं क्षमता को स्पष्ट करता है, जो एकसूत्रता, सार्वभौमता है।

सामाजिक मूल्य अनुभव में, शिष्ट मूल्य व्यवहार में एवं भौतिक मूल्य उत्पादन उपयोगिता में स्पष्ट है।

व्यवहार एवं अनुभव निर्विरोधिता ही समाधान है। यही समाधानात्मक भौतिकवाद को स्पष्ट करता है क्योंकि व्यवहार का आधार अनुभव है तथा उत्पादन, उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनशीलता एवं वितरण का आधार समाधान है। यही समाज एवं सामाजिकता है।

उपयोगिता-मूल्य आवश्यकता में, आवश्यकता-मूल्य शिष्टता में, शिष्टता-मूल्य स्थापित मूल्य में, स्थापित मूल्य मानव मूल्य में, मानव मूल्य जीवन मूल्य में समर्पित पाये जाते हैं। स्थापित मूल्य ही जीवन एवं जीवन के कार्यक्रम का आधार है, इसी आधार पर संपूर्ण **शिक्षा** व्यवस्था हैं न कि केवल उत्पादन पर क्योंकि उत्पादन मानव के अधीन है न कि उत्पादन के अधीन मानव।

संबंध व स्थापित मूल्य केवल अखण्ड समाज के अर्थ में है, अखण्ड समाज सह-अस्तित्व में अनुभव का फलन है जो केवल अनुभव प्रमाण से तथा उत्पादन- मूल्य प्रयोग प्रमाण से प्रमाणित है।

जड़-चैतन्यात्मक इकाईयों की स्थिति गति केवल मूल्यों में, से, के लिए ही है। सभी अवस्था और पद में प्रतिष्ठित इकाईयों का मूल्य उन-उन के स्वभाव और आचरण के आधार पर गण्य है।

मानव में जो मूल्य-दर्शन-क्षमता है, वही मानव को व्यवहार, उत्पादन, विचार एवं अनुभूति में, से, के लिए प्रेरित करती है। यही सामाजिकता एवं बौद्धिकता का आधार है। मानव सामाजिक, न्यायिक इकाई एवं बुद्धिपूर्वक, समझदारी पूर्वक जीने वाला अर्थात् विवेक विज्ञान पूर्वक जीने वाला से भी संबोधित है, इस संबोधन का अभीष्ट भी इसी क्षमता का निर्देश करता है। यह संबोधन अनुभव बोध पूर्वक चारों आयामों में प्रमाणित होने से सार्थक है।

अखण्ड समाज दश सोपानीय व्यवस्था है यही जागृत मानव परम्परा सहज वैभव है।

समाज का प्राथमिक रूप : समझदार परिवार

समाज का द्वितीय रूप : अखण्ड समाज (राष्ट्र)

समाज का तृतीय रूप : पृथ्वी अखण्ड समाज

सार्वभौम व्यवस्था

"सभी राज्य संस्थाएं अखण्ड समाज के अर्थ में है।" परिवार भी अखण्ड समाज के अर्थ में प्राथमिक एक घटक है। इस स्थिति में मुख्यत: सह-अस्तित्व प्रमाणित होता है। ऐसे अनेक परिवार मिलकर सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी करते है। ऐसी भागीदारी स्वयं राज्य संस्थाओं के रूप में गण्य होता है। इसी क्रम में अर्थात् समग्र व्यवस्था में भागीदारी करने के क्रम में विश्व परिवार सभा पर्यन्त भागीदारी सम्पन्न होती है।

मानव में अनुभव बोध सम्पन्नता ही प्रबुद्धता है। यही **शिक्षा** व्यवस्था का आद्यान्त लक्ष्य है जो कारण, सूक्ष्म, स्थूल तत्वों का अध्ययन है। जिसमें ज्ञान, विवेक, विज्ञान पूर्वक अखण्ड समाज एवं सार्वभौम व्यवस्था प्रमाणित होती है।

दश सोपानीय व्यवस्था सहज चारों आयामों की एकसूत्रता ही अखण्ड समाज है जिसकी प्रभुसत्ता संज्ञा है। यह सह-अस्तित्व सहज सम्पूर्ण मूल्यों का प्रमाण एवं परंपरा ही है। सम्पूर्ण मानव में प्रबुद्धता का ही परावर्तितत रूप प्रभुसत्ता है जो मानवीयतापूर्ण **शिक्षा** व्यवस्था, विधि, नीति पूर्वक सफल है।

नियम, न्याय, धर्म एवं सत्य देश कालातीत हैं, अत: सार्वभौमिक हैं। इसलिए सार्वभौमिकता ही अप्रतिमता, अप्रतिमता ही मध्यस्थता, मध्यस्थता ही प्रबुद्धता, प्रबुद्धता ही विज्ञान व विवेक, विज्ञान व विवेक ही सम्प्रभुता, सम्प्रभुता ही अखण्डता, अखण्डता ही समाधान एवं समृद्धि, समाधान एवं समृद्धि ही सह-अस्तित्व, सह-अस्तित्व ही

जीवन एवं जीवन ही नियम, न्याय, धर्म एवं सत्य है। मानव जीवन कार्यक्रम में विधि, नीति एवं व्यवस्था का समाहित रहना प्रसिद्ध है।

विधि विहित नीति व व्यवस्था ही चारों आयामों एवं दश सोपानीय व्यवस्था की एकसूत्रता को स्थापित करती है। यही जागृत जीवन का प्रत्यक्ष रूप एवं कार्यक्रम है। यही अभ्यास का फलन है। यही जागृत मानव परम्परा का अभ्यास और अभ्यास का वैभव है।

जागृति क्रम और जागृति परम्परा में अनिवार्य क्रिया, प्रक्रिया, स्थिति एवं स्थितिशीलता व गति ही सार्वभौमिकता है। जैसे-मानव के लिए मानवीयतापूर्ण क्रियाकलाप।

सार्वभौमिकता ही निर्विवाद एवं समाधान है।

ज्ञानावस्था की इकाई में निर्विवाद की आशा आकाँक्षा है। साथ ही उसमें पूर्णता के लिये प्रयास भी साम्यत: पाया जाता है। इसकी अपर्याप्तता ही है, जो प्रभुसत्ता में, से, के लिये विविधता है। यही द्रोह, विद्रोह, आतंक तथा युद्ध है, जबकि यह सब मानव की वांछित (आशित) घटना, स्थिति या परिस्थिति नहीं है।

समृद्धि, समाधान, अभय एवं सह-अस्तित्व ही मानव कुल की सार्वभौमिक आकाँक्षा है।

प्रभुसत्ता की प्रतिष्ठा तब-तक परिपूर्ण नहीं है जब तक अभयता को प्रदान करने में समर्थ न हो जाए।

प्रभुसत्ता ही अभयता, अभयता ही क्रम,क्रम ही जागृति, जागृति ही अनिवार्यता, अनिवार्यता ही प्रबुद्धता, प्रबुद्धता ही जीवन सफलता और जीवन सफलता ही प्रभुसत्ता है।

मानवीयता से ही प्रभुसत्ता की प्रतिष्ठा एवं उसकी अक्षुण्णता है।

वर्ग विहीन अखण्ड समाज ही प्रबुद्धता का प्रमाण रूप है।

प्रत्येक मानव में पाये जाने वाले अनुभव के लिये कारण, विचार के लिये सूक्ष्म, व्यवहार के लिये सूक्ष्म-स्थूल तथा उत्पादन के लिये स्थूल तथ्यों का अध्ययन है, जो प्रत्यक्ष है।

अध्ययन से वैचारिक नियंत्रण, **शिक्षा** से व्यवहारिक नियंत्रण एवं प्रशिक्षण से उत्पादन में नियंत्रण प्रसिद्ध है।

वैचारिक नियंत्रण ही प्रधान उपलब्धि है, यही वैचारिक परिमार्जन संस्कार एवं गुणात्मक परिर्वतन है।

व्यवहार व उत्पादन के लिए विचार ही आधार है। विचार ही सामाजिक एवं असामाजिक है। अध्ययन की चरितार्थता ही स्वयं में, से, के लिए स्पष्ट होना है। वह चैतन्य क्रिया एवं क्रियाकलाप ही है, यही बौद्धिक अध्ययन है।

"नियमत्रय" सम्पन्न विचार ही व्यवहार में सामाजिक तथा उत्पादन में सफल हैं।

न्यायपूर्ण जीवन ही सामाजिकता का प्रत्यक्ष रूप है। संबंधों में निहित स्थापित मूल्यों का निर्वाह ही न्यायपूर्ण व्यवहार है।

न्यायपूर्ण विचार ही प्रबुद्धता के रूप में है। न्यायपूर्ण जीवन ही संयत जीवन है, यही अपव्यय एवं भय से मुक्ति है।

अपव्यय एवं भय में सामाजिकता नहीं है।

संबंध और मूल्य

प्रत्येक संबंध में स्थापित एवं शिष्ट मूल्य स्पष्ट व प्रमाणित हैं। जैसे:-

1. माता-पिता के प्रति विश्वास निर्वाह-निरंतरता = गौरव, कृतज्ञता, प्रेम, सरलता, सौम्यता, अनन्यता-भावपूर्वक वस्तु व सेवा के समर्पण रूप में है।
2. पुत्र-पुत्री के प्रति विश्वास निर्वाह-निरंतरता = ममता, वात्सल्य, प्रेम, सहजता, अनन्यता-भावपूर्वक वस्तु व सेवा के समर्पण रूप में है।
3. भाई-बहन की परस्परता में विश्वास-निर्वाह-निरंतरता = सम्मान, गौरव, कृतज्ञता, प्रेम, सौहर्द्रता, सरलता, सौजन्यता, स्नेह, अनन्यता-भावपूर्वक वस्तु व सेवा अर्पण के रूप में है।
4. गुरु-शिष्य के प्रति विश्वास-निर्वाह-निरंतरता = प्रेम, वात्सल्य, ममता, अनन्यता, सहजता, भावपूर्वक प्रबोधन जिज्ञासा पूर्ति सहित वस्तु व सेवा-समर्पण के रूप में है।
5. शिष्य-गुरु के प्रति विश्वास-निर्वाह-निरंतरता=गौरव, कृतज्ञता, प्रेम, सरलता, सौजन्यता, अनन्यता-भावपूर्वक जिज्ञासा सहित वस्तु व सेवा-समर्पण के रूप में है।
6. पति-पत्नी की परस्परता में विश्वास निर्वाह-निरंतरता = स्नेह, गौरव, सम्मान, प्रेम, निष्ठा, सौहर्द्रता, अनन्यतापूर्वक सद्‌चरित्रता सहित वस्तु एवं सेवा अर्पण के रूप में है।
7. साथी-सहयोगी के प्रति विश्वास-निर्वाह-निरंतरता (व्यवस्था तंत्र में) = स्नेह, सौजन्यता, निष्ठापूर्वक वस्तु व सेवा प्रदान के रूप में है।
8. सहयोगी-साथी के प्रति विश्वास-निर्वाह-निरंतरता (व्यवस्था तंत्र में) = गौरव, सम्मान, कृतज्ञता, सौहर्द्रता, सौम्यता, सरलता, भावपूर्वक सेवा समर्पण के रूप में है।
9. मित्र की परस्परता में विश्वास निर्वाह, निरंतरता = स्नेह, प्रेम, सम्मान, निष्ठा, अनन्यता, सौहर्द्रता भावपूर्वक वस्तु व सेवा समर्पण के रूप में है।
10. व्यवस्था के प्रति भागीदारी का विश्वास निर्वाह, निरंतरता = मानवीयतापूर्ण आचरण, व्यवहार, उत्पादनपूर्वक आवश्यकता से अधिक उत्पादन।
11. भागीदारी के प्रति व्यवस्था विश्वास निर्वाह, निरंतरता = न्याय सम्मत अभयतापूर्ण जीवन के कार्यक्रम के लिए **शिक्षा** को सर्वसुलभता न्याय सम्मत आचरण तथा व्यक्तित्व के संरक्षण, संवर्धन, प्रोत्साहन सहित असंदिग्ध न्यायिक व्यवस्था के रूप में है।
12. व्यवस्था सहज परस्परता में विश्वास निर्वाह निरंतरता= स्थायी मूल्यों में आधारित विधि, शिष्ट मूल्यों में आधारित नीति, उत्पादन मूल्यों में आधारित व्यवस्था पूर्वक सिद्ध न्याय व समाधान सर्व सुलभता के रूप में है।
13. व्यवस्था एवं संस्कृति की परस्परता में विश्वास निर्वाह = न्याय संगत प्रक्रिया में आश्वासन विश्वसन पूर्वक न्यायानुगमन कार्यक्रम सहित व्यक्तित्व के प्रस्थापन के रूप में है।
14. सभ्यता एवं संस्कृति की परस्परता में विश्वास निर्वाह निरंतरता= नौ स्थापित मूल्य में नौ शिष्ट मूल्य, नौ शिष्ट मूल्य में दो उत्पादन मूल्य का अर्पण, समर्पण, समावेश के रूप में है।
15. सभ्यता -विधि की परस्परता में विश्वास निर्वाह निरंतरता = प्रबुद्धता, संप्रभुता के रूप में है।

स्थापित नौ मूल्यों "में, से, के लिये" विश्वास-साम्य मूल्य है, जिसके बिना कोई ऐसा संबंध नहीं है जो स्वस्थ हो।

प्रेम पूर्ण मूल्य है। प्रेम अन्य आठों मूल्यों के रूप में प्रकारान्तर से है, क्योंकि प्रत्येक स्थापित मूल्य प्रेम से संबंधित है, जो अनुभव पूर्वक सिद्ध है। यही प्रमाण है।

"सत्य ही प्रेम, प्रेम ही पूर्ण, पूर्ण ही अनुभव, अनुभव ही सत्य है। इसलिए पूर्ण मूल्य में स्थापित मूल्य, स्थापित मूल्य में शिष्ट मूल्य एवं शिष्ट मूल्य में उत्पादन मूल्य समर्पित है।"

गुरु मूल्य में लघु मूल्य समाया हुआ है। इसलिये जागृति विकास के क्रम में गुणात्मक प्रगति है। इसी क्रम में चैतन्य प्रकृति है। इसके गुणात्मक परिवर्तन के फलस्वरूप ही निर्भ्रमावस्था भी प्रसिद्घ है। यही निर्भ्रम अवस्था पूर्ण मूल्यानुभूति योग्य क्षमता है, इसलिये गुणात्मक परिवर्तन के लिये चैतन्य प्रकृति प्रवृत्त है।

मानव न्यायपूर्ण आचरण पूर्वक निर्भय व समाधानित है।

प्रत्येक मानव न्यायपूर्ण जीने का इच्छुक है, यही सत्यता सामाजिक अखण्डता का आधार है।
परिवार ही बुनियादी व्यवस्था, न्याय एवं **शिक्षा** है। प्रत्येक मानव के जीवन जागृति और प्रमाणित होने का आधार भी यही है।

मानव का प्रथम परिचय परिवार में स्पष्ट होता है। प्रतिभा एवं व्यक्तित्व का संतुलन व्यवहार में प्रमाणित होता है एवं आचरण-प्रकटन का भी परिवार ही बुनियादी क्षेत्र है, उसकी विशेषतानुसार ही विशाल एवं विशालतम सीमा सिद्घ होती है।

समग्रता के अध्ययन को सुलभ बनाना एवं विधि व्यवस्था को सफल बनाना ही मानवीय संस्कृति सभ्यता की अक्षुण्णता को पाना है। यही व्यवहारात्मक जनवाद का प्रत्यक्ष रूप है।

मानव जागृति के अर्थ में गुणात्मक एकता की संभावना है, भोगात्मक भ्रमात्मक एकता की संभावना नहीं है।

मानव मानवीयता के अर्थ में ही गुणात्मक एकता के लिए तृषित है। अस्तु, न्याय का ध्रुवीकरण उसी सीमा में है। "मानव न्याय का याचक है।" इसलिए संज्ञानशील ही एकता के लिये दिशा है, जो बोध, संबोध, प्रबोध-क्षमता के रूप में प्रत्यक्ष है। साथ ही यही अग्रिमता का कारण है एवं गुणात्मक परिवर्तन पूर्वक सतर्कता तथा सजगता के रूप में स्पष्ट है।

संचेतनशील क्षमता ही अनुभव में परमानन्द प्रतिष्ठा, विचार में समाधान प्रतिष्ठा, व्यवहार में प्रेम प्रतिष्ठा है। इस प्रतिष्ठात्रय के लिये मानव अनवरत पिपासु रहा है। "प्रतिष्ठात्रय ही मानव प्रकृति का लक्ष्य है।" वादत्रय का भी अभीष्ट यही है। इसलिए लक्ष्य की अपेक्षा में ही सही-गलत, उचित-अनुचित, विधि-निषेध, पाप-पुण्य का निर्धारण होता है। नियम से ही सुख व दु:ख, जागृति व ह्रास दृष्टव्य है।

अनुभवात्मक अध्यात्मवाद का लक्ष्य परमानन्द प्रतिष्ठा, समाधानात्मक भौतिकवाद का लक्ष्य समाधान प्रतिष्ठा एवं व्यवहारात्मक जनवाद का लक्ष्य न्याय और प्रेम प्रतिष्ठा सूत्र है। यही लक्ष्यत्रय केवल संज्ञानशीलता की गरिमा है। यही इसकी क्षमता, योग्यता, पात्रता में गुणात्मक परिवर्तन का मूल कारण है।

> समाधान प्रतिष्ठा की निरंतरता = प्रेम प्रतिष्ठा
> प्रेम प्रतिष्ठा की निरंतरता = परमानन्द प्रतिष्ठा है।

प्रेम प्रतिष्ठा ही सतर्कता, परमानन्द प्रतिष्ठा ही सजगता है। वृत्ति व चित्त की एकसूत्रता में समाधान, चित्त व बुद्घि की एकसूत्रता में प्रेम, बुद्घि व आत्मा की एक सूत्रता में परमानन्द प्रतिष्ठा पायी जाती है। यही जागृत मानव में, से, के लिए सहज प्रतिष्ठा है।

न्यायपूर्ण व्यवहार = सुख
सुख की निरंतरता = शान्ति
शान्ति की निरंतरता = संतोष
संतोष की निरंतरता = आनन्द
आनंद की निरंतरता = परमानन्द
नियम पूर्ण उत्पादन, न्यायपूर्ण व्यवहार एवं धर्मपूर्ण विचार = मानवीयतापूर्ण जीवन व अतिमानवीयता की ओर स्पष्ट संभावना एवं अध्ययन
मानवीयतापूर्ण जीवन व अतिमानवीयता की स्पष्ट संभावना एवं अध्ययन = निर्भ्रम ज्ञान
निर्भ्रम ज्ञान = विवेक सम्मत विज्ञान
विवेक व विज्ञान = बौद्धिक समाधान व भौतिक समृद्धि
भौतिक समृद्धि एवं बौद्धिक समाधान = सह-अस्तित्व
सह अस्तित्व = अखंडता
अखंडता = सामाजिकता
सामाजिकता = स्वर्गीयता
स्वर्गीयता = अभय
अभय = सुख, शांति, संतोष, एवं आनन्द
मन तथा वृत्ति का निर्विरोध = सुख
वृत्ति व चित्त का निर्विरोध = शांति
चित्त व बुद्धि का निर्विरोध = संतोष
बुद्धि व आत्मा का निर्विरोध = आनन्द
परम सत्य रूपी सह-अस्तित्व में अनुभूति = परमानन्द

ऐसी अनुभूति ही चैतन्य प्रकृति का चरमोत्कर्ष विकास है। यही परमानंद है।

मूलत: जागृत मानव अनुभूति एवं दृष्टा पद में प्रतिष्ठित हैं। अनुभव मूलक व्यवहार समाधान, समृद्धि मूलक उत्पादन ही मानव जीवन की चरितार्थता है।

स्थापित मूल्यों का अनुभव होता है। उत्पादन पक्ष में समृद्धि ही अनुभव है। जिसके लिये ही सम्पूर्ण प्रयास है। यही इस सत्यता को स्पष्ट करता है कि जीवन सहज कार्यक्रम केवल अनुभव ही है।

सत्ता ही स्थितिपूर्ण है। प्रकृति स्थितिशील है। प्रकृति में विविधता है। यही स्वयं जागृति क्रम व्यवस्था एवं स्थितिवत्ता है। ऐसी स्वीकार योग्य क्षमता का होना या न होना ही जागृति क्रम स्थिति है।

जागृति को प्रमाणित करने के अर्थ में किये गये सभी कार्य व्यवहार उचित है। जो अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी के रूप में प्रमाणित होते है। ये सब औचित्यता की कसौटी है।

औचित्यता की स्वीकृति से ही संयमता स्पष्ट होती है जो गुणात्मक परिवर्तन के लिए स्वीकृति है।

संपूर्ण इच्छाएं मूल्यों में, से, के लिए ही हैं।
मूल्यों में, से, के लिए पूर्णता के संदर्भ में इच्छाओं का प्रसव है।

पूर्ण मूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य, उपयोगिता मूल्य एवं सुन्दरता मूल्य ही मूल्य समुच्चय है ।

उपयोगिता मूल्य में, सुन्दरता एवं सुन्दरता मूल्य में उपयोगिता समाविष्ट हैं।

गुरु मूल्य में लघु मूल्य समाया है।

संपूर्ण मूल्य का केवल अनुभव ही है।

अनुभव केवल सत्य, सत्य ही पूर्ण मूल्य, पूर्ण मूल्य ही प्रेम, प्रेम ही आनन्द, आनन्द ही अनुभव है। इसी का प्रत्यक्ष रूप सजगता है। जो मानव का अभीष्ट है।

पूर्ण मूल्य में ही जीवन, जीवन का कार्यक्रम स्पष्ट होता है। स्थापित मूल्य के मूल में पूर्ण मूल्य ही मात्र आधार है। जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति केवल सत्ता में ही है।

"ज्ञान ही प्रेम एवं प्रेम ही ज्ञान है।" प्रेम अधिक और कम से मुक्त है, ज्ञानानुभूति ही प्रेम एवं प्रेम का आधार ज्ञान है। यही पूर्णता का प्रधान लक्षण है। स्थापित मूल्य प्रेम की ही स्थिति है।"

समस्त स्थापित मूल्य प्रेम में, से, के लिए ओत-प्रोत है जिसकी सत्यता स्थिर है। यह त्रिकालाबाध है।

अभयता ही सामाजिकता का प्रत्यक्ष रूप है, यही प्रबुद्धता का भी परिचय है, जिसके बिना मानव जीवन में स्थिरता नहीं है।

स्थिरता का तात्पर्य मानव में अनुभव से है, अनुभव सार्वभौमिक रूप में स्थापित मूल्य है।

अनुभव विहीन मानव सामाजिक नहीं है। सामाजिकता में, से, के लिए अनुभव क्षमता अनिवार्य है। मानवीयता में ही अनुभव, अतिमानवीयता में अनुभव एवं उपकार पूर्ण वैभव प्रसिद्ध है।

अखण्ड सामाजिकता ही मानव जीवन की स्थिरता का प्रत्यक्ष रूप है जो स्थापित मूल्यों की अनुभव योग्य क्षमता पर आधारित है। यह **शिक्षा** एवं व्यवस्था प्रबुद्धता पर आधारित है।

प्रतिभा एवं व्यक्तित्व का संतुलन ही जागृति का प्रत्यक्ष रूप है। यही प्रबुद्धता, संयमता, निर्विषमता, सहजता, अभयता, सामाजिकता, प्रतिभा एवं व्यक्तित्व है।

वस्तुगत व वस्तुस्थिति का दर्शन एवं सहअस्तित्व में अनुभव ही व्यक्तित्व एवं प्रतिभा का संतुलन है।

मानवीयतापूर्ण जीवन ही संयत जीवन का प्रत्यक्ष रूप है। मानवीयता पूर्वक किया गया आहार, विहार एवं व्यवहार का सम्मिलित रूप ही व्यक्तित्व है। यही अभ्यास एवं जागृति में पाया जाने वाला सर्वतोमुखी विकास है। यही अभ्युदयशील होने का प्रत्यक्ष लक्षण है। इसलिए "सुख, शांति, संतोष एवं आनंद स्थापित मूल्यों के अनुभव में ही है। पूर्ण मूल्य में अनुभव ही परमानंद है।"

सुन्दरता एवं उपयोगिता मूल्य की स्थिरता नहीं है क्योंकि उपयोगिता एवं सुन्दरता स्वयं में एक सी नहीं है, यह सामयिक है, जिसके साक्ष्य में :-

1. शब्द, स्पर्श, रूप, रस गंधेन्द्रियों में आवश्यकताएं सामयिक हैं।
2. क्षुधा, पिपासा सामयिक हैं।
3. संपूर्ण उपयोग सामयिक है।
4. महत्वाकाँक्षा, सामान्याकाँक्षा से संबंधित उपयोग सामयिक हैं।
5. विनियम सामयिक है।

6. वस्तु व सेवा का नियोजन सामयिक है।

इसलिए उपयोगिता व सुंदरता मूल्य सामयिक सिद्ध है।

स्थापित मूल्य, मानव मूल्य, जीवन मूल्य देशकाल से बाधित (सीमित) नहीं है। प्रत्येक संबंध में निहित स्थापित मूल्य निकट व दूर, भूत भविष्य एवं वर्तमान से प्रभावित नहीं है। प्रत्येक स्थापित मूल्य तीनों कालों में एवं सभी देशों में एक सा है।

यह अपरिवर्तनीयता स्वयं में स्पष्ट करती है कि स्थापित मूल्य ही नित्य है, जबकि प्रत्येक इकाई में पाई जाने वाली उपयोगिता एवं सुंदरता का परिणाम व परिवर्तन प्रसिद्ध है।

"मूल्य मात्र अनुभव ही है।"

क्रिया में मूल्यों की स्थिति का अभाव नहीं है। उसे अनुभव करने की क्षमता के अभाव में वह रहस्य, अज्ञात एवं अप्राप्त है।

उपयोगिता मूल्यों के आधार पर समाज की स्थायी संरचना संभव नहीं है क्योंकि वह स्वयं में स्थायी नहीं है।

स्थापित मूल्यों पर ही समाज संरचना की दृढ़ता स्पष्ट है। यही सत्यता मानव को अमानवीयता से मुक्त होकर मानवीयता से सपंन्न होने के लिए प्रेरित करती है।

अर्थ ही मूल्य, मूल्य ही अर्थ है। उपयोगिता-मूल्य, शिष्ट-मूल्य में एवं शिष्ट-मूल्य स्थापित मूल्य में समर्पित पाया जाता है। यही संयमता का प्रत्यक्ष रूप है।

मूल्य-दर्शन एवं अनुभव-क्षमता ही संस्कार का प्रत्यक्ष रूप है। संस्कार विहीन मानव नहीं है। मानव का संपूर्ण संस्कार मानवीयता तथा अतिमानवीयता में ही प्रत्यक्ष है।

संस्कार परिवर्तन केवल **शिक्षा** एवं व्यवस्था से ही है क्योंकि त्रुटिपूर्ण **शिक्षा** व व्यवस्था के द्वारा ज्ञानी-अज्ञानी, विवेकी-अविवेकी, सबल-दुर्बल एवं अन्य किसी को भी संतुष्टि, समाधान व अभय प्रदान करना संभव नहीं हुआ है, जो स्पष्ट है।

स्थापित मूल्य तथा शिष्ट मूल्य का योगफल ही सामाजिक मूल्यवत्ता है। इसी के आधार पर संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था का प्रथम संरचना प्रारूप है एवं संचालन प्रक्रिया भी है।
सामाजिक मूल्यों की स्वीकार क्षमता = संस्कृति
सामाजिक मूल्योंकी वहन क्षमता = सभ्यता

उपयोगिता व सुंदरता मूल्य समाज मूल्य में समाहित या समर्पित है। व्यवहार में ही इन दोनों की प्रयुक्ति है। इसलिए संपूर्ण प्रयुक्तियाँ जीने के लिए अथवा जीवन के लिए ही है। **"शरीर के लिए समृद्धि एवं जीवन के लिए समाधान व अनुभूति आवश्यक तथा अनिवार्य है।"**

समाधान व अनुभूति ही मानव में पाई जाने वाली विशिष्टता है। यही प्रबुद्धता, प्रभुता एवं अभयता है।

मानव में आवश्यकता से अधिक उत्पादन, न्यायपूर्ण आचरण व्यवहार के रूप में अनुभव प्रत्यक्ष है।

शिष्ट मूल्य ही अनुभव को इंगित करता है, यही सभ्यता व **शिक्षा** है। प्रत्येक मानव में किसी से शिक्षित होना या किसी को शिक्षित करना प्रसिद्ध है। शिष्टता में ही उपयोगिता व सुंदरता संयत रूप में प्रयुक्त होती है। संयमता ही सदुपयोग है। सदुपयोग एवं सुरक्षा ही सतर्कता का प्रत्यक्ष रूप है। यही सामाजिकता का कार्य-कारण एवं लक्ष्य भी है।

शिष्टता की अभिव्यक्ति प्रसिद्ध है। मानवीयता में शिष्टता की प्रतिष्ठा व अखण्डता है। यही सफल जीवन का प्रत्यक्ष रूप है, जो अखण्ड समाज दश सोपानीय व्यवस्था में अनिवार्यत: अनुवर्तनीय है। **(अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर: 34-50)**

- समाधानात्मक भौतिकवादी कार्यक्रम की चरितार्थता आवश्यकता से अधिक उत्पादन के रूप में भी प्रस्तावित है, जिसके लिये मानव में **शिक्षा** एवं शैक्षणिक क्षमता, निपुणता एवं कुशलता के रूप में है। यही उत्पादन क्षमता है। यही क्षमता उपयोगिता एवं काला मूल्य को प्रकृतिक ऐश्वर्य पर प्रतिस्थापित करती है। .... **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:56)**

- व्यक्तित्व व उत्पादन क्षमता सम्पन्न करने का दायित्व **शिक्षा** व्यवस्था एवं नीति पर आधारित पाया जाता है। यही व्यवस्था का प्रत्यक्ष स्त्रोत है। प्रचार, प्रकाशन, प्रदर्शनपूर्वक उसे प्रोत्साहित करने का दायित्व विद्वता, कला, कविता सम्पन्न समाज का है जिनसे ही सामान्य जन जाति प्रेरणा पाती है, जो तथ्य है। परस्पर राष्ट्रों में संतुलन सामंजस्य एवं एकसूत्रता को पाने के लिये प्रत्येक राष्ट्र को मानवीयता पूर्वक "नियम-त्रय" का पालन करने के लिए उन्मुख होना ही होगा। सार्वभौमिकता ही सभी राष्ट्रों के अनुमोदन के लिये आधार रहेगा। सामाजिक सार्वभौमिकता अर्थात् अखंडता ही सभी राष्ट्रों का मूल आशय है। उसकी स्पष्ट सफलता न होने का कारण मात्र वर्गीयता है या वर्गीयता का प्रोत्साहन एवं संरक्षण है। यह सभी वर्गीयताएं मानवीयता में ही विलीन होती है न कि अमानवीयता में। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मानवीयतापूर्ण जीवन परम्परा ही एकमात्र शरण है। इसी का दश सोपानीय व्यवस्था में निर्वाह करना ही एकसूत्रता, अखंडता एवं समाधान सार्वभौमता है। **प्रत्येक संतान को उत्पादन एवं व्यवहार एवं व्यवस्था में भागीदारी करने योग्य बनाने का दायित्व अभिभावकों में भी अनिवार्य रूप में रहता है क्योंकि प्रथम शिक्षा माता-पिता से, द्वितीय परिवार से, तृतीय परिवार के सम्पर्क सीमा से, चतुर्थ शिक्षण संस्थान से, पंचम वातावरण से अर्थात् प्रधानत: प्रचार-प्रकाशन-प्रदर्शन से तथा प्राकृतिक प्रेरणा से अर्थात् भौगोलिक एवं शीत, उष्ण, वर्षामान से प्राप्त होती है। (अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 57-58)**

- श्रम नियोजन, श्रम विनिमय-पद्धति से प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सेवा व वस्तु को दूसरी सेवा व वस्तु में परिवर्तित करने की सुगमता होती है, जिसमें शोषण, वंचना, प्रवंचना एवं स्तेय की संभावनाएं समाप्त हो जाती हैं जो अपराध परम्परा का वृहद् भाग है। ये संभावनाएं जागृति पूर्वक मानवकृत वातावरण, प्रधानत: व्यवस्था पद्धति एवं **शिक्षा** से ही निर्मित होती है। **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 59)**

- न्याय, अनुभव और व्यवहार "में, से, के लिये" है जो प्रसिद्ध है। यही व्यवहरात्मक जनवाद को स्पष्ट करता है। न्याय पाने की साम्य कामना ही व्यवहारात्मक जनवाद का आधार है, मानवीयता पूर्वक "नियम-त्रय" का पालन होना ही न्याय है, जिसका प्रत्यक्ष रूप आवश्यकता से अधिक उत्पादन और अर्थ का सदुपयोग एवं सुरक्षा है। यही जनाकांक्षा है। जनाकाँक्षानुरूप व्यवहार-व्यवस्था-प्रक्रिया ही जनवादीय तंत्र का उद्देश्य है। तद्नुरूप व्यवस्था व **शिक्षा** का सर्व-सुलभ होना ही व्यवहार है। जनवादीय तंत्र से जनवादीय व्यवस्था एवं शिक्षा, जनवादीय व्यवस्था **शिक्षा** से जनजाति में व्यवहार, जनजाति में व्यवहारानुरूप जनाकाँक्षा का निर्माण होना ही जनावादीय तंत्र की सफलता है। जागृत मानव परम्परा में जनाकाँक्षाए सार्थक होना पाया जाता है। **न्याय पाना, सही कार्य व्यवहार करना सत्य सम्पन्नता ही साम्यत: जनाकाँक्षा है। (अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:60)**

- मानव में विकसित अवस्था ही देव पद चक्र है। जिसके लिये मानव में सतत तृषा, अथक प्रयास एवं पूर्ण आकाँक्षा है। देव पद चक्र में संक्रमित होना ही मानवीयता सहज वैभव है। यही वैयक्तिक एवं परिवार की स्थिति में आचरण एवं व्यवहार है। इसका व्यवस्था एवं **शिक्षा** के रूप में उपलब्ध हो जाना ही मानवीयतापूर्ण समाज का प्रत्यक्ष रूप है। यह संक्रमण-प्रक्रिया चेतना विकास मूल्य **शिक्षा** के क्रम में भावी है। अमानवीयता से मुक्ति पाने के लिये मानवीयता एक संभावना है। मानवीयता से परिपूर्ण होने के अनन्तर यह मानव का अधिकार और स्वत्व है। यही अधिकार एवं स्वत्व, स्वतंत्रता के लिये उत्प्रेरणा है। पूर्ण स्वतंत्रता दिव्य मानवीयता में ही होती है। देव पद चक्र में संक्रमित समाज ही जागृति सहज समाज है। इससे पूर्व की स्थिति में सामाजिकतापूर्ण समाज सिद्ध नहीं है, क्योंकि अमानवीयता में सामाजिकता का पूर्ण होना संभव नहीं है। **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 68)**

- मानवीयतापूर्ण **शिक्षा** व व्यवस्था की प्रस्थापना, आप्त कामना सहित प्रमाण-पूर्वक विश्लेषणपूर्ण प्रक्रियाबद्ध सिद्धांतों का उद्घाटन है। यह अनुसंधान-क्षमता की स्वभाविक प्रक्रिया है। प्रत्येक जागृत इकाई में सबके जागृति के प्रति कामना जागृत होना स्वभाविक है। इसी क्रम में प्रत्येक अनुसंधान जन सुलभ होता आया है। जिनमें यह क्षमता प्रत्यक्ष हुई है, वे आप्तपुरुष हैं। मानवीयता में ही संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था की एकरूपता सिद्ध होती है। अर्थात् निर्विषमता सिद्ध होती है। यही धार्मिक, आर्थिक एवं राज्यनैतिक एकात्मकता को सिद्ध करती है, जिसके लिये ही मानव कुल प्रतीक्षारत है। यही व्यक्ति में उत्पादन, व्यवहार, विचार एवं अनुभूति के लिये अविरत प्रेरणा का स्रोत है। **शिक्षा** ही मानव जीवन एवं जीवन के कार्यक्रम को विश्लेषण व व्याख्यापूर्वक बोधगम्य कराने के लिये एकमात्र सूत्र है। प्रधानत: मानव को शिष्टता विशिष्टता से पूर्णत: प्रबोधन करा देना ही **शिक्षा** है। साथ ही उत्पादन-विनिमय कुशलता एवं निपुणता-योग्य योग्यता का निर्माण करना ही शिक्षण की चरितार्थता है। **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 69)**

- **आचरण पूर्णता ही शिक्षा का लक्ष्य है (अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर :70)**

जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति ही अध्ययन के लिये वस्तु व विषय सर्वस्व है। सत्ता में संपृक्त प्रकृति सहज ज्ञान एवं अनुभूति ही प्रसिद्ध है। यह ज्ञान मानव प्रकृति में भ्रम पर्यन्त संभव नहीं है। मानव प्रकृति में निर्भ्रमता, विकास एवं जागृति के क्रम में पाई जाने वाली चारों अवस्थाओं, तीनों चक्रों एवं भ्रम मुक्ति पर्यन्त व्याख्या, विश्लेषण एवं प्रमाण है। यही दर्शन सर्वस्व है। दर्शन विहीन जीवन में गुणात्मक परिवर्तन सम्भव नहीं है। प्रत्येक मानव विकास के लिये ही प्रत्याशु है क्योंकि जन्म से ही मानव सत्यवक्ता, न्याय पाने का इच्छुक एवं सही कार्य व्यवहार करने का इच्छुक है।

दर्शक ही दृश्य का दृष्टि के द्वारा दर्शन करता है। दर्शक, दृश्य और दृष्टि क्रिया ही है। प्रत्येक क्रिया संवेदना एवं गति का संयुक्त रूप है, जो कम्पनात्मक एवं वर्तुलात्मक गति के रूप में दृष्टव्य है। कम्पनात्मक गति ही संवेदनशीलता है। यही स्पन्दनशीलता भी है। संवेदन विहीन चैतन्य क्रिया नहीं है। संवेदनशीलता की अभिव्यक्ति चैतन्य प्रकृति में ही आरंभ होती है और दिव्य मानव परम्परा में ही संज्ञानशीलता सफल होता है। जबकि कम्पनात्मक गति जड़-प्रकृति में भी आंशिक रूप में पायी जाती है। जड़-प्रकृति में जो कम्पनात्मक गति है वह उसकी वर्तुलात्मक गति की अपेक्षा ऋणस्थ है। इसी कारणवश जड़-प्रकृति में वर्तुलात्मक गति प्रधानत: गणनीय है। कम्पन विहीन इकाई नहीं है।

स्पन्दन ही अग्रिम विकास के लिये तृषाभिव्यक्ति है। यही प्रत्येक अवस्था में स्वभाव है। **"स्वभाव परिवर्तन ही मूल्य परिवर्तन है।"** गुणात्मक मूल्य-परिवर्तन ही विकास है। यही स्पंदनशीलता का क्रम है। कम्पनात्मक एवं वर्तुलात्मक गति का योगफल ही क्षमता है। क्षमता ही संस्कारपूर्वक स्वभाव में अभिव्यक्त होती है। अभिव्यक्ति की विविधता ही गुणात्मक परिवर्तन के लिए भी सहायक है। इसी क्रम में मानव न्यायप्रदायी धर्मीयता को प्रसारित करता है। यही अन्य मानवों पर स्थापित होने वाला प्रभाव है। स्थापित मूल्यों का शिष्ट मूल्यों सहित निर्वाह करने की क्षमता ही न्याय प्रदायी धर्मीयता का प्रसारण है जिसके लिये निपुणता, कुशलता और पांडित्य है।

"अध्ययन की चरितार्थता आचरण में ही है।" आचरण दश सोपानीय व्यवस्था में पाई जाने वाली अनिवार्य प्रक्रिया है। आचरण विहीन इकाई नहीं है। आकाँक्षा सहित गतिशीलता ही आचरण है। आचरण ही विकास व ह्रास का प्रत्यक्ष

बिन्दु है। जड़ और चैतन्य प्रकृति में भी आचरण का अभाव नहीं है। मानव जीवन के कार्यक्रम को अक्षुण्ण बनाने के लिए विचार श्रृंखला में सामाजिकता का अनुसंधान हुआ है। सामाजिकता की अक्षुण्णता केवल मानवीयता में सिद्ध होती है। सामाजिकता के लिये मानवीयता ही एक मात्र शरण है।

"मानव द्वारा दश सोपानीय व्यवस्था में किये जाने वाले आचरणों में ही प्रतिभा एवं व्यक्तित्व का प्रकटन होता है।" प्रतिभा और व्यक्तित्व का संतुलन ही संतुलित-जीवन का प्रत्यक्ष का रूप है। यही "जाने हुए को मानना और माने हुए को जानना" है। यही अन्तद्वन्द्व से मुक्ति एवं भौतिक समृद्धि और बौद्धिक समाधान है, जो सब की आकाँक्षा है। यही गुणात्मक परिवर्तन का चरितार्थ स्वरूप है। विकास क्रम में गुणात्मक परिवर्तन भावी है, जो सहज प्रक्रिया है जिसमें वेदना का अत्याभाव है। यही जीवन का संगीत है। विकास एवं जागृति की प्रत्येक कड़ी सुखद होती है। विकास एवं जागृति के अतिरिक्त और कोई शरण नहीं हैं।
"प्रबुद्धता ही प्रतिभा और आचरण ही व्यक्तित्व है।" आचरण एवं प्रतिभा-सम्पन्नता के लिये **शिक्षा** एवं उसके संरक्षण के लिये व्यवस्था प्रसिद्ध है। प्रतिभा ही ज्ञान और आचरण ही सभ्यता एवं संस्कृति की अभिव्यक्ति है। अभिप्रायपूर्वक किया गया प्रकटन ही अभिव्यक्ति है। अभ्युदयार्थ अनुभव मूलक विधि से की गई वैचारिक प्रक्रिया ही अभिप्राय है। विधि, व्यवस्था एवं संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में, सत्यानुभूति योग्य क्षमता के प्रति जिज्ञासा भी प्रतिभा का द्योतक है। अर्थतंत्र धर्म नीति एवं राजनीति व्यवस्था प्रसिद्ध है। व्यवस्था ही विकास एवं जागृति क्रम सहज प्रमाण है, प्रकृति स्वयं में व्यवस्था है।

"स्वभाव-धर्म ही मौलिकता, मौलिकता ही मानव का अर्थ, अर्थ ही सार्थकता है।"

"मौलिकता ही मूल्य है। मूल्य-चतुष्टय अर्थात् उपयोगिता मूल्य, सुन्दरता मूल्य, शिष्ट एवं स्थापित मूल्य ही उद्घाटन एवं प्रकटन है।" यही अभ्युदय का प्रत्यक्ष रूप है। मानव का निर्वाह अर्थात् उसका निश्चित दिशा व लक्ष्य की और विचार एवं व्यवहार पूर्वक वहन ही स्वभाव का प्रकटन है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अभ्युदयपूर्ण होना चाहता है।

समस्या मानव में वांछित उपलब्धि नहीं है। यही सत्यता, समाधान के लिये प्रयास और अनुसंधान है। समाधान ही स्थिति है, यही विभव है। विभव ही वैभव है। वैभवपूर्ण होने के लिए मानव चिराशित है।

विधि, व्यवस्था, संस्कृति एवं सभ्यता के परिप्रेक्ष्य में निर्भ्रमता, सत्यानुभूति योग्य क्षमता के प्रति पूर्ण विश्वास, अनुभव सहित प्रमाणित होने की जिज्ञासा ही प्रतिभा-सम्मुचय है जो निपुणता, कुशलता और पाण्डित्य है।

तन, मन, धन रूपी अर्थ के संबंध में ही व्यवस्था है। व्यवहार एवं व्यवहारिक शिष्टता के संबंध में विधि है, जो राज्यनीति व धर्मनीति पूर्वक जीवन में चरितार्थ होती है।

मानव में स्वभाव और धर्म ही मौलिकता, मौलिकता ही मानव का अर्थ, अर्थ ही प्रकटन, प्रकटन ही स्वभाव है। मानव की मौलिकता ही मानव मूल्य है। मूल्य-सिद्धि मूल्याँकन पूर्वक होती है। मूल्य चतुष्टय ही आद्यान्त प्रकटन है। यही अभ्युदय की समग्रता है। प्रत्येक व्यक्ति अभ्युदय पूर्ण होना चाहता है। अभ्युदयकारी कार्यक्रम से सम्पन्न होने में जो अंतर्विरोध है (चारों आयामों तथा पाँचों स्थितियों में परस्पर विरोध) वही संपूर्ण समस्यायें है। इसके निराकरण का एकमात्र उपाय मानवीयतापूर्ण पद्धति से "नियम-त्रय" का पालन ही है। यही पाँचों स्थितियों का दायित्व है। अमानवीयतापूर्वक "नियम-त्रय" का पालन सम्भव नहीं है। अमानवीयता हीनता, दीनता और क्रूरता से मुक्त नहीं है। इसी कारणवश अपराध, प्रतिकार, द्रोह, विद्रोह, हिंसा-प्रतिहिंसा, भय-आतंक प्रसिद्ध है। ये सब मानव के लिये अवांछित घटनायें हैं। यही मानवीयतापूर्ण जीवन के लिये बाध्यता है।

व्यवस्था विधि, नीति और पद्धति का संयुक्त रूप है। अनुभव में विधि, व्यवहार में नीति और उत्पादन-विनियम में पद्धतियाँ प्रमाणित होती हैं। विशिष्ट ज्ञान ही विधि है जो स्थापित मूल्य एवं शिष्ट मूल्य को बोधगम्य एवं व्यवहारगम्य बनाती है। विशिष्ट बोध सत्ता में संपृक्त प्रकृति एवं उसके विकासक्रम, उसी के आनुषंगिक दर्शन एवं अनुभव योग्य क्षमता के संदर्भ में है। अनुभव-क्षमता ही समाज एवं सामाजिकता के संदर्भ में निर्विषमता तथा एकसूत्रता को स्थापित करती है। यही स्थापित मूल्य को अनुभवपूर्वक एवं शिष्ट मूल्य को व्यवहारपूर्वक सिद्ध करती है। यही विधि है।

नियति क्रमानुसरण-प्रक्रिया ही नीति है। नियति क्रम ही विकास एवं जागृति क्रम है। नियति क्रमानुषंगिक प्रगति ही गुणात्मक परिवर्तन है। प्रत्येक पद "में, से, के लिये" निश्चित अर्थवत्ता प्रसिद्ध है। नियतिक्रमवत्ता से सम्बद्ध उपयोगिता, उपादेयता और अनिवार्यता की सिद्धि तथा सिद्धिपूर्वक अग्रिम कार्यक्रम ही पद्धति है। यही गुणात्मक परिवर्तन परम्परा है। यह तब तक रहेगा जब तक आचरण पूर्ण न हो जावे। इसी पद्धति में आश्वासन एवं विश्वसन स्वभाव से सिद्धियाँ हैं।

गुणात्मक परिवर्तन पद्धति स्वयं सिद्धांत, विकास एवं जागृति है। ह्रास मानव के लिये वांछित घटना नहीं है। समाज की अखंडता "में, से, के लिये" सार्वभौम व्यवस्था मानव परंपरा में एक अनिवार्य प्रक्रिया है।

व्यवस्था के मूल में सत्यतापूर्ण-प्रबुद्धता ही आधार है। प्रबुद्धता जागृतिपूर्वक सार्थक होता है। प्रबुद्धता का सामान्यीकरणार्थ ही व्यवस्था की अनिवार्यता है। व्यवस्था मानव में वांछित घटना है।

मानव जीवन की विधि एवं नीति-संहिता में असंदिग्धता ही **शिक्षा** में पूर्णता है। व्यवस्था की सफलता उसके कार्यक्षेत्र के अंतर्गत पाई जाने वाली जनजाति में तारतम्यता ही असंदिग्धता का प्रत्यक्ष रूप है। विधि-संहिता ही मानव-जीवन-संहिता है। यही प्रकृति के विकासक्रम, विकास, जागृतिक्रम, जागृति की भाषाकरण संहिता है। उसका अनुकरण, अनुसरण और आचरण-प्रक्रिया ही नीति है। यही मानव जीवन का कार्यक्रम है।

क्षेत्र और वर्ग सीमा पर आधारित विधि अर्थात् अपराध-संहिता और उसकी व्याख्या का सार्वभौम होना संभव नहीं है। इसी सत्यतावश सार्वभौम जीवनक्रम, जीवन के कार्यक्रम में संक्रमित होने के लिये आवश्यकता उत्पन्न हुई है।

सार्वभौम विधि-संहिता मानवीयतापूर्ण पद्धति से "नियमत्रय"का विश्लेषण है। दश सोपानीय व्यवस्था में जिसका पालन एवं व्यवहृत हो जाना ही उसकी चरितार्थता है। यही सर्वमानव की कामना है। नीति का आधार विधि है। नीति सम्मत वस्तु, पद्धति एवं प्रक्रिया ही लोकाकाँक्षा से सम्बद्ध होती है, होना ही है। नीति केवल दो ही है:-

प्रथम - धर्म नीति, द्वितीय - राज्य नीति।

ये दोनों नीतियाँ अर्थतंत्र सहित वैभव है। अर्थ तन, मन और धन के रूप में प्रमाणित हैं। मानव संतृप्त होने के लिए आश्वस्त, विश्वस्त होना चाहता है। अर्थ के सदुपयोग में विश्वास धर्म नीति एवं अर्थ की सुरक्षा में विश्वास राज्य नीति सहज सिद्ध होता है। अर्थ के उत्पादन, वितरण एवं उपयोग से ही सदुपयोग स्पष्ट होता है। सदुपयोगात्मक एवं सुरक्षात्मक नीति ही मानव की आकाँक्षा है। परिवार एवं वर्ग से मुक्त संस्था ही सार्वभौम संस्था है। ऐसी संस्था में मानव-जीवन, मध्यस्थ दर्शन सहित, स्वभावत: समाविष्ट रहती है। फलत: मानव-जीवन के कार्यक्रम का क्रियान्वयन होता है। दर्शन-क्षमता के अनुरूप में कार्यक्रम का निर्धारण संस्थाओं ने किया है। असंदिग्ध कार्यक्रम केवल मानवीय संस्कृति, सभ्यता पर आधारित विधि व्यवस्था ही है। इसका प्रत्यक्ष रूप ही है व्यवहारिक "नियम-त्रय" का पालन। नियम त्रय का प्रत्यक्ष रूप ही शिष्ट मूल्यों सहित संपूर्ण स्थापित मूल्यों का निर्वाह है। यही अखंड समाज, सह-अस्तित्व, समाधान एवं समृद्धि है।

मानवीयता पूर्ण व्यवस्था अथवा सार्वभौमिक व्यवस्था के अर्थ में जनवादी तंत्र को दश सोपानीय विधि से निर्देश किया है। मानवीयतापूर्ण संस्कृति-सभ्यता को प्रत्येक मानव जीवन में चरितार्थ करना चाहता है, जिसके लिये ही वह संस्था में स्वयं को समर्पित करता है।

केवल साधनों की प्रचुरता मानवीयता को स्थापित करने में समर्थ नहीं है

समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद, अनुभवात्मक अध्यात्मवाद का संयुक्त रूप ही सह-अस्तित्ववाद है। यही प्रत्येक स्थिति एवं प्रत्येक आचरण को अतिसंतृप्ति प्रदान करने के लिए सूत्र व्याख्या है। व्यवहारात्मक जनवाद के आधार पर व्यवहार-निर्वाह अर्थात् स्थापित मूल्यों का निर्वाह, शिष्ट मूल्य सहित प्रत्यक्ष होता है। स्थापित मूल्य, मानव मूल्य, जीवन मूल्य का अनुभव व मूल्यांकन होता है और शिष्ट मूल्य का आचरण होता है। उत्पादित वस्तु का उत्पादन, उपयोग एवं वितरण होता है।

बौद्धिक समाधान ही समाधानात्मक भौतिकवाद का आधार है। यही आधार स्वयं स्पष्ट करता है कि मानव के लिये समाधान एक प्रधान आयाम "में, से, के लिये" काँक्षित उपलब्धि है। चारों आयामों की प्राथमिकता क्रमश: अनुभव, विचार, व्यवहार और उत्पादन है। अनुभव मूलक पद्धति से विचारों में समाधान, विचारानुरूप व्यवहार पद्धति से सह-अस्तित्व एवं न्याय-नियम-नियंत्रण-संतुलन समाधान मूलक उत्पादन से समृद्धि दृष्टव्य है।

प्रत्येक मानव संपूर्ण मूल्यों सहित शिष्ट मूल्य सहित निर्वाह करने के पक्ष में है। सम्बन्धों का निर्वाह न होना ही अव्यवहारिकता अर्थात् अमानवीय व्यवहार, उद्दण्डता, अराजकता एवं अस्थिरता है। यही व्यवहारात्मक जनवाद को उद्घाटित करने का प्रधान कारण है। स्वयं के समर्पण का तात्पर्य ही है निर्न्वाह करना। जितने भी परिपे्रक्ष्यों में निर्वाह-क्षमता प्रकट हुई है, ये सब समर्पण से प्राप्त गुणात्मक परिवर्तन के रूप में ही स्पष्ट हैं। समर्पण में पूर्ण स्वीकृति होती है। जो जिसे स्वीकार नहीं करता है, उनमें परस्पर समर्पित होना संभव नहीं है। जो जिसको स्वीकारता है, उसको वह आत्मसात कर लेता है या आत्मसात होता है, जो स्पष्ट है।

जन्म से ही मानव में संबंध का होना पाया जाता है। **संबंध विहीन जन्म, जीवन, मृत्यु नहीं है।** शरीर सहित जीवन संबंध में इससे अधिक घटना या अध्ययन नहीं है। मानव के जन्म-जीवन काल में ही समाज एवं सामाजिकता के अध्ययन की अनिवार्यता है। यही अनिवार्यता संबंधों के निर्वाह के लिए प्रेरणा है। यह जन्म से ही आरंभ होता है। जैसे:-

1. प्रत्येक माता-पिता अपनी संतानों का पोषण करते हैं, करना चाहते हैं।
2. प्रत्येक शिक्षार्थी **शिक्षा** पाना चाहता है।
3. प्रत्येक शिक्षक **शिक्षा** प्रदान करना चाहता है।
4. प्रत्येक व्यक्ति न्याय पाना चाहता है और सही कार्य-व्यवहार करना चाहता है।
5. प्रत्येक व्यक्ति परस्परता में कर्तव्य एवं दायित्व निर्वाह की अपेक्षा करता है और स्वीकारता है।
6. प्रत्येक व्यक्ति भौतिक समृद्धि और बौद्धिक समाधान चाहता है।

इसलिए **प्रत्येक स्थापित संबंधों में निहित स्थापित मूल्यों का निर्वाह ही सामाजिकता का प्रत्यक्ष रूप है।** यही निर्विषमता सह-अस्तित्व का भी प्रत्यक्ष रूप है।

समाज संरचना शुद्धत: मानव की परस्परता में स्थापित संबंध ही है। यही समाज की आद्यान्त संरचना है। संबंधों की अक्षुण्णता उसमें स्थापित मूल्यों का निर्वाह ही है। यही मानव जीवन की गरिमा है। स्थापित मूल्य अनुभूति है। मानव जीवन में अनुभव-क्षमता समान है। यही क्षमता मूल्यों का अनुभव करने के लिए होती है।

समाज संरचना का आधार मानव मूल्य एवं स्थापित मूल्य ही है। संबंधों से अधिक समाज संरचना नहीं है। मित्र संबंध में समस्त मानव-मात्र संबंधित हैं ही। अपराध विहीन समाज को पाने के लिए मानवीय **शिक्षा** एवं व्यवस्था पद्धति ही मूलत: कारक एवं आवश्यक है। मानवीय **शिक्षा** एवं व्यवस्था अन्योन्याश्रित उद्घाटन हैं। इनकी आधारभूत संहिता में

मानव-जीवन के अनुरूप जीवन के कार्यक्रम को पूर्णतया विश्लेषित करते तक अंतर्विरोध स्वभाविक है। मानवीय **शिक्षा** एवं व्यवस्था-संहिता का योगफल ही मानव-जीवन-संहिता है, जिसमें मानव की परिभाषा, मानवीयता की व्याख्या समायी हुई है। यही जीवन-संहिता की पूर्णता है। इसी के आधार पर निर्विषमता, निर्विरोधित स्थापित होती है। ये जागृति पूर्वक प्रमाणपूर्वक पाई जाने वाली स्थिति है।

प्रत्यक्ष रूप में स्थापित संबंध ही समाज संरचना है जिसके अनुभव में ही स्थापित मूल्य ज्ञातव्य हैं। ये मूल्य शुद्धत: स्थिति ही हैं। स्थिति दर्शन अनुभूति हैं। संबंध विहीन इकाई नहीं हैं। प्रत्येक संबंध मूल्य सम्पन्न हैं। मानव के परस्पर संबंधों मे निहित सभी मूल्यों में से नौ स्थापित मूल्यों में से पूर्ण मूल्य प्रेम है, जो मानव संबंधों में इष्ट, मंगल एवं शुभ है। यही अनुभव है जिससे ही निर्विषमता, अनन्यता मानव जीवन में प्रकट होती है। यही सामाजिकता की आत्मा प्राण और त्राण है। प्रेरणा ही प्राण, आचरण ही त्राण है।

संबंध विहीन समाज नहीं है। समाज रचना संबंध "में, से, के लिए" ही है। संबंध मात्र समाज "में, से, के लिए" है। अत: समाज एवं संबंध अन्योन्याश्रित हैं। इसी तारतम्य में सभी मूल्य अन्योन्याश्रित है। फलत: अनन्यता सिद्ध है। यही सह-अस्तित्व का मूल सूत्र है। इसलिए
संबंध ही जन्म, शिक्षा, व्यवहार, परिवार, उत्पादन, व्यवस्था के प्रभेद से दृष्टव्य है। वह :-

1. जन्म संबंध :- माता-पिता, पुत्र-पुत्री, भाई-बहन उनसे संबंधित सभी संबंध
2. **शिक्षा** संबंध :- गुरु-शिष्य।
3. व्यवहार संबंध :- मित्र, वरिष्ठ, कनिष्ठ (आयु के आधार पर)
4. उत्पादन प्रौद्योगिकी संबंध :- साथी-सहयोगी, स्वामी-सेवक, साधन-साधक, साध्य।
5. व्यवस्था संबंध :- दश सोपानीय परिवार सभा विधि।
6. परिवार संबंध :- परिवार संबंध में पति-पत्नि सहित सभी संबंध समाये रहते हैं।

प्रत्येक मानव, मानव के साथ व्यवहार करने के लिए उत्सुक है। जागृत मानव प्रधानत: मानव के साथ ही स्वयं की जागृति को प्रमाणित करता है। स्थापित संबंध में ही निर्वाह-क्षमता का उपार्जन कर लेना ही शिक्षित होने की उपलब्धि है। इसकी अनिवार्यता व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियों में साम्यत: पायी जाती है। व्यवहार स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य एवं वस्तु मूल्य के योगफल में ही है। अनुभव ही मानव जीवन का प्रधान आयाम है। अन्य आयाम जैसे -विचार, व्यवहार एवं उत्पादन अनुभव क्षमता के बिना पूर्ण नहीं होती है। अनुभव-क्षमतावश ही मानव सामाजिकता के लिए उन्मुख होता है। क्योंकि :-
शीत-उष्ण; प्रकाश-अंधकार; प्रिय-हित, लाभ; न्याय, धर्म, सत्य; उचित-अनुचित; हानि-लाभ; उत्थान-पतन; ह्रास-विकास का आंकलन प्रत्येक जागृत मानव में होता ही है। यही समीक्षा पूर्णता के लिए सहज निरंतरता के लिए प्रेरणा है।

अनुभव क्षमता के अभाव में मानव जीवन का विश्लेषण एवं उनके कार्यक्रम की स्थापना संभव नहीं हैं। मानव में स्थापना का तात्पर्य स्वीकृति से है। स्वीकृति ही संस्कार है। यही क्रम से मूल प्रवृत्ति एवं संवेग के रूप में अवतरित होकर क्रिया, व्यवहार, आचरण में प्रत्यक्ष होता है। अनुभव-क्षमता में ही भाव का निर्णय होता है। भाव ही उपलब्धि है। अभाव ही भाव में परिणत होने का शेष प्रयास है। प्रत्येक भाव मौलिक है। प्रत्येक मूल्य मानव और उसकी धर्मियता पूर्वक प्रतिष्ठित है। इकाई और उसकी मूल्यवत्ता का वियोग नहीं है। यही स्वभाव है। यही सत्यता प्रत्येक इकाई में उत्सव है। दिव्य मानवीयता में आचरण/स्वभाव पूर्णता है। देव मानवीयता यशस्वी होता है। मानव मानवीयता पूर्वक सामाजिक होता है। यही जागृति में पायी जाने वाली वास्तविकता है। प्रत्येक मानव इकाई में

पूर्णता की तृषा है। परिणाम का अमरत्व, श्रम का विश्राम, गति का गन्तव्य चैतन्य प्रकृति में जागृतिक्रम, जागृति दृष्टव्य है। **(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर:70-81)**

- "निर्भमतापूर्वक ही मानव चारों आयामों और दश सोपानीय परिवार सभा व्यवस्था में पूर्णता का अनुभव करता है।" यह पूर्णता समाधान समृद्धि अभय एवं सह-अस्तित्व के रूप में प्रत्यक्ष होती है। पूर्णता मानव जीवन एवं प्रकृति की विकासक्रम एवं जीवन जागृति की संहिता है। जिसका सार्थक भाषाकरण ही संहिता है। यह सर्ववांछित उपलब्धि हैं। सार्वभौम सिद्धान्त, नीति एवं पद्धति को पाना अर्थ के सदुपयोग एवं सुरक्षा के लिए अनिवार्यतम आवश्यकता है जिसके बिना **शिक्षा** में सार्वभौमिकता संभव नहीं है। फलत: संस्कृति-सभ्यता में सार्वभौमिकता संभव नहीं है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 84)**

- "जागृति सहज अनुमान क्षमता मानव की विशालता को और अनुभव ही पूर्णता को स्पष्ट करता है।" सतर्कता एवं सजगता मानव-जीवन में प्रकट होने वाली क्रिया पूर्णताएं है। चैतन्य क्रिया अग्रिम रूप में क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता के लिये तृषित एवं जिज्ञासापूर्वक अपनी विशालता को अनुमान के रूप में प्रकट करती है। ज्ञानावस्था की इकाई का मूल लक्ष्य ही पूर्णता है। पूर्णता के बिना ज्ञानावस्था की इकाईयाँ आश्वस्त एवं विश्वस्त नहीं है। उत्पादन एवं व्यवहार में ही क्रमश: समाधान एवं अनुभव चरितार्थ हुआ है। प्रयोग एवं उत्पादन में ही समस्या एवं समाधान है। व्यवहार एवं आचरण में ही सामाजिक मूल्यों का अनुभव होने का परिचय सिद्ध होता है। आशा, विचार, इच्छा समाधान के लिए ही प्रयोग व उत्पादन-विनिमयशील है। इच्छा एवं संकल्प अनुमानपूर्वक अनुभव के लिए आचरणशील है। आचरण के मूल में मूल्यों का होना पाया जाता है। स्वभाव ही आचरण में अभिव्यक्त होता है। मानवीय स्वभाव धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करूणा ही है। अनुभव आत्मा में अनुभवमूलक व्यवहार एवं आचरण आत्मानुशासित होता है, आत्मानुभूति ही प्रमाण और वर्तमान है। आत्मानुभूति मूलक व्यवहार समाधान सम्पन्न होता है। तभी परावर्तन एवं प्रत्यावर्तन में संतुलन सिद्ध होता है। अनुभूति आत्मानुषंगी एवं अपरिवर्तनीय है। पूर्णता सहज व्यवहार आत्मानुषंगी एवं अपरिवर्तनीय है यही पूर्णता है। यही पूर्ण सजगता है, पूर्ण सजगता ही सहजता है। समाधान एवं अनुभूति की निरंतरता ही सामाजिक अखण्डता एवं अक्षुण्णता है। अनुभव एवं समाधान के बिना जीवन चरितार्थ नहीं है। चरित्रपूर्वक अर्थ निस्सरण ही चरितार्थता है। आचरण ही स्वभाव के रूप में प्रकट होता है। यही स्वभाव "तात्रय" में स्पष्ट है। आवश्यकता से अधिक उत्पादन के रूप में प्रयोग पूर्वक किया गया उत्पादन-विनिमय में सफल हुआ है। व्यवहार एवं उत्पादन का योगफल ही सह-अस्तित्व है। उनमें निर्विषमता ही जागृति है। उसकी निरंतरता ही सामाजिकता की अक्षुण्णता है, जिसके दायित्व का निर्वहन, **शिक्षा** एवं व्यवस्था करती है।**(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 86-87)**

- मानव में पायी जाने वाली स्वतंत्रता की तृषा का तृप्त हो जाना ही मानव-जीवन में दृष्टा पद एवं जागृति है। मानव जीवन भी जागृति क्रम है। स्वतंत्रता का प्रत्यक्ष रूप ही सतर्कता एवं सजगता है जो मानवीयतापूर्ण समाज, सामाजिकता, आचरण, संस्कृति, विधि, व्यवस्था एवं **शिक्षा** है। ये सभी परस्पर पूरक तथ्य हैं। इन सभी पूरक तथ्यों का एक ही सुदृढ़ आधार है मानवीयता। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 88)**

- प्रकृति का अध्ययन एवं दर्शन तथा मूल्यों का अनुभव प्रसिद्ध है। अनुभव क्षमता ही मूल्य एवं मूल्यांकन का निष्कर्ष है। स्थिति मूल्य या मूल्यांकन ही अनुभव है। अनुभव विहीन मानव अपने में स्पष्ट नहीं होता है। प्रत्येक मानव स्पष्ट होने में, से, के लिए निरंतर प्रयासशील है। स्वयं स्पष्ट होना ही समाधान एवं अनुभव पूर्ण प्रकटन है। तत्पर्यन्त मानव संतृप्त नहीं है। सम्यक प्रकार से तृप्ति ही संतृप्ति है। सम्यक प्रकार से तुष्टि ही संतुष्टि है। संतुष्टि का तात्पर्य पूर्णता से है। आद्यान्त प्रकृति में पूर्णता की स्थित तीन ही है। वह गठन, क्रिया और आचरण ही है जो प्रमाण सिद्ध है। पूर्णता-त्रय-सम्पन्नता ही जीवन में पूर्णता है जो प्रमाण सिद्ध है जो सजगता, सतर्कता एवं अमरत्व है। यही समाधान व प्रतिभा का चरमोत्कर्ष है। यही सह-अस्तित्व, समृद्धि, स्वर्ग, मंगल, शुभ है। यही अभ्युदय है, जिसके लिए मानव अनादि काल से तृषित है। इसे सर्व-सुलभ बनाना ही मानवीय **शिक्षा** एवं व्यवस्था का आद्यान्त कार्यक्रम एवं सफलता है।**(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 92)**

• सामाजिकता का अनुसरण आचरण तब तक संभव नहीं है जब तक मानवीयतापूर्ण जीवन सर्वसुलभ न हो जाय। ऐसी सर्वसुलभता के लिए **शिक्षा** और व्यवस्था ही एकमात्र दायी है, जिसके लिये मानव अनादिकाल से प्रयासशील है। प्रत्येक मानव को सतर्कता एवं सजगता से परिपूर्ण होने का अवसर है, जिसको सफल बनाने का दायित्व **शिक्षा** एवं व्यवस्था का ही है। सफलता और अवसर का स्पष्ट विश्लेषण ही **शिक्षा** है। प्रत्येक मानव सही करना चाहता है और न्याय पाना चाहता है। साथ ही सत्यवक्ता है। ये तीनों यथार्थ प्रत्येक मानव में जन्म से ही स्पष्ट होते हैं। यही अवसर का तात्पर्य है। इन तीनों के योगफल में भौतिक समृद्धि एवं बौद्धिक समाधान की कामना स्पष्ट है। यह भी एक अवसर है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए अवसर का सुलभ हो जाना ही व्यवस्था की गरिमा है। न्याय प्रदान करने की क्षमता एवं सही करने की योग्यता की स्थापना ही **शिक्षा** की महिमा है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 93)**

• **''संस्कृति का शुद्ध रूप संस्कार सम्पन्न होने की परम्परा है।'' यही पूर्ण शिक्षा है।** मानव में संस्कार गुणात्मक परिर्वतन क्रिया परम्परा है। गुणात्मक परिर्वतन जागृति अनुक्रमानुगमन या अनुसरण है। मानव की जागृति अमानवीयता से मानवीयता में, मानवीयता से अतिमानवीयता में स्पष्ट है। क्रम ही परम्परा है।

(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 94)

• **संस्कृति पराम्परागत उद्बोधन, प्रयोजन, प्रोत्साहन, संरक्षण, संवर्धन, परिपालन प्रक्रिया सहित चेतना विकास मूल्य शिक्षा है जो अनुभव प्रमाण परंपरा है। यही शिक्षा सर्वस्व है।** संस्कार पूर्वक ही प्रवृत्तियों का उदय होता है। प्रत्येक प्रवृत्ति संवेग के रूप में अवतरित होकर क्रियाशील होती है। यही स्वभाव में गण्य होता है। स्वभाव ''ता-त्रय'' की सीमा में गण्य होता है। इसलिये''वर्गविहीन मानवीयतापूर्ण समाज में संघर्ष का अत्याभाव होता है।'' जागृति और संगठनपूर्वक ही समाज-चेतना परंपरा उदय होता है। संगठन के मूल में पूर्णता की धारणा एवं अध्ययन होती है। यही अभयता है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 95)**

• परम्परा की स्वीकृति ही प्रतिबद्धता है। मानवीयता पूर्ण परंपरा ही सामाजिक एवं स्वस्थ परंपरा होती है। वर्गीय एवं परिवारीय व व्यक्तिवादी परंपरा संघर्ष से मुक्त नहीं है फलत: सामाजिक नहीं है। सामाजिकता सीमा नहीं अपितु अखंडता है। प्रतिबद्धताएं संकल्प पूर्ण प्रवृतियों के रूप में प्रकट होती है जो उनके आहार, विहार, आचरण, व्यवहार, उत्पादन, उपभोग, वितरण और दायित्व, कर्तव्य, निर्वाह के रूप में प्रत्यक्ष होती है। संकल्प में परिवर्तित होना ना होना ही अवधारणा है। ऐसी अवधारणा भास, आभास पूर्वक ही होती है जबकि धारणा संक्रमण ज्ञानपूर्वक स्वीकृति है। जिसे **शिक्षा** ही स्थापित करती है। **प्रथम शिक्षा माता-पिता, द्वितीय शिक्षा परिवार, तृतीय शिक्षा केन्द्र, चतुर्थ शिक्षा व्यवस्था सहज वातावरण है जिसमें प्रचार, प्रदर्शन, प्रकाशन प्रक्रिया भी हैं। यही शिक्षा मानव में अवधारणा स्थापित करती है। फलत: मानव ''ता-त्रय'' के रूप में अपने आचरण को प्रस्तुत करता है। यही मानवीयता, देव मानवीयता, दिव्य मानवीयता है। (अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 95-96)**

• अवधारणा ही संस्कार है। संस्कार विहीन मानव नहीं हैं। संस्कार प्रदाता केवल अस्तित्व दर्शन मानवीयता पूर्ण आचरण जीवन ज्ञान को प्रबोधित करने वाली **शिक्षा** ही है। इस **शिक्षा** एवं शिक्षण समुच्चय को मानवीयता से परिपूर्ण किया जाना ही अखंडता की स्थापना है। यही क्रम अखंड सामाजिकता की अक्षुण्णता है। यही सर्वमंगल शुभ धर्म की सफलता है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 96)**

• मानव में वर्गविहीनता न्याय अपेक्षा, सही करने की इच्छा एवं सत्यवक्ता होना जन्म से ही दृष्टव्य है।जन्म के अनन्तर वर्ग जाति, मत, सम्प्रदाय का आरोपण होता है। शुद्धत: प्रत्येक संतान केवल मानव संतान है। इसमें मानव से अतिरिक्त जाति, मत, संप्रदाय, वर्ग, बोध को उनके माता-पिता परिवार तथा प्रतिबद्ध समूह प्रस्थापित करते हैं जो एक पारम्परिक प्रक्रिया है। वह वर्ग सीमा से अधिक नहीं हैं। शैशवावस्था से ही तदाकार वृत्ति होती है। फलत: विभिन्न जाति, मत, सम्प्रदाय, धर्म, वर्ग को स्वीकारता है। उसी सीमा में स्व-अस्तित्व मान्यतावश उस वर्ग के सीमावर्ती कार्यकलाप, आचरण, व्यवहार में प्रवृत्त होने के लिए बाध्य करता है। यह बाध्यताएं तब तक रहेगी जब तक किसी विशेष घटनावश उसमें विशिष्ट परिवर्तन न हो जाये। विशिष्टता का तात्पर्य मानवीयता एवं अतिमानवीयता पूर्ण जीवन में स्थिति को पा लेने से है। ऐसा व्यक्ति जिस परम्परा से उद्गमित हुआ रहता है उसी परम्परा में उसकी विशिष्टता एवं शिष्टता का समावेश करने के लिए प्रयास करता है। पहले से ही वह परम्परा किसी सीमा से सीमित

रहने के कारण अनुभवमूलक तत्वों का समावेश करने में असमर्थ होकर उस व्यक्ति या व्यक्तित्व को एक आर्दश के रूप में वह परम्परावादी जनजाति स्वीकारता है। फलत: वह आर्दश एक स्मारक रूप में परिणत हो जाता है। इन तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्ग विहीन परम्परा को वहन करने के लिए मानवीयता के अतिरिक्त कोई भी उपाय सम्पन्न परम्परा समर्थ नहीं हुआ है।

इस तथ्य से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए जागृत परम्परा और **शिक्षा** का सुलभ होना आवश्यक है। तभी अखंड सामाजिकता, सह-अस्तित्व सिद्ध होता है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 96-97)**

- वर्ग चेतना को मानवीय चेतना में परिवर्तित करना मानव कुल के लिए वांछित एवं अभीष्ट है। प्रत्येक स्थिति में मानव संस्कृति एवं सभ्यता की एकात्मकता ही इसका एक मात्र व्यावहारिक रूप है। इसे समृद्ध बनाने योग्य **शिक्षा** एवं व्यवस्था पद्धति की स्थापना ही मूल प्रक्रिया है, इसकी समानत: सभी व्यवस्था संस्थाओं में अर्थात् राज्यनैतिक एवं धर्मनैतिक में समान रूप हो जाना ही अभ्युदय है। यही व्यावहारिक समाधान का प्रमाण है। अनेक धर्म के स्थान में मानव धर्म का, अनेक जाति के स्थान पर मानव जाति का, अनेक राष्ट्र के स्थान पर अखंड समाज और भूमि का, रहस्यात्मक अनेक ईश्वर के स्थान पर व्यापक सत्ता रूपी ईश्वर का पूर्णतया बोध कराने वाली पद्धति से वर्ग चेतना मानवीय चेतना में परिणित होती है। यही व्यक्ति के जीवन में सार्वभौमिक आचरण, परिवार में सहयोग, समाज में प्रोत्साहन, राष्ट्र में संरक्षण-संवर्धन, अंतर्राष्ट्र में अनुकूल परिस्थितियाँ है। यही सर्वमंगल कार्यक्रम है, यही समृद्धि एवं समाधान है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 97-98)**

- **''मानव जीवन में गुणात्मक जागृति के लिए शिक्षा-संस्कार प्रसिद्ध है।''** गुणात्मक विकास के लिए प्रेरणा प्रदान करने का कार्यक्रम पद्धति, वस्तु, विषय, प्रणाली एवं प्रक्रिया ही मानव जीवन में शिक्षा-संस्कार का प्रत्यक्ष रूप है। यह क्रम से माता-पिता, परिवार, संपर्क, संबंध, **शिक्षा** मंदिर, **शिक्षा** संस्थान एवं मानवकृत वातावरण से सम्पन्न होता है। प्रत्येक मानव जन्म से जाति एवं वर्ग विहीन है। शिक्षापूर्वक ही उसमें वर्गीय, जातीय संस्कारों को स्थापित किया जाता है, जो मानवता के लिए वांछित घटना नहीं है। इसका विकल्प अर्थात् मानवीयतापूर्ण संस्कृति एवं सभ्यता का अप्रचुर होना ही ऐसी अवांछित घटना के लिए विवशताएं हैं। इसका निराकरण मानवीयतापूर्ण जीवन चित्रण एवं ऐसी चेतना की परम्परा ही है, जो शुद्धत: मानवीय संस्कृति एवं सभ्यता में विलीन होती है। गुरू मूल्य में लघु मूल्य का विलय होना पाया जाता है। इस तथ्य से यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक विद्यार्थी में क्रम से शैशव, बाल एवं किशोरावस्था से ही माता-पिता, परिवार, **शिक्षा** मन्दिर, **शिक्षा** संस्थान, व्यवस्था-पद्धति, प्रचार, प्रकाशन,प्रदर्शन-समुच्चय द्वारा मानवीयता पूर्ण जीवन एवं जीवन के कार्यक्रम को उद्बोधन-प्रबोधन कराने वाली प्रक्रिया परम्परा ही वर्ग विहीन चेतना को प्रस्थापित करने का एकमात्र उपाय है। यही मानवीय संस्कृति का मौलिक देय है। संस्कृति एवं सभ्यता से संबद्ध **शिक्षा** सर्वसुलभ न होने से अखंड सामाजिकता में प्रत्येक व्यक्ति के भागीदार होने की संभावना नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि इसका सर्वसुलभ होना अनिवार्य है। यही शिक्षा-संस्कार की गरिमा, महिमा एवं जीवन में अविभाज्यता है।

शिक्षा में प्रधानत: मानव की परस्परता में निहित स्थापित एवं शिष्ट मूल्य का प्रबोधन है साथ ही वस्तु मूल्यों का शिक्षण भी। स्थापित एवं शिष्ट मूल्य की पूर्ण स्वीकृति एवं अनुभूति ही प्रबुद्धता का प्रत्यक्ष रूप है, जो व्यवहार में प्रमाणित होता है। व्यवहार में केवल स्थापित मूल्य का निर्वाह एवं शिष्ट मूल्य का प्रकटन होता है। यही मानवीय संस्कृति एवं सभ्यता की चरितार्थता है। इसके अभाव की स्थिति में कितने भी विशाल वस्तु मूल्य की उपलब्धि एवं योग्यता का उपार्जन करने पर भी सामाजिकता की सिद्धि होना संभव नहीं है। मानवीयता की सीमा में ही सामाजिकता सिद्ध होती है। सामाजिकता से ही सुसंस्कृति की अक्षुण्णता होती है। यही सत्यता प्रत्येक मानव को प्रत्येक स्तर एवं स्थिति में अमानवीयता से मानवीयता, मानवीयता से अतिमानवीयता पूर्ण जीवन में प्रबोधन पूर्वक संक्रमित होने के लिए बाध्य की है। यही उदय एवं जागृति का प्रधान लक्षण है।

धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा एवं करूणा पूर्ण स्वभाव से अभिभूत होकर व्यवहार में आरूढ़ होने के लिए प्रदान की गई **शिक्षा** एवं सम्मान, आदर एवं पुरस्कार पूर्वक सम्पन्न की गई प्रक्रिया ही मानव जीवन में उपादेयी सिद्ध हुई है। **शिक्षा** के माध्यम से ही श्रेष्ठ संस्कारों की स्थापना होती है। न्यायान्याय, धर्माधर्म एवं सत्यासत्य पूर्ण दृष्टियों की सक्रियता पूर्वक सुयोजित पद्धति प्रक्रिया सहित व्यवहार एवं आचरण करने की क्षमता एवं आवश्यकता से अधिक

उत्पादन करने योग्य योग्यता को प्रबोधन पूर्वक व्यवहृत करने योग्य स्थिति, परिस्थितियों का निर्माण कर देने पर सर्वश्रेष्ठ संस्कारों की स्थापना होती है। वित्तेषणा, पुत्रेषणा, लोकेषणा एवं भ्रम मुक्ति के संर्दभ में किया गया प्रबोधन सर्वोत्तम संस्कारों को स्थापित करता है। मानवीयतापूर्ण व्यवहार एवं कर्माभ्यास पूर्ण उत्पादन शिक्षा-संस्कार से विद्यार्थियों में अभ्युदय अवश्यंभावी होता है। फलत: मूल्य के अनुभव योग्य क्षमता प्रकट होती है। ऐसी संस्कार प्रक्रिया ही मानवीयता को व्यवहार रूप में साकार रूप प्रदान करती है। मूल्य व लक्ष्य तंत्रित राज्यनीति एवं धर्मनीति के प्रबोधन से श्रेष्ठ संस्कार स्थापित होते हैं। मानवीयतापूर्ण संस्कृति की **शिक्षा** से ही कृतज्ञता, गौरव, श्रद्धा, प्रेम, विश्वास, वात्सल्य, ममता, सम्मान एवं स्नेहात्मक मूल्यों का अनुभव करने योग्य संस्कारों की स्थापना होती है। मानवीयतापूर्ण संस्कृति के अनुसरण योग्य सौम्यता, सरलता, पुज्यता, अनन्यता, सौजन्यता, सहजता, आदर, सौहार्द्रता एवं निष्ठात्मक शिष्टता को अभिभूतता पूर्वक अभिव्यक्त करने योग्य संस्कारों की स्थापना होती है। मानवीयतापूर्ण संस्कृति सम्बद्ध **शिक्षा** ही प्राकृतिक एवं वैकृतिक ऐश्वर्य का सदुपयोग एवं सुरक्षा करने योग्य संस्कारों की स्थापना करती है। यही क्रम से विधि-निषेध एवं व्यवस्था-अव्यवस्था का निर्णय करने योग्य सुसंस्कारों को स्थापित करती है। यही क्रम से मानव की चिर आशा एवं तृषा है। **शिक्षा** ही मानव में संस्कार परिवर्तन की अतिमहत्वपूर्ण प्रक्रिया एवं कार्यक्रम है। **शिक्षा** में ही संस्कृति एवं सभ्यता का उद्बोधन-प्रबोधनपूर्वक स्फुरण होता है, जो व्यक्तित्व को प्रकट करता है। **(अध्याय: 7, पृष्ठ नंबर: 102-105)**

- दीक्षा संस्कार प्रत्येक मानव के लिए अनिवार्य है। "मानव धर्मीयता का अनुभव करने के लिए की गई प्रक्रिया, पद्धति एवं प्रणाली ही दीक्षा है।" दीक्षा संस्कार गुणात्मक परिवर्तन की ओर सुस्पष्ट दिशा निर्देशन के संदर्भ में ज्ञातव्य है। दिशा जागृति सहज प्रमाणों के क्रम में अग्रिमता को इंगित है। मानव जीवन जागृति क्रम में अमानवीयता से मानवीयता एवं मानवीयता से अतिमानवीयता की ओर है। **शिक्षा** द्वारा मानवीयता को स्थापित किया जाना, दीक्षा द्वारा अतिमानवीयता की ओर दृढ़ता एवं गति को प्रस्थापित करना ही इन दोनों संस्कारों की चरितार्थता है, जो सर्व वांछनीय उपलब्धि है। मानवीयतापूर्ण जीवन प्रतिष्ठा के बिना दीक्षा संस्कार सफल नहीं होता है। दीक्षा संस्कार स्वमूल्य और मौलिकता का अनुभव करने के लिए ही दिशादायी प्रक्रिया है। स्वमूल्याँकन मात्र अनुभव है क्योंकि "मूल्य" भी अनुभव प्रमाण ही है। यही अनुभव क्षमता पर मूल्य में निष्णातता है। पूर्णता एवं परिपक्वता की सम्मिलित प्रक्रिया ही निष्णातता है। स्वमूल्यानुभूति योग्य क्षमता ही सर्वोच्च जागृति है। यही क्रम से जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य, वस्तु मूल्य के वरीयता क्रम को प्रमाणित करता है। अनुभव योग्य क्षमता ही स्वमौलिकता है। अनुभव क्षमता ही क्रम से आचरण, व्यवहार एवं व्यवसाय में प्रकट होती है जिसकी प्रत्यक्ष उपलब्धि समाधान एवं समृद्धि है। मानव जीवन अनुभवमय है। जागृति के क्रम में यह एक संभावना एवं जागृति पूर्णता में उपलब्धि है। यही विशेषवत्ता जागृत को अजागृत में अवबोधन, प्रबोधन एवं निर्देशनपूर्वक अनुभव योग्य क्षमता, योग्यता पात्रता को प्रस्थापित करने के लिए बाध्य करती है। यही दीक्षा संस्कार की गरिमा है। स्वागत पूर्वक स्वीकार्य योग्य बोध क्रिया ही अवबोधन क्रिया है, जिसकी चरितार्थता अवगत होने से है। आवश्यकता एवं अनिवार्यतापूर्वक स्वीकृति क्रिया से ही अवगत होने का तात्पर्य है।

दीक्षा ही व्रत, व्रत ही निष्ठा, निष्ठा ही सकंल्प, संकल्प ही दृढ़ता, दृढ़ता ही प्रबुद्धता, प्रबुद्धता ही श्रद्धा-विश्वास एवं प्रेम, श्रद्धा-विश्वास एवं प्रेम ही अनुभूति तथा अनुभूति ही दीक्षा है। मानव में, से, के लिए व्रत अवधारणा है जो सत्यवक्ता, इन्द्रिय संयमता, विचार संयमता, अस्तेय, अपरिग्रह, निरपराधिता, ब्रह्मचर्य (संज्ञानीयता में संवेदनायें नियंत्रित रहना), विवेकशीलता एवं गुणात्मक परिवर्तन- शीलता है, जिनका प्रत्यक्ष रूप धीरता-वीरता-उदारता एवं दया, कृपा, करूणा की अभिव्यक्ति ही है। व्रत का तात्पर्य गुणात्मक परिवर्तन की दिशा में आचरण की निरंतरता से है। गुणात्मक परिवर्तन की अपरिहार्यता जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति में पायी जाती है, जो वास्तविकताओं पर आधारित यथार्थता है। मूल्यमात्र ही अनुभूति तथ्य है। जीवन मूल्यमय है। इसकी अनुभूति ही आत्मानुभूति है। मूल्यमयता की अनुभूति ही तन्मयता है। मूल्यमयता ही मूल्यों में तादात्मय है। यही समग्रता के प्रति सौजन्यता है, स्नेह निष्ठा व विश्वास जैसी मूल्य प्रदायी क्षमता है। स्थापित मूल्य अपरिवर्तनीय है। इनकी अनुभूति ही स्वयं शिष्टता को अभिव्यक्त करती है क्योंकि प्रत्येक स्थापित मूल्य प्रत्येक देश काल में एक सा स्थित पाया जाता है। स्थापित मूल्यानुभूति में, से, के लिए अनुगमन एवं अनुशीलन योग्य प्रेरणा, परम्परा, प्रक्रिया ही दीक्षा का आद्यान्त प्रमाण है। यह संस्कार मानवीयता पूर्ण जीवन के स्वभावगत होने के अनन्तर सफल होने वाला सहज सुलभ संस्कार है। यही चिन्तनाभ्यास की अर्हता है। सत्ता में अनुभूति ही चिन्तनाभ्यास का चरम लक्ष्य है। जीवन का लक्ष्य ही आचरण पूर्णता है, जिसका प्रत्यक्ष स्वरूप ही सजगता है। आचरण ही मानव को व्यक्त करता है। दया, कृपा, करूणा से परिपूर्ण होना ही

चिन्तनाभ्यास का प्रयत्क्ष प्रमाण है। यही दीक्षा का देय है। धीरता, वीरता, उदारता ही सामाजिकता की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है जो **शिक्षा** का देय है। दया, कृपा, करूणापूर्ण स्वभाव में अनुगमन होना ही दिव्य मानवीयता में संक्रमण है। यह अनुगमन प्रक्रिया ही चिन्तनाभ्यास है। दिव्य मानवीयता में अनुगमन सिद्धि ही प्रत्यावर्तन है। यही मध्यस्थ जीवन है। प्रत्यावर्तित जीवन आत्मानुशासित होता है। आत्मा मध्यस्थ क्रिया है इसलिए मध्यस्थ जीवन स्थापित सुलभ संभावना के रूप में है। मध्यस्थ जीवन ही चरमोत्कृष्ट विकास है। पूर्ण विकास के लिए ही दीक्षा संस्कार एवं योगाभ्यास है। विकास की क्रमिकता इसी को स्पष्ट करती है। मानव प्रकृति का अभीष्ट सत्ता में अनुभूति है। जागृति में पूर्णता को स्थापित करना ही दीक्षा संस्कार का आद्यान्त उपलब्धि है। पूर्ण जागृत इकाई ही जनजाति में अग्रिम जागृति के लिए गति प्रदायी क्षमता स्थापित करने के लिए समर्थ है साथ ही समुचित **शिक्षा** प्रणाली, पद्धति एवं नीति को प्रस्थापित करने के लिए अर्ह होता है। इस तथ्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि पूर्ण जागृत मानव ही लोक के लिए अत्यन्त उपयोगी व उपादेयी सिद्ध होता है। ऐसी इकाईयों की संख्या वृद्धि ही लोक मंगल का आधार है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 106-109)**

- **अखंड सामाजिकता के लिए चेतना विकास मूल्य शिक्षा अनिवार्य है (अध्याय 8,पृष्ठ नंबर: 113-121)**

संस्कार ही संस्कृति को प्रकट करता है।संस्कृति ही सभ्यता को अभिव्यक्त करती है। आहार, विहार एवं व्यवहार के रूप में सभ्यता स्पष्ट होती है। इनके वरीयता क्रम में व्यवहार, विहार एवं आहार है। व्यवहार में एकात्मकता की प्रतीक्षा है यही न्याय की याचना अथवा प्रत्याशा है। परस्पर व्यवहार में ही न्यायग्राही-प्रदायी वाँछा सफल होती है।

अखण्ड समाज-परम्परा में ही प्रतिभा एवं व्यक्तित्व का संतुलन, उदय एवं उसकी अक्षुण्णता रहती है। यही भौतिक समृद्धि एवं बौद्धिक समाधान है। यही मध्यस्थ जीवन का प्रत्यक्ष रूप है। मध्यस्थ जीवन का तात्पर्य न्याय-प्रदायी क्षमता, सही करने की परिपूर्ण योग्यता सत्य बोध सम्पन्न रहने से है। न्याय ही व्यवहार में तथा नियम ही व्यवसाय में मध्यस्थता सत्य अनुभव को सिद्ध करता है। मूल्य-त्रयानुभूति योग्य क्षमता, योग्यता, पात्रता इसका प्रमाण है। यही **शिक्षा** एवं दश सोपानीय व्यवस्था सहज महिमा है। **शिक्षा** एवं व्यवस्था ही मूल्यानुभूति एवं मूल्यवहन योग्य क्षमता को प्रदान करती है। यही वर्गविहीनता का एकमात्र आधार एवं उपलब्धि है। वर्गवादी **शिक्षा** एवं व्यवस्था सामाजिकता को प्रदान करने में समर्थ नहीं है। फलत: निर्विषमता, निर्भमता, अभयता एवं समृद्धि की उपलब्धि नहीं है। मानव का अध्ययन जब तक पूर्ण नहीं होगा तब तक भ्रम है। भ्रम ही अपूर्णता है। अपूर्णता ही प्रकारान्तर से वर्ग भावना को जन्माती है। अपूर्णता के बिना वर्ग भावना का प्रसव नहीं है। निर्विषमतापूर्वक ही मानव में अखण्डता, सामाजिकता, समाधान एवं समृद्धि का अनुभव होता है। निर्भमता ही निर्विषमता है। यही सार्वभौमिकता है। मूल्य-त्रयानुभूति ही निर्भमता का प्रमाण है। मूल्य मात्र सर्वदेशीय एवं सर्वकालीय होने के कारण सार्वभौमिक है। सार्वभौमिकता ही निर्विषमता है। सामाजिक मूल्यों का शिष्ट मूल्यों सहित निर्वाह ही न्यायपूर्ण जीवन है। स्थापित मूल्य एवं शिष्ट मूल्य का योगफल ही सामाजिकता है। वस्तु मूल्य ही समृद्धि है।

नैतिकतापूर्ण जीवन की अपेक्षा मानव की परस्परता में दृष्टव्य है। यही प्रत्येक स्तर एवं स्थिति मं भी पाया जाने वाला तथ्य है। धर्मनीति एवं राज्यनीति ही सम्पूर्ण नीति है। अर्थ ही उनका आधार है। इन नीति-द्वय का विधिवत् पालन ही नैतिकता है। प्रत्येक मानव नैतिकता से सम्पन्न होना चाहता है। प्रत्येक संस्था प्रत्येक मानव को नैतिकता से परिपूर्ण बनाना चाहता है। धर्म नैतिक एवं राज्यनैतिक संस्थाओं द्वारा मानव को नैतिकता से परिपूर्ण करने का संकल्प किया जाना प्रसिद्ध है। भौतिकवादी व्यवस्था पद्धति में संदिग्धता है। **शिक्षा** में अपूर्णता का तात्पर्य पर्याप्त वस्तु-विषय, समुचित नीति, पद्धति तथा उसकी सर्वसुलभता न होने से है। **शिक्षा** प्रणाली पद्धति का पूर्ण होना अनिवार्य है। जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति के पूर्ण विश्लेषण संपन्न वस्तु-विषय का समावेश हुए बिना **शिक्षा** प्रणाली में पूर्णता संभव नहीं है। प्रधानत: सह-अस्तित्व रूपी अस्तित्व और चैतन्य प्रकृति के अध्ययन की अपूर्णता ही मानव को सभ्रम बनाने का कारण है। भ्रमता सामाजिकता नहीं है। मानव का अतिमहत्वपूर्ण रूप चैतन्य क्रिया ही है। चैतन्यता का तात्पर्य आशा, विचार, इच्छा, संकल्प एवं अनुभूति सहज प्रमाण से है। यह परमाणु की गठनपूर्णता के अनन्तर गुणात्मक परिवर्तन पूर्वक प्रकट होने वाली क्रिया एवं तथ्य है। रासायनिक क्रिया की सीमा में आशा, विचार, इच्छा, संकल्प एवं अनुभूति

का प्रकट न होना पाया जाता है। चैतन्य परमाणु में ही इन तथ्यों का उद्घाटन होना प्रमाणित है। प्रकृति में ही विकास क्रम, ज्ञानावस्था में निर्भ्रम जागृत मानव द्वारा दृष्टव्य है। अधिक विकसित, कम विकसित का दृष्टा है। विकासशीलता प्रकृति का कार्य सीमा है। विकासशीलता के लिए प्रकृति के अतिरिक्त और कोई वस्तु या तत्व नहीं है। सत्तामयता में तरंग या गति सिद्ध नहीं होता है। सत्ता में प्रकृति के अतिरिक्त और कोई अस्तित्व सिद्ध नहीं होता। इन प्रमाणों से प्रकृति की विकासशीलता के प्रति भ्रम निवारण होना पाया जाता है। सत्ता, स्वयं में पूर्ण रहना प्रमाण सिद्ध है। इसी सत्यता से स्पष्ट होता है कि "पूर्ण" सत्ता परिणामशील नहीं है, नित्य वर्तमान है।

स्थितिपूर्ण सत्ता में हस्तक्षेप संभव नहीं है। सत्ता तंरग गति एवं सीमा नहीं है। यही पूर्णमय महिमा है। सत्ता रचना विहीन साम्य ऊर्जा रूप में स्थिति है जो प्रभाव विशेष है। यही नियम, न्याय, धर्म, सत्य एवं आनन्द स्थिति में जागृत मानव परंपरा में प्रमाण है। अपूर्ण का ही पूर्णता के लिए परिणामरत, परिमार्जनरत होना स्वभाव सिद्ध तथ्य है क्योंकि परिणाम स्वयं की, मैं की अपूर्णता को स्पष्ट करता है। पूर्ण में समाविष्ट रहने के कारण प्रकृति में पूर्णता के लिए तृषा है। यही तृषा क्रम से विकास क्रम में अनेक यथास्थितियाँ सम्पूर्णता के साथ और "पूर्णता-त्रय" पर्यन्त विकास व जागृति को स्पष्ट करता है। इसी जागृति क्रम में मानव जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति का अध्ययन करने योग्य अवसर को प्राप्त किया है। इस अवसर का प्रयोग, व्यवहार एवं अनुभवपूर्वक प्रमाणित हो जाना ही सफलता है। चैतन्य क्रिया जागृति सहज प्रमाण प्रस्तुत करता है न कि जड़ क्रिया। अनुभवपूर्ण जीवन ही सफल जीवन है। मानव में अनुभव का अभाव नहीं है। स्थापित मूल्यानुभूति पर्यन्त मानव भ्रम से मुक्त नहीं है। मूल्य-त्रयानुभूति की सर्वसुलभता ही **शिक्षा** एवं व्यवस्था का आद्यान्त कार्यक्रम है। मौलिक **शिक्षा** अर्थात् मानवीय **शिक्षा** चेतना विकास मूल्य **शिक्षा** सहज सर्वसुलभता पर्यन्त सामाजिकता एक कल्पना ही है। उसकी सहकारिता **शिक्षा** की पूर्णता एवं उसकी सर्वसुलभता पर निर्भर करता है।

मानव जीवन का विधिवत् कार्यक्रम धर्मनीति, अर्थनीति एवं राज्यनीतिक रूप में स्पष्ट है। मानव का ऐसा कोई विधिवत् कार्यक्रम नहीं है जो इन तीनों से संबद्ध न हो। नीति, पद्धति एवं प्रणाली का संयुक्त रूप ही व्यवस्था है। व्यवस्था विहीन जीवन वांछित को पाने में असमर्थ रहेगा। व्यवस्था विहीनता अथवा व्यवस्था में अपूर्णता जीवन की पूर्णता के अर्थ में प्रयोजित नहीं होती है। यही प्रत्येक जीवन में अपूर्णता है। जीवन में अपूर्णता ही जीवन के कार्यक्रम में अपूर्णता है। जीवन के कार्यक्रम में अपूर्णता ही भ्रम एवं समस्या है। भ्रम एवं समस्या ही व्यवस्था में अपूर्णता है। व्यवस्था को मानव ही अनुभव एवं व्यवहारपूर्वक प्रमाणित करता है। फलत: उसे सर्वसुलभ बनाने के लिए प्रस्थापना, स्थापना एवं संचालन करता है जो चरितार्थता का स्पष्ट रूप है। प्रत्येक मानव नियति-क्रम व्यवस्था का अनुभव करने के लिए अवसर रहते हुए योग्यता, पात्रता न होने के कारण **शिक्षा** एवं व्यवस्था में समर्पित होता है या ऐसे अधिकार सम्पन्न अधिकारी होने के लिए समर्पित होते है। हर मानव संतान शिक्षा-संस्कार पूर्वक ही प्रबुद्ध होने की व्यवस्था है। यह नियति है। क्योंकि मानव ज्ञानावस्था की इकाई है। ज्ञान परम्परा से ही सर्वसुलभ होता है। किसी मानव को ज्ञान की तृषा हो वह तृषा परम्परा में सुलभ न हो, ऐसे स्थिति में कोई मानव संतान ही उसकी भरपाई करता हुआ घटना विधि से स्पष्ट हुआ है। इसी क्रम में अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन बनाम मध्यस्थ दर्शन (सह-अस्तित्ववाद) मानवीय शिक्षा-दीक्षा व्यवस्था परम्परा में समावेश होने अर्पित है। **शिक्षा** एवं व्यवस्था केवल प्रबुद्धता की प्रबोधन एवं संरक्षण प्रक्रिया है। यह विभूति मूलत: किसी मानव की ही अनुभूति है। अनुभूति ही वरीय प्रमाण है। ऐसी **शिक्षा** एवं व्यवस्था संहिता मानव के समग्र जीवन के प्रति अनुभवपूत होते तक उनमें परिवर्तन, परिमार्जन के लिए समुचित प्रक्रिया है। साथ ही वह दायी एवं उत्तरदायी भी है। ऐसी पूर्णता का प्रमाण अखण्ड समाज है जिसके लिए धार्मिक, आर्थिक एवं राज्यनैतिक एकरूपता पूर्वक दश सोपनीय व्यवस्था में एकात्मकता को प्रदान करने योग्य सक्षम दर्शन संहिता ही आधार है। यही प्रत्येक मानव में मन-तन-धनात्मक अर्थ की सर्ववांछित सुरक्षा एवं सदुपयोगात्मक क्षमता को प्रादुर्भावित करता है। साथ ही सर्वसुलभता भी करता है। फलत: अखण्ड समाज की सिद्धि होती है।

मानव में ज्ञान शक्ति की अर्थात् आशा, विचार, इच्छा एवं संकल्प अनुभव प्रमाण शक्ति ही धीरता, वीरता एवं उदारता तथा दया, कृपा एवं करुणा है। विषम जीवन जीव चेतनावश पराभवित, जागृत मानव जीवन समाधानित एवं मध्यस्थ जीवन सफलता से परिपूर्ण सिद्ध होता है। मानव मध्यस्थ जीवन के लिए ही प्रमाण होना जागृति है।

असफलता मानव की वांछित घटना या उपलब्धि नहीं है। सफलता ही मानव की चिर तृषा, वाँछा, आकाँक्षा, इच्छा एवं संकल्प है। सफलता के बिना मानव जीवन अपूर्णता को स्पष्ट करता है। अपूर्णता ही पूर्णता के लिए बाध्यता है। अंतरंग शक्तियाँ अर्थात् आशा, विचार, इच्छा एवं संकल्प तथा चतुरायाम की परस्परता में और बहिरंग अर्थात् पाँचों स्थितियों की परस्परता में विषमता ही अंतबहिर्विरोध है। यही असामाजिकता, अमानवीयता, वर्ग एवं संकीर्ण सीमान्वर्ती संगठन का, समता ही सामाजिकता अर्थात् वर्ग विहीनता का एवं मध्यस्थ कार्यक्रम में स्वतंत्रता का अनुभव प्रमाण सिद्ध है। दिव्य मानव में ही धार्मिक, आर्थिक एवं राज्यनीतियाँ स्वतंत्रतापूर्वक चरितार्थ होती हैं। वे देव मानव में संयमतापूर्वक सफल होती हैं। मानवीयतापूर्ण मानव में समाधानपूर्वक सफल एवं चरितार्थ होती हैं। यह मानवीयतापूर्ण **शिक्षा** एवं व्यवस्था पद्धति से सर्वसुलभ एवं चरितार्थ होती है।

अन्तर्विरोध विहीनता ही मध्यस्थता है। यही संतुलन, समाधान, प्रत्यावर्तन, सतर्कता, सजगता एवं स्वतंत्रता है। अंतर्विरोध परस्पर मन-वृत्ति-चित्त-बुद्धि, चतुरायाम में तथा दश सोपानीय परिवार सभा व्यवस्था में विश्लेषित है। यही गुणात्मक परिवर्तन के लिए बाध्यता है। मानव के अंतर्विरोध से मुक्त होने का आद्यान्त लक्षण, उपाय एवं उपलब्धि ही है। साथ ही मानव अंतर्विरोध में, से, के लिए प्रयासी नहीं है। संपूर्ण प्रयास विरोध के मुक्ति के अर्थ में ही है। अंतर्विरोध का विरोध प्रत्येक व्यक्ति में दृष्टव्य है। यही सत्यता विरोध का विरोध करती है। विरोध, विजय, सफलता एवं चरितार्थता विकास क्रम में गण्य है। विकास-क्रम में अवरोधता ही विरोध, विकास की ओर गतिशीलता ही विजय, क्रियापूर्णता ही सफलता तथा आचरण पूर्णता ही जीवन चरितार्थता है। विकासक्रम शाश्वत है। विकास में बाधा ही द्रोह भ्रमवश उसके निराकरण हेतु की गई प्रक्रिया ही विद्रोह है। द्रोह का विद्रोह भावी है। प्रिय-हित-लाभ-सीमान्वर्ती दृष्टि से किया गया निर्णय एवं क्रियाकलाप अंतर्विरोध से मुक्त नहीं है। इन सबका न्याय सम्मत होना ही अंतर्विरोध से मुक्ति है। न्याय सम्मति तब तक संभव नहीं है जब तक स्थापित मूल्यानुभूति एवं उसका निर्वहन न हो जाय। न्याय ही व्यवहार में मध्यस्थता है। मध्यस्थता ही सम और विषम अर्थात् समातिरेक और विषमातिरेक को संतुलित एवं आत्मसात् करता है। सम-विषम दोनों मध्यस्थता में आश्रित एवं संरक्षित हैं। यही सत्यता मध्यस्थता एवं मध्यस्थ जीवन की प्रतिष्ठा, महत्ता एवं अपरिहार्यता को स्पष्ट करता है। व्यवहार में मध्यस्थता ही बहिर्विरोध अर्थात् पाँचों स्थितियों के विरोध का शमन करता है। विचार में मध्यस्थता चारों आयामों के अंतर्विरोध का उन्मूलन करती है। अनुभव में मध्यस्थता परमानन्द को उद्गमित करती है। चैतन्य प्रकृति का मानवीयतापूर्ण मानव एवं सर्वोच्च विकसित निर्भम मानव ही अतंर्विरोध से मुक्त होता है। यही जागृति-क्रम की उपलब्धि एवं गरिमा है। विरोध विहीनता ही मानव का अभीष्ट है। विरोध-विहीन क्षमता ही कृतज्ञता, गौरव, श्रद्धा, प्रेम, विश्वास, वात्सल्य, ममता, सम्मान एवं स्नेह जैसे स्थापित मूल्यों का अनुभव करता हैं। फलत: सौम्यता, सरलता, पुज्यता, अनन्यता, सौजन्यता, सहजता, आदर, सौहर्द्रता एवं निष्ठा जैसे मूल्यों को मानव अभिव्यक्त करता है। यही विश्वास का परिचय है। ऐसे विश्वास को सर्वसुलभ बनाना ही **शिक्षा** एवं व्यवस्था का आद्यान्त कार्यक्रम है।

मानव के संपूर्ण संबंध गुणात्मक परिवर्तन के लिए सहायक हैं।

प्रत्येक मानव, मानव से न्याय की याचना करता ही है। यही गुणात्मक परिवर्तन की तृषा एवं उसका द्योतक है। गुणात्मक परिवर्तन ही जागृति है। जागृति स्वंय में संतुलन, समाधान एवं नियंत्रण है, जो जीवन का अभीष्ट है। जागृति क्रम में प्रत्येक मानव सुख सहज अपेक्षा प्रमाणित करता है। इसके मूल में सत्यता यही है कि प्रत्येक मानव अधिकाधिक विकास की ओर प्रगतित होना ही है। यह साम्य आकाँक्षा भी है। साथ ही मानव, मानव के साथ व्यवहार करने के लिए बाध्य है। व्यवहार विहीन स्थिति में गुणात्मक परिवर्तन की संभावना नहीं है। मानव में स्थापित मूल्यानुभूति पूर्वक ही गुणात्मक परिवर्तन होता है। इससे यह स्पष्ट हो पाता है कि प्रत्येक संबंध में निहित मूल्य निर्वाह ही जागृति का तथा उसकी उपेक्षा ही ह्रास का प्रधान कारण है। प्रत्येक संबंध में परस्पर न्याय की उपलब्धि ही गुणात्मक परिवर्तन का आधार, प्रक्रिया एवं गति है। संघर्ष जनाकाँक्षा एवं उपलब्धि के मध्य में पायी जाने वाली रिक्तता ही है। इस रिक्तता को भली प्रकार से अरिक्तता में परिवर्तित करने का उपाय केवल मानवीयतापूर्ण **शिक्षा** एवं व्यवस्था पद्धति है। सार्थक

चरितार्थ वर्तमान होता है। ऐसी व्यवस्था से ही प्रत्येक संबंध में न्याय प्रदायी एवं ग्राही क्षमता का प्रमाण होता है। फलत: सर्वमंगल एवं नित्य शुभोदय होता है।

"प्राकृतिक एवं वैकृतिक वातावरण, अध्ययन एवं संस्कारों के योगफल से प्रवृत्ति, वृत्ति एवं निवृत्ति का उत्कर्ष होता है।" उत्थान की ओर गतिशीलता ही उत्कर्ष है। उत्थान मात्र जागृति है। उत्थान की ओर बाध्यता एवं अनिवार्यता, पतन की ओर भ्रम एवं विवशता होती है। भ्रम अजागृति का द्योतक है। इसके विपरीत अधिक जागृत मानव ही कम जागृत के विकास में सहायक हो जाना ही सामाजिकता एवं सौजन्यता है। समाधान एवं अनुभूति क्षमता ही कम जागृत के जागृति में सहायक होने का धैर्य, साहस, विवेक एवं उदारतापूर्ण व्यवहार है। ऐसी परिमार्जित क्षमता के अभाव में उसका कम विकसित के विकास में सहायक होना संभव नहीं है। जागृत जीवन सहज कार्यक्रम के विधिवत् क्रियान्वयन होने की स्थिति में दूसरों को दृढ़ता प्रदान करना सहज है। जब मानव मानवीयता से परिपूर्ण, समृद्ध एवं समाधानित होता है तभी अन्य मानवों में ऐसे गुणों को विकास करने के लिए वह सहायक होता है। अमानवीय मानव कितना भी रूपवान, बलवान, धनवान एवं पदवान हो जाय, वह अजागृत के जागृति के लिए सहयोगी नहीं हो पाता है। इसके विपरीत में मानवीयता एवं अतिमानवीयता पूर्ण मानव कितना भी न्यूनतम रूप, बल, धन एवं पद से सम्पन्न क्यों न हो उनका अजागृत के जागृति में सहायक होना पाया जाता है। जैसे अत्यन्त कुरूप मानव भी जब व्यक्तित्व एवं प्रतिभा से सम्पन्न होता है तब उनसे अधिकाधिक रूपवान, बलवान, धनवान एवं पदवान को **शिक्षा** एवं उपदेश मिलता है। उसे वे ग्रहण करते हुए देखे जाते हैं। इस प्रमाण से यह सिद्ध हो जाता है कि बुद्धि अन्य चारों अर्थात् रूप, बल, धन एवं पद से वरीय है। व्यक्तित्व एवं प्रतिभा का मूल रूप बौद्धिक क्षमता अर्थात् प्रबुद्धता ही है। बौद्धिक क्षमता में ही गुणात्मक परिवर्तन होता है न कि रूप, बल, धन व पद में। फलत: व्यक्तित्व एवं प्रतिभा का संतुलन स्थापित होता है। व्यक्तित्व विहार, व्यवहार एवं आहार में प्रकट होता है। प्रतिभा ज्ञान-विज्ञान विवेकपूर्वक व्यवस्था एवं उत्पादन अर्थात् निपुणता कुशलता एवं पाण्डित्य में प्रत्यक्ष होती है। इन दोनों का संतुलन ही सह-अस्तित्व का रूप है। निर्विरोधिता ही जीवन का अभीष्ट है। यही अभ्युदय एवं निरन्तर शुभोदय का उदय है। **(अध्याय: 8, पृष्ठ नंबर: 113-121)**

- निपुणता एवं कुशलता के संयुक्त योगफल में उपयोगिता एवं कला मूल्य सिद्ध होते हैं। निपुणता, कुशलता एवं पांडित्य की संयुक्त चरितार्थता में भौतिक समृद्धि एवं बौद्धिक समाधान सर्वसुलभ है। यही मानव इतिहास की स्थापना एवं अक्षुण्णता है। निपुणता एवं कुशलता ही तकनीकी **शिक्षा** के रूप में उपलब्ध है। संपूर्ण तकनीकी **शिक्षा** मानव के आकाँक्षाद्वय संबंधी उपयोगिता को प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम नियोजन स्थापित करने के लिए सहज-सुलभ उपाय, क्रिया, प्रक्रिया, पद्धति एवं प्रणाली है जिसे मानव करतलगत करता है। इसकी आद्यांत उपलब्धि अर्थात् तकनीकी **शिक्षा** की उपलब्धि उपयोगिता एवं कला ही है। मानव शुद्धत: संवेदनशील होते हुए भी यांत्रिक साधनों से संम्पन्न होना चाहता है। संवेदनशीलता में गुणात्मक परिवर्तन की क्रम श्रृखंला में यांत्रिक तत्व साधन सिद्ध होते हैं। इसी सत्यतावश संवेदनशीलता एवं यांत्रिकता के संदर्भ में मानव अध्ययन करने के लिए बाध्य है। अध्ययन पूर्वक शोध तब तक भावी है जब तक अज्ञात एवं अप्राप्ति स्थिति रहती है। यांत्रिकता का अध्ययन निपुणता एवं कुशलता में सीमित है जबकि संवेदनशीलता सहित संज्ञानशीलता के अर्थ में अध्ययन पांडित्य, कुशलता एवं निपुणता-समुच्चय "में, से, के लिये" है। संज्ञानीयतापूर्ण संवेनदशीलता का उद्गमन अनुभव "में, से, के लिये" है। सुख मानव धर्म "में, से, के लिये" है। मूल्य सुख "में, से, के लिये" है। मानव धर्म मानवीय परंपरा में, से, के लिए है। मानवीय परम्परा क्रियापूर्णता एवं आचरणपूर्णता "में, से, के लिए" है। पूर्णता, पूर्णता की निरंतरता "में, से, के लिए" है। "पूर्णता-त्रय" की निरंतरता ही जागृति का वैभव है। सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति का वैभव सह-अस्तित्व का प्रत्यक्ष रूप में स्पष्ट होता है।

प्रकृति का वैभव संवेदनशीलता के उत्कर्ष, परमोत्कर्ष सम्पन्नता से पूर्ण होता है। संवेदनशीलता का गुणात्मक परिवर्तन ही उसका उत्कर्ष है। संचेतनशीलता की चरमोत्कृष्ट उपलब्धि अनुभूति है या उसका प्रयोजन केवल अनुभवमयता है। अनुभवमयता ही तन्मयता है। उसकी विशालता यही है। यही सतर्कता एवं सजगता से संपन्न होती है। पूर्णानुभूति ही पूर्ण विशालता है। यही परमानन्द है, जिसके लिए ज्ञानावस्था की प्रत्येक इकाई प्यासी है। यही जीवन की अक्षुण्णता है। ऐसे जीवन के लिए अनादि काल से प्रयास हुआ है। इसकी सफलता मानव की मानवीयता से

परिपूर्ण होने से है। इसका साक्ष्य व्यवहार में व्यक्तित्व एवं प्रतिभा के संतुलित उदय से है। यह उदय **शिक्षा** एवं व्यवस्था से संपन्न होता है। **(अध्याय: 9, पृष्ठ नंबर:126-127)**

- प्रत्येक व्यक्ति धर्मीयता को प्रसारित, प्रमाणित करने के लिए इच्छुक है। धर्मीयता विहीन इकाई नहीं है। हर व्यक्ति ही मानव परम्परा में आचरण के लिए **शिक्षा** है। प्रत्येक मानव का आचरण दूसरे के ज्ञातव्य में आता है। प्रत्येक मानव वातावरणस्थ क्रियाओं के संकेत को किसी न किसी अंश में ग्रहण करने योग्य क्षमता से सम्पन्न है। **शिक्षा** परम्परा ही प्रधानत: संस्कृति का प्रथम सोपान है। यही न्यायपूर्ण व्यवहार, संयत आचरण एवं नियम-पूर्ण उत्पादन के लिए समुचित प्रोत्साहन, प्रेरणा, मार्गदर्शन, सहयोग एवं सहानुभूतिपूर्ण कार्यक्रम को वहन पूर्वक अर्थात् निर्वाह पूर्वक स्पष्ट करती है। यही संस्कृति पूर्ण सभ्यता का अर्थ है। इसी से धीरता, वीरता एवं उदारता पूर्ण व्यवहार का प्रसव होता है। यही सामाजिक अभयता एवं अखण्डता का द्योतक है। यही सभ्यता है। सभ्यता के संरक्षण के लिए ही विधि व व्यवस्था का प्रभावशीलन है। यही ऐतिहासिक परम्परा सहज सूत्र है। यही जागृत जीवन परम्परा है। ऐसी ऐतिहासिक जीवन परंपरा में अपूर्णता की पूर्णता भावी है। यही ऐतिहासिकता की गरिमा है। **(अध्याय:9, पृष्ठ नंबर:128)**

- "पांडित्य ही जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य की अनुभूति एवं शिष्ट मूल्य की अभिव्यक्ति है।" प्रत्येक जागृत मानव जीवन सफलता सहज कामना से ओत-प्रोत है। प्रधानतया सफलता अनुभूति एवं शिष्टता ही है। यह अनुभव एवं व्यवहार सिद्ध प्रमाण है। अनुभूति विहीनता पूर्वक शिष्टता सहित जीवन सफलता का प्रमाण नहीं है। अनुभवशील या अनुभव पूर्ण हो, शिष्ट न हो इसका भी प्रमाण नहीं है। शिष्ट न होने में अनुभव का न होना ही है। साथ ही अनुभव का न होना ही शिष्ट न होना है। इसका निराकरण मानव धर्म से परिपूर्ण होना ही है, इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। मानव धर्म के अतिरिक्त सामाजिक अखण्डता का प्रमाण नहीं है। इसे स्थापित एवं संरक्षित करना ही **शिक्षा** की गरिमा, प्रबुद्धता की महिमा, व्यवस्था में पारंगतता, जीवन में सार्थकता, भौमिक स्वर्गीयता, मानव में दैवीयता एवं दिव्यता, नित्य मंगलमयता एवं धर्ममय सफलता है। यही मानवीयता पूर्ण "नीति-त्रय" का विस्तार है।....**(अध्याय:9, पृष्ठ नंबर: 129)**

- समाधान समृद्धि, अनुभव एवं व्यवहार अर्थ के सदुपयोग एवं सुरक्षा पर आधारित है। अनुभव एवं समाधान पूर्ण होना ही **शिक्षा** एवं व्यवस्था-संहिता है। इन आधारों का अनुभव एवं समाधान ही **शिक्षा** व व्यवस्था का आद्यान्त लक्ष्य एवं कार्यक्रम के लिए आधार है। ये जब तक परिपूर्ण नहीं होते तब तक इनका सर्वसुलभ होना संभव नहीं है। समाधान एवं अनुभूति की सर्वसुलभता के बिना सामाजिकता एवं उसकी अक्षुण्णता सिद्ध नहीं होती। इसके लिए संपूर्ण **शिक्षा** एवं व्यवस्था संहिता को मानवीयता की सीमा में परिवर्तित कर लेना ही एकमात्र उपाय है। जब तक व्यवहारिक संरक्षण नहीं, साथ ही **शिक्षा** भी सर्व-सुलभ नहीं होती तब तक व्यक्तित्व एवं प्रतिभा के संतुलन, संस्कृति एवं सभ्यता के संतुलन, विधि एवं व्यवस्था के संतुलन की अपेक्षा एक दुरुहता ही है। "दुरुहता ही रहस्य है।" रहस्य एक अनिश्चयता, सशंकता या भ्रम है। दुरुहता की स्थिति मानव के लिए गति एवं दिशा-निर्देशन पूर्वक गुणात्मक परिवर्तन के लिए उपकारी सिद्ध नहीं हुई है। जबकि मानव-जीवन में गुणात्मक परिवर्तन हेतु निश्चित दिशा एवं गति को प्रदान करना ही **शिक्षा** नीति-पद्धति-प्रणाली का एकमात्र उद्देश्य है, जिसमें ही उत्पादन-क्षमता का निर्माण करने वाले समर्थ तत्वों का समाया रहना आवश्यक है। समर्थ **शिक्षा** ही गन्तव्य के लिए गति एवं विश्राम के लिए दिशा को अध्ययन पूर्वक स्पष्ट करती है। यही **शिक्षा** की गरिमा है। उसी से मानव में प्रगति एवं विकास है। यही एक अभ्युदय का प्रधान लक्षण है। **शिक्षा** एवं व्यवस्था का संकल्प ही अभ्युदय है। अभ्युदय विहीन जीवन ही समस्या से ग्रस्त पाया जाता है। जीवन के कार्यक्रम का आधार ही अध्ययन है। अध्ययन, श्रवण, मनन, निदिध्यासन की संयुक्त प्रक्रिया है। निश्चित अवधारणा की स्थापन प्रक्रिया ही निदिध्यासन है। अवधारणा ही अनुमान की पराकाष्ठा एवं अनुभव के लिए उन्मुखता है। अवधारणा के अनन्तर ही अनुभव होता है। अनुभव एवं समाधान दोनों के ही न होने की स्थिति में अध्ययन नहीं है। वह केवल निराधार कल्पना है। जो अध्ययन नहीं है वह सब मानवीयता को प्रकट करने में समर्थ नहीं है। इसी सत्यतावश मानव समाधान एवं अनुभूति योग्य अध्ययन से परिपूर्ण होने के लिए बाध्य हुआ है। यह बाध्यता मानवीयता पूर्ण पद्धति से सफल अन्यथा असफल है। **(अध्याय: 9, पृष्ठ नंबर:132-133)**

- "विधि पालन कामना मानव में पायी जाती है।" कामना को इच्छा में, इच्छा को तीव्र इच्छा में, तीव्र इच्छा को संकल्प में, संकल्प को संभावना में, संभावना को सुगमता में, सुगमता को उपलब्धि में, उपलब्धि को अधिकार में,

अधिकार को स्वतंत्रता में, स्वतंत्रता को स्वत्व में, स्वत्व को व्यवहार एवं उत्पादन में चरितार्थ करना ही **शिक्षा** एवं व्यवस्था का आद्यान्त कार्यक्रम एवं उपलब्धि है। यही विधि पालन क्षमता को स्थापित करने का प्रधान लक्षण है। व्यक्ति में जागृति सहज स्वतंत्रता ही विधि पालन क्षमता का द्योतक है। विधि-पालन के बिना व्यक्ति में संयमता सिद्ध नहीं होती है। विधि पालन के बिना जागृति प्रमाणित नहीं है। जागृति के बिना स्वतंत्रता का अर्थ नहीं है। **शिक्षा** में पूर्णता ही मानव में आवश्यकीय जागृति के लिए प्रेरणा एवं दिशादायी तत्व है। ऐसी उपलब्धि के लिए मानव अनवरत तृषित है। शुभकामनाओं को चरितार्थ करने के लिए शिक्षा, दीक्षा एवं वातावरण ही प्रधानत: आधार एवं दायी है। इन्हीं से मानव में गुणात्मक परिवर्तन होना वांछित उपलब्धि है। यही जीवन दर्शनकारी कार्यक्रम है। शिक्षा-दीक्षा एवं कृत्रिम वातावरण भी संस्कारदायी है। कृत्रिम वातारण एवं **शिक्षा** ही मानव के उत्थान एवं पतन का प्रधान सहायक तत्व हैं। प्रत्येक व्यक्ति व्यवस्था से संबद्ध है ही। व्यवस्था-विहीन जीवन नहीं है। कृत्रिम वातावरण आकाँक्षाद्वय संबंधी साधनों सहित सकारात्मक प्रचार-प्रदर्शन-प्रकाशन के रूप में दृष्टव्य है। आशित, अनिवार्यता, उपयोगिता एवं सुन्दरता का प्रत्यक्षीकरण पूर्वक जनजाति में बोधगम्य हृदयंगम सहित प्रोत्साहित करना ही कृत्रिम वातावरण का कार्यक्रम है। यह मानव से ही नियति के अनुसार निर्मित होता है। कृतिपूर्वक मूल्य त्रयानुभूति में निष्ठा का निर्माण करना ही कृत्रिमता की चरितार्थता है, जिसमें आकाँक्षाद्वय सीमानुवर्ती उत्पादन योग्य योग्यता को, मानवीयतापूर्ण व्यवहार एवं आचरण योग्य क्षमता को स्थापित करने में कृत्रिम वातावरण सफल अन्यथा असफल सिद्ध हुआ है। उत्पादन में अप्रवृत्ति एवं व्यवहार में दायित्व वहन में विमुखता एवं अतिभोग में तीव्र इच्छा ही लोक वंचना, प्रवंचना एवं द्रोह का प्रधान कारण है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव में साम्यत: पायी जाने वाली इच्छाओं को चरितार्थ करने के लिए मानवीयतापूर्ण संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था ही एक मात्र उपाय है। **(अध्याय: 10, पृष्ठ नंबर: 135-136)**

- "विधि-विहित जीवन ही पाँचों स्थितियों एवं दश सोपानीय परिवार सभा व्यवस्था में सफल है।" शिष्ट मूल्य और मूल्यवत्ता का संयुक्त स्वरूप ही विधि है। मानव में अनुभव एवं समाधान का संयुक्त स्वरूप ही मूल्य व शिष्ट मूल्यवत्ता है। अनुभव एवं समाधान और न्याय का परावर्तन ही व्यवहार, व्यवस्था एवं उत्पादन का प्रमाण है। मानवीयता "नियम-त्रय" पूर्वक "कार्यक्रम-त्रय" सहित नवधा स्थापित मूल्य, नवधा शिष्ट मूल्य एवं द्विधा वस्तु मूल्य में किया गया विनियोग ही विधि है। विनियोग का तात्पर्य ही प्रयोग, व्यवहार एवं अनुभव सुलभ हो जाने से है। यह "सुलभ-त्रय" **शिक्षा** एवं व्यवस्था से होता है। यही विशिष्टता है। विशिष्टता ही **शिक्षा** एवं दीक्षा द्वारा प्रभावशील होता है। यही अनुभव परम्परा को स्थापित करता है। यही अनुभव प्रमाण को सिद्ध करता है। ऐसी प्रभावशीलन प्रक्रिया ही अभ्युदय है। ऐसी प्रभावशीलन प्रक्रिया ही अभ्युदय है। जागृति, समाधान, अनुभव, अभय, अखंडता, समाज, राज्य, असंदिग्धता, सुरक्षा, सदुपयोग एवं समृद्धि क्षमता ही प्रबुद्धता का प्रत्यक्ष रूप है। प्रबुद्धता, प्रतिभा और व्यक्तित्व का समग्र रूप है। जीवन में इसका प्रकट हो जाना ही सफलता है। यही भौमिक स्वर्ग है, जिसके लिए ही मानव चिर प्रतीक्षु है। इसकी सफलता, प्रबुद्धता को सर्वसुलभ बनाने वाली **शिक्षा** एवं व्यवस्था पद्धति से होता है। प्रबुद्धता मानवीयता पूर्ण व्यवहार रूप में स्पष्ट होता है। इसकी चरितार्थता अर्थात् सर्वसुलभता ही सर्वमंगल नित्य शुभ है। **(अध्याय: 10, पृष्ठ नंबर: 136-137)**

- धर्मनीति, अर्थनीति एवं राज्यनीति- यही उत्पादन, व्यवहार, विचार एवं अनुभूति पूर्णता को प्रदान करने में चरितार्थ होता है। नीति एवं व्यवस्था का मूल उद्देश्य पूर्णता से संपन्न होना और पूर्णता को प्रस्थापित, स्थापित एवं संरक्षित करना ही है। तृप्ति ही पूर्णता का द्योतक है। आयाम चतुष्टय में ही तृप्ति की चरितार्थता है। यह समृद्धि, अभय, समाधान एवं सत्य है। इनसे संपन्न होना ही जीवन तृप्ति विकास, सतर्कता, सजगता एवं भ्रम मुक्ति सिद्धि होती है। कार्यक्रम तृप्ति की अपेक्षा के अर्थ में है। उन्हें पाने के लिए ही सर्वप्रयास है। व्यवस्था-विधि, सभ्यता-संस्कृति प्रत्यक्ष रूप में प्रयास है। इसकी सफलता शिक्षा-प्रणाली एवं व्यवस्था संहिता पर निर्भर है जो मानव की ही प्रबुद्धतापूर्ण क्षमता के अनुरूप-प्रतिरूप होती है। पुन: यही **शिक्षा** व्यवस्थापूर्वक प्रबुद्ध जनजाति का निर्माण करने का आधार होती है। इस प्रकार प्रबुद्ध व्यक्ति के द्वारा **शिक्षा** एवं व्यवस्था संहिता का उद्गमन होना, उसके व्यवहारान्वयन से प्रबुद्ध जनजाति का निर्माण होना उदितोदित क्रम से अर्थात् पुन: परिष्करण, परिमार्जन तथा अनुसंधान पूर्वक संपन्न पाया गया है।....**(अध्याय:10, पृष्ठ नंबर: 138-139)**

- ...उत्पादन **शिक्षा** एवं उसका संरक्षण जितना महत्वपूर्ण है उससे अत्यधिक व्यवहार **शिक्षा** एवं उसका संरक्षण महत्वपूर्ण है।"व्यवहार, उत्पादन के लिए प्रेरणा है। उत्पादन, व्यवहार के लिए साधन हैं।" यही वास्तविकता

है। व्यवहार **शिक्षा** में अपूर्णता ही उत्पादन-विनिमय उपलब्धियों की अपव्ययता है। मानव का अपव्ययतापूर्वक सामाजिक सिद्ध होना संभव नहीं है। इन वास्तविकताओं के अतिरिक्त वस्तु मूल्य से शिष्ट मूल्य एवं शिष्ट मूल्य से स्थापित मूल्य वरीय है ही। स्थापित मूल्य में शिष्ट मूल्य व वस्तु मूल्य समर्पित होता है न कि वस्तु व शिष्ट मूल्य में स्थापित मूल्य। इसका कारण केवल "गुरू मूल्य में लघु मूल्य का समाना ही है।" व्यवहार **शिक्षा** की प्रधान उपलब्धि स्थापित मूल्य में शिष्ट मूल्य का एवं शिष्ट मूल्य में वस्तु मूल्य का नियोजन होना ही है। ऐसी योग्यता की सर्वसुलभता ही **शिक्षा** है। मानव की परस्परता में स्थापित मूल्य के निर्वहन, शिष्ट मूल्य के व्यवहारान्वयन एवं वस्तु मूल्य के क्रियान्वयन योग्य योग्यता की स्थापना ही समाज-संरचना का अभीष्ट है, जिससे ही प्रत्येक मानव आश्वस्त एवं विश्वस्त होता है। ऐसी उपलब्धि पाँचों स्थितियों के संयुक्त प्रयास का योगफल है जिससे दश सोपानीय परिवार सभा व्यवस्था की एकात्मकता एवं एकसूत्रता ही समाज संरचना है। उत्पादन-विनिमय व्यवस्था से अधिक उत्पादन व व्यवहारिक विश्वास से समृद्धि भाव सिद्ध होता है। यही समृद्ध परम्परा एवं प्रमाण है। समृद्ध परम्परा उत्तरोत्तर समृद्धि एवं समृद्धि में विपुलता को प्रमाणित करता है। यही लोक वाँछा है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर:146)**

- अपर्याप्त को पर्याप्त समझना ही अविद्या का लक्षण है। **"जो जैसा है उसको उससे अधिक या कम या न समझना ही अविद्या है।"** जो जैसा है उसे वैसा ही समझ लेना विद्या है। **"जिसको जो समझना है उसका पूर्ण विश्लेषण हो जाना ही समझना है।" (अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 147)**

- "भोगों में संयमता के लिए पुरूषों में यतित्व एवं स्त्रियों में सतीत्व अनिवार्य है।" यतित्व का तात्पर्य यत्नपूर्वक तरने से तथा सतीत्व का तात्पर्य सत्वपूर्वक तरने से हैं। जागृति की ओर श्रद्धा एवं विश्वासपूर्वक यत्न-प्रयत्नशील होना ही यतित्व का लक्षण है। विकास एवं जागृति में निष्ठा एवं विश्वास सम्पन्न होना ही सतीत्व का प्रधान लक्षण है। विकास एवं जागृति ही जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति का अभीष्ट है। नियति क्रमानुषंगिक ही यतित्व एवं सतीत्व की अनिवार्यता, उपादेयता, उपयोगिता एवं अपरिहार्यता स्पष्ट होती है। गुणात्मक परिवर्तन पूर्वक क्रियापूर्णता एवं आचरणपूर्णता की उपलब्धि जीवन चरितार्थता है। यही श्रेय, नि:श्रेय एवं यतित्व तथा सतीत्व की उपलब्धि है। प्रत्येक मानव में यतित्व एवं सतीत्व के प्रति वांछनीय एवं आवश्यकीय निष्ठा का होना ही अभ्युदय का लक्षण है। यह **शिक्षा**-दीक्षा-संस्कार पूर्वक सफल होता है। यह जागृति की ओर तीव्र निष्ठा का प्रतीक है, जिसका प्रत्यक्ष रूप गुणात्मक परिवर्तन है। मानवीयता के अनन्तर गुणात्मक परिवर्तन देव मानवीयता एवं दिव्य मानवीयता के रूप में प्रकट होता है। मानव संस्कृति यतित्व एवं सतीत्व का लक्षण है। सतीत्व एवं यतित्व मानव संस्कृति के लक्षण है। यतित्व एवं सतीत्व पूर्ण जीवन में तन-मन-धन का अपव्यय का अत्याभाव होता है। सदुपयोगिता ही जीवन का प्रधान कार्यक्रम है। अपव्यय एवं सद्व्यय के मूल में विचार का होना पाया जाता है। मानवीयता की अपेक्षा में सद्व्यता एवं अपव्ययता का निर्णय होता है। सदुपयोग प्रत्येक मानव सहज अपेक्षा है। मानवीयता में ही यह चरितार्थ होता है। यही मानवीय परम्परा में अक्षुण्णता को स्थापित करता है। मानवीयता पूर्ण परम्परा का पराभव नहीं है। अमानवीयता पराभव से मुक्त नहीं है। इससे यह स्पष्ट होता है कि यतित्व एवं सतीत्व के मूल में शुद्धत: तन-मन-धनात्मक अर्थ के सदुपयोग में निष्ठा एवं विश्वास ही है। यही सत्यता मानवता के वैभव को कीर्तिमान सिद्ध करता है। इसका सर्वसुलभ हो जाना ही अखण्डता है, जिसमें ही भूमि स्वर्ग, मानव देवता, धर्म सफल एवं नित्य मंगल होता है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर:152-153)**

- ...अभयता ही सुख, सुख ही विश्वास, विश्वास ही साम्य मूल्य, साम्य मूल्य ही पूर्ण मूल्यानुसंधान, पूर्ण मूल्यानुसंधान ही पूर्ण मूल्यानुभूति, पूर्ण मूल्यानुभूति ही पूर्ण सामाजिकता एवं पूर्ण सामाजिकता ही अभयता है। मानवीयतापूर्ण जीवन में अभय सिद्धि होती है। अभयता के बिना मानव की स्वधार्मिक या स्व धर्मात्मिक सुख धर्मीयता का प्रसारण या प्रकटन नहीं होता है। जिसका जो अनुभव करता है उसी का वह प्रकटन करता है। जिसका जो प्रकटन करता है उसी का प्रसारण होता है। जन-जाति एवं **शिक्षा** तथा व्यवस्था पद्धति में मानवीय तत्वों का समावेश हो जाना ही अभयता एवं विश्वास का सर्वसुलभ होना है, जिससे ही भूमि स्वर्ग, मानव देवता, धर्म सफल एवं नित्य शुभ होता है।**(अध्याय: 13, पृष्ठ नंबर: 155)**

- "मानव के चारों आयामों का पूर्ण जागृति ही प्रेमानुभूति योग्य क्षमता है।" यही ऐतिहासिक उपलब्धि मानव में प्रतीक्षित है। ऐसी क्षमता से सम्पन्न व्यक्तियों के योग्य कार्यक्रम ही अभ्युदय है। वह धार्मिक, आर्थिक एवं राज्यनैतिक कार्यक्रम ही है। ऐसे कार्यक्रम में निपुणता, कुशलता सहित मानव जीवन दर्शन की **शिक्षा** जो पाण्डित्य है

उसका समावेश होना ही प्रेमानुभूति योग्य क्षमता का सर्वसुलभ होना है। यही सर्वमंगल कार्यक्रम है। **(अध्याय: 14, पृष्ठ नंबर: 162)**

- "प्रेमानुभूति सम्पन्न जनमानस को उज्जवल करने के लिए **शिक्षा** की भूमिका अति महत्वपूर्ण है।" **शिक्षा** ही विश्लेषण पूर्वक वास्तविकताओं पर आधारित जीवन के कार्यक्रम को स्पष्ट करती है। यही प्रत्येक मानव में पायी जाने वाली कामना एवं उसकी आवश्यकता है। यही **शिक्षा** का दायित्व है, जिसके बिना मानव में अनुभव योग्य क्षमता का जागृत होना संभव नहीं है। **शिक्षा** व व्यवस्था ही जीवन में गुणात्मक परिवर्तन का स्रोत है। अंततोगत्वा यही अनुभव के लिए प्रेरणा है। वरिष्ठ अनुभूति प्रेमानुभूति ही है। यही पूर्णतया सामाजिक एवं व्यावहारिक है। **(अध्याय:14, पृष्ठ नंबर:162-163)**

- "संपूर्ण प्रकार के संयम, तपस्या व अनुष्ठान की चरितार्थता का सार्थक फलन प्रेमानुभूति और व्यवस्था में सार्वभौमता का प्रमाण है।" सम्पूर्ण नेतृत्व को प्रेरणा स्रोत के रूप में पहचानना आवश्यक है। स्रोत अपने में दश सोपानीय व्यवस्था और सम्पूर्ण मूल्य प्रधानत: प्रेम मूल्य का प्रमाण होना आवश्यक है। अन्यथा जो होना है वह भ्रमित संसार में स्पष्ट हो चुका है। शिक्षा, व्यवस्था, संस्कृति, सभ्यता, श्रवण, मनन, निदिध्यासन, नित्य-नैमित्तिक कर्म, साहित्य, कला, भक्ति, पूजा, स्तवन, गायन एवं प्रदर्शन समुच्चय की चरितार्थता और सार्थकता को भी प्रेमानुभूति और व्यवस्था में प्रमाणित होने के रूप में ही पहचाना जा सकता है। मानव की प्रत्येक क्रिया, प्रक्रिया एवं कार्यक्रम के मूल लक्ष्य से विचलित होने पर साधन ही लक्ष्य हो जाता है। फलत: दिशाविहीनता घटित होता है। फलत: असामाजिकता एवं अव्यवहारिकता पूर्ण कार्य होता है। परिणामत: संदिग्धता, सशंकता एवं भयपूर्वक वर्ग संघर्ष एवं युद्ध होता है। अस्तु, उक्त सभी प्रकार के अथक प्रयास का प्रेममयता के अर्थ में कार्यक्रम संपन्न होना ही उसकी चरितार्थता है। मानव में चरितार्थता, सफलता एवं उज्जवलता उत्थान की कामना है। सुविधा के तारतम्य में उसकी व्यवहारिकता सिद्ध न होना ही दिशाहीनता है। इसका निराकरण केवल मूल्य-त्रयानुभूति ही है। प्रधानत: स्थापित मूल्यानुभूति योग्य कार्यक्रम मानवीयता में चरितार्थ होता है। उसे स्थापित, प्रस्थापित एवं आचरित करना ही समाज एवं सामाजिक संस्थाओं का आद्यान्त कार्यक्रम है। यही मानवीयता में सर्वसामान्य सुलभ उपलब्धि है। मानवीयता के बिना मानव सुखी नहीं है या मानव का सुखी होना संभव नहीं है। इसे सर्वसुलभ करने का कार्यक्रम **शिक्षा** में पूर्णता को स्थापित करना है। तात्पर्य उत्पादन एवं व्यवहार **शिक्षा** के संयुक्त अध्ययन होने से है जो विज्ञान के साथ चैतन्य पक्ष का, मानव विज्ञान के साथ संस्कार पक्ष का, दर्शन शास्त्र के साथ क्रिया पक्ष का, साहित्य के साथ तात्विक पक्ष का, समाज शास्त्र के साथ मानवीय संस्कृति एवं सभ्यता पक्ष का, राज्यनीति शास्त्र के साथ मानवीयता को संरक्षणात्मक नीति का, अर्थशास्त्र के साथ तन-मन-धनात्मक अर्थ के सदुपयोग एवं सुरक्षात्मक नीति पक्ष का, भूगोल और इतिहास के साथ मानव तथा मानवीयता का अध्ययन है। यही व्यवहार एवं व्यवसाय **शिक्षा** में संतुलन के लिए सर्वसुलभ उपाय है। **(अध्याय:14, पृष्ठ नंबर: 163-164)**

- इन्द्रिय व्यापार एवं उत्पादन स्थूल क्रियाएं हैं। मन, वृत्ति, चित्त एवं बुद्धि की क्रियाशीलता एवं मूल्यानुभूति सूक्ष्म क्रियाएं है। स्थूल क्रियाएं सूक्ष्म क्रिया से अनुप्राणित एवं नियंत्रित है। उत्पादन से समृद्धि, व्यवहार से सह-अस्तित्व, विचार में समाधान एवं सत्य में अनुभूति चरितार्थ होना ही कारण क्रिया है। इसी चरितार्थता के लिए ही सम्पूर्ण प्रकार के अभ्यास हैं। चरितार्थता के अतिरिक्त अर्थात् इसके विपरीत जो कुछ भी क्रियाकलाप हैं वे सब अव्यवहारिक, अमानवीयता में गण्य है। स्थूल क्रियाओं का नियंत्रण एवं सूक्ष्म क्रियाओं में परिमार्जन एवं पूर्णता प्रसिद्ध है। चैतन्य जीवन में ही सूक्ष्म जीवन गण्य है। मन, वृत्ति एवं चित्त ही सूक्ष्म क्रिया है। बुद्धि एवं आत्मा कारण क्रिया है। चैतन्य जीवन सूक्ष्म एवं कारण क्रिया का सम्मिलित रूप है। अनुभव में पराभव नहीं है। उत्पादन एवं व्यवहार में ही विभव एवं पराभव का परिचय होता है। व्यवहार एवं व्यवसाय में असफलता विचार व अनुभूति पूर्णता का लक्षण नहीं है। विचार पूर्णता केवल निपुणता, कुशलता एवं पांडित्य ही है। **विचारपूर्णता के लिए ही शिक्षा है जिसका स्थूल रूप ही उत्पादन एवं व्यवहार है।** सत्य और सत्यता की ही अनुभूति होती है। **(अध्याय: 15, पृष्ठ नंबर: 167-168)**

- "चिदानंद स्थूल एवं सूक्ष्म जीवन की निर्विरोधिता में, आत्मानंद स्थूल-सूक्ष्म-कारण जीवन में एकसूत्रता के रूप में तथा ब्रह्मानंद सत्तामयता में सह-अस्तित्व सहज अनुभूति के रूप में प्रमाणित है।" चिदानंद सर्वसुलभ होना ही आत्मानंद एवं ब्रह्मानंद की संभावना है। मानवीयतापूर्ण जीवन में चिदानंद, देव मानवीयतापूर्ण जीवन में आत्मानंद एवं दिव्य मानवीयतापूर्ण जीवन में ब्रह्मानंद प्रधान विधि से चरितार्थ होता है। चिदानंद एवं आत्मानंद

ब्रह्मानंदानुभूति में समाये रहते हैं। अर्थात् ब्रह्मानुभूति में सहजत: मानवीयता एवं देव मानवीयता अभिव्यक्त होती है। चिदानंद के सर्वसुलभ होने की संभावना है। मानवीयतापूर्ण समाज संरचना, **शिक्षा** एवं व्यवस्था आचरण ही उसके लिए आवश्यकीय तत्व है। मानवीयता मानव का स्वत्व है। स्वत्व का व्यवहृत होना न होना **शिक्षा** एवं व्यवस्था पर, **शिक्षा** एवं व्यवस्था धर्मनैतिक एवं राज्यनैतिक संस्थाओं की क्षमता पर, धर्मनैतिक एवं राज्यनैतिक संस्थाओं की क्षमता उपलब्ध दर्शन पर और दर्शन भौतिक-बौद्धिक-आध्यात्मिकता पर आधारित होना पाया जाता है। अध्यात्म चिंतन सत्तामयता को स्पष्ट करने के लिए, बौद्धिक चिंतन (मनोवैज्ञानिक चिंतन) संवेदनशीलता एवं चैतन्य जीवन का विश्लेषण करने में तथा भौतिक चिंतन रासायनिक एवं भौतिक क्रिया का निरीक्षण, परीक्षण एवं सर्वेक्षण करने में क्रम से ज्ञान एवं अनुभूति, दर्शन एवं अनुभूति, प्रयोग एवं अनुभूति होती है। **(अध्याय: 15, पृष्ठ नंबर: 174)**

- व्यायाम, आसन व प्राणायाम योगाभ्यास (योगाभ्यास जागृति के अर्थ में चरितार्थ होता है। यह मानवीयतापूर्ण जीवन के साथ आरंभ होता है जो श्रवण, मनन एवं निधिध्यासपूर्वक अथवा धारणा, ध्यान एवं समाधिपूर्वक चरितार्थ होता है।) के लिए सहायक हैं। शरीर का स्वेच्छानुरूप उपयोग करने, स्वस्थ रखने के लिए ये प्रक्रियाएं आवश्यक हैं। वातावरण अभ्यास के लिए सहज उपलब्धि है। कृत्रिम वातावरण ही अतिप्रभावशाली है जिसका निर्माण मानव ही करता है। कृत्रिम वातावरण मानवीयतापूर्ण या अमानवीयता भेद से दृष्टव्य है। कृत्रिम वातावरण के लिए **शिक्षा** एवं व्यवस्था प्रधान तत्व हैं। **(अध्याय:15, पृष्ठ नंबर:175-176)**

सन्दर्भ : मानव अनुभव दर्शन

(संस्करण: 2011, मुद्रण:14 जनवरी 2016)

- आत्म बोध और ब्रह्म अनुभूति के लिए सहज जिज्ञासा है। यह मानव परम्परा में जागृत **शिक्षा** संस्कार पूर्वक समाधानित सार्थक होना पाया जाता है। **(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर:3)**

- धीरता, वीरता, उदारतापूर्ण स्वभाव, पुत्रेषणा, वित्तेषणा, लोकेषणा पूर्ण विषय प्रवृत्तियाँ तथा न्याय, धर्म एवं सत्यता पूर्ण दृष्टि ही मानवीयता की महिमा है। जिसके संरक्षण हेतु संस्कृति, सभ्यता एवं विधि व्यवस्था का प्रणयन **शिक्षा**पूर्वक एवं जागृति के लिए सर्वसुलभ होता है। अनुभवपूर्ण मानव में मानवीयतापूर्ण व्यवहार स्वभावत: पाया जाता है। **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर:25)**

- ज्ञानावस्था की इकाई में किसी भी प्रकार के संस्कार से संस्कारित होने के पूर्व किसी न किसी पूर्व संस्कार की विद्यमानता स्वभाव के रूप में पायी जाती है। पूर्व संस्कार अध्ययन एवं वातावरण अग्रिम संस्कारों की स्थापना के लिए अनिवार्य कारण है। संस्कारगत स्वभाव दो श्रेणियों में गण्य है:-

  1. मानवीयतापूर्ण,
  2. अतिमानवीयतापूर्ण,

अमानवीयतावादी प्रवृत्ति है, जो संस्कार नहीं है।

ब्रह्मानुभूति योग्य क्षमता, योग्यता, पात्रता से संपन्न होने पर्यन्त गुणात्मक संस्कारपूत होना आवश्यक है। यही अभ्यास पूर्वक अभ्युदय का प्रमाण है।

समाज ही व्यक्ति के संस्कारों के परिमार्जन, परिवर्तन और प्रस्थापन का कारण है। अभ्युदयकारी अध्ययन, व्यवस्था एवं तदनुसार आचरण ही समाज है।

समाज ही व्यवस्था एवं **शिक्षा** पूर्वक जागृत वातावरण को उत्पन्न करता है।**(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:28)**

- अध्ययन की पुष्टि, प्रकाशन, प्रचार, प्रदर्शन से है। इसकी सफलता या असफलता सामाजिकता के संरक्षण के लिए की गयी **शिक्षा** व व्यवस्था पर आधारित है।

मानवीयता तथा अतिमानवीयता से संपन्न प्रत्येक मानव इकाई के स्वभाव को अविच्छिन्न बनाने योग्य वातावरण का निर्माण करना, **शिक्षा** एवं व्यवस्था का आद्योपांत कार्यक्रम है। यही आप्तों की आकाँक्षा है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:29)**

- ज्ञानावस्था में सभी मानव का आद्यान्त इष्ट ब्रह्मानुभूति ही है। अतएव मानव द्वारा मात्र उसी के अनुकूल उत्पादन, व्यवहार, विचार, विधि-व्यवस्था, अध्ययन, **शिक्षा-प्रणाली**, विनिमय और उपयोग प्रणाली का प्रणयन एवं उन्नयन तथा पालन अनुसरण ही सर्व मंगलमय कार्यक्रम है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:37,41)**

- चैतन्य ज्ञानात्मा का अनुभव सीमान्तवर्ती क्षमता पूर्ण होने की संभावना है साथ ही उसके योग्य परिमार्जनशीलता **चेतना विकास मूल्य शिक्षा** भी प्रसिद्ध है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:38)**

- सजगता ही अनुभव क्षमता और सतर्कता ही समाधान क्षमता है। **शिक्षा** प्रणाली एवं व्यवस्था पद्धति की सीमा में सतर्कता-योग्य क्षमता को जन-सामान्य बनाने की व्यवस्था है। **(अध्याय:9, पृष्ठ नंबर:48)**

सन्दर्भ : समाधानात्मक भौतिकवाद

(संस्करण: 2009)

- मानव स्वाभाविक रूप में ही सुख चाहता हैं भले ही सुख को वह नहीं जानता, इसके बावजूद वह सुख का पक्षधर होता है। अधिकांश मानव सुख के लिए ही रुचियों, प्रलोभनों के पीछे दौड़ते रहते हैं। इस तथ्य के निरीक्षण परीक्षण के उपरान्त यह निष्कर्ष निकलता है कि परम्परा जिन दिशा कोणों में प्रोत्साहित करता है अथवा जितना जागृत हुआ रहता हैं उसी के अनुरूप दिशा निर्देशन कर पाता है। परम्परा का तात्पर्य शिक्षा-संस्कार, संविधान और व्यवस्थाओं का अविभाज्य रूप में क्रियारत होना है। यह एक सहज प्रमाण है कि हर समुदाय किसी न किसी संविधान, शिक्षा, व्यवस्था तथा संस्कार को अपनाया रहता है। इसे इस धरती के सभी समुदायों में निरीक्षण परीक्षण करके देखा जा सकता है। इससे यह भी स्पष्ट हुआ कि उन चारों आयामों के संबंध में मानव की कर्म स्वतंत्रता कल्पनाशीलता ने सहज रूप में कार्य किया है। अभी तक किसी एक अथवा एक से अधिक समुदायों में स्थापित संविधान व्यवस्था और संस्कार सभी समुदायों के लिए स्वीकृत नहीं हो पाया। सभी समुदायों में मानव विचारशील रहे हैं। समीचीन ज्ञान विज्ञान के अनुरूप अभय और शांति सबको सुलभ होने के उद्देश्य से ही सभी संविधानों की स्थापना हुई है। प्रत्येक समुदाय अपने संविधान के अनुरूप शिक्षा, संस्कार, राज्य और धर्म व्यवस्था पाने की आशा और आकांक्षा से इसमें अर्पित होते आया है। आज भी ऐसी ही स्थितियाँ देखने को मिलती हैं। इस प्रकार सभी समुदायों में संविधान, शिक्षा, संस्कार व्यवस्था संबंधी तथ्यों को सोचते हुए समुदाय चेतना से विवश होकर समस्त कार्य किए गए। फलत: वाद-विवाद व द्रोह-विद्रोह की संभावनाएँ आदिकाल से अभी तक बनी हुई है। यह समस्या विश्व मानव के सम्मुख स्पष्ट है अर्थात् समुदायों के सम्मुख स्पष्ट है।

उक्त समस्या के कारण तत्वों का निरीक्षण परीक्षण किया गया। इसका उत्तर यही मिला कि मानव ने मूलत: मानव को पहचानने में सह-अस्तित्व रूपी परम सत्य को समझने में ही भूल किया है। **(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर: 9-10)**

- ...वर्तमान समय में व्यापारी और अधिकारी समयानुसार बदलते रहते हैं। कभी व्यापारियों के चंगुल में अधिकारी तो कभी अधिकारियों के चंगुल में व्यापारी-इस तालमेल को बैठाने के कार्यक्रम में लगे दिखाई देते हैं। सम्पूर्ण अधिकारी समुदाय इस समय प्रधानत: तीन भागों में बंटे दिखाई पड़ते हैं-

1. कार्यपालिका में प्रशासन कार्यतंत्र और सीमा सुरक्षा में,
2. न्यायपालिका में,
3. विधायिका में -सभी नेता विधायिका के कार्य में लगे है।

इन्हीं के साथ बहुत सारे विभाग समाहित हैं। हर विभाग में अधिकारी होता है। **शिक्षा तंत्र** भी एक विभाग है। यह कार्यपालिका के अंतर्गत कार्य करता है। आज सर्वाधिक अधिकारी वर्ग संग्रह कार्य में व्यस्त है। विधायिका राजनेताओं के हाथों में हैं और नेता जनादेश के आधार पर चुना जाता हैं जबकि राजा वंशानुगत होता था।**(अध्याय:2, पृष्ठ नंबर:21)**

- ....ईश्वर की कृपा प्राप्त करने के लिए राजाज्ञा का पालन करना भी पुण्य कर्मों में गण्य बताया गया। गुरु की आज्ञा, उपदेश का पालन, **शिक्षा** ग्रहण ये सब पुण्य के साक्षात स्वरूप ही कहे गये। अर्थात् इन्हें पुण्य का प्रमाण माना गया। इस प्रकार से पुण्य के लिए बताये गये अथवा पुण्य मिलने के लिए जो तरीके बताये गए उसका पालन करने वाले को पुण्यात्मा मान लिया गया। इसके विपरीत जो कुछ भी किया उनको पापात्मा मान लिया गया। इसी के आधार पर धार्मिक दंडनीति तैयार हुई।...**(अध्याय:2, पृष्ठ नंबर:26)**

- पदार्थावस्था में तात्विक क्रिया में परस्पर परमाणु अंश की निश्चित दूरियाँ स्वयं उनके परस्परता की पहचान को प्रकाशित करता है। साथ ही भौतिक और रासायनिक वस्तुओं का संगठन भी परस्पर अणुओं की पहचान का द्योतक सिद्ध हो जाता है। प्राणावस्था में रासायनिक अणु संरचनाएँ, प्राणकोशिकाओं की पहचान का द्योतक है। यह बीज वृक्ष नियम पूर्वक सम्पादित होते हैं। जीवावस्था में जड़-चैतन्य-प्रकृति का प्रारंभिक प्रकाशन है, जिसमें से शरीर रचना जड़-प्रकृति स्वरूप होने के कारण वंशानुषंगी सिद्धांत पर आधारित रहता हैं। साथ ही जीवन संचेतना जीवावस्था में अध्यास के रूप में प्रभावित रहता है। अध्यास का तात्पर्य परम्परागत कार्यकलापों और विन्यासों को गर्भावस्था से ही स्वीकारने के क्रम में गुजरते हुए जन्म के अनन्तर उसे अनुकरण करने की प्रक्रिया से है। जैसे गाय की सन्तान गाय जैसे कार्यकलापों को करते हुए देखने को मिलता है। इसी प्रकार सभी प्रजाति के जीवों में स्पष्ट है। ज्ञानावस्था में मानव जड़-चैतन्य का संयुक्त प्रकाशन होते हुए मानव शरीर भी प्रधानत: वंशानुषंगी होता है। साथ ही संचेतना संस्कारानुषंगी होता है। इसका साक्ष्य स्वयं **शिक्षा-संस्कार** व्यवस्था परम्पराएँ है। इससे सिद्ध हुआ कि मानव संस्कारानुषंगी प्रणाली से पहचानने के कार्यकलाप को सम्पादित करता है।**(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 56)**

- अस्तित्व में, से, के लिए ही सम्पूर्ण अध्ययन है क्योंकि अस्तित्व समग्र ही स्थिति में नित्य वर्तमान है। अस्तित्व न घटता है न बढ़ता है। इसीलिए अस्तित्व में, से, के लिए मानव अध्ययन करने के लिए बाध्य है। क्योंकि यह अध्ययन मानव को अपने जीवन जागृति का साक्ष्य प्रस्तुत करने के क्रम में अपरिहार्य है। फलत: प्रामाणिकता, प्रमाण और समाधान की स्थिति के लिए तत्पर होना पड़ा। इसी क्रम में निर्भ्रमता की अभिव्यक्ति है। इसकी संप्रेषणा भी होती हैं। यही मानव परम्परा की गरिमा और सामाजिक अखण्डता का सूत्र है। यही **शिक्षा** व्यवस्था और चरित्र में सामरस्यता के स्वरूप को स्पष्ट करता है। यही अनुभवपूर्ण सह-अस्तित्व ही विचारशैली एवं जीने की कला के लिए आवश्यक है। **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 58)**

- **शिक्षा** पूर्वक अथवा प्रबोधन पूर्वक प्रामाणिकता आदान-प्रदान करने की वस्तु है। **(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर: 85)**

- चैतन्य इकाईयों में पाया जाने वाला अक्षय बल और शक्तियों की सामरस्यता (प्रामाणिकता और समाधान) स्वयं की परस्परता में और परस्पर इकाईयों में त्रिकालाबाधित साम्य हैं। ऐसी सामरस्यता सार्वभौम रूप में, हम मानवों में प्रामाणिकता और समाधान संपन्न होने की व्यवस्था समीचीन है। यही सम्पूर्ण अनुसंधान, **शिक्षा**, व्यवस्था, चरित्र और उसकी निरन्तरता का अक्षय स्रोत हैं। मात्रा विज्ञान, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, मनोविज्ञान, व्यवस्था विज्ञान और व्यवहार विज्ञान के मूल रूप में यही प्रमाणिकता और समाधान ही अक्षय स्रोत अक्षय त्राण और अक्षय प्राण है। **(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर: 85-86)**

- **शिक्षा-संस्कार** ही बोध और अवधारणा का एकमात्र स्रोत है। ऐसे स्रोत को सार्थक रूप देने, उसमें प्रामाणिकता और समाधान की निरन्तरता को बनाये रखना चैतन्य-प्रकृति में, से ज्ञानावस्था की इकाई का दायित्व और वैभव होता हैं। **(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर: 86)**

- मानव जागृत होकर ही सुखी, समृद्ध तथा सुन्दरतम रूप में दिखाई पड़ता हैं। प्रत्येक मानव सुखी, समाधानित, समृद्ध और सुन्दर रहना ही चाहता है। परंपरा की अजागृति के कारण ही अथवा जागृति पूर्ण न होने के फलस्वरूप ही मानव कुंठा और अभाव से ग्रसित रहता है। यह मानव परंपरा सहज जागृति क्रम में पाये जाने वाले मानव की स्थिति हैं। मानव व्यक्ति के रूप में सदा शुभ चाहता हैं- यह प्रत्येक व्यक्ति में सर्वेक्षण पूर्वक समझ में आता है। व्यक्ति व्यक्ति में शुभ के रूप में जीने की कला और विचार शैली के संबंध में मतभेद बना रहता है। यही मानव में अंतर्विरोध है अथवा अपेक्षा के खिलाफ बाह्य विरोध हैं। यह मानव सहज यर्थाथ नहीं है अपितु परंपरा का भ्रम है। परम्परा प्रचार और **शिक्षा** के रूप में सर्वाधिक प्रभावशील होती हैं अथवा प्रत्येक मानव को परंपरा में प्रभावित करने

के उक्त दो तरीके समर्थ दिखाई पड़ते हैं। इन दोनों का यथार्थ पर आधारित रहना आवश्यक है। उन्माद, भ्रम, सुविधा, भोग- जैसे सम्मोहन के लिए ही सभी **शिक्षा** देते हैं और प्रचार करते आए हैं। इसी के साथ रहस्य और आस्था भी बनी रही हैं। इसलिए मानव के लिए आशित सुख, समृद्धि, समाधान और सुन्दरता संभव नहीं हो पाई।

समाधान और व्यवस्था अविभाज्य है। समाधान का धारक-वाहकता प्रत्येक मानव में आवश्यकता के रूप में देखने को मिलता है। व्यवस्था समग्रता के साथ ही प्रमाणित होता है। समाधान जागृति का द्योतक है। हर व्यक्ति जागृत होना चाहता है। जागृति का मार्ग प्रशस्त होना ही इसका एकमात्र उपाय है। परंपरा में जागृति का तात्पर्य **-शिक्षा-संस्कार**, व्यवस्था, संविधान में जागृत मानव का लक्ष्य, स्वरूप, कार्य और प्रयोजन स्पष्ट हो जाने से है। संस्कारों का मतलब स्वीकृति से ही है, अवधारणा से ही हैं। अस्तित्व में जागृत मानव के उद्देश्य से अवधारणा को देखा गया वह है-

1. जीवन ज्ञान
2. अस्तित्व दर्शन ज्ञान
3. मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान

ये ही स्वीकारने के लिए वस्तुएँ हैं। मानव परंपरा में जागृति पूर्णता की वस्तु भी इतनी ही हैं। इन्हीं तीन बिंदुओं में इंगित परम सत्य वस्तु को स्वीकारने योग्य परम्परा ही मानव संस्कार पंरपरा हैं। उक्त तीनों बिंदुओं में इंगित वस्तु की उपयोगिता विधि, सदुपयोगिता विधि, प्रयोजनशील होने की विधि, अध्ययन की अर्थात् **शिक्षा** की मूल वस्तुएँ है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर:113-114)**

- अस्तित्व में रासायनिक-भौतिक क्रियाकलापों को सह-अस्तित्व सहज विधि से जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना, जागृति का प्रमाण है। सह-अस्तित्व स्वयं व्यवस्था है या कह सकते हैं कि सह-अस्तित्व के रूप में व्यवस्था नित्य वर्तमान है। वर्तमान ही मानव में, से, के लिए अध्ययन की संपूर्ण वस्तु हैं। इस प्रकार से अस्तित्व ही सह-अस्तित्व है। सह-अस्तित्व में विकासक्रम, विकास, जीवन, जीवन जागृति, रासायनिक-भौतिक रचना एवं विरचनाएँ अध्ययन के लिए संपूर्ण आयाम है। जबकि अस्तित्व समग्र ही अध्ययन के लिए, संस्कार के लिए, व्यवस्था के लिए संपूर्ण संप्राप्ति है। यह सदा ही मानव में, से, के लिए समीचीन रहता ही है। जितना भी परेशानी, व्यतिरेक और समस्याओं को मानव ने झेला है वह सब **शिक्षागद्दी**, राजगद्दी और धर्मगद्दी की करामात है। आज की स्थिति में **शिक्षा** गद्दी प्रधान है। **शिक्षा** के धारक-वाहक के रूप में सभी दिग्गज, बुद्धिजीवी, नेता, साहित्यकार सम्मान पाना चाह रहे हैं जबकि यह हो नहीं पा रहा है।

जब मैं जागृति पूर्वक अस्तित्व सहज अध्ययन के लिए प्रस्तुत हुआ तब यह पता लगा कि अस्तित्व समग्र ही अध्ययन की वस्तु हैं, तभी यह भी पता लगा कि मानव भी अस्तित्व में अविभाज्य है। "मानव जीवन और शरीर का संयुक्त साकार रूप है" - इसे पहले स्पष्ट किया जा चुका है। इसी क्रम में यह भी देखने को मिला कि जीवन ही सह-अस्तित्व में जागृति पूर्वक दृष्टा पद प्रतिष्ठा पाता हैं। यही जीवन तृप्ति का आधार बिंदु हैं और यही जीवन जागृति परंपरा रूप में प्रमाणित होना-रहना सहज जागृति को प्रमाणित करने का अधिकार है। इस क्रम में मानव ही जागृति पूर्वक दृष्टा पद में है- यह ख्यात होता है। ख्यात होने का तात्पर्य है कि इंगित तथ्य सभी को स्वीकार हो चुका है। इसका लोक व्यापीकरण हो सकता हैं और प्रत्येक व्यक्ति इसे स्वीकारने के लिए बाध्य है। इस बाध्यता का तात्पर्य आवश्यकता, विचार, इच्छा, कल्पना के रूप में सहमति से है। जागृति सहज आवश्यकता के संदर्भ में परीक्षण किया जा सकता है। बच्चे, बूढ़े, ज्ञानी, अज्ञानी, गरीब, अमीर सबसे इस बात की परीक्षा की जा सकती है कि जागृति एक आवश्यक तत्व है या नहीं। सबका निष्कर्ष यही होगा कि जागृति आवश्यक है। इस प्रकार मानव में जागृति की आवश्यकता ख्यात होना प्रमाणित है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर:115-116)**

- प्रामाणिक होने के लिए सह-अस्तित्व रूपी सत्य में अनुभव करना मानव के लिए संभव है। यह सभी को तभी संभव हैं, जब **शिक्षा** का मानवीयकरण हो जावे। इन तीनों स्थितियों में मानव के वैभवित होने के लिए जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन (अनुभव) ज्ञान और मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान ही प्रधान तत्व है। इस सत्य सहज जागृति को मानव प्रमाणित करें यह एक आवश्यकता है क्योंकि:-

  1. जागृति पूर्वक ही मानव परपंरा सर्वतोमुखी समाधान पूर्वक व्यक्त होता है।
  2. जागृतिपूर्ण मानव परंपरा में ही जागृति पूर्ण शिक्षा-संस्कार सर्व सुलभ होता है।
  3. जागृति पूर्वक ही मानव परंपरा में न्याय और सुरक्षा सर्व सुलभ होता है।
  4. जागृति सहज मानव परम्परा में उत्पादन सुलभता प्रमाणित होता है।
  5. जागृतिपूर्ण मानव पंरपरा में ही आवर्तनशील अर्थ प्रणाली श्रम नियोजन, श्रम विनिमय पद्धति से विनिमय सुलभता होता है।
  6. जागृति पूर्ण मानव परंपरा में ही परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था दस सोपानीय विधि से सर्वसुलभ हो पाता है। ये सभी मानवों को लिए आशित (अपेक्षित), आकांक्षित और आवश्यकीय उपलब्धियाँ हैं। इसके सफल होने के मूल में मानव परंपरा है। अर्थात् मानवीयतापूर्ण शिक्षा, संस्कार, संविधान और व्यवस्था है। यह मानवीयतापूर्ण अथवा जागृतिपूर्ण पद्धति, प्रणाली और नीति से प्रमाणित होता ही है।

परम्परा में जागृति होना तभी संभव हैं जब परिवर्तन की बेला में सच्चाईयों के आधार पर गहराई के साथ व्यवहार में, प्रमाणों को प्रमाणित करने की निष्ठा, कम से कम एक व्यक्ति में हो। एक से अधिक व्यक्ति में प्रमाणित करने की निष्ठा होना और भी अच्छा है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:119-120)**

- विविध प्रकार से मानव इतिहास का आज हम अवलोकन कर पा रहे है। उसमें दो स्थल ऐसे दिखाई पड़ते हैं जिन स्थलों में गहराई, गंभीरता एवं व्यवहार प्रमाण का संयोग हो सकता था, लेकिन ऐसा हुआ नहीं।

  1. ऐसा स्थल था, जब आदर्शवाद में आदर्शवादी विचार में, आदर्शवादी व्यवस्था में, आदर्शवादी **शिक्षा** में, संविधान और संस्कार में लोग अर्पित होने के लिए तैयार हो गए। उस क्षण में व्यवहार प्रमाण को अपरिहार्य रूप में स्वीकार सकते थे। जबकि ऐसा नहीं हुआ, फलत: सार्वभौम व्यवस्था नहीं हो पाई।
  2. ऐसी संभावना अति निकट हुई जब आदर्शवादी विचार से भौतिकवादी विचार में मानव मानस को मोड़ने का मुहूर्त आया। उस समय में भी भौतिकवादी चिंतन ने व्यवहार प्रमाण की आवश्यकता को अनदेखा कर दिया। अब समाधान युग में संक्रिमत होने का समय आ रहा है। अभी कम से कम हम सब संघर्ष से समाधान युग में संक्रमित होना चाह रहे हैं। इससे यह देखने को मिलना बहुत आवश्यक है कि व्यवहार में "मानवत्व" प्रमाणित होता रहे।

"मानवीयता" व्यवहार में प्रमाणित होने का तात्पर्य यही है कि -

  1. हम जीवन ज्ञान में पारंगत रहेंगे। स्वयं के प्रति विश्वास करेंगे श्रेष्ठता के प्रति सम्मान करेंगे।
  2. अस्तित्व दर्शन में निर्भम रहेंगे।
  3. स्वधन, स्वनारी/स्वपुरुष, दयापूर्ण कार्य-व्यवहार करेंगे।
  4. तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग एवं सुरक्षा करेंगे।
  5. संबंधों को पहचानेंगे, मूल्यों का निर्वाह करेंगे, मूल्यांकन करेंगे।

यही मानवीयता को व्यवहार में प्रमाणित करने परस्पर तृप्ति और संतुलन का तात्पर्य है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 120-121)**

- राज्य का अर्थ संस्कार और व्यवस्था सहज वैभव है। धर्म का अर्थ सर्वतोमुखी समाधान पूर्ण ज्ञान ही संस्कार है, **शिक्षा** बनाम विद्वत्ता है। मानव का संपूर्ण आधार मानवीयता है यह सह-अस्तित्व में अनुभव प्रमाण सहज विद्वत्ता ही है। प्रमाण भी मानवीयता और विद्वत्ता ही है। **शिक्षा** भी मानवीयता और विद्वत्ता हैं। संविधान भी मानवीयता और विद्वत्ता है। व्यवस्था भी मानवीयता और विद्वत्ता है। इस प्रकार मानवीयतापूर्ण परम्परा नित्य समीचीन रहते हुए नस्ल, रंग, रहस्य और वस्तु विभिन्न भाषा, पंथ, संप्रदाय अहमतावश अर्थात् अतिव्याप्ति, अनाव्याप्ति, अव्याप्ति, दोषवश विद्वान और ज्ञानी कहलाने वाले राज, धर्म, विज्ञान, स्वास्थ्य, कला और साहित्य शास्त्रियों ने मानव परंपरा के स्थान पर भ्रमित परम्परा की अनुशंसा कर डाली, फलस्वरूप संपूर्ण प्रचारतंत्र ही भ्रम के वशीभूत हो गया। इसीलिए बेहतरीन समाज की परिकल्पना ही उभर न पायी। बेहतरीन समाज का तात्पर्य अखण्ड समाज ही है। इसी भ्रमवश, मानव का वैभव प्रमाणित न हो पाया। जो कुछ भी मानव का वर्तमान कहा जावे वह केवल वंशवृद्धि है अर्थात् जनसंख्या वृद्धि ही वर्तमान रह गया है।

मानवीयता अपने स्वरूप में जीवन ज्ञान सहित मानवीयतापूर्ण आचरण ही है। विद्वत्ता का स्वरूप अस्तित्व दर्शन ही है। अस्तित्व को समझना ही अर्थात् जानना, मानना, उसकी तृप्ति बिन्दु का अनुभव करना ही दर्शन है। मानव में पहले बताई हुई दस क्रियाओं के अविभाज्य वैभव को जीवन ज्ञान कहा हैं। इसे स्वयं में पहचानना, जानना, मानना और उसकी तृप्ति बिंदु का अनुभव करना तथा न्याय, धर्म बनाम सर्वतोमुखी समाधान सत्य बनाम अनुभव और प्रामाणिकता पूर्ण विधि से अभिव्यक्त, संप्रेषित और प्रकाशित होना जीवन ज्ञान का तात्पर्य है।

जीवन सहज कार्यकलापों में, से बोध और अनुभव हैं। तृप्ति क्रम में सह-अस्तित्व सहज पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था एवं ज्ञानावस्था ये सभी अवस्थाएँ सत्ता में संपृक्त जड़-चैतन्य-प्रकृति के रूप में नित्य विद्यमान, नित्य वर्तमान है। इस सहज सत्य को जानना, मानना और तृप्ति बिंदु का अनुभव करना, उसकी निरंतरता बनी ही रहना, उसकी अभिव्यक्ति, संप्रेषणा को अध्ययन विधि से सार्थक बना देना, साथ ही स्वानुशासन विधि से जीने की कला को प्रमाणित करना ही दर्शन शास्त्र का सार्थक रूप हैं। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:135-136)**

- अव्यवस्था तीन उन्मादों के रूप में व्याख्यायित होती हैं। मानव में सम्मोहनात्मक उन्माद लाभोन्माद, कामोन्माद तथा भोगोन्माद के रूप में सर्वेक्षित होता है। विरोधात्मक उन्माद द्रोह, विद्रोह और युद्ध के रूप में सर्वेक्षित है। इन्हीं छ: प्रकार के उन्मादों का स्वरूप दिखाई पड़ता है। इसके प्रभाव में कर्ता सहित सभी अव्यवस्था के रूप में दिखाई पड़ते है। अव्यवस्था मूलत: भ्रम है। ऐसे सर्वेक्षण को संपन्न करना तभी संभव है, जब मानव निर्भ्रम हो और व्यवस्था का स्वरूप तथा अधिकार कम से कम एक मानव के पास हो। मानव इतिहास के अनुसार इस घटना की तीव्र प्रतीक्षा रही। इस बात को इस प्रकार से समझाया जा सकता है कि उन्मादित होते हुए भी मानव ही, इन उन्मादों के परिणाम स्वरूप जो अव्यवस्थाएँ हुई, उसकी समझ के बराबर में पीड़ित भी होते आया। भले ही यह सबमें न हुआ हो अधिकांश लोगों में अव्यवस्था की पीड़ा है। इस सर्वेक्षण के साथ यह भी देखने को मिलता है कि इन उन्मादों को लिए हमारी कला, **शिक्षा** और शासन रूपी व्यवस्था तंत्र सहायक हो गया हैं। विकल्प के लिए कोई कल्पना भी नहीं रही है इसलिए विवशता पूर्वक इसे झेलने के अलावा दूसरा रास्ता दिखता नहीं। इसी स्थिति में कराहते हुए अधिकांश व्यक्ति इस धरती पर पाये जाते हैं। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:148)**

- पूर्ववर्ती विचारों के अनुसार उक्त उन्मादों के विपरीत कोई चीज है तो वह है भक्ति और विरक्तिवादी निबंध। ये पावन ग्रंथ माने गये और इनका प्रचार करें। इसकी अंतिम परिणति के रूप में मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा, गिरिजाघरों के प्रति अथवा पूजा स्थलों के प्रति आस्था केन्द्रीभूत हुई। आस्था के आधार पर बहुत सारे विशिष्ट लोगों को, महापुरुषों को, सामान्य जनों ने अपने आस्था सुमन अर्पित किए। आज भी इस बात को परीक्षण कर देखें, उन्मादों की तुलना में आस्थाएँ राहत सी प्रतीत होती है। इस बात को परीक्षण कर देखा गया है। इसके बावजूद भक्ति और विरक्ति का

शिक्षा, व्यवस्था, संविधान और संस्कारों में सार्वभौम होना संभव नहीं हुआ। इसके साथ यह भी देखने को मिला कि विज्ञान **शिक्षा** अवश्य ही सार्वभौम रूप में **शिक्षा** क्रम में उतर आया पर यह यंत्र प्रमाण में अटक गया। यह विज्ञान **शिक्षा**, **शिक्षा** क्रम में वैभवित होते हुए भी व्यवहार में सार्थक नहीं हो पाया, जैसे- संस्कार, व्यवस्था, संविधानों में और मानव सहज आचरण में सहायक या प्रमाणित नहीं हो पाया। इसमें यही तर्क कर सकते हैं कि शरीर शास्त्रियों के अनुसार मानव को इससे सहायता मिली है। शरीर और स्वास्थ्य संबंधी बातें मानव से ही आरंभित रहीं। इसमें यही अत्याधुनिक तकनीकी, यंत्र और तंत्र सहित किये गये प्रयासों से मानव की औसत आयु बढ़ना प्रमुख मुद्दा नहीं है। इसके उत्तर में, अव्यवस्था में प्रभावित होता हुआ मानव दिखता है। अव्यवस्था का प्रधान प्रभाव तीन उन्माद सम्मोहनात्मक और तीन उन्माद विरोधात्मक पाया जाता है जिसका जिक्र ऊपर कर चुके है।

विकल्प के स्वरूप में अर्थात् अव्यवस्था के विकल्प में, व्यवस्था ही है। **अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन व्यवस्था-** सार्वभौम व्यवस्था, अस्तित्व सहज व्यवस्था, सह-अस्तित्व सहज व्यवस्था, रासायनिक-भौतिक रचना सहज व्यवस्था, विकास सहज व्यवस्था, जीवन सहज व्यवस्था और जीवन जागृति सहज व्यवस्था को स्पष्ट करता है। इसको अध्ययनगम्य कराना ही सह-अस्तित्ववाद का उद्देश्य है। "सह-अस्तित्ववाद" में "समाधानात्मक भौतिकवाद" एक प्रबंध है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:149- 150)**

- भौतिक और रासायनिक क्रियाकलापों द्वारा सह-अस्तित्व सहज रूप में ही व्यवस्था और समाधान को प्रकाशित करना स्पष्ट हुआ हैं। सम्पूर्ण वस्तुएँ ही अपना अविभाज्यता वश सह-अस्तित्व रूप में स्पष्ट हैं जैसे अनन्त परमाणु, अनंत अणु, अनंत रचना और अनंत जीवन व्यापक सत्ता में संपृक्त हैं। अत: क्रियाशील है, "त्व सहित व्यवस्था" के रूप में सहअस्तित्व सहज वैभवित है। इस क्रम में मानव के अतिरिक्त संपूर्ण प्रकृति ही सह-अस्तित्व में "त्व सहित व्यवस्था" के रूप में व्याख्यायित है। मानव संस्कारानुषंगी व्यवस्था है। इसके फलस्वरूप प्रत्येक मानव को समझदारी के साथ जीने का हक बनता है। परंतु साथ-साथ व्यवस्था को समझने की जिम्मेदारी भी है। समझदारी का स्रोत परंपरा ही है। इस क्रम में लाभोन्मादी, भोगोन्मादी, कामोन्मादी अध्ययन प्रबंधों और उपक्रमों के स्थान पर विकल्प के रूप में "कामोन्मादी मनोविज्ञान" का विकल्प **"मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान**" भोगोन्मादी समाज चेतना अथवा "भोगोन्मादी समाज शास्त्र" के स्थान पर **"व्यवहारवादी समाजशास्त्र**" विकल्प है। इसी प्रकार "लाभोन्मादी अर्थशास्त्र" के स्थान पर **"आवर्तनशील अर्थ व्यवस्था**" का विकल्प के रूप में प्रतिष्ठित होना स्वाभाविक रहा है, क्योंकि उन्मादों से होने वाली पीड़ाओं से अथवा उन्मादों से होने वाली अव्यवस्थाओं की पीड़ा से अधिकांश मानव पीड़ित हो चुके हैं। भ्रम से बेहोशी की ओर जो घनीभूत होंगे, वे ही इस पीड़ा को नहीं समझ पाएँगे, ऐसे लोग भी कम ही होंगे। अस्तु, इन प्रबंधों को **शिक्षा** में अपना लेने से **शिक्षा** का मानवीकरण संभव हो सकेगा। ऐसे **आवर्तनशील अर्थचिंतन, व्यवहारवादी समाजशास्त्र और मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान** सहज ऐश्वर्य से संपन्न होने के लिए **समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद और अनुभवात्मक अध्यात्मवाद** की आवश्यकता, अनिवार्यता हैं ही, जो पहले स्पष्ट की जा चुकी हैं। ये सब उपलब्ध हो गए हैं। इन छ: प्रबंधों को पाने के लिए अस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान और मानवीयता पूर्ण आचरण के प्रतिपादन सहज रूप में, मध्यस्थ दर्शन प्रतिपादित हुआ है। जो **स्वयं "मानव व्यवहार दर्शन", "मानव कर्म दर्शन" "मानव अभ्यास दर्शन**" और **"मानव अनुभव दर्शन"** की अभिव्यक्ति हैं। इस दर्शन के आधार पर वाद और शास्त्र निर्गमित हुआ। इसे मानव परंपरा में अर्पित करने का संकल्प स्वयं प्रेरित है। इस अनुसंधान के मूल में, अव्यवस्था की समझ में जो पीड़ाएँ थीं, उन्हें दूर करना ही प्रधान कारण रहा है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर:150-152)**

- जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान एवं मानीवयता पूर्ण आचरण ज्ञान ही जागृति और उसके वैभव का स्वरूप है। मानव का सहज शरण मानवत्व ही है। प्रत्येक मानव इस बात को, अपने में ही परीक्षण कर सकता हैं कि मानवत्व किस प्रकार से त्राण और प्राण हैं। इस परीक्षण से यह पता लगा है कि मानवत्व (मानव में, से, के लिए व्यवस्था सूत्र) ही जीवन त्राण का स्वरूप हैं। दूसरी भाषा में जागृति सहज जीवन बल का स्वरूप हैं। समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व इस प्रेरणा का स्वरूप हैं। इस ढंग से मानवत्व की प्रेरकता और कारकता अथवा त्राण स्पष्ट होता है। त्राण से ही प्रेरणायें बलवती और फलवती होती हैं। प्रेरणाओं को फलवती होना ही त्राण की तृप्ति हैं। इस प्रकार त्राण और प्राण, पूरकता विधि से कार्य करते हुए, यह प्रमाण स्वयं में, स्वयं से, स्वयं के लिए प्रमाणित होता हैं। यही जीवन सहज दसों क्रियाओं में सामरस्यता, समाधान और व्यवस्था का प्रमाण हैं। इस प्रकार सह-अस्तित्व में जीवन के समाधान सहज रूप में प्रमाणित होने की संभावना स्पष्ट होती हैं और इसे प्रमाणित कर देखा गया है।

मानव में समाधान परंपरा प्रामाणिकता पूर्ण परंपरा ही वैभव है। ऐसी सहज परंपरा क्रम में प्रत्येक मानव ऐसी परंपरा में अर्पित होकर, जो एक व्यक्ति ने परम ज्ञान, परम दर्शन एवं परम आचरण किया हैं, उसे सभी व्यक्ति पा सकते हैं, आचरण कर सकते हैं। इसी के आधार पर मानव परंपरा में समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व प्रमाणित हैं। सह-अस्तित्व को जो एक व्यक्ति प्रमाणित करता है, उसे प्रत्येक व्यक्ति प्रमाणित कर सकता है। जो एक व्यक्ति "परम-त्रय" के आधार पर व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलम्बन को प्रमाणित करता हैं, उसे प्रत्येक व्यक्ति प्रमाणित कर सकता है। जो एक व्यक्ति में स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, "परम-त्रय" के आधार पर प्रमाणित करता है, उसे प्रत्येक व्यक्ति प्रमाणित कर सकता है। यही मानव परंपरा का संस्कारानुषंगी गरिमा, महिमा और वैभव हैं।

अभी इस क्रम में अर्थात् उपरोक्त कहे गये क्रम में, अस्तित्व में कुछ और अवस्था जुड़कर अथवा पाँचवीं अवस्था जुड़कर सर्व कल्याण मार्ग प्रशस्त होने की कल्पनाओं को क्यों नहीं किया? इसके उत्तर में इस बात को स्पष्ट किया कि:-

1. प्रत्येक मानव जागृत होना चाहता है।
2. प्रत्येक मानव जागृत होने के लिए "परम-त्रय" विधि को अपना सकता है।
3. प्रत्येक व्यक्ति जागृति और प्रामाणिकता पूर्वक ही व्यवस्था है और व्यवस्था में भागीदारी कर सकता है।
4. प्रत्येक मानव में "परम-त्रय" विधि से जागृति समीचीन है।

इसलिए और कोई आगे अवस्था पैदा होगी, उस समय में अर्थात् कल्पनातीत लंबे समय के बाद सर्वशुभ होने का दिन आवेगा, तब तक अपनी हविश पूरी कर लेवें। इस प्रकार की मनोगतवादी विधि से अपराधों को अपनाने को, इसे सवैध मानने की हांठवादिता को त्याग देना चाहिए। मानवीयता में संक्रमित होना चाहिए और जागृत परंपरा को स्थापित कर लेना चाहिए। जिसमें मानवीयता पूर्ण शिक्षा, मानवीयता पूर्ण संविधान, परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था जिसमें सबकी भागीदारी को पा लेना ही सर्व शुभ स्थिति का, गति का प्रमाण हैं। यह मानव के लिए समीचीन है, इसीलिए मानवीयता में परिवर्तित होने की सहज सहमति सर्वाधिक मानव में प्रस्तुत है ही। अभी तक अव्यवस्था पर आधारित **शिक्षा** तथा परंपरा से छुटकारा पाने का विकल्प नहीं रहा हैं, इसीलिए सर्वाधिक मानव छटपटाते आया है। इस तरह जिस विकल्प की तलाश था, वह आ चुका है और किसी अवस्था के इंतजार की आवश्यकता नहीं है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:158 -160)**

- अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का मूल सूत्र एक ही हैं यह है समाधान। समाधान=सुख। समाधान=व्यवस्था। संबंधों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन क्रिया- ये समाधान है। फलस्वरूप सुखी होना पाया जाता है।

स्वयं में व्यवस्था, व्यवस्था में भागीदारी ही समाधान, समाधान ही सुख, शांति, संतोष, आनंद है। मानव धर्म सुख ही है। यह जागृति का द्योतक हैं।

न्याय पूर्वक सुख और शांति, व्यवस्था पूर्वक शांति और संतोष, तथा अनुभव पूर्वक संतोष और आनंद जीवन में प्रमाणित होता है। प्रत्येक मानव इसे अनुभव कर सकता है। ऐसे अखण्ड समाज- परिवार मूलक व्यवस्था, विश्व परिवार में व्यवहार रूप दे सकता है। व्यवस्था कम से कम 100 से 200 परिवारों के बीच में, अर्थात् 1000 से 2000 जनसंख्या के बीच स्वायत्त विधि से सफल हो सकती है। स्वराज्य की परिभाषा ही हैं-स्वयं का वैभव, स्वयं का स्वरूप मानव, मानव के समान वस्तु जीवन है। जीवन का संबोधन "स्वयं" अथवा "स्व" है। इस प्रकार जीवन का वैभव ही राज्य है। अस्तु, जीवन का वैभव- स्वराज्य। जीवन वैभव जागृति की अभिव्यक्ति हैं। जागृति का अर्थ सर्वतोमुखी समाधान एवं प्रामाणिकता है। इसका व्यवहार रूप परिवार परंपरा में समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व है। यही एक परिवार से विश्व परिवार तक प्रमाणित होने की वस्तुएँ हैं। इसके क्रियान्वयन क्रम में सर्वमानव के लिए न्याय सुलभता, उत्पादन सुलभता, विनिमय सुलभता लक्ष्य है। इसकी अक्षुण्णता के लिए शिक्षा-संस्कार, स्वास्थ्य-संयम सहज सुलभ रहेगा। इसको ही ग्राम स्वराज्य व्यवस्था का रूप देने के क्रम में दस सदस्यीय परिवार स्वयं अपने एक परिवार के प्रतिनिधि को, पहचानने की व्यवस्था रहेगी। हर दस (10) परिवार से एक एक सदस्य "परिवार समूह सभा" के लिए निर्वाचन पूर्वक पहचान करेगा। ऐसे दस परिवार समूह सभा अपने में से एक एक व्यक्ति को ग्राम परिवार सभा के लिए निर्वाचन पूर्वक पहचान करेगा। ग्राम सभा में समाहित दस (10) व्यक्तियों में से सभा प्रधान को पहचाने रहेंगे। ग्राम सभा, "स्वराज्य कार्य संचालन" समितियों को, मनोनीत करेगी। ऐसी समितियाँ पाँच होगी-

1. शिक्षा-संस्कार समिति
2. न्याय सुरक्षा समिति
3. स्वास्थ्य संयम समिति
4. उत्पादन कार्य समिति
5. विनिमय कोष समिति

इन सबके अपने-अपने कार्य परिभाषित, व्याख्यायित रहेंगे।....**(अध्याय:8, पृष्ठ नंबर:180-182)**

- मानव का अध्ययन, विधिवत् करने पर पता चलता हैं कि मानव जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में हैं। जीवन जागृति पूर्वक तृप्त होता है। तब मानवीयता अपने आप व्यवहार में प्रमाणित होती हैं। अजागृति की स्थिति में जो मानव भ्रमवश व्यक्त होता है; वह अतिव्याप्ति, अनाव्याप्ति और अव्याप्ति दोषों के रूप में मूल्यांकित होता है। इस प्रकार मानव अजागृतिवश जिन स्वभावों को व्यक्त करता है, उसका स्वरूप निम्न तीन प्रकारों से गण्य होता है-

1. हीनता-जो छल, कपट, दंभ, पाखंड है।
2. दीनता- यह अभाव, अक्षमतावश प्रताड़ित रूप में देखने को मिलता है।
3. क्रूरता- यह परधन, पर-नारी, पर-पुरुष और पर-पीड़ा के रूप में देखने को मिलता है। यही अमानवीयता का स्वरूप हैं। यह भ्रमवश ही होने वाला प्रकाशन है।

मानवीयता मानव का स्वभाव है। यह जागृतिपूर्वक व्यक्त हो पाता है। जीवन ही जागृत होता है। व्यक्त करने वाला मानव ही हैं। यह तीन प्रकार से सार्थक होना पाया जाता है-

1. धीरता:- यह न्याय के प्रति निष्ठा, दृढ़ता और विश्वास के रूप में दिखाई पड़ता है। यह सब आचरण में प्रमाणित होते हैं। न्याय का मूल स्वरूप जो मानव में दिखाई पड़ता है, यह संबंधों की पहचान और मूल्यों का

निर्वाह है। संबंध परस्परता में रहता ही है, उसे पहचानना जागृति हैं। निर्वाह करना निष्ठा है। मूल्यांकन करना व्यवस्था सहज गति है।

2. वीरता:- यह धीरता सहज रूप में जो अभिव्यक्तियाँ होती हैं, वे रहते हुए दूसरों को न्याय सुलभ कराने में, अपने तन-मन-धन को नियोजन करता है।
3. उदारता:- यह जागृत सहज रूप में हैं। अविकसित के विकास में, संबंधों को निर्वाह करने में, श्रेष्ठता को सम्मान करने में, परिवार; ग्राम परिवार; विश्व परिवार की उपयोगिता-सदुपयोगिता विधि से तन-मन -धन रूपी अर्थ को सदुपयोग सुरक्षा करते हैं। इस प्रकार धीरता, वीरता, उदारता मानवीय स्वभाव के रूप में देखने को मिलता है।

आज भी किसी-किसी व्यक्ति में इसे सर्वेक्षित किया जा सकता है। इसे सर्व जन सुलभ करने की योजना और कार्य के लिए प्रयास कर सकते हैं। इस प्रकार मानव सहज मानवीयता पूर्ण स्वभाव सहज रूप में ही मौलिकता हैं। ऐसी मौलिकता प्रत्येक नर-नारी में जीता-जागता मिलने के लिए व्यावहारिकता में प्रमाणित होने के लिए, परम्परा जागृत रहना एक अनिवार्य स्थिति है। ऐसे मानव सहज मौलिकता किसी समुदाय में अभी तक सार्थक रहा हो, प्रमाणित रहा हो, व्यावहारिक रहा हो, संविधान और व्यवस्था में पहचान बन चुका हो**, शिक्षा** परंपरा में प्रवाहित हो चुका हो, संस्कार परंपराओं में मानवीयता को पहचाना हो, ऐसा कोई उदाहरण अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। इसलिए भी विकल्प की आवश्यकता, अनिवार्यता स्पष्ट होती है। **(अध्याय: 9 (1), पृष्ठ नंबर:195-197)**

- व्यवहार में आवश्यकीय जागृति, मानवीयतापूर्ण संचेतना में स्पष्ट हो जाती है। संचेतना का तात्पर्य ही हैं जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना। धीरता, वीरता, उदारता को जान लें, मान लें। मानव सहज मौलिकता सार्वभौम रूप में स्पष्ट होती है। मानव संचेतना सहज जागृति के उपरान्त स्वाभाविक रूप में मोक्ष का स्वरूप समझ में आता है। मोक्ष का स्वरूप हैं- भ्रम से मुक्ति। पूर्ण जागृति की स्थिति में मानव अस्तित्व में अनुभव और उसकी निरंतरता सहज स्थिति को पाता हैं। यही भ्रम मुक्ति रूपी मोक्ष की अवस्था अथवा जागृतिपूर्ण संचेतना की अवस्था है। ऐसी संचेतना मानव में ही होती है, वह भी व्यवहार मानव में प्रमाणित हो पाता है। जागृति के उपरान्त अथवा परम जागृति के उपरान्त मानव अपने आप में प्रामाणिक होता हैं और संबधों की पहचान के साथ ही दया, कृपा, करुणा के रूप में मौलिकताएँ अपने आप व्यक्त होती हैं। इन्हीं अभिव्यक्तियों को जागृति पूर्ण मानव अथवा भ्रम मुक्त मानव में प्रमाणित होना देख सकते हैं। जैसे ही मानवीयता पूर्ण परंपरा अर्थात् मानव संचेतना सहज परंपरा स्थापित होता है, इसके उपरान्त भ्रम मुक्ति सहज स्थिति, उसका प्रयोजन और उसका संभावना अपने आप समझ में आवेगा। अतएव, जागृति पूर्ण मानव की मौलिकता को:-

1. दया:- जिस किसी में जो कुछ भी पात्रता के लिए अर्हता हो उसके लिए वस्तुएँ उपलब्ध नहीं हो रही हों, ऐसी स्थिति में उनमें पात्रतानुकूल वस्तुओं को सुलभ करा देना ही, दया का व्यावहारिक प्रमाण है।
2. कृपा:- जिस किसी में भी वस्तु और प्राप्तियाँ हों उनके अनुरूप पात्रता न हो अर्थात् मानवीयतापूर्ण नजरिया सहित तन-मन-धन का उपयोग, सदुपयोग विधि से सम्पन्नता से है। उनमें पात्रता को स्थापित करा देना कृपा है।
3. करुणा:-जिस किसी में भी मानवीयता सहज पात्रता, योग्यता भी न हो और वस्तु भी उपल्बध न हो, उस स्थिति में उनको पात्रता और वस्तु तथा (उपयोग, सदुपयोग विधि) उपलब्धियों को सुलभ करा देना, यही करुणा का तात्पर्य हैं।

इस प्रकार दया, कृपा, करुणा सहज मौलिकता को मानव के कार्य, व्यवहार विन्यास में पहचाना जा सकता हैं। इसकी आवश्यकता रही हैं। यह मानव संचेतना पूर्ण व्यवहार, संविधान, **शिक्षा**-संस्कार- जब से मानव परंपरा में प्रमाणित

होगी तभी से दया, कृपा, करुणा संपन्न देव मानव, दिव्य मानव सहज व्यक्तित्व को परंपरा के रूप में पहचान सकेंगे, निर्वाह कर सकेंगे। मानव सहज मौलिकता की पहचान मानव परंपरा में होना एक अनिवार्य स्थिति हैं।

1. जागृतिपूर्ण मानव परंपरा का तात्पर्य मानवीय **शिक्षा**, अनुभव मूलक विधि से व्यवहार, व्यवस्थावादी व कारी **शिक्षा**, मानवीय संस्कार, मानवीय व्यवस्था अर्थात् परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था और मानवीयता पूर्ण आचार संहिता संविधान है। यह अविभाज्य रूप में वर्तमान मानवीयतापूर्ण परंपरा है।
2. मानवीय सभ्यता, संस्कृति, विधि, व्यवस्था में सामरस्यता मानवीयतापूर्ण परंपरा है।
3. जागृतिपूर्ण मानव परंपरा में समाधान, समृद्धि, अभय, सह- अस्तित्व सर्वसुलभता वर्तमान रहता है।
4. प्रत्येक परिवार के लिए, में, से न्याय सुलभता, उत्पादन सुलभता, विनिमय सुलभता वर्तमान होता है। **(अध्याय: 9 (1), पृष्ठ नंबर:197-199)**

- मानवीयता पूर्ण व्यवहार, व्यवस्था, संविधान, **शिक्षा**-संस्कार के साथ-साथ आहार, विहार, व्यवहार, व्यक्तित्व और प्रतिभा में संतुलन को प्रमाणित करने के लिए अति आवश्यक है। **(अध्याय:9 (1), पृष्ठ नंबर: 200)**

- धर्म गद्दी की असफलता:-शक्ति केन्द्रित शासन रूपी राज्य और अनुग्रह, वरदान, मोक्ष जैसे आश्वासन रूपी धर्म; अनुग्रह, वरदान, मोक्ष पाने के लिए तमाम प्रकार की साधनाएँ, तप, अभ्यास जैसी बातें धर्म के रूप में देखने को मिली। हर परंपरा में जो साधना किया, उसी परंपरा का सम्मान बढ़ते गया। परंपरा में साधना का तात्पर्य समुदाय परंपरा में प्रचलित साधना के उपक्रम से है। प्रत्येक साधक जो अथक परिश्रम से तप और अभ्यास किया, जितना समय भी किया, वह सब व्यक्ति पूजा में समा गया। जबकि प्रमाण परंपरा अपेक्षित रहा, वह अभी भी प्रतीक्षित है। ऐसी कोई साधना, उपक्रम, ज्ञान, दर्शन, कर्मकाण्ड, **शिक्षा**, संस्कार, अभ्यास नहीं निकल पाया जो सर्वशुभ समाधान सहज हो। कम से कम अधिकांश महापुरुष, यति, सती, संत, सिद्ध, तपस्वी, योगी इस धरती में स्थित अनेक समुदाय संबंधी कटुताएँ दूर करने के पक्ष में थे। उनसे भी उन-उन समुदायों संबंधी कटुताएँ दूर नहीं हो पाई। हर समुदाय में कर्म, धर्मशास्त्र लेकर चलने वाले समुदाय, ज्यादा से ज्यादा कट्टरता का परिचय दिये। जिसको सामान्य मानव ने यंत्रणा के रूप में पाया।....**(अध्याय: 9 (4), पृष्ठ नंबर: 235)**

- अस्तित्व सहज राज्य, धर्म, समाज व्यवस्था और उसकी निरंतरता की व्याख्या:- मूलत: अस्तित्व ही वैभव है, वैभव ही राज्य हैं। अस्तित्व में मानव का अविभाज्य होना भी स्पष्ट हो गया हैं। सह-अस्तित्व के रूप में ही संपूर्ण वैभव हैं, क्योंकि सत्ता में सभी अवस्थाएँ अविभाज्य हैं। इनका अलग-अलग विभाजित कर देखना संभव नहीं है। सत्ता में सभी अवस्थाएँ समाहित होना दिखाई पड़ता हैं। सत्ता व्यापक है। सत्ता न हो, ऐसी किसी स्थली की कल्पना भी नहीं हो सकती है। सत्ता में ही संर्पूण वस्तुओं का होना पाया जाता हैं अर्थात् अस्तित्व ही संपूर्ण वस्तु है। सह-अस्तित्व ही मूलत: सम्पूर्ण अस्तित्व हैं। इस प्रकार समग्रता सहज अविभाज्यता का मूल सूत्र अथवा परम सूत्र सत्तामयता में संपृक्त प्रकृति ही है। इसलिए सत्ता में ही सम्पूर्ण अवस्थाएँ नियमित, नियंत्रित, संतुलित और समाधानित रहना देखने को मिलता हैं। इन सभी तथ्यों में सह-अस्तित्व ही परम सौंदर्य, परम सुख एवं परम समाधान और परम सत्य हैं। अस्तित्व स्वयं सह-अस्तित्व हैं। ऊपर वर्णित विश्लेषणों, निष्कर्षों के आधार पर धर्म और राज्य का मूल रूप सह-अस्तित्व नित्य व्यवस्था होना ही इंगित होता हैं। क्योंकि सह-अस्तित्व सहज कार्यकलाप और वैभव ही हैं सम्पूर्ण "त्व" सहित व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी का ताना-बाना। कोई भी अवस्था और ऐसी कोई इकाई दिखाई नहीं पड़ती है, जो इस ताना-बाना से अलग रहे। खूबी यही है कि सत्ता स्वयं अस्तित्व में अविभाज्य हैं। इस प्रकार अस्तित्व अपने में सम्पूर्ण स्वरूप और वैभव है। यही व्यवस्था है। इसलिए मानव का स्वयं में व्यवस्था होना और व्यवस्था में भागीदारी सहज कार्य में अपने को वैभवित कर पाना ही कर्म-स्वतंत्रता कल्पनाशीलता का तृप्ति बिंदु हैं।

कल्पनाशीलता का तृप्ति स्वराज्य व्यवस्था में हो जाता हैं। इसकी निरंतरता का सहज वैभव होता है। यही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का वैभव हैं। इसी में प्रत्येक मानव मानवत्व सहित व्यवस्था है और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण प्रस्तुत कर पाता है। यही परिवार मानव होने के आधार पर परिवार मूलक विधि से सर्वसुलभ हैं, यह समझ में आता हैं। अस्तु, परिवार मूलक विधि से गुंथा हुआ विश्व परिवार ही, समाज रचना का क्रियाकलाप है और निरंतर गति है। ऐसे परिवार का भी व्यवस्था का स्वरूप होना स्वाभाविक है। व्यवस्था, अपने आप में न्याय, उत्पादन, विनिमय में भागीदारी है। यह परिवार से विश्व परिवार पर्यन्त सूत्रित व्याख्यायित तथ्य है। इन आधारों पर "व्यवस्था समाज का वैभव हैं और धर्म समाज का स्वरूप हैं।" मानव का मानवत्व सहित व्यवस्था होना समाज हैं और समग्र व्यवस्था हैं - न्याय, उत्पादन, विनिमय में भागीदारी। यही समग्र व्यवस्था का तात्पर्य है। इनकी निरंतरता के लिए दूसरी भाषा में, मानव परंपरा में व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी निरंतर वैभवित होने के लिए, मानवीय **शिक्षा-संस्कार** और स्वास्थ्य-संयम रूपी स्रोत के साथ ही मानव परंपरा का जागृत वैभव स्पष्ट हो जाती है। **(अध्याय:9 (4), पृष्ठ नंबर: 240-242)**

- मानव हर हालत में सुख ही चाहता हैं, न जानते हुए भी समाधान ही चाहता है। इसके बावजूद समस्या उत्पन्न कर देता हैं। मानव के चाहने और होने के बीच में जानना, मानना, पहचानना एक आवश्यकता है। समुदाय परंपरा में प्रत्येक व्यक्ति अर्पित रहता है। प्रत्येक समुदाय परंपरा इस दशक तक भ्रमित है, इसका साक्ष्य ही है कि मानव सर्वतोमुखी समाधान, सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज और इनमें पारंगत और भागीदार होने के सारे अध्ययन को और प्रमाणों को **शिक्षा** पूर्वक संस्कार पूर्वक, संपन्न नहीं कर पाये हैं। **(अध्याय:9 (4), पृष्ठ नंबर:242-243)**

- जानना, मानना, पहचानना ही संस्कार है। संस्कारानुषंगीयता ही मानवीय व्यवस्था का आधार है:- दृष्टिगोचर, ज्ञान गोचर में से पहले सह-अस्तित्व में ही पदार्थावस्था, "त्व" सहित नियम को परिणामानुषंगीय विधि से, संपन्न कर देते हैं। यही पदार्थावस्था के नियमित रहने का तात्पर्य है। प्राणावस्था में नियमित विधि से "त्व" सहित व्यवस्था बीजानुषंगीय प्रक्रिया पूर्वक नियंत्रित रहना पाया जाता है। जीवावस्था अपने "त्व" सहित व्यवस्था को वंशानुषंगीय विधि से संतुलित रूप में प्रमाणित करते हैं। मानव ज्ञानावस्था में एक मौलिक वैभव हैं। यह वैभव दृष्टा पद व जागृति सहज प्रमाणों के रूप में परंपरा है। ऐसा दृष्टापद जागृति सहज परंपरा में निरंतर सफल होता है। मानव परंपरा संस्कारनुषंगीय अभिव्यक्ति हैं। वंशानुषंगीयता केवल शरीर तक ही प्रक्रियाबद्ध है। मानव की अभिव्यक्ति जीवन प्रधान हैं, न कि शरीर प्रधान। यद्यपि शरीर और जीवन के संयुक्त रूप में ही मानव ख्यात है। जीवन में ही संस्कारों की स्वीकृति और जागृति प्रमाणित होती हैं। संस्कार जानने, मानने, पहचानने और प्रमाण रूप में निर्वाह करने की प्रक्रिया हैं। इसकी जागृति जानना, मानना को पहचानना और निर्वाह करना ही है। संस्कार प्रक्रिया परिवार परंपरा में, से, के लिए प्रदत्त होती है। संस्कार प्रक्रिया का यही प्रमाण हैं और **चेतना विकास मूल्य शिक्षा** संस्कार है। इस प्रकार संस्कार परंपरा और विधि प्रक्रिया के रूप में संस्कार स्पष्ट हो जाता है। यही मानव संचेतना सहज महिमा है। मानव का संपूर्ण संस्कार व प्रमाण जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना ही है। यह निर्भम विधि से न्याय, धर्म, सत्य सहज प्रकाशन है। अर्थात् निर्भम पूर्ण विधि से प्राप्त जानना, मानना, पहचानना और निर्वाह करना स्वयं न्याय, धर्म, सत्य का प्रमाण ही है। यही मानवीयतापूर्ण अभिव्यक्ति, संप्रेषणा और प्रकाशन सहज रूप में व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी है। **(अध्याय:9 (4), पृष्ठ नंबर: 246-247)**

- न्याय:- संबंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति है। मौलिकता न्याय का स्वरूप सहज रूप में ही संबंध मूल्य और मूल्यांकन ही है। यह मानव संबंध, नैसर्गिक संबंध और उत्पादन सबंध के रूप में स्पष्ट होता है। मानव संबंध व्यवहार सूत्र का स्वरूप हैं। नैसर्गिक संबंध पूरकता सहज सत्यता हैं। उत्पादन संबंध उपयोगिता सहज सबंध हैं। इनमें उपयोगिता को प्रमाणित करने के लिए प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम नियोजन और कला मूल्य की स्थापना और उसके मूल्यांकन के रूप में हैं। आवर्तन विधि संपन्न विनिमय प्रक्रिया पूर्वक व्यवहारिक होना पाया जाता हैं मानव संबंध समाज रचना का आधार है। परिवार मूलक विधि से समाज रचना निरंतर सहज है। मानवत्व ही परिवार संबंधों की तृप्ति का सूत्र है। परिवार ही विश्व परिवार के रूप में अखण्ड समाज है। परिवार रचना के साथ व्यवस्था की अभिव्यक्ति एक अनिवार्य स्थिति है। व्यवस्था सहज अभिव्यक्ति क्रम में न्याय, विनिमय और उत्पादन प्रधान प्रक्रिया है। न्याय प्रक्रिया में स्थापित एवं शिष्ट मूल्यों का मूल्यांकन मौलिक है। विनिमय प्रकिया में श्रम मूल्यों का मूल्यांकन मौलिक है। उत्पादन कार्यों में अथवा उत्पादन विधि में श्रम नियोजन मौलिक है। इस प्रकार मौलिकता त्रय पूर्वक सार्वभौमिकता और अक्षुण्णता सहज होता है। इसी अभिव्यक्ति के लिए मानवीय **शिक्षा-संस्कार** और स्वास्थ्य-संयम आवश्यकीय कार्यक्रम हैं। इसी के आधार पर सार्वभौम व्यवस्था और अखण्ड समाज रचना के लिए, मानव का जागृत होना पाया जाता है। **(अध्याय: 9 (4), पृष्ठ नंबर : 247-248)**

- जागृत मानव परम्परा का प्रभाव **शिक्षा-संस्कार**, संविधान और व्यवस्था के रूप में देखने को मिलता है। वर्तमान परंपरागत विधियों से अप्राप्ति की प्राप्ति तथा अज्ञात का ज्ञात होना संभव नहीं हैं। इसलिए अस्तित्व सहज वैभव का चिंतन, साक्षात्कार, विचार, अनुभव, व्यवहार, व्यवस्था, संविधान, अध्ययन बनाम **शिक्षा-संस्कार-** बनाम दर्शन-ज्ञान सहज रूप में जीना, क्रियारत रहना अनिवार्य हो गया। इस क्रम में अस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण, मानवीय व्यवस्था, मानवीय संविधान, मानवीय **शिक्षा**, मानवीय संस्कार सर्व सुलभ होने का मार्ग प्रशस्त होता है। इन मूलभूत सिद्धांतों को हृदयंगम करना एक आवश्यकता है। अनुभव पूर्वक मानव के दृष्टा पद में होने की साक्षी में ही मूलभूत सिद्धांतों को समझा गया है।

1. मानव जाति एक, कर्म अनेक।
2. मानव धर्म एक, मत अनेक।
3. सत्ता व्यापक रूप में एक, देवता अनेक।
4. यह धरती एक (अखण्ड राष्ट्र) राज्य अनेक।

उक्त चार एकता और अनेकता का सिद्धांत समझ में आता है। अस्तित्व सहज प्राकृतिक रूप में अथवा सह-अस्तित्व के रूप में एकता अपने आप स्पष्ट है। मानव समुदाय की भ्रमित मान्यताओं एवं इन यथार्थताओं में मतभेद ही समस्या के रूप में स्पष्ट है। **(अध्याय: 9 (5), पृष्ठ नंबर : 252-253)**

- परिवार मूलक विधि से परिवार मानव होने के प्रमाण के रूप में, संबंधों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह करता हैं, फलस्वरूप समाधान होता है।

मानव, मानवीय **शिक्षा-संस्कार** पूर्वक, जीवन-ज्ञान और अस्तित्व दर्शन सहज जागृति संपन्न होता है। फलस्वरूप सर्वतोमुखी समाधान जैसे- अस्तित्व में सह-अस्तित्व, विकास, जीवन, जीवन जागृति, रासायनिक-भौतिक रचना-विरचना संबंधी निर्भ्रम ज्ञान संपन्न होता है। इसके फलस्वरूप, सर्वतोमुखी समाधान सहज अभिव्यक्ति होती है।

मानवीयतापूर्ण आचरण मूल्य, चरित्र, नैतिकता का अविभाज्य समाधानों को अभिव्यक्त करता है। फलस्वरूप समाधान प्रमाणित होता है।

स्वास्थ्य, संयमपूर्वक जागृति (सहज) को अभिव्यक्त करता है, फलस्वरूप सर्वतोमुखी समाधान सुलभ होता हैं।

मानव के जागृति सहज अभिव्यक्ति क्रम में वह आवर्तनशील अर्थ व्यवस्था को समझ पाता हैं और निर्वाह कर पाता है, इसलिए समाधान होता हैं।

जागृत मानव, अभिव्यक्ति सहज रूप में, मानव सहज व्यवहार में सफल हो जाता है। यह संबंधों, मूल्यों, मूल्यांकनों, दायित्वों, कर्तव्यों को निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित होता है। इसलिए समाधानित होता है।

जागृत मानव की प्राप्त सत्तामयता में ये सहज स्थिति और गति होती है। अर्थात् अभिव्यक्ति, संप्रेषणा और प्रकाशन होता है। फलस्वरूप समाधानित होता है।

जागृत मानव मानवीयता पूर्ण आचरण करता ही है जीवन ज्ञान और अस्तित्व दर्शन ज्ञान संपन्न रहता है। इसलिए मानवीयतापूर्ण आचरण रूपी संविधान के प्रति जागृत रहता है, अत: समाधानित रहता है।

जागृत मानव, सहज रूप में, जागृतिपूर्ण संचेतना का प्रमाण संपन्न रहता है। इसलिए मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान अर्थात् मानसिकता सहज रूप में जीने की कला को व्यक्त करता है, फलत: समाधान ही होता है।

इसलिए मानव अपनी ही जागृति पूर्वक अथवा जीवन जागृतिपूर्वक सर्वतोमुखी समाधान सहज अभिव्यक्ति है यह समझ में आता है। इस प्रकार मानव धर्म सतत् वर्तमान है, समीचीन है। जागृत होना मानव की दीक्षा है, अभीप्सा है। इसकी संभावना है, इसलिए मानव धर्म के प्रति जागृति एक आवश्यकता है। अस्तु, मानव धर्म को खण्ड-विखण्ड नहीं किया जा सकता है, क्योंकि अखण्ड समाज के रूप में सार्वभौम व्यवस्था ही मानव धर्म है। समाधान का प्रमाण ही सुख हैं, सुख मानव धर्म है। इस प्रकार मानव से, मानव धर्म का वियोग होता नहीं, क्योंकि समाधान सार्वभौम है। इसलिए इसका प्रभाव सुख सार्वभौम हैं। समाधान अखण्ड है, भाग- विभाग होता नहीं। **(अध्याय:9(5), पृष्ठ नंबर: 257-258)**

- ....ऐसे शरीर को चलाने वाला जीवन ही होता हैं। जो आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा एवं प्रमाण के रूप में ही शरीर संचालन में प्रमाणित होता हैं। ऐसा जीवन शरीर को, जीवंतता प्रदान किये रखता है। आशा आदि के अनुरूप इंद्रियाँ संचालित हो पाती हैं। इस विधि से, शरीर और जीवन को संयुक्त रूप में होना सहज रहा है। जीवन, अपने अनुसार, जागृति क्रम में जागृति पूर्णता को व्यक्त करने के लिए मानव शरीर को संचालित करता है। यह परंपरा में प्रमाणित है। (जीवन, शरीर को जीवंतता प्रदान करने के क्रम में भ्रमवश शरीर को, जीवन मानना आरंभ करते हुए, न्याय का याचक (न्याय पाने के इच्छुक) सही कार्य-व्यवहार करने को इच्छुक और सत्य वक्ता के रूप में होने की स्थिति में, जीवन का आशय पूरा होना सहज नहीं हैं। अभी तक जागृत परम्परा न होने के कारण, आकस्मिक रूप में ही कोई-कोई जागृत हो पाते हैं। जिसके लिए अप्रत्याशित विधियों को अपनाना भी पड़ता हैं। परंपरा से, जीवन की प्रत्याशा, न्याय प्रदायिक क्षमता प्रमाणित होने के लिए दिशा, ज्ञान, दर्शन और आचरण परंपरा में प्रमाण के रूप में मिल जाए, उसके आधार पर प्रत्येक विद्यार्थी को संस्कार पूर्वक **शिक्षा** मिल जाए, यही मूल आवश्यकता है।) इसी के साथ सही कार्य-व्यवहार करने को प्रमाणों सहित अभ्यास संपन्न होने की संस्कार व्यवस्था, कार्य व्यवस्था सुलभ रूप में परंपरा से सबको मिलने पर ही तथा सह-अस्तित्व रूपी परम सत्य में अनुभव करने का मार्ग स्पष्ट हो जाने से ही मानव परंपरा का गौरव प्रमाणित होता हैं। ऐसी परंपरा को लाने के लिए, स्थापित होने के लिए, समाधानात्मक भौतिकवाद एक कड़ी हैं। और इस क्रम में यह तथ्य अवगाहन होना एक आवश्यकीय तत्व है कि जो जिससे बना रहता है अर्थात् जिससे रचित होता है चाहे कितनी भी बड़ी रचना हो, मूलत: जो वस्तु है वह समूची रचना उतनी ही है। जैसे - यह धरती निश्चित संख्यात्मक प्रजात्यात्मक परमाणुओं, अणुओं, कोषाओं से रचित रचनाएँ यह पूरी धरती उसी के समान ही है। **(अध्याय: 9 (7), पृष्ठ नंबर: 276-277)**

- उद्योग, आवश्यकता, संबंध और संतुलन-

मानव का निरीक्षण करने पर पता लगता है कि परिवार मानव विधि से मानव में आवश्यकताएँ प्रतीत होती हैं। परिवार मानव का तात्पर्य एक से अधिक समझदार मानव परस्पर संबंध को पूरक विधि से पहचानने के फलस्वरूप आवश्यकताएँ अपने आप प्रतीत होती हैं। प्रतीत का तात्पर्य - प्रत्येक रूप में प्रमाणित होने का प्रयास उदय हैं। इसे प्रत्येक दो या दो अधिक मानव परस्परता में पूरकता की अपेक्षा करता हो, विश्वास करता हो ऐसी स्थिति में ही आवश्यकताएँ समझ में आती हैं। यथा जानने, मानने में आता हैं, फलस्वरूप प्रयासोदय होना पाया जाता है। प्रयासों की प्रक्रिया रूप में प्राकृतिक ऐश्वर्य पर विशेषकर वन, खनिज पर श्रम नियोजन होना, फलस्वरूप आवश्यकता के रूप में प्राकृतिक ऐश्वर्य परिवर्तित होना पाया जाता हैं।

1. पत्ते से तन ढंकना है, तो उसके लिए समुचित प्रक्रिया करना ही होगा। तभी पत्ते से तन ढंकने की आवश्यकता पूरी होगी।
2. यदि पेड़ के छालों से तन ढंकना है, उस स्थिति में आने के लिए भी समुचित प्रक्रिया करना ही होगा। तभी तन ढंकना बन पाएगा।
3. रुई से तन ढंकने की जब बारी आई, तब उसके लिए समुचित प्रक्रिया मानव ने प्रमाणित की। फलस्वरूप कपड़े से मानव तन ढंकता हुआ देखने को मिला।
4. पत्तों से यदि आवास, फूस से आवास, झाड़ो से आवास, झाड़ पत्ते, फूल से आवास बनाने की आवश्यकता के आधार पर ही प्रक्रियायें प्रमाणित होती हैं।

तो इसी क्रम में मिट्टी, पत्थर के संयोग से मकान; लोहा, सीमेंट से मकान; लकड़ी, लोहा, मिट्टी, पत्थर, सीमेंट से मकान की आवश्यकता के साथ-साथ विविध प्रकार-आकार वाले आवासों को आज देखा जा रहा है। इसे आज मानव की आवश्यकता के आधार पर प्रसवित अथवा उत्पन्न कल्पनाशीलता और उसके क्रियान्वयन क्रम में प्रमाणित प्रक्रियाएँ स्पष्ट हुई हैं, इसी क्रम में गतिशील यंत्रों का धारक-वाहक, यंत्रों की आवश्यकता के आधार पर अनेकानेक यंत्रों की परिकल्पाएँ और प्रक्रियाएँ प्रमाणित हुई। इन आवश्यकताओं के साथ ही, उत्पादन के रूप में प्रक्रियाएँ प्रमाणित करते आए। इसी प्रक्रिया में पारंगत होने, प्रमाणित करने की भूमिका को मानव ने निर्वाह किया। इन्हीं प्रक्रियाओं को तकनीकी नाम दिया गया। ऐसी प्रक्रियाओं को विधिवत् प्रशिक्षित करने को, शिक्षित करने का, कर्माभ्यास करने का प्रावधान मानव परपंरा ने स्थापित कर लिया। यही तकनीकी **प्रौद्योगिकी विज्ञान-शिक्षा** कहलाता है। इस समय में अर्थात् बीसवीं शताब्दी के अंत में दूरश्रवण, दूरगमन, दूरदर्शन संबंधी और भारवाहक संबंधी सभी यंत्रों को मानव परंपरा ने प्राप्त कर लिया। ये सब उपलब्धियाँ मानव को अच्छी भी लग रही हैं। मानव में इसे बनाये रखने की इच्छा और संकल्प भी समझ में आता हैं। मानव ने ही इन सब यंत्रों का निर्माण किया है।... **(अध्याय:9 (10), पृष्ठ नंबर:301-302)**

- मानव सहज शरीर यात्रा, जीवन और शरीर के संयुक्त यात्रा के प्रयोजनों को देखने पर पता लगता है कि जागृति अर्थात् जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना, उसकी तृप्ति और निरंतरता का होना ही हैं। यही प्रामाणिकता, स्वानुशासन, सर्वतोमुखी समाधान, समृद्धि, अभय और सह-अस्तित्व के रूप में प्रमाणित होना ही है। यही व्यवसाय, व्यवहार, समाज व्यवस्था, विचार और अनुभव सहज रूप में वांछित, आवश्यकीय चिरप्रतीक्षित घटना है अथवा उपलब्धि है। उल्लेखनीय बात यही है कि अब संपूर्ण सौभाग्य, मानव के लिए करतलगत होना संभव हो गया है। इस क्रम में प्रत्येक मानव, प्रत्येक परिवार, सम्पूर्ण मानव के तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग एवं सुरक्षा सहज रूप में होगी। फलस्वरूप पर्यावरणीय नैसर्गिक समस्या, प्रदूषण समस्या, न्याय समस्या, सुरक्षा समस्या, उत्पादन समस्या, विनिमय समस्या, **शिक्षा-संस्कार** समस्या और स्वास्थ्य-संयम समस्याएँ दूर होंगी। **(अध्याय: 9 (10), पृष्ठ नंबर : 317-318)**

- ......जल संरक्षण क्रम में अधिकाधिक जल को एकत्रित कर रख लेना, कृषि के लिए, हरियाली के लिए उपयोगी होना पाया जाता हैं। उसी के साथ-साथ वातावरण सहज ऊष्मा के प्रभाव से जब धरती से पानी का वाष्पीकरण होता है, वह जितना अधिक होगा, उतना ही अधिक वर्षा होने की संभावना बन पाता है। इसमें यह भी ध्यान देने की बात आती है कि जैसे-जैसे युद्धोन्माद और लाभोन्माद घटता जायेगा वैसे ही क्रम से समुद्र, धरती का वायुमंडल, धरती के भीतर जो खलबली मानव ने उन्मादवश पैदा किये हैं, वह शनै:-शनै: कम होने की संभावना बनती हैं। अभय सहज मानव परंपरा में युद्ध की आवश्यकता शनै:-शनै: कम होते हुए कुछ समय के अनंतर शून्य हो जाता है। अर्थात् नियंत्रित हो जाता है अर्थात् जागृति सहज नियंत्रण प्रभावशील होता है। दूसरा, अपव्यय समाप्त होने लगता हैं। सद्व्यय, सार्थकता, सुरक्षा अवतरित होने लगती है। फलस्वरूप आवश्यकताएँ संयत हो जाती है। उत्पादन की तादाद वह भी यांत्रिकता संबंधी वस्तुओं का (अनावश्यक) उत्पादन न्यूनतम होते जाता हैं। फलस्वरूप इससे संबंधित वस्तुओं की आवश्यकता कम हो जावेगी। सदुपयोग की विधि में आज भी यंत्रों का उपयोग न्यूनतम हो जाता हैं। सुविधा, मनमौजी, रंगरैली कार्यक्रमों के लिए भय तथा प्रलोभन नहीं रहता। भ्रमवश लाभोन्मादी, कामोन्मादी, भोगोन्मादी विधि से आज सर्वाधिक यांत्रिक उपकरणों का उपयोग होता हुआ आंकलित होता हैं। ये सब इसमें से व्यर्थता जिन-जिन में मूल्यांकित होता है, कम होना स्वाभाविक है। यंत्र दूरसंचार, दूरदर्शन समाज गति के अर्थ में अवश्य रहेगा, जो परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था (जो एक परिवार में विश्व परिवार रूप में समाज रचना, उसकी व्यवस्था) का तालमेल बनाए रखने के लिए उन यंत्रों का उपयोग, सदुपयोग और प्रयोजनशीलता रहेगी। हर परिवार मानव के लिए हर देश, हर काल में समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व सहज विधि से जीने की कला वर्तमानित रहेगी।

  ऊपर कहे अनुसार व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी को जीता हुआ मानव में उत्सवशील रहने के आधार पर अपव्ययता अपने आप समाप्त हो जाती है। इसलिए यंत्रों की आवश्यकता कम हो जावेगी। फलत: कोलाहल, भय, सशंकता समाप्त होती जायेगी; उत्साह, उत्सव, नित्य उमंग निरंतर उद्गमित होता जायेगा। फलस्वरूप सुख, समाधान, सौंदर्य बोध निरंतर सुलभ रहेगा। इसलिए चंचलता-कौतूहल अपने आप समाप्त होते जाएगा। हर यात्रा; परीक्षण, निरीक्षण, सर्वेक्षण, **अध्ययन, अध्यापन** और व्यवस्था में श्रेष्ठता के ध्रुवों पर **शिक्षा** प्रदान करना और **शिक्षा** ग्रहण करने के अर्थ में परंपरा सहज होगा। **(अध्याय :9 (10), पृष्ठ नंबर : 324-325)**

- परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था विधि से ही न्याय-सुलभता और लाभ-हानि मुक्त विनिमय सुलभता संभव हो जाती हैं। ऐसा संभव होने पर संग्रह के स्थान पर समृद्ध होना ही है। प्रत्येक परिवार मानव आवश्यकता से अधिक उत्पादन करने के क्रम में समृद्धि का अनुभव करता है। न्याय सुलभ होने से मानव वर्तमान में विश्वास करता ही है। फलत: सभी ओर समाधान नजर आता है। इसी सत्यतावश समृद्धि सहित परिवार मानव व्यवस्था के रूप में प्रमाणित हो जाता है।

  हर परिवार में आवश्यकता से अधिक उत्पादन होने के आधार पर प्रत्येक परिवार में शरीर पोषण, संरक्षण और समाज गति के अर्थ में निश्चित उत्पादन-कार्य विधिवत् निर्धारित रहना संभव हो जाता हैं। फलस्वरूप उत्पादन सुलभता का अनुभव होना सहज है। इस प्रकार न्याय सुलभता, उत्पादन सुलभता, विनिमय सुलभता सहज आवर्तनशील वैभव, स्वयं नित्य उत्सव के रूप में स्वराज्य व्यवस्था को प्रमाणित कर देता है। ऐसे उत्सव के अभिन्न अंगभूत मानवीय **शिक्षा-संस्कार** और स्वास्थ्य संयम सहज कार्यक्रम मानव कुल में व्यवहृत होता ही रहेगा। **(अध्याय:9 (10), पृष्ठ नंबर : 338)**

- अस्तित्व में चारों अवस्थाएँ इस धरती पर होना प्रमाणित हैं। यह धरती एक सौर व्यूह का अगंभूत (अंग के रूप में) कार्य करती हुई हैं यह स्पष्ट हो चुका है। ऐसे अनंत सौर व्यूह होने की कल्पना मानव में होती हैं, इस धरती पर

जितने भी मानव हैं वे सब धरती पर जागृति सहज प्रमाणों को प्रमाणित करें, इसकी परम आवश्यकता है। क्योंकि सभी समस्याएँ मानव में, मानव से, मानव के लिए की हुई हैं। इसलिए सभी आयामों, कोणों, दिशाओं, परिप्रेक्ष्यों में समाधान प्रस्तुत करना भी परम आवश्यकता है। इसका आधार यही है कि मानव को समस्याएँ स्वीकृत नहीं हैं। अपितु समाधान सहज ही स्वीकार्य होते हैं। समाधान का सम्पूर्ण प्रयोजन मानव इकाई के अंतर-संबंधों और अस्तित्व में परस्पर सह-अस्तित्व सहज वर्तमान में, पहचाना जाता है। अर्थात् पूर्णता क्रम, पूर्णता और उसकी निरंतरता सहज सूत्रों, व्याख्याओं जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने के प्रमाणों से संप्रेषित होता है। यही मानव भाषा का अर्थ है। इस अर्थ को संप्रेषित करने के लिए कारण, गुण, गणितात्मक विधि से, विवेक और विज्ञान सम्मत तर्क प्रणाली को अपनाना होता है। इसी विधि से पूर्णता की अवधारणा, उसकी अक्षुण्णता सहज रूप में ही मानव परंपरा में प्रवाहित होती हैं। मानव परंपरा अर्थात् मानवीयता पूर्ण शिक्षा-संस्कार, परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था, मानवीय आचरण संहिता रूपी संविधान इसकी प्रतीक्षा सबको हैं। इसका कारण एक ही है, इसका नित्य सर्वशुभ, मानव में ही स्वीकृत रहता है। इसी सत्यतावश मानव में नित्य स्वीकारा हुआ प्रमाण इच्छा के रूप में, शुभ विचार के रूप में, शुभ कल्पना के रूप में प्रस्तुत कर लेना स्वाभाविक है। उत्पादन में व्यवहार में आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा और प्रमाण में होने वाली सहज संप्रेषणा ही मानवीय आचरण, मानवीय व्यवहार और मानवीय व्यवस्था के रूप में प्रमाणित होती हैं। इसके लिए मानवीय **शिक्षा-संस्कार** परपंरा के रूप में प्राप्त होना भी, सहज है। यही प्रमाण परंपरा का तात्पर्य और अपेक्षा है।...**(अध्याय : 9 (11), पृष्ठ नंबर : 346-347)**

सन्दर्भ : व्यवहारात्मक जनवाद

(संस्करण: 2009, मुद्रण: जनवरी 2017)

- व्यवहारात्मक जनवाद क्यों ?
  - ➢ मानव भय, प्रलोभन एवं संघर्ष से मुक्ति चाहता है तथा आस्था से विश्वास का प्रमाणीकरण चाहता है।
  - ➢ मानव लाभोन्माद, भोगोन्माद से मुक्ति एवं विकल्प का स्पष्टता चाहता है।
  - ➢ मानव शासन से मुक्ति एवं व्यवस्था का ध्रुवीकरण चाहता है।

सुदूर विगत से मानव परम्परा भय, प्रलोभन, आस्था, संघर्ष से गुजरती हुई देखने को मिलती है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि सर्वाधिक मानव संघर्ष को नकारते हैं। भय को नकारते हैं। कुछ लोग सोचते हैं, प्रलोभन और आस्था से छुटकारा पाना संभव नहीं है। कुछ लोग यह भी सोचते हैं कि प्रलोभन और आस्था में ही राहत है। कुछ लोगों का सोचना है कि इससे छुटकारा पाना जरूरी तो है, परन्तु रास्ता कोई नहीं है। इन सब स्थितियों में निष्कर्ष यही निकलता है कि भय, प्रलोभन, आस्था और संघर्षो से गुजरते हुए मानव परम्परा का रास्ता; राज्य और राजनैतिक, धर्म और धर्मनैतिक, अर्थ और अर्थनैतिक, **शिक्षा-संस्कार** सहज वस्तु पद्धतियों का निर्धारण, निष्कर्ष, उसकी सार्वभौमता, सार्थकताओं के अर्थ में देखने को नहीं मिली। इस लम्बे समय की यात्रा में मानव परम्परा में संस्कति-सभ्यता का, विधि-व्यवस्था का, तथा आचार-संहिता का ध्रुवीकरण एवं निश्चयन नहीं हो पाया। यही जनचर्चा का मुद्दा है। इन सभी मुद्दों पर सार्थकतापूर्ण निश्चयन को जनचर्चा के सूत्र रूप में प्रस्तुत करने के लिए इस ग्रन्थ का उद्घाटन हुआ है। इसमें सर्वशुभ का सारभूत अर्थ समाहित है।

मानव परम्परा में राज्य, धर्म, अर्थ और **शिक्षा-संस्कार** सम्बन्धी सार्वभौम निष्कर्षों को पाने का प्रयास सदा ही रहा है। **(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर : 2)**

- इस बात से हर व्यक्ति सहमत होता है कि वह मानव ही है। किन्तु अपना परिचय वह किसी वर्ग या समुदायिक पहचान के साथ ही देता है। यह भी अन्तर्विरोध का जीता जागता उदाहरण है। आम जन-मानसिकता के गति, कार्य वार्तालाप के क्रम में यह भी देखने को मिलता है कि सर्व शुभ होने का कार्य राज्य, धर्म और **शिक्षा** में होना चाहिए। जबकि इन तीनों विधाओं में विशेष और सामान्य का प्रभेद बना ही है। (विशेष और सामान्य का तात्पर्य विद्वान-मूर्ख, ज्ञानी-अज्ञानी, बली-दुर्बली, धनी-निर्धनी के रूप में मान्यता है)। यह विशेषकर समुदायगत अन्तर्विरोध के रूप में देखने को मिलता है। जनचर्चा में यह भी सुनने को आता है कि **शिक्षा-संस्कार** आदि चारों परम्परा (**शिक्षा** संस्कार, राज्य, धर्म, व्यापार व्यवस्था) ठीक है और इस बात को स्वीकारा जाता है। परम्परा सहज विधि से हर मानव संतान किसी न किसी परिवार में समर्पित रहता ही है। जिसके फलस्वरूप परिवार के रूढ़िगत, स्वीकृत खान-पान, बोली, भाषा, रहन-सहन और व्यवहार मर्यादाओं को यथा संभव हर शिशु ग्रहण करता ही रहता है। इसके कुछ दिनों बाद किसी **शिक्षण संस्था** में भाई-बहनों, मित्रों-गुरूजनों के बीच जो कुछ भी सीखने को, सुनने को, समझने को, पढ़ने को मिलता है इन सबको हर बालक अथवा हर विद्यार्थी अपनी ग्रहणशीलता सहज विधि से ग्रहण करते हैं। युवा अवस्था को पार करते-करते किसी न किसी धर्मगद्दी, धर्मप्रणाली, धार्मिक रूढ़ियों को स्वीकार लेते हैं। इसी के साथ साथ किसी न किसी देश, राष्ट्र, संविधान और भाषा, जाति चेतना सहित अपनी पहचान को सजाने के लिये हर युवा और प्रौढ़ व्यक्ति यत्न प्रयत्न करते ही हैं। इसके उपरान्त इस अवस्था तक जो कुछ भी स्वीकारा रहता है उसके प्रति अपनी निष्ठा को जोड़ते है। जिन-जिन मुद्दों को स्वीकारे नहीं रहते है उसमें उनकी निष्ठाएँ अर्पित नहीं हो पाती है। इसी कारणवश हर समुदाय में पीढ़ी दर पीढ़ी परिवर्तन की दिशा बनती रहती है। यही मानव परम्परा की विशेषता है।... **(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर:3-4)**

- ....चौथी गद्दी, **शिक्षा** गद्दी के रूप में पहचानी जाती है। आज तक **शिक्षा** में उन्नयन (विकास) के नाम से व्यवसायिक **शिक्षा** के रूप में ही **शिक्षा** का ढाँचा-खाँचा बना हुआ है। **शिक्षा** रूपी व्यवसाय भी व्यापार के रूप में ही अथवा व्यापार के सदृश ही सुविधा-संग्रह की ओर प्रवर्तित देखने को मिल रहा है। इन सब को देखकर कृषि में निष्ठा रखने वाले, परिश्रम में विश्वास रखने वालों में सुविधा-संग्रह की ओर प्रवृत्ति होना स्वाभाविक है। क्योंकि चारों गद्दियों में आसीन उनके साथी-सहयोगियों का जलवा और रूतबा ही इनके लिए आदर्श रहा है। सर्वाधिक लोग आज भी कृषक और श्रमजीवी हैं तथा यही लोग, लोक सामान्य और आम जनता के नाम से जाने जाते हैं।**(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर:6-7)**

- ...घटनाक्रम में किसी परिवार के साथ भी उचित अनुचित के रूप में इसी प्रकार गाँव, मुहल्ला में भी जनचर्चा होते हुए देखने को मिलती है। यह तो सर्वविदित है, कि सम्पूर्ण प्रचार तंत्र, अपराध और श्रृंगारिकता के अतिरिक्त और कोई ज्ञान वर्धन करा नहीं पा रहे है। **शिक्षा** के नाम से जो कुछ भी प्रचार करते हैं, वे सब न्यून प्रभावी रहते हैं, अपराधिक और श्रृंगारिक प्रभाव के सामने नगण्य हो जाते हैं।

  जनचर्चा **शिक्षा** सहज मानसिकता, समुदाय परंपरा सहज मानसिकता और प्रचार माध्यमों की मानसिकताएँ प्रधान रूप में हर मानव पर प्रतिबिम्बित होती ही हैं। हर वर्तमान में इसका निरीक्षण, परीक्षण किया जा सकता है।...**(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर:7)**

- माध्यम परीकथा के रूप में प्रारंभ होकर वर्तमान स्थिति में दूर-गमन, दूर-श्रवण, पत्र-पुस्तिका, दूर-दर्शन, स्मारिकाएँ उपन्यास आदि नामों से जाने जाते है। यह सब सार संक्षेप में अपराध और श्रृंगारिकता का प्रचार ही है। इन प्रचारों के बौने आधार पर यह मानसिकता के लोग **शिक्षा** के लिए प्रस्तुत होने के पक्ष में दलीलें मानव के वार्तालाप में देखने को मिलती है। उसी क्रम में जितने भी दृष्टांत देखने को मिले हैं। उनके अनुसार अपराधिक और श्रृंगारिक प्रयासों में प्रवृत्ति देखने को मिली। इसका मूल कारण सकारात्मक अथवा व्यवहारात्मक चर्चा की वस्तु से हम वंचित माध्यमों, **शिक्षा**, शासन व्यवस्था के दावेदार कहलाने वाले स्वयं रिक्त रहे हैं। **(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर:8)**

- संयुक्त राष्ट्रसंघ की अनुशंसा के अनुसार **शिक्षा** में सार्वभौमता को पाने की विधा में कई उप-संस्थाओं को शामिल किये हैं। ऐसी चार-छः संस्थाएँ विभिन्न देशों में काम कर रही हैं। अभी तक इनसे कोई सार्वभौम मानसिकता सहज **शिक्षा**-प्रणाली-नीति और कार्य योजना स्थापित नहीं हो पायी। ये सभी संस्थाएँ जिनके पास अधिक पैसा है, पैसाबाँट देना ही अपना कार्यक्रम मान लिए हैं। इसी क्रम में अधिकांश देश, सामान्य लोगों के पास पैसे पहुंचने पर, सब विकसित हो जायेंगे ऐसा सोचा करते हैं, कार्य भी वैसा करते है। यह भी इस दशक में देखने को मिल रहा है कि सर्वाधिक पैसा जिसके पास है वही ज्यादा से ज्यादा शोषण करता है। जहाँ ज्यादा शोषण होता है - वहीं ज्यादा पैसा एकत्रित होता है यह देखा गया है। इतना ही नहीं व्यापार और शोषण में जो पारंगत हैं ऐसे लोग बड़े-बड़े कोषालयों की कार्यशैली में धूल झोंककर स्वयं लाभ पैदा करते हुए देखे गये हैं। **(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर:11)**

- सर्वाधिक देश जिसकी भागीदारी को स्वीकारें है वह राष्ट्रसंघ अभी तक किसी सार्वभौम संविधान, सार्वभौम **शिक्षा**, सार्वभौम जनमनसिकता को पाने की विधा ढूँढने की कोशिश में हैं। ऐसा उन संस्थाओं के उद्गार से पता लगता है।....**(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर:13)**

- सुदूर विगत से, क्रमागत विधि से आई जनचर्चा, **शिक्षा**, विविध माध्यम भौतिकवादी और ईश्वरवादी मान्यताओं, घटनाओं के आधार पर नकारात्मक, सकारात्मक विधि से निर्णय लेते रहे। इस बीच बहुत सारे यांत्रिक

घटनाएँ प्रकृति सहज उर्मियाँ मानव को कर्माभ्यास में कर तलगत हुई जैसे दूर-दर्शन, दूर-श्रवण, दूर-गमन जैसी दूर-संचार विधियाँ विविध उपक्रमों से स्थापित हो गई। इसकी **शिक्षा** विधि भी सभी देशो में स्वीकृत हो गई है। किसी देश में सर्वाधिक सुलभ किसी देश में कम सुलभ हुई है। इससे अनायास ही मानव जाति के लिए उपलब्धि यह हुई कि सभी समुदाय, परिवार, व्यक्ति शीघ्रातिशीघ्र एक जगह में जुटने का किसी निश्चित मुद्दे पर परस्पर आदान-प्रदान चर्चा और निर्णय लेने के लिए सहायक हो गई।...**(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर:14)**

- ....हर व्यक्ति एक दूसरे के साथ व्यावहारिक संगीत को स्थापित करना चाहता है। **शिक्षा-संस्कार**(प्रचलित) कार्यक्रम में इसके लिए कोई निश्चित प्रावधान न होने के कारण हर व्यक्ति एक दूसरे से सशंकित मानसिकता को लिये हुए संघर्ष को अपनाने के लिए विवश होता जा रहा है। इसका जीता जागता साक्ष्य यही देखा जा रहा है पति-पत्नि दोनो अलग-अलग कोषालयों में खाता बनाए रखना चाहते है। इतना ही नहीं है घर में रखी हुई पति पत्नि की पेटियों में अलग-अलग ताला होना भी पाया जाता है। हर परिवार में घर के दरवाजे पर ताला लगाया ही जाता है। ताला लगाने का तात्पर्य मानव जाति के प्रति शंका-कुशंका ही है। हर व्यक्ति इस बात को स्वीकार कर चलता ही है कि चोर डाकू होते ही है। इसलिए ऐसा प्रबंध करके ही रखना ही है। कोषालयों को देखे वहाँ भी अभेद्द कक्ष बनाए जाते है - इसके बावजूद भी यह सब लूटे जाते हैं। ऐसी घटनाओं को बारम्बार सुना जाता है। इन सभी घटनाओं को याद दिलाने के मूल में एक ही मकसद है- हम मानव को अभी व्यवस्था में जीना है। ऐसी समझदारी विकसित नहीं हुई और उचित प्रणालियों को अपनाना दूर ही है इसलिए जनवाद में व्यवस्था रूपी व्यवहार चर्चा को पहल करना परम आवश्यक है ही। **(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर:15-16)**

- साहित्य कला क्रम में आनन्द रूपी रस को संप्रेषित करने के उद्देश्य से प्रयासोदय होने का उल्लेख है। अंततोगत्वा यह रहस्य में अन्त होकर रह गये क्योंकि आनंद एक रहस्य ही रहा। इसमें आनंदित होने वाला, आनन्द का स्रोत, संयोग विधियाँ मानव के समझदारी का अभी तक अध्ययन सुलभ नहीं हो पाया है। किसी वस्तु के अध्ययन सुलभ होने के उपरान्त ही इसकी अभिव्यक्ति-संप्रेषणा सहज होना सर्वविदित है। अतएव' काल्पनिक आनन्द अभिनयात्मक प्रदर्शन के योगफल में क्रमागत विधि से श्रृंगारिकता ही सर्वाधिक अभिनयों के माध्यमों से भ्रमित मानव को प्रिय लगना स्वाभाविक है। इसी को एक मानव के लिए आवश्यकता, उपलब्धि के रूप में कल्पना करते हुए वीभत्स और रौद्र रस तक कल्पनाएँ दौड़ा ली। इसे चाव से लोगएकत्रित एकत्रित होकर देखते रहे अभी भी देखते है। जबकि काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मात्सर्य ये सब मानव के आवेश का विन्यास और प्रकाशन है। इसके स्थान पर समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व, प्रमाणिकता, व्यवस्था मूलक जनचर्चा कला साहित्य प्रकाशन, प्रदर्शन, शिक्षा-संस्कार व्यवस्था पर आधारित जनवाद की आवश्यकता है। क्योंकि जिस विधि हम आदि काल से अभी तक गतित हुए है, उस जनचर्चा में भ्रमात्मक भाग ही सर्वाधिक है। प्रयोजनवादी यथार्थ का भाग न्यूनतम है। इसको हम भली प्रकार से मूल्यांकन कर सकते हैं। पूर्णत: प्रयोजनशील याथार्थ को रोज़मर्रा की चर्चा में ला सकते हैं। **(अध्याय:2, पृष्ठ नंबर:18-19)**

- इस धरती पर इस समय दृश्यमान स्थिति के अनुसार हर मानव सुविधा, संग्रह में प्रवृत्तशील है और हर परम्परा व माध्यम इसी का प्रवर्तनशील है। राज नेताओं को निश्चित दिशा और राजनैतिक सार्वभौमता की कोई पहचान आज तक नहीं हो पायी है। अभी तक किसी देश के बुद्धिमानों के अनुसार "3000 वर्ष का इतिहास बताया जाता है किसी देश में 5000 वर्ष बताया जाता है। कुछ देशों में लाखों करोड़ों वर्ष का होना बताया जाता है। इन सभी इतिहासों को तर्क संगत बनाने के लिए विगत की किताबों और पुरातत्व को अपनाया गया है। पुरातत्व को भूमिगत, समुद्रगत व स्थलगत भी होना पाया गया है। इस प्रयास में मानव सभ्यता के आरंभ काल को पहचानने की मंशा रहती है। इस उपक्रम के साथ प्राचीन काल शल्यों को उसकी रचना के विश्लेषण के अतिरिक्त इस धरती को स्थायी वस्तु जो कोषा के रूप में परिवर्तित होने के लिए प्रवृत्ति को रखता है उसका नाम कार्बोनिकहै। है। उसके अर्थात उस शैल्यों में निहित कार्बोनिक शैल्यो की विधा विद्युतीय प्रभावीकरण विधि से प्राप्त कर लिया है उसी से

पुराने पत्थर की आयु का पता लगाते हैं। इस प्रक्रिया से बड़े बड़े पहाड़ों की आयु का अनुमान किया जाता है। विगत के अध्ययन क्रम में बीती हुई धटनाओ के क्रम का अनुमान करने के क्रम में यह भी उल्लेखित है कि यह धरती कई बार पलट चुकी है। इस मुद्दे पर कुछ ऐसे जीव जानवरो का शल्य मिला है। जिसकी परम्परा इस समय में देखने को नहीं मिलती है। इसी आधार पर उस समय में यह धरती पलटने के पहले समय में ऐसे जीव जानवर रहे हैं। धरती पलटने के साथ वे सब शल्य बन चुके है। ऐसा शल्य विशेषकर कोयला खदानो में मिलता है और वह गहरी खुदाई के क्रम में कहीं-कहीं मिलता है। ऐसे साक्षी को इस धरती के बुद्धिमान बहुत सारा एकत्र किये इस उपक्रमो के साथ पत्थर व शल्यो की जो भी आयु निर्धारण करते है। वह तो हमे मिली हुई वस्तुओ के आधार पर हमारा अनुमान होता है। इन सब वस्तुओ के आयु निर्धारण के साथ-साथ हमें कोई सामाजिक आर्थिक राजनैतिक ध्रुव मिलता नहीं है। इस वर्तमान में हर सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा यही है कि सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक गतियो में सामरस्यता, समाधान, निश्चित गम्यता जिससे सुन्दर सामाजिकता सिद्ध हो सके ऐसी गम्यता के लिए निश्चित गति आवश्यकहै। उल्लेखनीय बात व तथ्य यही है। आर्थिक विधा हर मानव में सुविधा संग्रह के अर्थ में स्पष्ट है राजनैतिक विधा यश, पद, धन के चंगुल में फंसा है। सांस्कृतिक विधा समुदाय मानसिकता व रूढ़ियों के चंगुल में भली प्रकार फंस चुकी है यहाँ यह भी स्पष्ट कर दें कि यश का तात्पर्य बहुत लोग जिनका चेहरा-मोहरा को भली प्रकार पहचानते हैं । जिसे बच्चे –बच्चे जानते हैं ऐसा चेहरा-मोहरा नाम से पहचानने वाली घटना को हम तीन क्रम में देखते हैं:-

1. राजनेता के रूप में
2. कलाकारों के रूप में
3. डाका-डकैती और इंद्रजाल जादू के रूप में देखा गया।

इन सभी पहचान बनाने के काम में माध्यम निष्ठा से लगे हुए हैं, माध्यमों का खाका आज की स्थिति में रेडियो, टेलीविजन, पत्र-पत्रिका, पत्र-पत्रिका, उपन्यास विधाये है।इससे पता लगा कि यश पाने की वस्तु क्या है। यश का मतलब आज के कलाकारो का कथन जो हम सुनते है लोग जो चाहते हैं अथवा लोक शक्ति के अनुसार गति है। सम्भाषण करते हैं प्रदर्शन करतेहैं हैं हर राजनेता का कथन-हम जनसेवक है जबकि इन किसी में पद व पैसे के लिए अतिरिक्त लक्ष्य दिखाई नहीं देता। डाकुओं का कथन यही है शासन-प्रशासन से किया गया अत्याचार ही डाकुओं को जन्म देताहै। सांस्कृतिक रूढ़ि और समुदाय मानसिकता अपना पराये का दीवाल बनाते ही आया।

ये सब दिशा विहीन राजनीति, प्रयोजन विहीन **शिक्षा** नीति, रहस्यमयी धर्मनीति (रहस्यमयी ईश्वरता) प्रधानत:हर हर मानव को अपनी मानसिकता को सार्वभौम रूप देने में असफल रही है। इस समय में इस धरती पर छ:-सात सौ करोड़ आदमी होने का आँकड़ा है। इन छ:-सात सौ करोड़ आदमी में इस सर्वाधिक लोगों के अनुसार 90 % आदमी इन सभी विधाओं में स्पष्टता, निश्चयता व सार्थकता को समझना चाहता है और ऐसी सार्वभौम समझदारी को जीवन शैली और दिनचर्या में पहचानना और मूल्याँकन करना चाहते हैं। इस सामान्य विवेचना के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि हर मानव धरती और धरती में पर्यावरण के सन्तुलन के पक्ष में असंतुलन के विपक्ष में है।

इतने लम्बे अरसे की मानव परम्परा अभी तक धर्मगद्दी, **शिक्षागद्दी** और राज्यगद्दी में कल्याणकारी दिशा व लक्ष्य को पहचान नहीं पायी, इन तीनों विधाओं में होने वाली प्रवृतियों व कार्यो के पक्ष में अथवा कार्यो के रूप में **शिक्षा** गद्दी के कार्यकलाप को देखा जा रहा है। अतएव इन चारों प्रकार की परम्परायें अपने आप में भ्रष्ट हो चुके हैं हर मानव इनमें परिवर्तन चाहताहै। इसकी आपूर्ति के लिए ही अथवा इस ओर प्रवर्तित करने केलिए ही इस व्यवहारात्मक जनवाद को प्रस्तुत किया है। जिसमें

1. धर्म - मानव धर्म स्पष्ट होने
2. **शिक्षा- मानव चेतना मूल्य शिक्षा** में पारगंत प्रमाण होने
3. राज्य - अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था सहज विधि-विधान राज्य राष्ट्र चेतना में पारंगत प्रमाण होने का जनचर्चा चर्चाका, व संवाद सहज प्रस्ताव है। **(अध्याय:2, पृष्ठ नंबर: 24-26)**

- सम्बन्ध की परिभाषा ही है " पूर्णता के अर्थ में अनुबंधित रहना" ऐसे सम्बन्ध का स्वरूप निरन्तरता में ही वैभव और प्रयोजन प्रमाणित होना पाया जाता है। प्रयोजन मूलत: सहअस्तित्व में नित्य प्रमाण ही है। यही जागृति,

वर्तमान में विश्वास (परस्परता में भय, शंकामुक्ति) और समाधान होना स्वाभाविक है। इन तीनो विधाओं के आधार पर अथवा इन तीनों विधाओं में प्रमाण होने के उपरान्त समृद्ध होना एक अवश्यकता, सम्भावना और इस हेतु प्रयास होना स्वाभाविक स्वयं स्फूर्त है। इसका तात्पर्य यही हुआ कि हम मानव समझदारी पूर्वक ही समाधानित होते हैं और वर्तमान में विश्वास अर्थात सम्बन्ध की पहचान और उसकी निरन्तरता बनाए रखने में निष्ठा ईमानदारी होने का प्रमाण है। पहचान और उसकी निरन्तरता स्वयं जिम्मेदारी के रूप में स्पष्ट होती है। इस प्रकार, समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी पूर्वक ही परिवार व्यवस्था में प्रमाण और समग्र व्यवस्था में भागीदारी होना और समृद्धि का साक्ष्य स्पष्ट होना पाया जाता है। इसके लिए परिवार में चर्चा, परिवार के कार्य-व्यवहार के लिए चर्चा, संवाद और परिवार लक्ष्य के लिए संवाद मानव परंपरा में सम्पन्न होना एक प्रतिष्ठा है।

ऐसी प्रतिष्ठा **चेतना विकास मूल्य शिक्षा संस्कार** से अनुप्राणित होना रहना स्वाभाविक है। **शिक्षा** में सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान, जीवन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरणज्ञान का साक्ष्य स्पष्ट होना परम आवश्यक है। सहअस्तित्व नित्य प्रकटन व समाधान का स्रोत है क्योंकि हम सहअस्तित्व सहज सूत्र, व्याख्या के आधार पर ही समाधानित हो पाते हैं। जीवन ज्ञान स्वयं सार्थक अर्थात समाधान पूर्ण प्रवृतियों का धारक-वाहक होता है और स्वीकृत होता है। इन दो ध्रुवों के आधार पर मानवीयता पूर्ण आचरण, कार्य-व्यवहार पूर्वक व्यवस्था और समग्र व्यवस्था को प्रमाणित करता है। इस विधि से इन तीनो मुद्दो का प्रयोजन स्वीकृत होता है। इन तीनो मुद्दो पर जितना जितना भी संवाद हो पाता है, सब सार्थक होना पाया जाता है। **(अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर: 42-43)**

- सुख को मानव के धर्म के रूप में पहचाना गया है। मानव ज्ञानावस्था की इकाई होने के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है। ज्ञान ही विज्ञान और विवेक के रूप में प्रमाणित होना पाया गया है। विवेक की सार्थकता लक्ष्य को पहचानने के रूप में, विज्ञान की सार्थकता को जीवन लक्ष्य मानव लक्ष्य के लिए दिशा और प्रक्रिया को स्पष्ट करने के रूप में और स्पष्ट होने के रूप में, साथ ही प्रमाणित होने के रूप में पहचाना गया है। इसे हर व्यक्ति पहचान सकता है प्रमाणित हो सकता है। इसके लिए **चेतना विकास मूल्य शिक्षा** प्रस्तुत है। **(अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर: 45)**

- संवाद के लिए यह भी एक प्रधान मुद्दा है सुखी होने के लिए समाधानित होना जरूरी है। समाधान के लिए समझदारी और व्यवस्था में जीने की तमन्ना और अभ्यास आवश्यक है। इस क्रम में हम परम्परा के रूप में व्यवस्था में जीते हुए समाधान समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व पूर्वक सुखी होना, पूरी परम्परा सुखी होना मानव व्यवस्था के आधार परजीने जीना संभव हो जाता है। इसीलिए हम यह निर्णय कर सकते हैं मानव समझदारी पूर्वक ही सफल होता है। समझदारी मानवीयतापूर्ण **शिक्षा-संस्कार**, पूर्वक सर्व सुलभ होना पाया जाता है। इस विधि से हम इस बात पर निर्णय कर सकते है संवाद भी कर सकते हैं कि जीव संसार शरीर स्वस्थता को प्रमाणित करते हैं। अपनी आहार पद्धति से विहार पद्धति से, मानव अपने आहार, विहार, व्यवहार पूर्वक सर्वतोमुखी समाधान को प्रमाणित करने की आवश्यकता आ चुकी है। इसलिए हर नर नारी को सुखी होने के अर्थ में जीना स्वीकार है। इसे सार्थक, सुलभ अथवा सर्वसुलभ होने के अर्थ में मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद के अंग भूत व्यवहारात्मक जनवाद प्रस्तुत हुआ है। **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर: 48)**

- संवाद मानव परम्परा में एक सहज कार्य है। इसमें कहीं न कहीं सर्वशुभ की कामना समायी रहती है। सर्व शुभ घटनाएँ घटित होने के उपरांत मानव परम्परा स्वयं शुभ परम्परा के रूप में प्रमाणित होने की सम्भावना बनी ही है। मानव में चाहत भी बनी है। चाहत और सम्भावना का संयोग योग बिन्दु में ही शुभ परम्परा का उद्गम है। इसका प्रमाण रूप चेतना विकास मूल्य **शिक्षा-संस्कार** में मानव की पहचान, मानव की पहचान का मतलब मानवीय शिक्षा, मानवीय व्यवस्था, मानवीय संविधान और मानवीयता पूर्ण आचरण को बोधगम्य कराना ही है। इस क्रम में मूल सूत्र "त्व सहित व्यवस्था एवं समग्र व्यवस्था में भागीदारी" ही है। मानवत्व अपने में जागृति के रूप में सुस्पष्ट है। जागृति

अपने में समझदारी का स्वरूप होना स्पष्ट हो चुकी है। समझदारी अपने आप में सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व होना स्पष्ट हुआ। इसी क्रम में अर्थात जागृति क्रम में मानव परम्परा का वैभव, मानवत्व सहित महिमा, परिवार में प्रमाणित होना समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण, विश्व परिवार व्यवस्था तक सोपानीय क्रम में प्रमाणित होना है। इसी विधि से मानव संबंध और प्राकृतिक संबंध संतुलन होना पाया जाता है। नियति विरोधी, प्रकृति विरोधी, मानव विरोधी गति विधियो से मुक्ति पाने का उपाय भी यही है। हर मानव विरोधो से मुक्ति पाना चाहता ही है। इसी तथ्यवश इसकी संभावना सुस्पष्ट होती है। प्रमाणित होना मानव परम्परा को ही है।

मानव ही भ्रमवश गलतियो को करता हुआ, अपराधो को करता हुआ, द्रोह, विद्रोह, शोषण करता हुआ देखने को मिलता है। इसका साक्ष्य हर देश के संविधान में गलती को गलती से रोकना, अपराध को अपराध से रोकना और युद्ध को युद्ध से रोकने की व्यवस्था दे रखी है। यही शक्ति केन्द्रित शासन, संविधान व्यवस्था मानी गई है। इसके साथ समुदायों का सहमति भी है और विरोध भी है। इसका सर्वेक्षण से पता चलता है स्वयं पर गुजरने में विरोध, असहमति और संसार में घटित होने में सहमति है। इस क्रम में अभी तक अपराध और गलतियों का सुधार, युद्ध-मुक्ति का उपाय, मानव परंपरा में सूझबूझ के रूप में, कार्य-व्यवहार प्रमाण के रूप में उद्घाटित नहीं हो पाया। कुछ लोग इसकी आवश्यकता को अनुभव करते रहे। **मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद** गलती और अपराध के सुधार का उपाय सुझाया। इसी के साथ मानवत्व सहित परिवार व्यवस्था, समग्र व्यवस्था में भागीदारी को मानव स्वीकारने की स्थिति में युद्ध-मुक्ति अवश्यंभावी होना स्पष्ट कर दिया। इसमें इतनी ही आवश्यकता जनमानस और लोककल्याणकारी, राजनैतिक, धर्मनैतिक, समाजसेवी संस्थाओ के पारंगत होने के आधार और **शिक्षा** विधा में मानवीयता का अध्ययन सुलभ कराने की आधार पर निर्भर है। यह अध्ययन सुलभ होने के उपरान्त ही सर्वसुलभ होना स्वाभाविक है। **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर: 52-53)**

- व्यवहारात्मक जनवाद का तात्पर्य समझदारी पूर्ण विधि से संवाद पूर्वक व्यवहार को ध्रुवीकरण करने की सम्पदा का समावेश हो, और प्रमाणित हो। समावेश होने का तात्पर्य मानव सहज विधि से अनुभवगम्य होने से है और स्वीकृत होने से है। इस क्रम में सदा-सदा से मानव परम्परा समझदार होने की अभीप्षा प्रमाणित होना सहज है। इसकी आवश्यकता प्राचीनकाल से ही रही है। मानव अपने को सदा से ही अपनी पहचान बनाने के क्रम में प्रमाणित है ही। यह प्रमाण भले ही सर्वभौम न हुआ हो, यह विचारणीय मुद्दा तो है ही। साथ में हर समुदाय में हर मानव श्रेष्ठता के अर्थ में प्रयत्नशील रहे आया इसी का देन है। हम मानव मनाकार को साकार करने में सार्थक हो गये है। इसी के साथ में मन:स्वस्थता की पीड़ा बलवती हुई है। इसी आधार पर अनुसंधान, शोध स्वाभाविक रहा। मानव में समस्या की पीड़ा होना स्पष्ट है अर्थात पीड़ा स्वयं भ्रम का ही प्रकाशन है। भ्रमित मानव समस्या के रूप में प्रकाशित होना पाया जाता है। जब तक **शिक्षा** परम्परा भ्रमित हो राज्य और धर्म परंपरा भ्रमित हो, ऐसी स्थिति में शोध की दिशा और लक्ष्य समझ में आना काफी जटिल होता है। इसके बावजूद पीड़ा की किसी पराकाष्ठा में अज्ञात को ज्ञात करने का लक्ष्य बन गया। इसके लिये अनुमान से ही दिशा को निर्धारित किया गया। इसी क्रम में मध्यस्थ दर्शन और सहअस्तित्ववादी उपलब्धि मानव के सम्मुख प्रस्तुत हो गया। यह मानव की ही आवश्यकता रही इसीलिये यह घटना घटित हो गई। **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर:57)**

- मानव के भ्रमित रहने का मूल कारण परम्परा जागृत न रहना ही है। परम्परा का स्वरूप प्रधान रूप में **शिक्षा-संस्कार**, राज्य व्यवस्था, धर्म व्यवस्था है।...**(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:59)**

- इस बीच विज्ञान युग का अपनी पूरी ताकत से प्रादुर्भाव हुआ। इसलिए विज्ञान की जब शुरूआत हुई तब विज्ञान मानसिकता मन्दिर गिरजाघर की मानसिकता के अनुकूल नहीं रही। इसीलिए सर्वाधिक मन्दिर गिरजाघर विज्ञान को नकार दिये। जब तक यह परम्परा रही कि राजा धर्मगद्दी धारी व्यक्ति की सहमति से राज्य व्यवस्था को

सम्पन्न करते थे तब तक धर्मगद्दी की कट्टरता अतिरूढ़ थी। इन विरोधी मानसिकताओं में जो कुछ भी विज्ञान **शिक्षा** के प्रस्ताव आते रहे, उन सबका खंडन और दंड तक पहुँचा। तब विज्ञानियों ने अपने विवेक से राजाओ को समझाया कि आपको युद्ध करना ही है। युद्ध व्यवस्था रखना ही है। तो विज्ञान आपको सामरिक सामग्री उपलब्ध करायेगा। पहले ही एक राजा दूसरे राजा पर विजय पाने की इच्छा रखता था इस आधार पर राजा लोग सहमत हो गये। विज्ञानियों को संरक्षण देने का उद्देश्य बनाया। इसी बिन्दु से राज्य और धर्म गद्दी का अलगाव होना शुरू हुआ। इस क्रम में विज्ञान अपने प्रयोगो के लिए आवश्यक धन को राजगद्दी से प्राप्त करते रहे। सामरिक तंत्र की तीव्रता को प्रमाणित करने का प्रयोग तेज होता गया। इसी क्रम में कई वैज्ञानिक उपलब्धियों को जन मानस अपनाने को तैयार हुआ। दूर-श्रवण, दूर-दर्शन, दूर-गमन, के रूप में यंत्र उपकरण सर्वसुलभ हुए। इन सबको मानव ने उपयोग करना शुरू किया। इसके अतिरिक्त कृषि संबधी उत्पादन में एवं आवासीय संरचनाओं में उपयोगी वस्तुओ को भी तैयार कर लिए। इसी क्रम में अलंकार संबधी वस्तुएँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होने लगी। विज्ञान अपने वर्चस्व को उक्त सभी विधाओ में स्थापित कर लिया। मानव इन सब वस्तुओ को सुखी होने के लिए पाना चाहता है। किन्तु एक व्यक्ति जितना संग्रह कर लेता है उतना सब के पास नहीं होता है। यह भी जनचर्चा का एक मुद्दा है। ये सारी सुविधाएँ सबको कैसे मिल सकती है ? क्या करना होगा ? इसको निर्धारित करना भी एक मुद्दा है। उपलब्ध सभी वस्तुओं से मानव सामन्याकांक्षा, महत्वाकांक्षा सम्बन्धी वस्तुओ के प्रति आश्वस्त हुआ। अन्ततोगत्वा सभी वस्तुओ का प्रयोजन शरीर पोषण, संरक्षण, समाजगति के रूप में होना ही निश्चित है। इन तीनो विधाओं में उपयोग करने के उपरान्त वस्तुओं का शेष रहना ही समृद्धि है। तभी मानव उपकार कार्य करने में प्रवृत होता देखने को मिलता है। उपकार कार्य हर मानव संतान को समर्थ बनाने के अर्थ में सार्थक होता हुआ देखा गया है। **(अध्याय : 5, पृष्ठ नंबर : 64-65)**

- **शिक्षा**-संस्कार विधा में सहअस्तित्व और प्रमाणों को प्रस्तुत करना ही कार्यक्रम है। इसे क्रमिक विधि से प्रस्तुत किया जाना मानव सहज कर्तव्य के रूप में, दायित्व के रूप में स्वीकार होता है। मानवीय **शिक्षा** में जीवन एवं शरीर का बोध और इसकी संयुक्त रूप में अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन और दिशा बोध होना ही प्रधान मुद्दा है। इन दोनो मुद्दों पर संवाद होना आवश्यक है।**(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर: 68)**

- ...इस तथ्य को भली प्रकार से देखा गया है, समझा गया है, कि हर मानव तृप्ति पूर्वक ही जीने का इच्छुक है। ऐसी तृप्ति, सुख ,शांति, संतोष, आनंद के रूप में पहचान में आती है। ऐसी पहचान, जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने के फलस्वरूप प्रमाणित होना पायी गयी। सुख, शांति, संतोष, आनंद अनुभूतियाँ समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व का, प्रमाण के रूप में परस्परता में बोध और प्रमाण हो जाता है। ऐसी बोध विधि का नाम ही है **शिक्षा संस्कार। शिक्षा का तात्पर्य शिष्टता पूर्ण अभिव्यक्ति से है। ऐसी शिष्टता अर्थात मानवीय पूर्ण शिष्टता समझदारी पूर्वक ईमानदारी, जिम्मेदारी, भागीदारी के रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है।** इसकी आवश्यकता के लिए जनचर्चा भी एक अवशम्भावी क्रियाकलाप है। **(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर: 70)**

- हम मानव सदा से उत्पीड़नों से मुक्त होना चाह ही रहे हैं। किन्तु ऐसी मुक्ति का ज्ञान, विज्ञान, उपाय, विवेक समृद्ध होने का क्रम शिथिल है ही। इसका साक्ष्य यही है किसी समुदाय परम्परा में अखण्ड समाज का सूत्र, व्याख्या, सार्वभौम व्यवस्था का सूत्र व्याख्या, राज्य संविधान, शिक्षा धर्म संविधान विधि से प्राप्त नहीं हुआ। इसी कारणवश अप्रत्याशित घटनाओ के चक्कर में आ चुके हैं। अप्रत्याशित घटनाओं को इस तरह से पहचाना जा रहा है। सर्वप्रथम प्रदूषण, द्वितीय धरती का तापग्रस्त होना, तृतीय दक्षिणी उत्तरी ध्रुव का बर्फ पिघलकर समुद्र का स्तर बढ़ना, चौथा अनेक नये-नये रोग मानव परम्परा में आक्रमित होना, पांचवा धरती, आकाश, अधिकांश पानी में किये गये विकिरणीय परीक्षणों से भूकम्प की सम्भावनाये और घटनाएँ बढ़ जाना, छठा सामरिक तंत्रों का ज्यादा से ज्यादा जखीरा बनना, सातवां अन-अनुपाती विधि से वैन खनिज का शोषण होना, आठवाँ रसायन खाद और

कीटनाशक द्रव्यों का सर्वाधिक उपयोग होना, नवां मिलावट का बढ़ोतरी होना, ये सब मानव कुल को क्षति ग्रस्त होने को तैयार कर लिए हैं। जन संवाद में इन सभी मुद्दो पर परिचर्चा, चर्चा, संवाद पूर्वक निष्कर्षो का निकालना एक आवश्यक क्रिया है। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:72)**

- जागृत मानव परम्परा में मानवीय **शिक्षा-संस्कार** को पहचान लेना स्वाभाविक है। जिसमें सहअस्तित्व वादी विधि से सम्पूर्ण ताना बाना होना पाया जाता है। इसमें मानव अपने मानवत्व को पहचानना सहज हो जाता है मुख्य मुद्दा यही है। मानवत्व का पहला सूत्र मानवीयता पूर्ण आचरण सहित परिवार में व्यवस्था का प्रमाण और समग्र व्यवस्था में भागीदारी। इस व्याख्या के समर्थन में भौतिक, रासायनिक और जीवन क्रियाओं को, उन-उन में त्व सहित व्यवस्था सहित पहचानने, जानने, मानने की विधि से लोकव्यापीकरण योग्य होना पाया जाता है। **मानवीय शिक्षा** में मानव का अध्ययन सर्वाधिक होना चाहिए जबकि अभी तक **शिक्षा** का आधार और स्वरूप भौतिकवाद और आदर्शवाद के आधार पर रहा। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:80)**

- पराक्रम को पहचानने के लिए गये इसका परिचय भोगशक्ति और युद्धशक्ति के रूप में हुआ। युद्ध शक्ति बर्बादी के लिए होना सर्वविदित है। भोगशक्ति व्यक्तिवादी होना पाया जाता है। भोगशक्ति के प्रयोग में ही सौंदर्य बोध की आवश्यकता बनी रहती है। इस विधि से सभी मानव अथवा सर्वाधिक मानव संवेदनशीलता की इस पराकाष्ठा तक पहुंचने के इच्छुक हैं। इसी लक्ष्य में विज्ञान **शिक्षा** संसार को स्वीकार हुआ है। क्योकि प्रौद्योगिकी को विज्ञान का उपज माना जाता है। प्रौद्योगिकी विधि से कम श्रम से ज्यादा उत्पादन होने की स्वीकृतियाँ बनी है। इसी कारण विज्ञान **शिक्षा** का लोकव्यापीकरण सुगम हुआ। विज्ञान विधा में और तकनीकी कर्माभ्यास में जिस ज्ञान के आधार पर मानव को जीना है वह ज्ञान मानव को पहचानने में पर्याप्त नहीं हो पाया। इसी प्रकार आदर्शवादी ज्ञान में मानव को पहचानना संभव नहीं हो पाया। आदर्शवादी विधि में दया के आधार पर कुछ उपदेश सद्वाक्य प्रस्तुत हुए है। लेकिन इसकी मूल**शिक्षा** भक्ति विरक्ति के अर्थ में प्रतिपादित हो चुकी है।उल्लेखनीय तथ्य यही है कि भक्ति- विरक्ति भी व्यक्तिवादी है। व्यक्तिवाद किसी शुभ स्थली पर पहुँचने में समर्थ नहीं हुआ सर्वशुभ तो बहुत दूर है। इसलिए मानवीय **शिक्षा** को पहचानना एक आवश्यकता बन चुकी है।

मानवीय शिक्षा का प्रारूप :मानवीय **शिक्षा** प्रारूप के अनुसार मानव को मानवीयता के संयुक्त रूप में पहचानने की आवश्यकता है। जनाकांक्षा मानवीय **शिक्षा** का स्वागत करता है। जनचर्चा में इसे हृदयंगम करने और इसकी परिपूर्णता को साक्षात्कार करने की आवश्यकता है। परिपूर्णता का तात्पर्य समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, भागीदारी सहित परिवार और विश्व परिवार व्यवस्था में भागीदारी को प्रमाणित करने के अर्थ में है।

शिक्षा की पहचान हर मानव के लिए आवश्यक है। हर देश काल में आवश्यक है। हर स्थिति परिस्थिति में आवश्यक है। इस आधार पर **शिक्षा** प्रारूप को जाँचने की आवश्यकता है। जाँचनेके उपरान्त स्वीकारने में सटीकता बन पाती है। इसे हर व्यक्ति परीक्षण, निरीक्षण कर सकता है। हर मानव में संज्ञानशीलता और संवेदनशीलता का प्रमाण प्रस्तुत होना आवश्यकता है क्योंकि संज्ञानशीलता पूर्वक ही व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी हो पाती है। ऐसी स्थिति में मानव का आचरण निश्चित, नियंत्रित हो पाता है। निश्चित होने के आधार पर सम्पूर्ण आचरण समाधान सम्पन्न रहना पाया जाता है। समाधान पूर्ण विधि से आचरण करने के क्रम में संवेदनाएँ नियंत्रित रहना देखा गया है। संवेदनाएँ नियंत्रित होना परस्परता में विश्वास का महत्वपूर्ण आधार है।

सम्पूर्ण मानव शिक्षा-संस्कार पूर्वक ही अपनी दिशा, उद्देश्य और कर्तव्यों को निर्धारित कर पाता है। मानव की दिशा लक्ष्य निर्धारित हो पाना जागृति का प्रथम सोपान है। इसके आगे अपने आप में कार्यक्रम और कार्यव्यवहार सम्पादित होना स्वाभाविक है। जिसके फलन में समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व प्रमाणित होना है जिसके लिए हर मानव नित्य प्रतीक्षा में है और उपलब्धि ही गम्यस्थली है। उसकी निरन्तरता ही परम्परा है। ऐसी लक्ष्य संगत परम्परा ही जागृत परम्परा है। इसी क्रम में संज्ञानशीलता प्रमाणित होना, संवेदनाएँ नियंत्रित होना पाया जाता है। संवेदनाओ के नियंत्रण को अपने आप में मर्यादा के सम्मान के रूप में पहचाना गया है। मर्यादाएँ परस्परता में अति

आवश्यक स्वीकृतियाँ है। इन स्वीकृतियों के आधार पर किये जाने वाली कृतियाँ अर्थात कार्य और व्यवहार से मानव परम्परा में हर मानव सुखी होना स्वाभाविक है।...**(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 81-82)**

- व्यवहार व्यवस्था का तात्पर्य अथवा समाज व्यवस्था का तात्पर्य मानव में, से, के लिए लक्ष्य समेत जीने की विधि, विधान, कार्य और व्यवहार ही है। व्यवहार विधि संबंधो के आधार पर मूल्यों के निर्वाह करने के दायित्व पर निर्भर किया जाता है। इसके लिए जो क्रमबद्धता अर्थात निर्वाह के लिए जो क्रम बद्धता होती है यही विधान है। इन विधि विधान के आधार पर सर्वप्रथम स्वस्थ मानसिकता की पहचान, निर्वाह, मूल्यांकन विश्वास का मूल आधार होता है। स्वस्थ मानसिकता जागृत मानसिकता होती है। जागृत मानसिकता अनुभवमूलक मानसिकता है। जागृतिपूर्ण मानसिकता अपने में मानवीयता, देव मानवीयता, दिव्य मानवीयता को प्रमाणित करने के क्रम में उद्धत रहती ही है। मानवीयता, देव मानवीयता, में परिवार और समाज व्यवस्था मानवीयता पूर्ण आचरण सहित प्रमाणित होना बनता है। इसी क्रम में दिव्य मानवीयता समग्र व्यवस्था में भागीदारी पूर्वक स्वतंत्रता, स्वराज्य को प्रमाणित करने में सार्थक हो जाती है। स्वतंत्रता, स्वराज्य सह अस्तित्व विधि से वैभवित होते है। स्वराज्य व्यवस्था में स्वाभाविक विधि से **मानवीय शिक्षा-संस्कार**, न्याय-सुरक्षा, उत्पादन-कार्य, विनिमय-कोष, स्वास्थ्य-संयम कार्य और व्यवस्था अपने आप में निर्वाह होते है। ऐसे स्वराज्य व्यवस्था परिवार मूलक विधि से विश्व परिवार व्यवस्था तक दश सोपानीय विधि से सार्थक हो जाते है। हर स्थितियों में सामान्य रूप में 10-10 समझदार व्यक्तियों की एक सभा सम्पन्न होती है । एक परिवार में 10 समझदार व्यक्तियों होते हैं। ऐसे 10 व्यक्तियों में से एक व्यक्ति परिवार व्यवस्था के अतिरिक्त और सोपानीय व्यवस्था में भागीदारी के लिए निर्वाचित रूप में प्रस्तुत होना बनता है। ऐसे व्यक्ति को हर परिवार में पहचान लेना एक स्वाभाविक प्रक्रिया रहता ही है।

जागृत मानव परिवार में परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन होने के आधार पर उपकार कार्य में प्रवृत होना स्वाभाविक है। समाधान समृद्धि के साथ परिवार में उपकार प्रवृति, ऐसे उपकार प्रवृति की परिवार समूह, ग्राम, ग्राम समूह, क्षेत्र, मंडल, मंडल समूह, मुख्य राज्य, प्रधान राज्य, विश्व परिवार राज्य सभा में भागीदार के लिए प्रस्तुत होना होता है। यही समग्र व्यवस्था में भागीदारी का स्वरूप है। इस क्रम में हर परिवार अपने में से एक व्यक्ति को समग्र व्यवस्था में भागीदारी जैसे पावन और उपकारी कार्य के लिए अर्पित करना एक अनुपम स्वरूप है। ऐसे ही हर व्यक्ति और परिवार में मर्यादा सम्पन्न मानवीयता पूर्ण आचरण के साथ सहज रूप में तृप्त होना स्वाभाविक है। इस मुद्दे पर जनचर्चा की आवश्यकता है यह अति आवश्यक है। यह मुद्दा सार्थक है कि नहीं, इसे भी परामर्श करना आवश्यक है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:83-84)**

- यह भी चर्चा का मुद्दा है कि हम शासन में जीना चाहते है या व्यवस्था में। यदि शासन चाहते हो तब अभी हो रहे भ्रष्टाचार, दूराचार, अनाचार उसी प्रकार होते रहेंगे। यदि जन मानस इसे नहीं चाहता तो परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था को अपनाना होगा। परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था अपने आप में समझदारी सम्पन्न अनेक परिवारो की संयुक्त व्यवस्था है। प्रत्येक परिवार में उपकार प्रवृति होने के आधार पर स्वत्व स्वतंत्रता अधिकार स्वयं स्फूर्त होता है। इसमें जनप्रतिनिधि किसी भी प्रकार से धन व्यय के बिना उपलब्ध होना एक महिमा सम्पन्न घटना है जिसकी आवश्यकता है। इस प्रकार 10% प्रतिशत व्यक्ति हर गांव, मुहल्ले, देश में सम्पूर्ण धरती में उपलब्ध होना समीचीन है। इस मुद्दे पर परामर्श कार्य, संवाद सघन रूप में होना चाहिए। इसके लिए हर मानव को समझदार होना आवश्यक है। हर नर नारी समझदार होना भी चाहते है। समझदारी के लिए वस्तु लोक सम्मुख प्रस्तुत हो चुकी है यही मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्व वाद है। इसके आधार पर मानवीय **शिक्षा-**संस्कार का प्रारूप लोकमानस के लिए अर्पित हुआ है। ये सभी विधा को जन चर्चा में लाकर निष्कर्ष निकालना और स्वयं स्फूर्त विधि से अपनाना सारी दरिद्रता से छुटकारा है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 86-87)**

• जागृति पूर्वक जीने में समझदारी व्यवस्था और मानव लक्ष्य को प्रमाणित करना ही कार्यक्रम के रूप में निर्धारित होता है। मानव लक्ष्य अपने आप में स्पष्ट हो चुका है। ऐसे लक्ष्य को प्रमाणित करती हुई मानव परम्परा जागृत मानव परम्परा में होना पायी जाती है। ऐसी स्थिति में मानवीय **शिक्षा-संस्कार** का प्रबल प्रमाण परम्परा में बना ही रहता है। मानवीय **शिक्षा** में मानव का अध्ययन पूरा हो जाता है। मानव के अध्ययन में शरीर और जीवन ही है। इसके कारण रूप में समग्र अस्तित्व ही है। समग्र अस्तित्व में पूरक विधि से जीवन का होना और भौतिक रासायनिक वस्तुओ की रचना विधि से मानव शरीर का भी रचना होना वर्तमान है। शरीर और जीवन के संयुक्त रूप में मानव अपने कार्यकलापो को करता हुआ, जीता हुआ, अपनी पहचान बनाने के लिए यत्न प्रयत्न करता हुआ देखने को मिलना स्वाभाविक है। जागृत परम्परा में **शिक्षा** में सम्पूर्ण अस्तित्व का अध्ययन एक मौलिक विधा है। पूरकता विधि से एक दूसरे की यथा स्थितियो का वैभव समझ में आता है। इसी क्रम में हर पद और अवस्था की यथा स्थितियाँ अध्ययनगम्य हो जाती है। अध्ययनगम्य होने का तात्पर्य सह-अस्तित्व में होने के रूप में स्वीकृत होने से है। अस्तित्व में जो कुछ होता है, जो कुछ है उसी का अध्ययन है। अस्तित्व में जितनी भी विविधता दिखाई पड़ती है इन सभी में विकास और जागृति का सूत्र समाया रहता है। फलन में मानव जागृति को प्रमाणित करने के लिए उद्यत है ही। इस प्रकार मानव परम्परा को जागृति का प्रमाण प्रस्तुत करना सुलभ हो जाता है। संवाद का मुद्दा यही है कि जागृति हमको चाहिये कि नहीं।

मेरे अनुसार लोकमानस जागृति के पक्ष में है जागृति का मतलब जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना ही है। मानव परम्परा में अभी छ: सात सौ करोड़ की जनसंख्या बतायी जाती है। इन सात सौ करोड़ आदमियों में से कोई ऐसा मेरी नजर में नहीं आता है जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने से मुकरे। जानने, मानने के उपरान्त पहचानना निर्वाह करना स्वाभाविक होता है। जानना मानना नहीं होने पर भी मानव में पहचानना निर्वाह करना होता ही है। न जानते हुए पहचानने के लिए प्रयत्न संवेदनशीलता के साथ ही हो पाता है। मानव परम्परा में संवेदनाओ का आधार झगड़े की जड़ बन चुकी है। हर मानव आवेशित न रहते हुए स्थिति में झगड़े के पक्ष में नहीं होता है जब आवेशित रहता है तभी झगड़े के पक्ष में होता है। आवेशित होना भय और प्रलोभन के आधार पर ही होता है। सारे प्रलोभन संवेदनाओं के पक्ष में है सारे भय भी संवेदनाओ के आधार पर ही है। इसलिए समझदारीपूर्वक व्यवस्था में भागीदारी के आधार पर मानव लक्ष्य को सार्थक बनाने के कार्यक्रम में क्रियाशील रहना, निष्ठान्वित रहना ही समाधान परम्परा का आधार है। समाधान अपने आप में न भय है न प्रलोभन है निरन्तर सुख का स्रोत है। यही संज्ञानशीलता का प्रमाण है। यही मानवीयता पूर्ण **शिक्षा** संस्कार का फलन है। इस प्रकार से जीने के लिए आवश्यक जनचर्चा, संवाद विश्लेषण अपने आप में महत्व पूर्ण मुद्दा है।

शिक्षा में अथवा **शिक्षा** विधि में जीवन ज्ञान, सहअस्तित्व दर्शनज्ञान सम्पन्न **शिक्षा** रहेगी ही। इसे पाने के लिए **समाधानात्मक भैतिकवाद** का अध्ययन कराया जाता है। जिससे संपूर्ण भौतिकता रसायन तंत्र में व्यक्त होते हुए संयुक्त रूप में विकास क्रम को सुस्पष्ट किये जाने का तौर तरीका और पूरकता रूपी प्रयोजनो का बोध कराया जाता है। समाधानात्मक भौतिकवाद परमाणु में विकास, परमाणु में प्रजातियां होने का अध्ययन पूरा कराता है। परमाणु विकसित होकर जीवन पद में संक्रमित होता है दूसरी भाषा में विकसित परमाणु ही जीवन है। हर भौतिक परमाणु में श्रम, गति, परिणाम का होना समझ में आता है। जबकि गठनपूर्ण परमाणु (चैतन्य इकाई) परिणाम प्रवृति से मुक्त होता है। दूसरी भाषा में जीवन परमाणु परिणाम के अमरत्व पद में होना पाया जाता है। अमरत्व की परिकल्पना प्राचीन काल से ही देवताओं को अमर, आत्मा को अमर कहना यह आदर्शवाद है। यह मन में रहते आयी है। इसे चिन्हित रूप में सार्थकता के अर्थ में अध्ययन करना कराना संभव नहीं हुआ था। सहअस्तित्व विधि से यह संभव हो गया। इस क्रम में जीवन के सम्पूर्ण क्रियाकलापो जैसे जीवन में जागृति, जागृति क्रम में जाग्रति एवं जीवन का अमरत्व का अध्ययन भली प्रकार से हो पाता है। जागृति में समाधान का उदय होने पर समाधानात्मक भौतिकवाद की सार्थकता समझ में आती है। भौतिकवाद को संघर्ष का आधार माना जाये या समाधान का। इस पर संवाद एक अच्छा कार्यक्रम है।

मानवीय शिक्षा में व्यवहारात्मक जनवाद प्रस्तुत हुआ है। इसका प्रयोजन इंगित सभी मुद्दो में सकारात्मक पक्ष को स्वीकारना है ऐसी मान्यता हमारी है। इसी के तहत यह पूरा वांगमय अध्ययन और संवाद के लिए प्रस्तुत है।

मानवीय शिक्षा में अनुभवात्मक अध्यात्मवाद को अध्ययन कराया जाता है जिसमें अध्यात्म नाम की वस्तु

को साम्य ऊर्जा के रूप में जानने, मानने, पहचानने की व्यवस्था है। सम्पूर्ण प्रकृति, दूसरी भाषा में सम्पूर्ण एक एक वस्तुएँ, तीसरी भाषा में जड़-चैतन्य प्रकृति, चौथी भाषा में भौतिक, रासायनिक और जीवन कार्यकलाप व्यापक वस्तु में सम्पृक्त विधि से नित्य क्रियाकलाप के रूप में वर्तमान है। इसे बोधगम्य कराते है यही सहअस्तित्व का मूल स्वरूप है। इस मुददे को बोध कराना बन जाता है। बोध को प्रमाणित करने के क्रम में अनुभव होना सुस्पष्ट हो जाता है। जिससे अनुभवमूलक विधि से हर नर-नारी को जीने के लिए प्रवृति उदय होती है। इस तथ्य के आधार पर संज्ञानशीलता को प्रमाणित करना संभव हो जाता है। संज्ञानशीलता अपने आप में सर्वतोमुखी समाधान होना पाया जाता है। **अनुभावात्मक अध्यात्मवाद** सर्वतोमुखी समाधान के स्रोत के रूप में अध्ययन विधा से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। संवाद के लिए उल्लेखनीय मुददा यही हैं अनुभवमूलक विधि से जीना हैं या नहीं, समाधानपूर्वक जीना है या नहीं।

मानवीय **शिक्षा** में **मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान** का अध्ययन करने कराने का प्रावधान है। मानव संचेतना को मानव संवेदनशीलता और संज्ञानशीलता के रूप में माना गया है। जिसके अध्ययन से संज्ञानशीलता पूर्वक जीने की विधि बन जाती है। संज्ञानशीलता पूर्वक जीने का तात्पर्य मानव लक्ष्य को सार्थक बनाना है। परम्परा के रूप में इसकी निरन्तरता होना हैं। मानव की हैसियत को, मानसिकता को, अथवा जागृति मूलक मानसिकता को महसूस कराता है। साथ में जागृति की महिमा मानव परंपरा के लिए प्रेरणा देता है। क्योंकि मानव संज्ञानशीलता पूर्वक लक्ष्य मूलक विधि से जीना ही मानव परम्परा का वैभव है अर्थात स्वराज और स्वतंत्रता है। इस तथ्य को भली प्रकार बोध कराते है। इसमें संवाद के लिए मुद्दा यही है मानव मूल्य मूलक विधि से जीना हैं या रूचिमूलक विधि से जीना है। **मानवीय शिक्षा क्रम में व्यवहारवादी समाजशास्त्र** को अध्ययन कराया जाता हैं। जिसमें मानव मानव के साथ न्याय, समाधान, सहअस्तित्व प्रमाणपूर्वक जीने के तथ्यों को बोध कराया जाता है। जिससे सहअस्तित्व बोध, जीवन बोध सहित व्यवस्था में जीना सहज हो जाता है। इसमें संवाद का मुद्दा हैं सहअस्तित्व बोध सहित जीना है या केवल वस्तुओं को पहचानते हुए जीना है।

मानवीय शिक्षा में आवर्तनशील अर्थव्यवस्था को अध्ययन कराया जाता है। अर्थ की आर्वतनशीलता के मुद्दे पर यह बोध कराया जाता है कि श्रम ही मूलपूंजी है। प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम नियोजन पूर्वकउपयोगिता मूल्य को स्थापित किया जाता है। उपयोगिता के आधार पर वस्तु मूल्यन होना पाया जाता है। इस विधि से हर व्यक्ति अपने परिवार में कोई न कोई चीज का उत्पादन करने वाला हो जाता है। इस ढंग से उत्पादन में हर व्यक्ति भागीदारी करने वाला हो जाता है फलस्वरूप दरिद्रता व विपन्नता से और संग्रह सुविधा के चक्कर से मुक्त होकर समाधान समृद्धिपूर्वक जीने का अमृतमय स्थिति गति बन जाती है। इसमें जन संवाद का मुद्दा यही है हम मानव परिवार में स्वायत्तता, स्वावलम्बन, समाधान, समृद्धि पूर्वक जीना है या पराधीन परवशता संग्रह सुविधा में जीना है। आवर्तनशील अर्थव्यवस्था में श्रम मूल्य का मूल्याँकन करने की सुविधा हर जागृत मानव परिवार में होने के आधार पर वस्तुओ का आदान-प्रदान श्रम मूल्य के आधार पर सम्पन्न होना सुगम हो जाता है। इससे मुद्रा राक्षस से छुटने की अथवा मुक्ति पाने की विधि प्रमाणित हो जाती है। जिसमें शोषण मुक्ति निहित रहती है। अतएव संवाद का मुद्दा यही है कि लाभोन्मादी विधि से अर्थतंत्र को प्रतीक के आधार पर निर्वाह करना है या श्रम मूल्य के आधार पर वस्तुओ के आदान-प्रदान से समृद्ध रहना है।

मानवीय शिक्षा में मानव व्यवहारदर्शन का अध्ययन कराना होता है जिसमें अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का बोध, इसकी आवश्कता का बोध कराया जाता है। मानव व्यवहार में प्राकृतिक नियम, बौद्धिक नियम और सामाजिक नियमों को बोध कराने की व्यवस्था रहती है। जिससे समाज की सुदृढ़ता, वैभव पूर्णता का बोध कराया जाता है। फलस्वरूप हर मानव अखंड समाज के अर्थ में अपने आचरणों को प्रस्तुत करना प्रमाणित होता है। इस प्रकार ऐसे अखंड समाज के अर्थ में सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी स्वयं स्फूर्त विधि से सम्पन्न होना होता है। यही स्वतंत्रता और स्वराज्य का प्रमाण है। अस्तु संवाद का मुद्दा है अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था के अर्थ में जीना चाहिये या समुदाय गत राज्य के अर्थ में जीना चाहिये।

मानवीय शिक्षा में कर्म दर्शन का अध्ययन कराया जाता है जिसमें कायिक, वाचिक, मानसिक, कृतकारित, अनुमोदित भेदों से हर मानव को कर्म करने की सत्यता को बोध कराया जाता है। इससे मानव का विस्तार समझ में आता है। इससे स्वयं में विश्वास का आधार बनता है। मानसिक रूप में जितनी भी क्रियाएँ होती है वे सब कायिक और

वाचिक मानसिक विधि से कार्यरूप में परिणित होती है। फलस्वरूप उसका फल परिणाम होता है फल परिणाम के आधार पर समाधान या भ्रमवश समस्या का होना पाया जाता है। जागृत परम्परा में किसी भी प्रकार की समस्या का कायिक या वाचिक मानसिक विधि से निराकरण स्वयं से ही निष्पन्न होना पाया जाता है। इस तरह से स्वायत्तता का प्रमाण मिलता है। स्वायत्तता अपने में सर्वतोमुखी समाधान सम्पन्नता ही है। जहाँ कहीं भी स्पष्ट रूप में देखने को मिलेगा समस्या का निराकरण स्वयं में ही हो जाने को स्वायत्तता बताई गयी है। कार्य का स्वरूप नौ प्रकार से बताया गया है। यह उत्पादन कार्य ,व्यवहार कार्य और व्यवस्था कार्य में प्रमाणित होना देखा गया है। सभी कार्य इन तीन तरीकों से ही सम्पन्न होना देखा गया है। इन सभी कार्यो का उद्देश्य एक है मानवाकांक्षा को सफल बनाना। यही मानव लक्ष्य होने के आधार पर कर्मतंत्र, व्यवहार तंत्र, समग्र व्यवस्था में भागीदारी करने का तंत्र ये तीनो तंत्र मानव लक्ष्य को प्रमाणित करना ही है। इसी का नाम कर्मदर्शन है। कर्मदर्शन का सम्पूर्ण स्वरूप अपने में मानव जितने प्रकार के कार्य करता है, उसकी सार्थकता क्या है, कैसे किया जाये। इन तीनो विधा में अध्ययन कराता है। इससे मानव जाति मार्गदर्शन पाने की अथवा व्यवस्था में जीने की प्रेरणा पाना एक देन है। अतएव कायिक, वाचिक, मानसिक क्रियाकलापो में संगीतमयता की आवश्यकता पर एक अच्छा संवाद हो सकता है। मानव की संम्पूर्ण संवेदनाएँ अर्थात शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध के रूप में पहचानी जाती है जिसे हर सामान्य व्यक्ति पहचानता है। इसके नियंत्रण के लिए सम्पूर्ण ज्ञान, दर्शन, आचरण को संजो लेने का प्रमाण प्रस्तुत करना ही अभ्युदय समाधान है। इसका मुद्दा यही है कि कायिक वाचिक मानसिक रूप में एकरूपता चाहिये या नहीं। यदि चाहिये तो मध्यस्थ दर्शन सहअस्तितत्ववाद में पारंगत होना आवश्यक है। नहीं की स्थिति में इसकी जरूरत नहीं है।

मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद के अनुसार **अभ्यास दर्शन** सर्वमानव के लिये अध्ययन के अर्थ में प्रस्तुत है। अभ्यास दर्शन अपने में कायिक, वाचिक, मानसिक, कृत, कारित, अनुमोदित क्रियाकलापो में सार्थकता का प्रतिपादन है। "अभ्यास दर्शन" समझदारी के लिए अभ्यास को स्पष्ट करता है। एवं समझने के उपरान्त समझदारी को प्रमाणित करने की अभ्यास विधियो का अध्ययन कराता है। अध्ययन होने का प्रमाण अनुभव मूलक विधि से प्रमाणित होने का प्रतिपादन है। अनुभव सहअस्तित्व में होने का स्पष्ट अध्ययन करा देता है, बोध करा देता है। इससे मानव परम्परा में प्रमाणित होने का मार्ग प्रशस्त होता है। इसमें जीवन समुच्चय का और दर्शन समुच्चय का आशय सुस्पष्ट हो जाता है। जीवन समुच्चय अपने में दृष्टा पद् प्रतिष्ठा सहित कर्ता-भोक्ता पद में प्रमाणित होने का बोध होता है। सम्पूर्ण अस्तित्व ही जीवन के लिए दृष्य रूप में प्रस्तुत रहता है। सम्पूर्ण दृष्य व्यवस्था के रूप में व्याख्यायित है। नियम-नियंत्रण-संतुलन ही इसका सूत्र है। नियम की व्याख्या सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व में प्रत्येक एक एक की यथास्थिति के आधार पर निश्चित आचरण ही व्याख्या है। ऐसा निश्चित आचरण ही हर इकाई का त्व है। ऐसी यथा स्थितियाँ और आचरण परिणामानुषंगी विधि से, बीजानुषंगीय विधि से एवं आशानुषंगीय रूप में स्पष्ट होता हुआ देखने को मिलता है। अभ्यास दर्शन ऐसी स्पष्टता को स्पष्ट रूप में अध्ययन करा देता है। सभी स्पष्टताएँ नियम, नियंत्रण, सन्तुलन से गुथी हुई के रूप में होना पाया जाता है। इस भौतिक रासायनिक रूपी बड़े छोटे रूप में होना पाया जाता है। होना ही अस्तित्व है। मानव भी जड़ चैतन्य प्रकृति के रूप में होना अध्ययनगम्य है। इसी आधार पर चैतन्य प्रकृति में दृष्टा पद प्रतिष्ठा होना, इसके वैभव में ही दृष्टा-कर्ता-भोक्ता पद का प्रमाण प्रस्तुत करना ही जागृति का प्रमाण है। अभ्यास दर्शन इन तथ्यो को अध्ययन कराता है। इसमें मुद्दा यही है कि हमें सम्पूर्ण अध्ययन करना है तो मध्यस्थ दर्शन ठीक है नहीं करना है तो मध्यस्थ दर्शन की जरूरत नहीं है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:102-107)**

- इस प्रकार से **तीसरे सोपान** के लिए दस जनप्रतिनिधि परिवार समूह सभा से निर्वाचित होकर ग्राम सभा के लिए उपलब्ध रहेंगे। इसके निर्वाचन की कालावधि को हर ग्राम सभा अपनी अनुकूलता के आधार पर अथवा सबकी अनुकूलता के आधार पर निर्णय लेगी। उस कालावधि तक मूलत: परिवार से निर्वाचित होकर परिवार समूह से निर्वाचित होकर ग्राम परिवार सभा कार्यक्रम में भागीदारी करने के लिए पहुँचे रहते है। इनके लिए कोई मानदेय या वेतन स्वीकार नहीं होता है। क्योंकि हर परिवार समृद्ध रहता ही है। समाधान समद्धि के आधार पर ही जनप्रतिनिधि निर्वाचन होना पाया जाता है। जब दसो जनप्रतिनिधि एकत्रित होते है ये सभी प्रतिनिधि हर कार्य करने योग्य रहते हैं। व्यवस्था कार्य में ऐसा कोई भाग नहीं रहेगा जिसे यह कर नहीं पायेगे। दूसरा हर कार्य के लिए समय और प्रक्रिया

को निर्धारित करने में समर्थ रहेंगे। **इस शोध के आधार पर मानवीय शिक्षा- संस्कार में पारंगत जैसे एक गॉव में प्राथमिक शिक्षा का आवश्यकता तो रहता ही है उसमें पारंगत रहेंगे।** न्याय-सुरक्षा कार्य में पारंगत रहेंगे। उत्पादन-कार्य में पारंगत रहेंगे। विनिमय कार्य में पारंगत रहेंगे। स्वास्थ्य संयम कार्य में भी पारंगत रहेंगे। प्राथमिक स्वास्थ्य विधा में सभी पारंगत रहेंगे। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:112-113)**

- **शिक्षा**-संस्कार की मूल वस्तु अक्षर आरंभ से चलकर सहअस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान सम्पन्न होने तक क्रमिक **शिक्षा** पद्धति रहेगी। हर गाँव में प्राथमिक **शिक्षा** का प्रावधान बना ही रहेगा। गाँव के हर नर-नारी समझदार होने के आधार पर स्वयं स्फूर्त विधि से प्राथमिक **शिक्षा** को सभी शिशुओ में अन्तस्थ करने का कार्य कोई भी कर पायेंगे। इस विधि से प्राथमिक **शिक्षा** के कार्य के लिए कोई अलग से वेतन या मानदेय की आवश्यकता नहीं रहती है। गाँव के हर नर-नारी शिक्षित करने का अधिकार सम्पन्न होगें।

दूसरे विधि से हर गाँव में प्राथमिक **शिक्षा** शाला के साथ हर अध्यापक के लिए एक निवास साथ में ग्राम शिल्प का एक कार्यशाला, हर अध्यापक के लिए 5-5 एकड़ की जमीन और 5-5 गाय की व्यवस्था रहेगी यह पूरे गाँव के संयोजन से सम्पन्न होगा। यह शाला, अभिभावक विद्याशाला के रूप में कार्यरत रहेगी। इस दोनो विधि से शिक्षा-संस्कार कार्य को पूरे गॉव में उज्जवल बनाने का कार्यक्रम सम्पन्न होगा। मानवीय **शिक्षा** मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्व वाद पर आधारित रहेगी। **शिक्षा** सहअस्तित्व दर्शन जीवन ज्ञान के रूप में प्रतिपादित होगी। इस प्रकार हम एक अच्छी स्थिति को पायेंगे। जिससे सहअस्तित्ववादी मानसिकता बचपन से ही स्थापित होने की व्यवस्था रहेगी। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:113-114)**

- परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था क्रम में **चौथा सोपान** ग्राम समूह सभा के रूप में प्रकट होना स्वाभाविक प्रक्रिया है। क्योंकि केवल परिवार व्यवस्था पर्याप्त नहीं है। सम्मिलित परिवार व्यवस्था आवश्यक है क्योंकि परिवार की सार्वभौमता सम्पूर्ण मानव के साथ जुड़ी हुई है। इसे प्रमाणित करने के लिए एक निश्चित क्रम आवश्यक है ही। चौथे सोपान में 10 ग्राम मोहल्ला परिवार सभाओं से एक-एक व्यक्ति निर्वाचित होकर एक ग्राम समूह परिवार सभा को गठित होना स्वाभाविक है। ये सभी निर्वाचित सदस्य अपने में तृतीय सोपानीय कार्यक्रमों में पारंगत होते हुए चौथे सोपान में अपनी-अपनी भागीदारी की पहचान प्रस्तुत करने के लिए प्रस्तुत हुए रहते है। **इसमें दस गाँव के लिए शिक्षा संस्था रहेगी।**पहले की तरह से दो विधियों से इसे क्रियान्वयन करना बन जाता है। स्वायत्त परिवार में से विद्वान नर नारी को भागीदारी करने का अवसर बना रहेगा। इसमें सामर्थ्यता की पहचान है। पढ़ाई लिखाई रहेगी समझदारी भी रहेगी और प्रतिभा की छ: महिमाएँ प्रमाणित रहेगी। ऐसे कोई भी व्यक्ति के किये स्वयं स्फूर्त विधि से **शिक्षा** संस्था में उपकार के मानसिकता से कार्य करने के लिए अवसर रहेगा। दूसरे विधि से हर दस गाँव से अर्थात 1000-1000 परिवार के श्रम सहयोग से अथवा योगदान से अभिभावक विद्याशाला बनी रहेगी।

इस विद्या शाला में दस गाँव से विद्यार्थियों को पहुँचने के गतिशील साधन को ग्राम समूह सभा बनाए रखेगा। इन साधनो का उपार्जन 1000 परिवार के योगदान से बना रहेगा। हर परिवार उपने श्रम नियोजन के फलस्वरूप उपार्जित किये (धन) गये में से प्रस्तुत किये गये अंशदान के फलस्वरूप विद्यालय सभी प्रकार से सम्पन्न हो पाता है। इसी ग्राम समूह परिवार से संचालित **शिक्षा** संस्थान में जो भागीदारी करते हैं यह अध्यापक, विद्वान, संस्कार कार्यों को, समारोहो को, उत्सवो को सम्पादित करने का कार्य करेंगे। जैसे जन्म उत्सव, नामकरण उत्सव, अक्षराभ्यास उत्सव, विवाह उत्सव आदि संस्कार कार्यो को सम्पन्न करायेंगे। जहाँ स्वतंत्र उत्सव, मूल्यांकन उत्सव, कार्यक्रम उत्सव को ग्राम परिवार सभा, ग्राम समूह परिवार सभा संचालित करेंगे। हर उत्सव में विद्यार्थियों और अध्यापको के प्रेरणादायी वक्तव्यों को प्रस्तुत करायेंगे। प्रेरणा का आधार समझदार होने, समझदारी के अनुसार ईमानदारी, ईमानदारी के अनुसार जिम्मेदारी रहेगी। जिम्मेदारी के अनुसार भागीदारी रहेगी। इसी मंतव्य को व्यक्त करने के लिए साहित्य का प्रस्तुतिकरण रहेगा। स्वास्थ्य संयम प्रेरणादायी प्रस्तुतियाँ स्वागतीय रहेगी। शोध अनुसंधान का स्वागत और मूल्यांकन करता रहेगा।

सर्वमानव अपने में शुभ चाहने वाला होने के आधार पर और सर्वमानव समझदार होने के आधार पर और सर्वमानव व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी के आधार पर मूल्याँकन होता रहेगा। ग्राम समूह सभा में शिक्षा-संस्कार पहली कड़ी है।...**(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:117-118)**

- **पाँचवे सोपान** में दस ग्राम समूह सभा से निर्वाचित दस सदस्य क्षेत्र परिवार सभा के रूप में पहचाने जायेंगे। इसमें अनुभव की और भी मजबूती बनी रहेगी। समझदारी में परिपक्व होना स्वाभाविक है भागीदारी में गति और तीव्र होती जायेगी। इन ही सब सौभाग्य को एकत्रित होना क्षेत्र परिवार सभा अपने वैभव को प्रमाणित करने में समर्थ होगी।

बुनियादी तौर पर हर परिवार समझदार होने के आधार पर ही क्षेत्र परिवार सभा का वैभव भी प्रमाणित होने की संभावना बनी रहती है। हर मानव का उद्देश्य साम्य होने के आधार पर व्यवस्था सूत्र व्याख्या अपने आप स्पष्ट होती है। **इसकी भी प्रथम कड़ी शिक्षा-संस्कार कार्यक्रम है।** इन **शिक्षा** संस्कार कार्यो में यथावत एक विद्यालय रहेगा। इसके पहले की सीढ़ी में जो प्रौद्योगिकी बनी रहती है उसके योगदान पर उत्तर माध्यमिक शालाएँ और स्नातक शालाएँ क्रम विधि से कार्य करेगी। क्रम विधि का तात्पर्य हर इन्सान चाहे नारी हो, नर हो समझदार होने के लिए कार्य करेगा। समझदारी का किसी उँचाई इस क्षेत्र परिवार सभा के अन्तर्गत प्रमाणित होना स्वाभाविक है। ऐसे प्रमाण के लिए तमाम व्यक्ति प्रशिक्षित रहेंगे। इसी कारणवश स्नातक पूर्व और स्नातक विद्यालय किसी क्षेत्र सभा के अन्तर्गत संचालित रहेंगे। जिसमें मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद की रोशनी में ज्ञान, विज्ञान, विवेक सम्पन्न विधि से हर विद्यार्थी की मानसिकता में स्थापित करने का कार्य होगा।...**(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:119)**

- **छठवाँ सोपान** मंडल परिवार सभा का गठन दस क्षेत्र सभाओं से निर्वाचित दस सदस्यों के संयुक्त रूप में प्रभावित होगा। इसमें भी यथावत पाँच कड़ियो के रूप में सम्पूर्ण कार्य सम्पादित होंगे। **शिक्षा-संस्कार कार्य स्नातक व स्नातकोत्तर रूप में प्रभावित रहेगी। स्नातकोत्तर शिक्षा-संस्कार में जीवन ज्ञान सहअस्तित्व दर्शन में पारंगत बनाने की व्यवस्था रहेगी। इसी के साथ साथ अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी का सम्पूर्ण तकनीकी विज्ञान विवेक कर्माभ्यास सम्पन्न कराना बना रहता है। ऐसी संस्था में कार्यरत सारे अध्यापक संस्कार कार्यो के लिए जहाँ-जहाँ जरूरत पड़े वहाँ-वहाँ पहुँचेगे और कार्य सम्पन्न कराने के दायी रहेंगे।** उत्सव सभा मूल्याँकन प्रक्रिया सब ग्राम सभा सम्पन्न करेगी। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:120)**

- मंडल समूह परिवार सभा दस मंडल परिवार सभा में से एक-एक व्यक्ति निर्वाचित होकर मंडल समूह परिवार सभा के कर्णधार रहेंगे। इसी क्रम में सभी प्रकार के कार्यकलापो को तथा पांचों कड़ियो के कार्यक्रमों को इस **सातवीं सोपान** में प्रमाणित करने का दायित्व रहेगा इसमें सम्पूर्ण मानव प्रयोजनो को स्पष्ट रूप से प्रमाणित किया जाना कार्यक्रम रहेगा। ऐसे मानव अधिकार परिवार सभा से ही प्रमाणरूप में वैभवित होते हुए शनैः शनैः पुष्ट होते हुए मंडल समूह परिवार सभा में मानव अधिकार का सम्पूर्ण वैभव स्पष्ट होने की व्यवस्था रहेगी। समान्यतः मानव अर्थात समझदार मानव शनैः शनैः दायित्व के साथ अपनी अर्हता की विशालता को प्रमाणित करता ही जाता है। अपनी पहचान का आधार होना हर व्यक्ति पहचाने ही रहता है। समूचे अनुबंध समझदारी से व्यवस्था तक को प्रमाणित करने तक जुड़ा ही रहता है। प्रबंधन इन्हीं तथ्यो में, से, के लिए होना स्वाभाविक है। समझदारी में परिपक्व व्यक्तियों का समावेश मंडल समूह सभा में होना स्वाभाविक है। ऐसे **देव मानव दिव्य मानवता को प्रमाणित करते हुए दृढ़ता सम्पन्न विधि से शिक्षा विधा में शिक्षा-संस्कार कार्य को सम्पादित करते है।**

शिक्षा-संस्कार एक प्रथम कड़ी है इसमें अति सूक्ष्मतम अध्ययन, शोध प्रबंधो को तैयार करने की व्यवस्था रहेगी। शोध प्रबंधो का मूल उद्देश्य मानवीय संस्कृति, सभ्यता, विधि व्यवस्था को और मधुरिम सुलभ करना ही रहेगा। इसके लिए सारी सुविधाएँ जुटाने का कार्यक्रम मंडल समूह सभा बनाये रखेगा। इसका प्रबंधन मंडल सभा के जितने भी प्रौद्योगीकी रहेगी उसकी समृद्धि के आधार पर व्यवस्थित रहेगा। ऐसी व्यवस्था के तहत में और विशाल विशालतम रूप में व्यवस्था सूत्रों को सुगम बनाने का उपाय सदा-सदा शोध विधि से व्यवस्थापन रहेगा। ऐसे शोध कार्यो के लिए सामग्री में सातो सीढ़ियों की गतिविधियाँ रहेगी इस प्रकार शोध प्रबंधन का स्रोत बनी रहेगी। ऐसे

शोध प्रबंधन स्वाभाविक रूप में दसो सीढ़ी और पाँचों कड़ियो की समग्रता के साथ नजरिया बना रहेगा। इस विधि से मंडल समूह सभा की प्रथम कड़ी का लोक उपकारी और मानव उपकारी होने के रूप में प्रमाणित रहेगी।**(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:121-122)**

- **आठवीं सोपान** में मुख्य राज्य सभा होगी। जिसके लिए मंडल समूह सभा से एक एक निर्वाचित सदस्य रहेंगे। जिनके आधार पर समूचे कार्यकलाप सम्पन्न होगे। जिसमें **पहली कड़ी शिक्षा-संस्कार** कार्य की गतिविधियों में सर्वोत्कृष्ट समाज गति, सर्वोत्कृष्ट उत्पादन कार्य, सर्वोत्कृष्ट न्याय-सुरक्षा कार्य, सर्वोत्कृष्ट उत्पादन कार्य, सर्वोत्कृष्ट विनिमय कार्य गति और सर्वोत्कृष्ट स्वास्थ्य-संयम का शोध संयुक्त रूप में होता रहेगा। ये सभी सोपानीय परिवार सभाओं के लिए प्रेरणा के रूप में प्रस्तुत होती रहेगी। इस विधि से अपनी गरिमा सम्पन्न शिक्षण कार्य, कर्माभ्यास पूर्ण कार्यक्रम को सम्पन्न करता रहेगा।**(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:123-124)**

- **नवें सोपान** में प्रधान राज्य सभा होगी यह दस निर्वाचित सदस्यों से गठित होगी। यह दस सदस्य दस मुख्य राज्य परिवार सभा में कार्यरत दस-दस सदस्यों में से एक-एक व्यक्ति निर्वाचित किये जाने की विधि से उपलब्ध रहेगी। इसमें ऐसे पारंगत विद्वान होने के आधार पर प्रधान राज्य सभा का गठन गरिमामय होना स्वाभाविक है। इस सभा गठन कार्य के लिए जितने भी साधनो की आवश्यकता रहती है दस मुख्य राज्य सभाओं के द्वारा संचालित उद्योगो के आधार पर प्रावधानित रहेगी। ये सभी प्रावधान अपने आप में लोकार्पण विधि से संपादित रहेगी। दूरसंचार व्यवस्था भी इन्हीं स्रोतों से समावेशित रहेगी। फलस्वरूप प्रधान राज्य सभा की गति सुस्पष्ट रहेगी अथवा आवश्यकता अनुसार रहेगी।

इस सभा की पहली कड़ी शिक्षा-संस्कार ही रहेगी। प्रधान राज्य परिवार सभा से संचालित **शिक्षा** समूचे दसो मुख्य राज्यों की संस्कृति, सभ्यता, विधि व्यवस्था की सार्थकता और समग्र व्यवस्था की सार्थकता के आँकलन पर आधारित श्रेष्ठता और श्रेष्ठता के लिए अनुसंधान, शोध, शिक्षण, प्रशिक्षण, कर्माभ्यासपूर्वक रहेगी। प्रौद्योगिकी विधा का कर्माभ्यास प्रधान रहेगा। व्यवहार अभ्यास प्रक्रिया में प्रमाणीकरण प्रधान रहेगा। इस प्रकार यह उन सभी जनप्रतिनिधियो के लिए प्रेरणादायी **शिक्षा** व्यवस्था रहेगी और लोकव्यापीकरण करने के नजरिये से चित्रित करने की प्रवृत्ति रहेगी। इसी मानवीय **शिक्षा** कार्यक्रम में साहित्य कला की श्रेष्ठता के संबंध में प्रयोजन के अर्थ में मूल्यांकन रहेगी। श्रेष्ठता प्रबंध, निबंध, कला प्रदर्शन, साहित्य, मूर्ति कला, चित्रकलाओं के आधार पर मूल्यांकन और सम्मान करने की व्यवस्था रहेगी। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:124-125)**

- **दसवीं सोपान** विश्व परिवार राज्य सभा है। सभी प्रधान राज्य सभाएं निर्वाचित प्रतिनिधियों को प्रस्तुत किए रहते हैं। ऐसे दस प्रतिनिधि विश्व राज्य सभा में होंगे। इस कार्य में इस धरती पर आज की स्थिति में दस प्रधान राज्य सभा होना संभव नहीं है। इसलिए मंडल समूह या मुख्य राज्य सभाएँ जो और सदस्यों को देना चाहते हैं उनसे दस का पूरा खाका बना लेना होगा। विश्व राज्य सभायें दस जन प्रतिनिधि कार्य संचालन करेंगे।

इस सभा की पहली कड़ी शिक्षा संस्कार कार्य रहेगी। शिक्षा संस्कार कार्य में प्राकृतिक संतुलन, (उद्योंग वन व खनिज) जीव संतुलन, मानव न्याय संतुलन का कार्य सम्पादित होगा। साथ में जलवायु संतुलन, ऋतु संतुलन, धरती का संतुलन, वन खनिज का संतुलन सम्बंधी अध्ययन करने की व्यवस्था रहेगी। ऐसे अध्ययन के लिए किसी भी सोपानीय सभा के सीमा में किसी भी व्यक्ति को भेज सकते हैं विद्वान बना सकते हैं और लोकव्यापीकरण के लिए प्रावधानित कर सकते है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:126)**

- **जनचर्चा ही शिक्षा-संस्कार का शिलान्यास/**

वातावरण का सूत्र :

मानव अपनी परस्परता में संवाद विधि से तथ्यो को जानने, मानने, पहचानने के आशय का प्रयोग करता है। सर्वमानव में इसकी आवश्यकता रहती ही है। तथ्य अपने में सहअस्तित्व सहज ही होता है। सहअस्तित्व से मुक्त तथ्य को प्राप्त नहीं कर सकते। इसलिए सहअस्तित्व में पूर्ण तथ्य विद्यमान है। इस विधि से हम मानव तथ्यान्वेषी होना प्रमाणित होते हैं। तथ्य पूर्ण स्वरूप मानव में सहअस्तित्व पूर्ण नजरिया और जागृति का प्रमाण ही है। जागृति का प्रमाण सर्वमानव में स्वीकृत है। सहअस्तित्व पूर्ण नजरियें में ध्रुवीकरण होना शेष रहा इसे मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद ने प्रस्तावित कर दिया है। अध्ययनपूर्वक सुस्पष्ट होने की सम्पूर्ण ज्ञान मीमांसा, कर्म मीमांसा और व्यवस्था मीमांसा को स्पष्ट कर दिया है। सुदूर विगत से ज्ञान मीमांसा, कर्म मीमांसा का पक्षधर रहा है। ये दोनो प्रतिपादन रहस्य से मुक्त नहीं हो पाए हैं। विगत प्रयास के अनुसार वर्तमान में मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्वाद के अनुसार स्पष्ट हो जाता है इसे हर मानव जाँच परख सकता है कर्माभ्यास पूर्वक प्रमाणित कर सकता है।

हर मानव संवाद के लिए इच्छुक है संवाद में परस्पर भरोसा करना भी आवश्यकता है। भरोसा इस बात का है कि संवाद से हम निश्चित ठौर तक पहुँच पाते हैं। यह परस्पर मानव में व्यक्तित्व पर निर्भर रहता है। व्यक्तित्व आहार विहार व्यवहार के रूप में पहचानने में आता है। इस क्रम में मानव द्वारा एक दूसरे को पहचानने का अभ्यास सर्वाधिक रूप में सार्थक हो चुका है। अर्थात हर मानव में अपने अपने तरीके से जाँचने की विधि बन चुकी है यह मानव कुल के उत्थान की एक यथा स्थिति है। यह यथा स्थिति स्वयं आगे की यथा स्थिति के लिए आधार है ही। इसलिए मानव संवाद पूर्वक ही यथा स्थिति तक, सत्यता तक, यथार्थता तक, वास्तविकता तक पहुँच पाता है। पहुँच पाने का मतलब स्वीकृत होने और प्रमाणित होने से है। इसक्रम में हम मानव आसानी से स्वीकार सकते है, मंगल मैत्री पूर्वक संवाद कार्य को परिवार से चलकर विश्व परिवार तक व्यवस्थित विधि से सम्पन्न कर सकते हैं। इसकी आवश्यकता सदा-सदा से सदा-सदा तक बनी ही रहेगी। **(अध्याय:8, पृष्ठ नंबर:131-132)**

सन्दर्भ : अनुभवात्मक अध्यात्मवाद

(संस्करण: 2009)

- मानव परंपरा तब तक भ्रमित रहना भावी है जब तक समुदाय और समुदायगत आवश्यकता की हठधर्मिता, सुविधा संग्रह की हठधर्मिता, भोग-अतिभोगवादी हठधर्मिता, आदमी को मूलत: दुखी मानने वाली हठधर्मिता, स्वार्थी, अज्ञानी और पापी मानने वाली हठधर्मिता, कोई एक समुदाय अपने को धर्मी अन्य को विधर्मी मानने की हठधर्मिता, द्रोह-विद्रोह-शोषण और युद्ध को एक आवश्यकता मानने वाली हठधर्मिता, व्यक्तिवादी (अहम्तावादी) मानसिकता के लिये सभी हठधर्मिता रहेगी । इसका निराकरण जागृति ही है। जागृति पूर्ण परंपरा मे ही अर्थात् जागृत **शिक्षा-संस्कार**, जागृत न्याय व्यवस्था और जागृत उत्पादन कार्य-व्यवस्था, जागृत लाभ-हानि मुक्त विनिमय व्यवस्था और जागृत स्वास्थ्य संयम पीढ़ी से पीढ़ी को सुलभ होने से है । ऐसी जागृत पूर्ण परंपरा में पीढ़ी से पीढ़ी जागृत होते ही रहना एक अक्षुण्ण परंपरा है । ऐसी परंपरा में अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था सर्वसुलभ होने की कार्यप्रणाली, पद्धति, नीति क्रियाशील रहेगी फलत: विविध प्रकार से समुदायों को अपनाया हुआ भ्रम अपने आप विलय होना स्वाभाविक है। यह अनुभव मूलक जीने के क्रम में पाया जाने वाला वैभव है । **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 21-22)**

- धर्म गद्दी, राज गद्दी, व्यापार गद्दी और **शिक्षा** गद्दी जो अपने हठधर्मितावश मानव को पापी-अज्ञानी-मूख पिछड़ा, दलित दुखी रहना मानते हुए अपने अहम्ता, अहंकार को बढ़ाये रहते हैं । जागृत परंपरा सहज विधि से स्वायत्तता का प्रमाण, परिवार मानव सहज प्रमाण और परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था प्रमाण समाधान समृद्धि सहित प्रमाण के साथ ही ये सब हठधर्मिताएँ विलय हो जाते हैं । साथ ही इस जागृति का प्रमाण में अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था प्रमाणित होना स्वाभाविक होने के कारण सभी समुदायवादी एवं व्यक्तिवादी अस्मितायें अपने आप विलय को प्राप्त करेगें।...**(अध्याय:2, पृष्ठ नंबर: 22-23)**

- मानव परंपरा में यह विदित है कि मानव क्रियाकलाप के मूल में मानसिकता का रहना अत्यावश्यक है । मानसिकता विहीन मानव को मृतक या बेहोश घोषित किया जाता है । विकृत मानसिकता (मान्य, सामान्य मानसिकता के विपरीत) वाले मानव को पागल, असंतुलित अथवा रोगी के नाम से घोषणा की जाती है । यह सभी क्रियाकलाप वांछित, इच्छित और आवश्यकीय मानसिकता हर क्षण, हर पल, हर दिन शरीर यात्रा पर्यन्त प्रभावित होने के क्रम में ही राज्य मानसिकता, धर्म मानसिकता, व्यापार मानसिकता, अधिकार मानसिकता, भोग मानसिकता, सुविधा-संग्रह मानसिकता समीक्षित होता है । न्याय मानसिकता, धर्म (समाधान) मानसिकता, नियम मानसिकता, प्रामाणिकता पूर्ण मानसिकता, समृद्धि मानसिकता, सह-अस्तित्व मानसिकता, वर्तमान में विश्वास मानसिकता, परिवार मानसिकता, स्वायत्त मानसिकता, समाज मानसिकता, व्यवस्था मानसिकता, मानवीय **शिक्षा-संस्कार** मानसिकता, स्वास्थ्य संयम मानसिकता का मूल्यांकन किया जाना जागृत परंपरा में संभव होता है।... **(अध्याय:2, पृष्ठ नंबर: 26-27)**

- भ्रमात्मक धर्म और राज्य परंपरा में परिकल्पित अधिकारों का प्रवर्तन संग्रह, सुविधा और भोग के अर्थ में ही अंत होना देखा गया । आज की स्थिति में शक्ति केन्द्रित शासन प्रयोग में अधिकार पाया हुआ व्यक्ति की सफलता का स्वरूप इस प्रकार दिखाई पड़ता है कि देशवासियों को कड़ी मेहनत, ईमानदारी का नारा और पाठ सुनाते रहे और अपने संग्रह कोष को स्वदेश के अतिरिक्त विदेश में मजबूत बनाते रहे। इसी प्रकार सफल धर्म में अधिकार प्राप्त व्यक्ति (सिद्धि प्राप्त व्यक्ति) का स्वरूप देखने पर यही पता लगता है कि संसार में त्याग और वैराग्य का पाठ पढ़ावे और अपने कोष व्यवस्था को स्वदेश में अधिकतम मजबूत बनाये रखे ।

इस तरह राज्याधिकार, धर्माधिकार सफल व्यक्ति का स्वरूप इस बीसवीं शताब्दी का अंतिम दशक में देखने को मिल रहा है। यही भ्रमात्मक धर्म, भ्रमात्मक राज्य का गवाही है। जबकि 'मानव धर्म' अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के स्वरूप में ही सार्थक और सर्वसुलभ होना पाया जाता है। इस विधि से सम्पूर्ण मानव के सम्मुख सर्वमानव सुखी होने का सूत्र "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" प्रस्तुत है।

पहला मुद्दा - शक्ति केन्द्रित शासन चाहिये या समाधान केन्द्रित व्यवस्था चाहिये ?

दूसरा मुद्दा - संग्रह सुविधा चाहिये या न्याय, समाधान और समृद्धि चाहिये?

तीसरा मुद्दा - इसके लिये **लाभोन्मादी अर्थशास्त्र, भोगोन्मादी समाज शास्त्र, कामोन्मादी मनोविज्ञान शिक्षा की वस्तु के रूप में चाहिये या आवर्तनशील अर्थशास्त्र, व्यवहारवादी समाजशास्त्र और मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान शिक्षा की वस्तु के रूप में चाहिये ?**

चौथा मुद्दा - **विखण्डनवादी (प्राकृतिक असंतुलनवादी) विज्ञान चाहिये या सह-अस्तित्ववादी (प्राकृतिक संतुलनवादी) विज्ञान चाहिये?**

इन्हीं सकारात्मक-नकारात्मक अर्थात् अभी तक किया गया **शिक्षा** स्वरूप को नकारता हुआ और सकारात्मक पक्ष को प्रस्तावित किया हुआ का समर्थन में **समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद और अनुभवात्मक अध्यात्मवाद (सह-अस्तित्ववाद) चाहिये या द्वन्दात्मक भौतिकवाद, संघर्षात्मक जनवाद, रहस्यात्मक अध्यात्मवाद (आदर्शवाद) चाहिए।**

रहस्यमूलक ईश्वर केन्द्रित चिन्तन और अस्थिरता अनिश्चयता मूलक वस्तु केन्द्रित चिन्तन चाहिये या अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन चाहिये?... (अध्याय:2, पृष्ठ नंबर: 29-31)

- अस्तित्व सहज सभी अवस्थाओं का दृष्टा, मानवीयता पूर्ण क्रियाकलापों का कर्ता, मानवापेक्षा सहज समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व का भोक्ता केवल मानव ही है। अस्तित्व में अनुभव सहज अभिव्यक्ति ही यह सत्यापन और सत्यापन विधि होना पाया गया है। यही मानव परंपरा का मौलिक वैभव है। यह सर्वसुलभ होने के लिये परंपरा ही जागृत होना अति अनिवार्य है। इस बीसवीं शताब्दी की दसवें दशक तक इस धरती के मानव विविध प्रकार से अथवा उक्त दोनों प्रकार से यथा भौतिकवादी और आदर्शवादी विधि से मानव को भुलावा देकर ही सारे धरती का शक्ल बिगाड़ दिया। और दूसरे विधि से मरणोपरांत स्वर्ग और मोक्ष के आश्वासन में लटकाया। जबकि मानव शरीर यात्रा के अवधि में ही जागृति अनुभव मूलक प्रमाण, प्रामाणिकता मानव के लिये एक मात्र शांति पूर्ण समृद्धि, समाधान, अभय, सह-अस्तित्व सहज आनन्दित होना देखा गया है। यही जागृति सहज प्रमाण है। आडम्बर मूलत: भ्रमवश ही घटित होना देखा गया है। सम्पूर्ण भ्रम का पोषण राजगद्दी एवं धर्मगद्दी करता है। इसका स्रोत **शिक्षा**-गद्दी है। इस प्रकार **शिक्षा** गद्दी को जागृत होना आवश्यक है। इसके फलन में मानव धर्म ही अखण्ड समाज के अर्थ में सर्वमानव में, से, के लिये आश्वस्त और विश्वस्त होना नित्य समीचीन है। इससे सम्पूर्ण समुदायों जो अपने को समाज कहते है उनका विलय होगा ही। दूसरा परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था सहज विधि से अनेक राज्यों की परिकल्पना तिरोभावित होगी। इस प्रकार धरती की अखण्डता अपने में सम्पूर्णता के साथ स्वस्थ होने का शुभ दिशा प्रशस्त होगा। इसी के साथ मानव कुल में वांछित संयमता, प्रदूषण विहीन प्रौद्योगिकी, ऋतु संतुलन, जनसंख्या नियंत्रण सहित स्वस्थ मानसिकतापूर्ण मानव इकाई इस धरती के ऊपरी सतह में सहज रूप में निष्पन्न होती रहेगी। उसी के साथ सह-अस्तित्व विधि से सदा-सदा के लिये पीढ़ी से पीढ़ी समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व पूर्वक जीने की कला, विचार शैली, अनुभव बल सम्पन्न होगा। यही समृद्ध मानव परंपरा का स्वरूप होना स्पष्टतया समझा गया है।यह समझदारी अस्तित्व में अनुभव मूलक विधि से स्पष्ट हुआ है। यही मूलत: **अस्तित्व-मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन** की अभिव्यक्ति है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 33-35)**

• अनुभवमूलक विधि से **शिक्षा** का स्वरूप अपने आप से जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान सहज विधि से **शिक्षा**-संस्कार सम्पन्न करने का उपक्रम सहज होना देखा गया है । इसे सर्व सुलभ करना सम्भव है। इस तथ्य को भी परिशीलन कर चुके हैं। ऐसी **शिक्षा**-संस्कार को मानवीय **शिक्षा**-संस्कार का नाम दिया है। यह **शिक्षा** का स्रोत सह-अस्तित्व सहज है। इस बात को सत्यापित किये हैं। अस्तित्व में नित्य व्यवस्था है न कि शासन। शासन को व्यवस्था मानना ही पूर्ववर्ती दोनों विचारधारा भटकने का एक बिन्दु रहा है। दूसरा प्रधान बिन्दु अस्तित्व को समझने में असमर्थ रहा है या अड़चन रहा है अथवा भ्रम से पीड़ित रहे हैं। इन्हीं कारणों से दोनों प्रकार के विचारधाराएँ अस्तित्व सहज यर्थाथता, वास्तविकता, सत्यता को स्थिति सत्य, वस्तु स्थिति सत्य, वस्तुगत सत्य के रूप में अनुभव करने में वंचित रहे हैं या अनुभव हुआ किन्तु अभिव्यक्ति संप्रेषणा में प्रमाणित होना संभव नहीं हो पाया है। जबकि हमें अस्तित्व में अनुभव के अनंतर अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन में कोई अड़चन उत्पन्न नहीं हुई। अब यह भी सर्वेक्षण, निरीक्षण, परीक्षण की बेला समीचीन है कि यह संप्रेषणा मानव कुल में, से, के लिये आवश्यकता के रूप में विदित होगा या नहीं। हमें इस पर पूर्ण भरोसा है - मानव में, से, के लिये अस्तित्व में अनुभव एक आवश्यकता के रूप में स्वीकार्य हुआ हो ऐसी स्थिति में यह अभिव्यक्ति, संप्रेषणाएँ स्वाभाविक रूप में बोधगम्य, हृदयंगम पूर्वक सह-अस्तित्ववादी मार्ग को प्रशस्त करेगा क्योंकि अस्तित्व ही सह-अस्तित्व के रूप में नित्य विद्यमान है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 35-36)**

• इस दशक तक दंडाधिकार, दमनाधिकार, पूंजी का अधिकार, धरती का अधिकार, मानव पर अधिकार, जीवों पर अधिकार, वनों पर अधिकार, खनिजों पर अधिकार, प्रौद्योगिकी पर अधिकार, व्यापार अधिकार, राज्याधिकार, समुद्र और आकाश पर अधिकार, धर्माधिकार और बौद्धिक संपदाओं पर अधिकारों का चर्चा, अधिकारों की सीमा और मर्यादाओं पर भी ध्यान दिया जाना देखा गया । इन सभी मुद्दों के सम्बन्ध में कई समुदायों अथवा सभी समुदायों का सम्मिलित अथवा समुदाय प्रतिनिधियों का सम्मिलित गोष्ठी, विचारपूर्वक गोष्ठी, विचार पूर्वक निर्णयों को स्वीकारा गया । अब ऐसी सभी स्वीकार्यताएं महिमामय दस्तावेजों के रूप में माने गये हैं । महिमा सम्पन्न दस्तावेज का तात्पर्य जिस स्वीकृतियों का हेराफेरी होने से उसके लिये डरावनी सबक सीखने के लिये स्वीकृतियाँ बनी रहती हैं । या इसको मर्यादा माना जाता है । ये सब ऐसे मौलिक दस्तावेजों का मूल तात्पर्य सभी अपने-अपने देश में शांतिपूर्वक जी सके इसी मानसिकता से उक्त सभी बातों पर एक समझौता किया जाता है । जबकि अभी तक पूर्वावर्ती किसी भी चिन्तन के अनुसार, कोई भी वांग्मय जो मानव सम्मुख प्रस्तुत हुई है उसमें सार्वभौम शांति का कोई परिभाषा, प्रतिपादन, उसका व्याख्या संप्रेषित नहीं हो पाया । साथ ही सुख शांति की अपेक्षा हर मानव में होना पाया जाता है ।

उक्त मुद्दों पर स्वीकृत अधिकारों के आधार पर किये गये समझौते बारंबार बदलते भी रहते है । इसी के साथ इस शताब्दी के अंतिम दशक तक में यह भी देखा गया जिस देश के पास सर्वाधिक समर शक्ति हाथ लगी है वह किसी के अधिकारों को भी हथिया लिया है और अपने अधिकार के रूप में स्वीकार कर लिया गया है । इस शताब्दी के पहले भी इस प्रकार की नजीरें उपनिवेश के रूप में घटित होना ख्यात हो चुकी है । इस प्रकार कोई भी अपने सामरिक कूटनीतिक (अन्त:कलह को पैदा करो-राज करो) मानसिकता से ही पहले भी जो अपना देश नहीं है ऐसे देशों पर अधिकार पाने का प्रयोग किया है । यह राज्याधिकार मानसिकता मूलत: अपने स्वजनों, स्वजातियों और स्वदेशियों के सुविधा के लिये अन्य देश की सम्पदाओं को अपहरण कर, शोषण कर अपने देश में उपयोग करने के रूप में प्रयास करना देखा गया है । आदिकाल से ही सामरिक शक्ति सम्पन्न राज्य को विकसित राज्य, उस देश में निवास करने वालों को विकसित जनजाति होना मान्यता के रूप में लोकव्यापीकरण हुआ है जबकि युद्ध न तो विकास का आधार है, कड़ी है, न प्रक्रिया है । क्योंकि इससे अखण्ड समाज का एक भी सूत्र-व्याख्या, प्रयोजन प्रमाणित नहीं होता । जबकि मानवीयतापूर्ण पद्धति, प्रणाली, नीति से अखण्ड समाज का ही सूत्र रचना, व्याख्या व प्रयोजन नित्य समीचीन है । इससे वंचित होने का एक ही कारण है, भ्रमात्मक मानसिकता अथवा भय, प्रलोभन, आस्थाओं से ग्रसित मानसिकता ही है । अभी तक जितने भी झीना-झपटी युद्ध, विश्वयुद्ध हुए हैं, वे सब उक्त तीनों आधारों पर ही सम्पन्न हुए हैं ।

अतएव अनुभव मूलक विधि से ही मानवीयतापूर्ण पद्धति प्रणाली नीतिपूर्वक है । अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था, मानवीयतापूर्ण **शिक्षा**-संस्कार सुलभता, न्याय-सुरक्षा सुलभता, उत्पदान-कार्य सुलभता, विनिमय-कोष सुलभता, स्वास्थ्य संयम सुलभता नित्य वैभव के रूप में इसी धरती पर वैभवित होना सहज है, नियति है, एक अपरिहार्यता है। ऐसी ऐश्वर्य सम्पन्न मानव परंपरा **महिमा** से ही अनेक राज्य, समुदाय सम्बन्धी अधिकारोन्माद समापन होना स्वाभाविक है। इसका समापन और मानवीयता का उदय अर्थात् जागृति ही मानव परंपरा में, से, के लिये मौलिक संक्रमण और परिवर्तन है। **(अध्याय : 2, पृष्ठ नंबर : 36 - 38)**

- स्वायत्त मानव का प्रमाण रूप **मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार** ही है । इसकी महिमा को स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन और व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वालंबन है । ऐसे स्वायत्त मानव ही परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है। हर परिवार मानव परस्परता में सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन और उभय तृप्ति को पाना देखा गया है । परिवार मानव ही परिवार सहज आवश्यकता के अनुसार अपनाया गया उत्पादन कार्य में एक दूसरे के पूरक होते हैं, भागीदारी का निर्वाह करते हैं, फलस्वरूप परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन होना देखा गया है । यही समृद्धि, समाधान, न्याय सूत्र होना देखा जाता है । परिवार में समाधान और समृद्धि सम्बन्धों के आधार पर पाये गये उभय तृप्ति सहज न्यायपूर्वक व्यवस्था में जीना सहज होता हुआ देखा गया है । इन्हीं सहजता की पुष्टि में आवश्यकता से अधिक उत्पादन समृद्धि को प्रमाणित कर देता है । व्यवस्था में जीना ही समाधान का प्रमाण है और वर्तमान में विश्वास है । अतएव स्वायत्त मानव स्वरूप अनुभव मूलक होना देखा गया है । फलस्वरूप परिवार मानव, समाज मानव और व्यवस्था मानव के रूप में होना नियति सहज अभ्युदय (सर्वतोमुखी समाधान) और प्रामाणिकता (अनुभव और पूर्ण जागृति) सहज मानव में सार्थक होना देखा गया है । इसी आधार पर यह "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" लोक मानस के लिये प्रस्ताव के रूप में प्रस्तुत है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 40-41)**

- **शिक्षा** की विडम्बना यही है कि विज्ञान विधा से विशेषज्ञता से प्रभावित है । विशेषज्ञता किसी विधा के किसी अंश में अपने को प्रतिष्ठित करने के प्रत्यत्नों में कार्यरत होना पाया जाता है । पुन: उसका अंश और उसके अंश के रूप में प्रयासों का उदय देखने को मिल रहा है । फलस्वरूप विशेषज्ञता प्रयोजन विहीन काला-दीवाल के सम्मुख सभी विधाओं में आ चुके हैं । जैसे - मात्रा विज्ञान अस्थिरता-अनिश्चयता के काला दीवाल के सम्मुख है । इसके विशेषज्ञ अपना मूल्यांकन कराने में निरीह देखा गया है । दूसरा वंशानुषंगीय विज्ञान यह मानव को अध्ययन कराने में विश्लेषित करने में सर्वथा असमर्थ होकर काला-दीवाल के सम्मुख होना देखा गया । तीसरा सापेक्षवाद अपने कल्पना को अज्ञात घटना के साथ वर्णित करने के रूप में विशेषज्ञों को देखा गया है । इन तीनों विधा के लिये अथवा इन विधाओं को पहचानने के लिये ऊर्जा की आवश्यकता को विज्ञान संसार में स्वीकारा गया है । यह अपने से गति ऊर्जा कहना आरम्भ करते हैं यथा चुम्बकीय धारा को विद्युत गति के रूप में परिणत करना इस गति को और गति विधा में चलकर तरंग का नाम लेते हैं । ऐसी तरंग वस्तु है या अवस्तु है इस तथ्य को उद्घाटित करने के लिये अभी भी प्रयोग करते जा रहे हैं । जो प्रयोग परिणीतियाँ आती है उसे अंतिम सत्य नहीं मानते हुए प्रयोगों के लिए मार्ग प्रशस्त किये रहते हैं । इस विधा में अनिश्चयता बनी ही है - वस्तु है या अवस्तु है।

इसी अनिश्चयता के स्थिति पर मानव अपने को समझा हूँ, नहीं समझा हूँ इस बात को लेकर कुंठित हो चुके हैं । इन्हीं सिद्धांतों के शाखा-प्रशाखा होने के कारण और अलग-अलग से समीक्षीत करने की आवश्यकता नहीं है । अतएव विज्ञान संसार में लगे हुए जितने भी मानव हैं वे अपने को समझदार सत्यापित करने में असमर्थ हैं क्योंकि विशेषज्ञता का चक्कर विचार के शुरुआत से काला दीवाल तक चलता है । दूसरी ओर **शिक्षा** के कला पक्ष के विशेषज्ञ कहलाने वाले, विविध समुदाय में पनपी हुई रुढ़ी-आदतों को शादी-विवाह, नाच-गाना, उत्सवों को मनाने के तरीकों को संस्कृति मानते हुए समाजशास्त्र के नाम से पढ़ाया करते हैं । वे विशेषज्ञ जिसको पढ़ाते हैं उसमें विश्वास नहीं रखते हैं। उससे भिन्न रुढ़ी, भिन्न आदतों के साथ भिन्न मानसिकता को बनाए रखते हुए दिखते हैं । अंतिम बात वर्तमान समाज एक संघर्षशील मानव समुदाय है । संघर्ष का आधार व्यक्ति-व्यक्ति में मानसिक मतभेद रूढ़ी-रूढ़ी के

बीच आलोचना, नशा-पानी, नाच-गाने में विविधता, प्रतिस्पर्धा के रूप में होना देखा गया है । इसी प्रकार खेल-कूद, भाषण-प्रतियोगिताएँ-प्रतिस्पर्धा के आधार पर पहचानने की परंपरा अभी तक है । प्रतिस्पर्धाएँ विरोध, द्वेष जैसी संकटों को झेलता हुआ घटना होना देखा गया है । धर्म और राज्य में संघर्ष है ही और यह भी कलात्मक **शिक्षा** प्रणाली पद्धत्ति में गण्य है । इसका समीक्षा यही है विज्ञान विधा से यंत्र प्रमाण के आधार पर अनिश्चियता-अस्थिरता का काला-दीवाल और कलात्मक शिक्षा-विधा से विरोध, विद्रोह-द्वेष जैसी अवांछनीय काला-दीवालें अथवा स्वीकृतियाँ मानव परंपरा को भ्रमित करने का आधार सूत्र के रूप में बनी । सारे लोग प्रयत्न करते हुए सही मार्ग प्रशस्त नहीं हुआ। अतएव अनुभव मूलक व्यवहार प्रमाण प्रस्ताव का अनिवार्यता बना ही रहा । इसलिये अभी प्रस्तावित होकर मानव स्वीकृत होना संभव हो गया। **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर: 51-53)**

- स्थिरता और निश्चयता का स्वरूपों को अध्ययन करने के लिये

1. अस्तित्व
2. परमाणु में विकास
3. परमाणु ही व्यवस्था का आधार
4. सह-अस्तित्व में व्यवस्था
5. व्यवस्था सूत्र ("त्व" सहित व्यवस्था)
6. पूरकता-उदात्तीकरण, रचना-विरचना
7. पूरकता-उदात्तीकरण और संक्रमण
8. परमाणु ही गठनपूर्णतापूर्वक जीवन पद (चैतन्य पद) में वैभवित होना
9. जीवन में जीवनी क्रम
10. बंधन सहित जीवन का कार्यक्रम और जागृतिक्रम
11. जीवन ही जागृति पूर्वक क्रियापूर्णता में संक्रमण
12. जीवन ही जागृतिपूर्णता पूर्वक आचरण पूर्णता में संक्रमण, प्रधान बिन्दु है ।

इसमें से कोई भी बिन्दु यंत्र प्रमाण से प्रमाणित नहीं हो पाती जबकि हर मानव इसको समझ सकता है और व्यवहार में प्रमाणित कर सकता है । आदर्शवाद जिसका आधार आप्त पुरुषों के वचन हैं के आधार पर भी ये बारह बिन्दुओं में से कोई भी बिन्दु अध्ययन, बोध और प्रमाणगम्य नहीं हो पाते ।

इसलिये अनुभव मूलक जागृतिपूर्ण विधि से सभी दिशा, कोण, परिप्रेक्ष्य, आयामों में व्यवहार प्रमाण मानव कुल में अति आवश्यक है । अनुभव व्यवहार में प्रमाणित होना अपरिहार्य है और हर प्रयोग व्यवहार में सार्थक होना उतना ही अनिवार्य है । इस प्रकार अनुभव मूलक जागृति विधि पूर्ण प्रमाण सूत्रों पर आधारित विचारों और विचार सूत्रों पर आधारित संप्रेषणा और वांग्मय शैलियों से इंगित 'वस्तु' के रूप में अर्थो-प्रयोजनों के सार्थकता के रूप में व्यवहार, उत्पादन, व्यवहार-न्याय, व्यवहार और न्यायिक विनिमय, व्यवहारिक स्वास्थ्य-संयम और व्यवहारिक **शिक्षा-संस्कार** परंपरा की आवश्यकता है । और उसकी आपूर्ति ही स्वाभाविक रूप में अग्रिम पीढ़ियों के सहस्त्राबदियों तक इस धरती पर मानव परंपरा सहज वैभव और उसकी सार्थकता रूपी जागृति और व्यवस्था को प्रमाणित कर सकते हैं । यह हर व्यक्ति के लिये सहज सुलभ हो सकता है । सार्थक रूप में जीने की कला अर्थात् जीने की हर तरीकों का जागृतिसूत्र के अनुरूप मूल्यांकित होना संभव है। हर मानव में जागृति और मानवत्व प्रमाणित होने का अनुमान विद्यमान है ही। **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर: 53-54)**

- इसमें और एक भाग पर मेधावियों का जिज्ञासा हो सकता है आप पूर्वावर्ती पद्धतियों के आधार पर अभ्यास-विधि से पार पा गये, सबके लिये उन सभी विधियों को ओझिल क्यों कर रहे है ? उन अभ्यास विधाओं के प्रति

प्रस्ताव क्यों प्रस्तुत नहीं कर रहे है ? उत्तर में अनुभव विधि से यही व्यवहार गम्य है । जागृति विधि से जागृत परंपरा, जागृत परंपरा विधि से **मानवीय शिक्षा**, मानवीय व्यवस्था में प्रमाणित होना इसके लिये आवश्यकीय व्यवहार कार्यों में पारंगत होना ही जागृत परंपरा होने का वैभव को देखा गया, समझा गया, प्रमाण के रूप में जीकर देखा गया । यह सटीक सिद्ध हुआ या इसकी सटीकता सिद्ध हुई अर्थात् अनुभव परंपरा की सटीकता सिद्ध हुई । आवश्यकता सुदूर विगत से ही होना रहा । अतएव जिस अभ्यास साधना परंपरा में चलकर समाधि स्थली में पहुँचने के उपरान्त भी स्वान्त: सुख में पहुँचने के उपरान्त भी सर्वशुभता का मार्ग प्रशस्त नहीं हुआ, समाधि के लिये अथवा निर्विकार स्थिति के लिये बोधपूर्ण होने के लिये, सत्य साक्षात्कार होने के लिये, आत्मसाक्षात्कार होने के लिये, देवसाक्षात्कार होने के लिये, संयोग से जागृत होने के लिये (जागृत व्यक्ति को छूने से) भी परंपरा अपने-अपने ढंग से चल रहे हैं उन सभी में प्रकारान्तर से समाधि का ही लक्ष्य बताया गया है । उन सभी परंपरा के प्रति मेरा कृतज्ञता को अर्पित करते हुए, (क्योंकि उससे मुझे सहायता मिला है) सर्वशुभ मानव परंपरा में स्थापित होने का ज्ञान, दर्शन, आचरण, व्यवस्था, **शिक्षा** प्रवाह को स्थापित करना आवश्यक समझा गया है । इसका कारण मध्यस्थ दर्शन (सह-अस्तित्ववाद) के अंगभूत "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" को प्रस्तुत करना एक आवश्यकता सदा-सदा से रही है । यह अवसर हमें प्राप्त होने का श्रेय, अथक प्रयास किया हुआ मानव परंपरा का ही देन है। इसलिये विगत को धन्यवाद, वर्तमान में प्रस्ताव एवं भविष्य के लिये सर्वशुभ योजना प्रस्तुत है। **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर: 60-61)**

- परंपरा अपने में पीढ़ी से पीढ़ी के लिए सूत्र है ही-भले ही समुदाय विधि से हो या अखण्ड समाज विधि से हो। अखण्ड समाज विधि जागृति का द्योतक है एवं समुदाय विधि भ्रम का द्योतक है यह स्पष्ट है। समुदाय विधि से मानव स्वायत्त होना नहीं हो पाता है पराधीनता बना ही रहता है। अखण्ड समाज विधि से ही मानव में स्वायत्तता परंपरा शिक्षा-संस्कार विधि से संपन्न होता है। इसका प्रमाण अर्थात् स्वायत्तता का प्रमाण परिवार में होना देखा गया। परिवार मानव में सह-अस्तित्व सूत्र से स्वायत्तता का प्रमाण सिद्ध हो जाता है। यह प्रचलित होने के लिये परंपरा की आवश्यकता है। दूसरे भाषा से सर्वसुलभ होने के लिए अथवा लोक व्यापीकरण होने के लिए परंपरा की आवश्यकता है। **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर:64)**

- परस्पर पहचानना-निर्वाह करना शाश्वत् नियम है। उपयोगिता सहित पूरक होना शाश्वत् नियम है । पूरकता का तात्पर्य विकास और जागृति में प्रमाण सहित प्रेरक पूरक होने से है। विकास और जागृति में स्व शक्तियों का अर्पण समर्पण है। जड़ प्रकृति में पूरकता किसी एक के अंश को स्वयं स्फूर्त विधि से विस्थापित कर देने के रूप में ही है। मानव में समाधानपूर्वक समृद्ध होने की विधियों को देखा जाता है। यही पुन: जड़ प्रकृति में रचना-विरचना में भी देखने को मिलता है कि रचना विधि में पूरकता, विरचनाएं पुनर्रचना के लिये पूरकता के रूप में प्रस्तुत होना देखा जाता है । इस प्रकार पूरकता जड़ प्रकृति में भी देखने को मिलता है। परस्पर पूरक है इस तथ्य का साक्ष्य पदार्थावस्था से प्राणावस्था, प्राणावस्था से जीवावस्था और जीवावस्था से ज्ञानावस्था विकसित स्थिति में वर्तमान रहना ही है। सभी जीव संसार जीने की आशा से ही वंशानुषंगीय कार्य में तत्पर रहना पाया जाता है। ज्ञानावस्था के मानव उसी का अनुकरण-अनुसरण करने के जितने भी कार्यकलापों को अपनाया स्वपीड़ा-परपीड़ा, स्वशोषण-परशोषण, स्वयं के साथ वंचना और अन्य के साथ प्रवंचना और इन सबका सारभूत बात स्वयं के साथ समस्या और उसकी पीड़ा से पीड़ित रहना, अन्य को पीड़ित करना रहा। यही भ्रमित मानव परंपरा रूपी समुदायों में देखने को मिला। यही **शिक्षा**, संस्कार, संविधान और व्यवस्था इस दशक तक मानी जा रही है। ये सब समस्याकारी है । समस्या स्वयं पीड़ा के रूप में प्रभावित होना देखा गया। इसका निराकरण जागृति, उसका प्रमाण रूप में समाधान ही है। **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर: 69-70)**

- आशा बन्धन से 'जीवनी क्रम' परंपरा को आरंभ किया हुआ जीवन, आशा से विचार, विचार से इच्छा बन्धन तक भ्रमित विधि से मानव कार्यकलापों को प्रस्तुत करता है । इच्छाएँ चित्रण कार्य को, विचार विश्लेषण कार्य को और

आशा चयन क्रिया को सम्पादित करता हुआ मानव परंपरा में भय, प्रलोभन और आस्था में जीता रहता है । प्रिय, हित, लाभ संबंधी संग्रह-सुविधा-भोग द्वारा प्रलोभन के अर्थ को; युद्ध, शोषण, द्रोह-विद्रोह-संघर्ष ये सब भय को और भक्ति-विरक्ति पूर्वक आस्था त्याग-वैराग्य को मानव ने प्रकाशित किया है । यह परंपरा सहज विधि से ही होना पाया जाता है । परंपरा में इसी के लिये **शिक्षा-संस्कार**, उपदेश, शासन-पद्धति, संविधान भी स्थापित रही है । इसी क्रम में सामान्य आकांक्षा और महत्वाकांक्षा संबंधी और सामरिक सामग्रियों के रूप में अनेकानेक चित्रण कार्य सम्पन्न हुआ । ऐसे कुछ यंत्र संचार के लिये मार्ग और सेतु का चित्रण हुआ। इसी से सम्बन्धित अनेकानेक वस्तु, सामग्री, यंत्रों का चित्रण मानव ने किया है ।

जीवनी क्रम जीवों में वंशानुषंगीय स्वीकृति के रूप में देखने को मिलता है । यही आशा बन्धन का कार्यकलाप है। वंशानुषंगीय कार्य में उस-उस वंश का कार्यकलाप निश्चित रहता है । तभी जीवावस्था व्यवस्था के रूप में गण्य हो पाता है। ऐसे जीव शरीर जो वंशानुषंगीय निश्चित आचरण को प्रस्तुत करते है उनमें समृद्ध मेधस का होना पाया जाता है । ऐसी वंशानुषंगीय रचना क्रम में मानव शरीर भी स्थापित है । इसकी परंपरा भी देखने को मिलती है । उल्लेखनीय मुद्दा यही है, मानव परंपरा में निश्चित आचरण स्पष्ट नहीं हो पाया । इसका कारण मानव ने तीनों प्रकार के बंधन वश जीवों के सदृश्य जीने का प्रयत्न किया । जबकि मानव अपने मौलिक विधि से ही जीने की प्रेरणा बना रहा । इसी क्रम में आचरणों की विविधता, विचारों की विविधता, इच्छाओं की विविधता, अनेकता का कारण बना । इसलिये केवल आशा, विचार, इच्छा से मानव में मानवीयता की स्थापना नहीं हो सकी। अथक प्रयास अवश्य किया गया । 'जीवन' के और आयामों का प्रयुक्ति मानव परंपरा में अवश्यंभावी होने के आधार पर ही अनुभवमूलक विधि का स्थापित होना अनिवार्यतम स्थिति बन चुकी है ।

मुख्यत: न्याय, धर्म, सत्य रूपी दृष्टियों की क्रियाशीलता वृत्ति में एवं फलन स्वरूप इनका साक्षात्कार चित्त में, बुद्धि में बोध और अनुभव की स्वीकृति, आत्मा में इनका अनुभव और अनुभव बोध तथा साक्षात्कार की पुष्टि चिंतन में सम्पन्न होना ही अनुभवमूलक जागृतिपूर्ण स्थिति गति होना स्पष्ट है । अतएव **जीवन को विधिवत् चेतना विकास मूल्य शिक्षा विधि से मध्यस्थ दर्शन सह-अस्तित्ववाद का अध्ययन एवं समझ लेना जीवन ज्ञान का तात्पर्य है ।** जीवन ही दृष्टा पद में होने के कारण अस्तित्व सहज सम्पूर्ण दृश्य का दृष्टा होना सहज है । इस प्रकार अनुभव करने वाली वस्तु जीवन है । अनुभव करने योग्य वस्तु अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व है । प्रमाणित करने योग्य वस्तु हरेक मानव है । प्रमाणित होने के लिये वस्तु अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था है । **अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व में अनुभव ही परम सत्य में अनुभव ।**

जीवन रचना (चैतन्य पद) + जीवन क्रियाकलापों का निरीक्षण, परीक्षण, सर्वेक्षण = जीवन ज्ञान। (अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 74-76)

- मानव शरीर का संचालन भी जीवन ही सम्पन्न करने का तथ्य सुस्पष्ट है । मानव शरीर संचालन संस्कारानुषंगीय होने के अर्थ में ही बहुमुखी परंपराएँ देखने को मिला, यह केवल मानव परंपरा में ही मिला । इसमें यह भी देखने को मिला मानव ही अपने विभूतियों का सदुपयोग और दुरूपयोग कर सकता है । क्योंकि सम्पूर्ण मानव में शुभाकांक्षा उमड़ती ही रहती है । इन उमड़ती हुई शुभाकांक्षा ध्रुविकृत होने के ओर ही सुदूर विगत से इस दशक तक किये गये प्रयास और अभिव्यक्तियों से इसी तथ्य की पुष्टि होती है । सर्वशुभ और उसकी प्रतिष्ठा सर्वसुलभ रूप में तभी संभव होना देखा गया है कि हर बच्चे-बड़े जागृति को प्रमाणित कर दे । ऐसी लोकव्यापीकृत जागृति, लोक व्यापीकृत सर्वशुभ प्रमाण योग्य जागृति, जागृत परंपरा में, से, के लिये होना भी सुस्पष्ट हो चुकी है । **जागृत जीवन में मध्यस्थ क्रिया, मध्यस्थ शक्ति, मध्यस्थ बल के स्वरूप को समझने की विधि सहित उसका कार्य, कार्य-स्वरूप और प्रयोजनों को ज्ञात कर लेना आवश्यक है । यही शिक्षा-संस्कार का प्रयोजन है ।** इससे लोकव्यापीकरण कार्यक्रम में सहज गति सुलभ होगा ही। **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 93-94)**

- हर मानव समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व व उसकी निरंतरता विधि से जीना चाहता है। इसके लिये अनुभवमूलक **शिक्षा-संस्कार** विधि समीचीन है। इसके विपरीत यह मानना कि मानव कभी सुधर नहीं सकता यह सर्वथा भ्रम है। हर मानव संबंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति पूर्वक परिवार मानव होना चाहता है इसके नित्य सफलता के लिये मानवीयतापूर्ण **शिक्षा-संस्कार** समीचीन है। यह अनुभवमूलक विधि से प्रमाणित होना पाया जाता है। मानव सम्बन्धों में निरंतर मूल्यों का अनुभव कर सकता है। इसे सफल बनाने का कार्य-विचार-व्यवहार विधि को अनदेखी करते हुए यह मानना कि बैर विहीन परिवार नहीं हो सकता और बैर रहेगा ही, दुख रहेगा ही इन्हें सत्य कहकर अपने भ्रम को दूर-दूर तक फैलाना है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:108-109)**

- मानव जन्म से ही न्याय का याचक, सही कार्य-व्यवहार करने का इच्छुक और सत्य वक्ता होता है। परंपरा सहज विधि से (**शिक्षा-संस्कार**, संविधान और व्यवस्थापूर्वक) हर व्यक्ति में न्याय प्रदायी क्षमता, सही कार्य व्यवहार करने की योग्यता सत्यबोध करने-कराने की परमावश्यकता है। यह अनुभवमूलक मानव परंपरा में ही सार्थक होता है। इसे अनदेखी करते हुए हर व्यक्ति को जन्म से ही स्वार्थी, अज्ञानी और पापी इतना ही नहीं अपराधी, गलती करने वाला मानना, कहना, कहलाना, करने के लिये सम्मति देना भ्रम की पराकाष्ठा है।...**(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:110)**

- हर मानव में जागृतिपूर्वक चारों अवस्था में वैभवित वस्तुओं को उन-उन के स्वभाव-गति प्रतिष्ठा में जानने-मानने-पहचानने-निर्वाह करने का अर्हता रहता ही है। उस अर्हता के अनुसार **शिक्षा-संस्कार** को संपन्न करने की योग्यता से वंचित रहकर उसके विपरीत आवेशित गति को ही "वैभव और आवश्यक" मानते हुए, मनाने का जितना भी कार्यकलाप है (**शिक्षा, संस्कार** सहित) वे सभी अथ से इति तक भ्रम है क्योंकि सम्पूर्ण अस्तित्व सह-अस्तित्व के रूप में विकास, जीवन, जीवन-जागृति प्रतिष्ठा ही है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:111)**

- हर मानव 'त्व' सहित व्यवस्था विधि-नियम से हर इकाई में, से, के लिये मौलिकता को जानने-मानने-पहचानने-निर्वाह करने योग्य है। यह जागृतिपूर्ण **शिक्षा** परंपरा से लोक-व्यापीकरण होता है। इसे अनदेखी करते हुए सापेक्षता को स्वीकारना स्वीकारने के लिये परंपरा को मजबूर करना अथ इति तक भ्रम है और गलती है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:112)**

- आँखों से जो कुछ भी दिखता है वह किसी वस्तु के रूप (आकार, आयतन, घन) में से आंशिक भाग दिखाई पड़ता है। रूप का भी सम्पूर्ण भाग आँखों में आता नहीं। जबकि हर वस्तु, रूप, गुण, स्वभाव, धर्म के रूप में अविभाज्य वर्तमान है। यह जागृतिपूर्ण **शिक्षा** विधि से लोकव्यापीकरण होता है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:114)**

- मानव से रचित यंत्र और मापदण्ड से मानव को प्रमाणित करना संभव नहीं है। परन्तु यह संभव है ऐसा मानना और **शिक्षापूर्वक** मनाना अत्यंत भ्रम और गलती है। जबकि मानव ही यंत्र और मापदण्ड को प्रमाणित करता है।... **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:114)**

- जो बन्धन था, मुक्ति पाने के बाद उसका प्रयोजन क्या है ?

जीवन जागृति अर्थात् मानव चेतना, देव चेतना पूर्णता में, दिव्य-चेतना सहज प्रमाण और जागृति पूर्णता के अनन्तर उसकी निरंतरता का परंपरा के रूप में होना नियति क्रम व्यवस्था है। इस सत्यता के आधार पर जागृति पूर्णता विधि से मानव परंपरा वैभवित होना ही इसका प्रयोजन है। जीवन नित्य होने के कारण जागृति भी नित्य होना स्वाभाविक है। इन क्रम में बन्धन, भ्रम, समस्या से ग्रसित बुद्धिजीवी बनाम शब्दजीवी में यह तर्क उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि जागृति क्रम की भी निरंतरता होना चाहिए। इसके लिए जागृति पूर्ण प्रणाली से उत्तर यही है कि

जागृति क्रम विधि से जीवन अथवा भ्रम बन्धन विधि से जीवन शैशवकाल से शरीर संचालन करता हुआ मानव संतान जागृत होने का अभिलाषा सहित व्यक्त होने के आधार पर अथवा प्रकाशित होने के आधार पर जागृति क्रम और जागृति पूर्ण परंपरा स्वाभाविक रूप में सहज विधि से ही जागृति प्रतिष्ठा स्थापित करना सहज है । क्योंकि जागृत परंपरा में स्वायत्त मानव के लिए अति आवश्यकीय **शिक्षा-संस्कार** सहज रूप में उपलब्ध रहता ही है । अतएव भ्रमबन्धन का निरन्तरता केवल जीवावस्था में ही प्रमाणित होता है। मानवीयतापूर्ण मानव परंपरा में, से, के लिए भ्रमबन्धन की आवश्यकता सर्वथा निरर्थक, अनावश्यक होना पाया गया है ।....**(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:127-128)**

- आशा, विचार, इच्छा बन्धन को जागृति क्रम में व्यक्त होना अति आवश्यक रहा है क्योंकि इनके परिणाम में पीड़ाओं का आंकलन होना आवश्यक रहा है । इच्छा बन्धन की अभिव्यक्ति इच्छा पूर्ति के लिये धरती का शोषण, वन का शोषण, मानव का शोषण के रूप में देखने को मिलता है । यही वैज्ञानिक, प्रौद्योगिकी तंत्र का चमत्कार रहा । सभी सामुदायिक शासन अपने विवशता सहित अपने सामरिक सामर्थ्य को बुलंद करने के लिये देशवासियों को एकता अखण्डता का नारा सहित किये जाने वाले सत्ता संघर्ष भी इच्छा बंधन क्रम में एक बुलंद प्रयास और आवाज सहित प्राप्तियाँ होना देखा जाता है । इसी क्रम में यह भी देखा गया विरक्ति, असंग्रहता का दुहाई देने वाले सभी धर्मगद्दी इच्छा बन्धन के तहत अनेक सुविधाओं को इकट्ठा करता हुआ शोषणपूर्वक अथवा परिश्रम के बलबूते पर विविध प्रकार से अपने-अपने वैभव को (इच्छा बन्धन रूपी वैभवों को) व्यक्त करता हुआ देखा गया है । इसमें जो असफल रहते हैं वे सब कुण्ठित और चिन्तित रहता हुआ देखने को मिलता है । इसी प्रकार **शिक्षा** गद्दी भी इच्छा बन्धन के अनुरूप ही शैक्षणिक कार्य,वांग्मयअभीप्साओं को स्थापित करने के कार्य में व्यस्त रहता हुआ देखने को मिला । इस दशक तक स्थापित, संचालित तथा कार्यरत शिक्षण संस्थाओं में कार्यरत व्यक्ति, प्राध्यापक, आचार्य वेतनभोगी होते हुए देखा जाता है। यह इच्छा बंधन का ही प्रमाण है और हर विद्यार्थी को नौकरी (वेतनभोगी) अथवा व्यापारी (शोषणकर्ता) के रूप में स्थापित करता है और इन दोनों क्रियाकलाप का लक्ष्य सुविधा, संग्रह, भोग ही है। यह इच्छा बन्धन का इस दसवीं दशक तक मानव परंपरा का समीक्षा है।... **(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर:135-136)**

- जागृतिपूर्ण परंपरा में ही सर्वमानव व्यवस्था में जीना, समग्र व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करना स्वाभाविक है, अनिवार्य है और आवश्यक है। व्यवस्था में जीने देकर जीना परिवार में ही प्रमाणित होता है । इसके मूल में मानव में स्वायत्तता अति अनिवार्य स्थिति है। व्यवस्था में जीने का फलन ही समाधान, समृद्धि का प्रमाण और अभय, सह-अस्तित्व का सूत्र होना देखा गया है । स्वायत्त मानव का स्वरूप पहले स्पष्ट किया जा चुका है। ऐसे स्वायत्त मानव से जागृतिपूर्ण **शिक्षा** प्रणाली, पद्धत्ति, नीतिपूर्वक सर्वसुलभ हो जाती है । यही भ्रम (बन्धन) मुक्त मानव परंपरा का सूत्र है । इसके क्रियान्वयन क्रम में परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था, ग्राम परिवार और विश्व परिवार के रूप में गठित होने, साकार होने और क्रियारत होने की पूर्ण संभावना, आवश्यकता का संयोग होता है। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:139)**

- जहाँ तक **शिक्षा** की बात है यह प्रचलित विज्ञान युग के अनन्तर धर्म-कर्म शास्त्रों से भिन्न भी **शिक्षा**-स्वरूप और कार्य समाहित हुई। इसे विज्ञान **शिक्षा** अथवा व्यापार **शिक्षा** कह सकते हैं । **शिक्षा** जगत में तकनीकी विज्ञान इस धरती के सभी भाषा, सम्प्रदाय, धर्म, जाति, मत, पंथ वाले अपना चुके हैं । धर्म परंपराओं का जो कुछ भी चिन्हित लक्षण अथवा पहचान हुआ वह किसी का जन्म होने से उत्सव मनाने के रूप में, किसी के शादी-विवाह अवसर में उत्सव मनाने के तरीके से और किसी की मृत्यु होने से बंधुजन शोक संवेदना को व्यक्त करने के तरीके से होता है । सभी सम्प्रदाय अपने-अपने तरीके को श्रेष्ठ मानते ही रहते हैं। **(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर: 153)**

• यह तीनों प्रकार का बन्धन (आशा बन्धन, विचार बन्धन और इच्छा बन्धन) शरीर को जीवन मान लेने से और इन्द्रिय सन्निकर्ष से ही सम्पूर्ण सुख का स्रोत मानने के परिणाम में भ्रम सिद्ध होना पाया गया । जबकि जीवन अपने जागृति को व्यक्त करने के लिये शरीर एक साधन है, इन्द्रिय सन्निकर्ष ही एक माध्यम है । मानव परंपरा ही जीवन जागृति प्रमाण का सूत्र और व्याख्या है । यही भ्रम और निर्भ्रम का, जागृति और अजागृति का निश्चित रेखाकरण सहज बिन्दु है । इन यथार्थों को **शिक्षा** गद्दी, राजगद्दी और धर्मगद्दी अपने में बीते हुए विधियों से आत्मसात करने में असमर्थ रहे हैं । दूसरे विधि से इनका धारक वाहक मेधावी इन मुद्दों पर अनुसंधान करने से वंचित रहे हैं । इसीलिये यह तथ्य मानव परंपरा में ओझिल रही है। इसे परंपरा में समाहित कराना ही इस "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" का उद्देश्य है । **(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर:158)**

• स्वनारी/स्वपुरूष का प्रयोजन इस विधि और आधार से देखा गया है कि समाज रचना क्रम में एक नारी-पुरूष का शरीर संयोग मानव शरीर रचना अथवा संतान परंपरा के लिए आवश्यकता विधि से सहज कार्यकलाप विधि से भी आवश्यक घटना है । शरीर रचना विधि से यौवन ही इसका आधार है । कार्य विधि से मानव परंपरा बना रहना एक आवश्यकता है । प्रयोजन विधि से व्यवस्था में जीना एक अनिवार्यता है । व्यवस्था का तात्पर्य न्याय सुलभता, उत्पादन सुलभता, विनिमय सुलभता ही है जिसका स्रोत **मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार** और स्वास्थ्य-संयम कार्यकलाप ही है । इसी से परिवार परंपरा होना भी सहज है। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:161-162)**

• बन्धन-से-मुक्त होने का स्रोत संभावना जीवन सहज विधि से ही स्पष्ट हो चुकी है । सम्पूर्ण अस्तित्व ही व्यवस्था है। अस्तित्व में सम्पूर्ण वस्तुएँ अपने त्व सहित व्यवस्था के रूप में होना इसका गवाही है । अस्तित्व में मानव जागृतिपूर्वक ही व्यवस्था के रूप में व्यक्त हो पाता है । मानव भी अस्तित्व सहज अभिव्यक्ति है । मानव भी अपने त्व सहित व्यवस्था के रूप में जीने की कला, विचार शैली, अनुभव, बलार्जन करना ही **मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार** का सार्थक स्वरूप है । अस्तित्व में अनुभवमूलक विधि से ही अनुभव बल से जीने की कला, जीने की कला से अनुभव बल पुष्ट होना पाया जाता है। ऐसी पुष्टि ही मानव परंपरा में उत्सव है । हर व्यक्ति उत्सवित रहना चाहता है । जागृति का फलन ही उत्सव का स्रोत है। **(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर:163-164)**

• न्याय का साक्षात्कार सम्बंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभय तृप्ति के रूप में होने की प्रक्रिया है । यही न्याय प्रदायी क्षमता का द्योतक है । सम्बन्ध अपने में (सभी सम्बंध) परस्पर पूरक होना एक शाश्वत् सिद्धांत है । इसकी पुष्टि सह-अस्तित्व, सह-अस्तित्व में पूरकता सर्वमानव वांछित, अपेक्षित, वैभव है।ऐसी क्रियाएँ अर्थात् पूरक क्रियाएँ पुष्टिकारी, संरक्षणकारी, अभ्युदयकारी और जागृतिकारी प्रयोजनों के रूप में दिखाई पड़ती है । पुष्टिकारी कार्यों को शरीर पोषण, विचार पोषण, कार्य पोषण, आचरण पोषण, ज्ञान और दर्शन पोषण के रूप में देखने को मिलता है । यह पोषण विभिन्न सम्बंधों में घटित होता हुआ प्रत्येक व्यक्ति अनुभव कर सकता है । जैसा मातृ सम्बंध में शरीर-पोषण, शील संरक्षण, पितृ सम्बन्ध में शील, आचरण, शरीर संरक्षण, गुरु-शिष्य संबंध में **शिक्षा**, ज्ञान, दर्शन का पुष्टि और संरक्षण भाई बहन, मित्र, पति-पत्नी, साथी-सहयोगी इन सभी सम्बन्धों में सर्वतोमुखी समाधान (अभ्युदय) की अपेक्षाएँ जीवन सहज रूप में ही होना देखा गया है। इतना ही नहीं सभी संबंधों में किंवा नैसर्गिक सम्बंधों में भी समाधान, पुष्टि, पोषण, संरक्षण की अपेक्षा आवश्यकता, प्रवृत्ति जीवन सहज रूप में आंशिक रूप में भ्रमित अवस्था में भी होता है । इसमें पूर्ण जागृत होने की संभावना समीचीन है । इस शताब्दी के दसवीं दशक में इसकी अपरिहार्यता अपने आप में समीचीन हुई है कि मानव इतिहास के अनुसार गम्य स्थली के रूप में सर्वतोमुखी समाधान और प्रामाणिकता ही है । कार्यरूप में सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी ही कार्य है । आचरण के रूप में मानवीयतापूर्ण आचरण ही एक मात्र सूत्र है । अनुभव के सूत्र में सह-अस्तित्व में अनुभव प्रमाण ही सूत्र है । विश्लेषण के रूप में पदार्थ, प्राण, जीव और ज्ञानावस्था ही है। उपलब्धि के रूप में जो मानवापेक्षा सहज विधि से समाधान, समृद्धि, अभय, सह-

अस्तित्व अनुभव सहज प्रमाण ही है । जीवन अपेक्षा सहज रूप में तृप्ति, सुख, शांति, संतोष, आनन्द ही है। जागृतिपूर्ण विधि से जीने के क्रम में सह-अस्तित्व ही विशालता है । ये सब बन्धन मुक्ति का साक्ष्य है । जागृतिपूर्ण विधि से किया गया मानव सहज अभिव्यक्तियाँ है । यह सभी तथ्य को विधिवत देखा गया है, समझा गया है, जीया गया है और अंत में मानवीयतापूर्ण आचरण व्यवहार पूर्वक हर व्यक्ति सर्वतोमुखी समाधान का धारक-वाहक हो सकता है यही "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" का सार्थकता है। **(अध्याय : 5, पृष्ठ नंबर : 171-172)**

- जागृति विधि का लोकव्यापीकरण **मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार**, कार्यविधि से सम्पन्न होना भी देखा गया है । **मानवीयतापूर्ण शिक्षा** अपने में सत्ता में संपृक्त प्रकृति नित्य वर्तमान और विकास क्रम विकास एवं जागृति क्रम जागृति सहज विधि से पदार्थ, प्राण, जीव और ज्ञानावस्थाओं का पूरकता, उपयोगिता, उदात्तीकरण का अध्ययन है । जिसके फलस्वरूप प्रत्येक मानव में स्वायत्तता, परिवार व्यवस्था में जीने की कला और समग्र व्यवस्था में भागीदारी स्वयं स्फूर्त होना स्पष्ट हुआ है । ये सभी तथ्य अस्तित्व में अनुभव होने का ही फलन है । कोई भी व्यक्ति अस्तित्व में अनुभवमूलक विधि से प्रमाणित कर सकता है ।...**(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:173)**

- ...उक्त विश्लेषण पूरकता विधि से भौतिक-रासायनिक क्रिया-प्रक्रियाएँ, परमाणु में अंशों का परिवर्तन, परस्पर अणुओं के पूरक विधि से रासायनिक द्रव्यों की महिमा सम्पन्न कार्यकलाप अनेक रचनाएँ, प्रत्येक रचना अपने वातावरण सहित सम्पूर्ण इसी क्रम में यह धरती भी एक रचना, ग्रह-गोल आदि भी एक रचना है । यह धरती भी अपने वातावरण सहित सम्पूर्ण है । इस धरती का पूरकता परस्पर ग्रह-गोल, सौर-व्यूह, अनेक सौर-व्यूह, अनेक सौर-व्यूहों के समूह रूपी आकाशगंगा परस्परता में पूरकता विधि से कार्य करता हुआ देखने को मिलता है । यही व्यवस्था के रूप में कार्य करने का गवाही है । सौर-व्यूह में हर ग्रह-गोल परस्परता में निश्चित दूरी के साथ ही तालमेल बनाया हुआ दिखाई पड़ते है । ऐसे तालमेल ही व्यवस्था का स्वरूप है। क्योंकि ऐसे तालमेल विधि से पूरकता, उदात्तीकरण, विकास इसी धरती पर देखने को मिलता है । विकसित परमाणु ही चैतन्य इकाई जीवन है आशा बन्धन जीवों में जीवनी क्रम, आशा, विचार, इच्छा बन्धन से जागृति क्रम मानव के रूप में स्पष्ट है । जागृति क्रम ही जागृति रूपी मंजिल के लिए सीढ़ी होना स्वाभाविक रहा । स्वाभाविक प्रक्रिया का तात्पर्य विकासक्रम, विकास, जागृति क्रम, जागृति और उसकी निरंतरता से है । विकास क्रम भी अपने में निरंतर है । विकास भी निरंतर है, जागृति क्रम भी निरंतर है और जागृति भी निरंतर है । जागृति क्रम का स्वरूप है **शिक्षा-संस्कार** पूर्वक जागृति की स्वीकृति सम्पन्न होता है । जागृति के अनन्तर मानव कुल सार्वभौम व्यवस्था सहज वैभव सम्पन्न होना । फलस्वरूप जागृति स्वीकृति के अनन्तर प्रमाणित होने का मार्ग प्रशस्त रहता है । इस विधि से अनेकानेक मानव संतान जागृति क्रम में अवतरित होना, जागृतिपूर्ण मार्ग प्रशस्त होना यही मानव कुल का स्वराज्य है, वैभव है । **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:179-180)**

- स्वराज्य व्यवस्था ही होता है, शासन नहीं होता। व्यवस्था के संदर्भ में पहले से उसके स्वरूप को स्पष्ट किया जा चुका है । परिवार मानव विधि से ही स्वराज्य वैभव का उदय होना देखा जाता है। हर परिवार में शरीर यात्रा के लिए शरीर पोषण, संरक्षण एवं समाज गति के लिये आवश्यकीय वस्तुओं को उत्पादित करने का भी कार्यकलाप समाया रहता है। सम्बन्ध-मूल्य-मूल्यांकन-उभयतृप्ति अथवा परस्पर तृप्ति विधि से व्यवहार और आचरण को प्रकट करना मूलत: परिवार का तात्पर्य है । ऐसे परिवार में उक्त तीनों प्रकार की आवश्यकताएँ बनी ही रहती है। इसके निर्वाह क्रम में उत्पादन कार्य की आवश्यकता बना ही रहता है। इसका तात्पर्य यह हुआ परिवार गति और समाज गति के लिए उत्पादन कार्य भी एक आवश्यकीय तत्व है । अस्तु, सम्बंध-मूल्य-मूल्यांकन और उभय तृप्ति विधि से परिवार और समाज सूत्र और आवश्यकता से अधिक उत्पादन-कार्य में परिवार के हर सदस्य का उपयोगिता-पूरकता विधि से भागीदारी परिवार व्यवस्था और समाज व्यवस्था के सूत्र में प्रमाणित हो पाता है । इसीलिये प्रत्येक परिवार में, से, के लिए न्याय सुलभता, उत्पादन सुलभता, विनिमय सुलभता, स्वास्थ्य-संयम सुलभता नित्य सार्थक होना सहज है । जिसका स्रोत रूप में मानवीयतापूर्ण **शिक्षा-संस्कार** और स्वास्थ्य-संयम कार्यकलापों के रूप में होना पाया जाता है।

इस प्रकार व्यवस्था सार्वभौमता के दिशा में प्रशस्त होता है और अखण्ड समाज का सूत्र भी नित्य प्रभावी होना पाया जाता है। इसमें मूलसूत्र सह-अस्तित्व सूत्र ही है। यह अथ से इति तक अनुभवमूलक विधि से ही समझ में आता है। अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन होता है फलत: हर व्यक्ति स्वायत्त मानव, परिवार मानव, समाज व्यवस्था मानव के रूप में प्रमाणित होता है। यही अनुभव परंपरा की गरिमा और महिमा है। इसी का फलन मानवापेक्षा और जीवनापेक्षा परिपूर्ति और तृप्ति व उसकी निरंतरता बन पाती है। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:180-181)**

- नियमपूर्वक ही व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी अस्तित्व में दृष्टव्य है । परमाणु अपने में व्यवस्था व समग्र व्यवस्था में भागीदारी का स्वरूप है। इसी क्रम में अणु, अणुरचित पिण्ड, मृदा, पाषाण, मणि, धातु, प्राणावस्था के बीजानुषंगीय प्रत्येक रचना-विरचना, वंशानुषंगीय सम्पूर्ण रचना-विरचना नियमपूर्वक व्यवस्था के रूप में ही प्रकाशित रहते हैं । **पदार्थावस्था परिणामानुषंगीय विधि से 'त्व' सहित व्यवस्था, प्राणावस्था का सम्पूर्ण प्रकाशन बीजानुषंगीय विधि से त्व सहित व्यवस्था, जीव संसार में सम्पूर्ण प्रकाशन वंशानुषंगीय विधि से त्व सहित व्यवस्था व मानव प्रकृति में संस्कारानुषंगीय (ज्ञानानुषंगीय) विधि से 'त्व' सहित व्यवस्था होना पाया जाता है ।**

  संस्कार का मूल रूप अनुभव के प्रकाश में किया गया स्वीकृतियाँ है। समग्र अध्ययन का स्वरूप ही है । समग्र अस्तित्व को अनुभव योग्य वस्तुओं के रूप में स्वीकारना प्रमाणित करना ही संस्कार है । संस्कार का तात्पर्य यही है पूर्णता के अर्थ में अनुभवमूलक विधि से प्रस्तुत क्रियाकलाप । **शिक्षा के रूप में सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज के अर्थ में स्थापित होना सार्थक संस्कार है । संस्कारित होने का ही प्रमाण है मानवीयता पूर्ण आचरण और व्यवस्था में भागीदारी ।** इस विधि से यह स्पष्ट हो जाता है कि अनुभव मूलक विधि से अनुभव योग्य तथ्यों को स्थापित करना । स्थापित करने का तात्पर्य स्वीकृत सहज प्रमाण होने से है । अवधारणा का तात्पर्य अनवरत सुख स्रोत स्वीकृति एवं प्रमाण है। **(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर:181-182)**

- .....इस सहज आशय के साथ ही यह तथ्य हर मेधावी व्यक्ति में,से, के लिए स्पष्ट होना स्वाभाविक है कि हम सर्वमानव बंधन मुक्ति रूपी जागृतिपूर्वक ही सर्वतोमुखी समाधान सम्पन्न होते हैं । ऐसे जागृति सम्पन्नता में, से, के लिए **मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार** विधि ही एक मात्र उपाय है । **मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार** का मूल वस्तु जीवन ज्ञान, अस्तित्व-दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान है । यह मानव जागृति पंरपरा के लिए सार्थक सिद्ध होता है।**(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर:187)**

- चेतना विकास, मूल्य **शिक्षा** का अध्ययन कराना ही **शिक्षा** का मानवीयकरण है। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:187)**

- वर्णित ऐतिहासिक विफलताएँ अग्रिम अनुसंधान के लिये आधार होना स्वाभाविक है। इस क्रम में इस तथ्य को अनुभव किया जा चुका है कि आँखों से अधिक कल्पनाशीलताएँ हर मानव में विद्यमान है। गणित भी कल्पनाशीलता का ही प्रकाशन है । संख्या के रूप में हर घटना या रूप और गुणों को बताने के लिये प्रयत्न हुआ । गुण ही गति के रूप में होना देखा गया है। गणितीय क्रियाकलाप भी मानव भाषा में गण्य होना पाया जाता है। सर्व मानव में गणना कार्य प्रकट होते ही आया है। ऐसे गणना कार्य को विधिवत् प्रयोग करने के आधार पर रूप सम्बन्धी तीनों आयाम आकार, आयतन, घन को समझने-समझाने का कार्य सम्पन्न होता है। इसी के साथ-साथ गति सम्बन्धी संप्रेषणा भी गणना विधि से लाने का प्रयास हुआ। मध्यस्थ गति गणितीय भाषा में संप्रेषित नहीं हो पायी है। सम-विषमात्मक गतियों को दूरी बढ़ने-दूरी घटने, दबाव और प्रवाह बढ़ने-घटने के साथ परिणामों का आंकलन सहित अध्ययन करने का प्रयास विविध प्रकार से किया गया है। ये दोनों सम-विषम गतियाँ आवेश के रूप में ही गण्य होते हैं जबकि हर वस्तु, हर इकाई, उसके मूल में जो परमाणु है वह अपने स्वभाव गति प्रतिष्ठा में ही उनके त्व सहित व्यवस्था होना पाया जाता है। जो कुछ भी अस्तित्व में त्व सहित व्यवस्था के रूप में व्यक्त है वह सब मध्यस्थ गति के अनुरूप ही कार्यरत होना देखा गया । मानव में इसका कार्य रूप, कार्य प्रतिष्ठा जागृति मूलक विधि से ही स्पष्ट होना देखा गया है।

इसका प्रमाण न्याय, धर्म, सत्य मूलक अभिव्यक्ति के रूप में ही प्रमाणित होता है। इनमें से कम से कम न्यायपूर्ण अभिव्यक्ति क्रम में ही मानव त्व को प्रकाशित कर पाता है । न्याय साक्षात्कार के उपरान्त स्वाभाविक रूप में धर्म और सत्य में जागृत होता है अर्थात् प्रमाणित होता है। इसलिये मानवीयतापूर्ण मानव चेतना पूर्ण पद में संक्रमित होना अति अनिवार्य है । इसी आवश्यकता के आधार पर **शिक्षा** में प्रावधानित वस्तु जागृति पूर्ण रहना आवश्यक है। यही परंपरा का परिवर्तन कार्य है। शिक्षापूर्वक ही सर्वमानव के जागृत होने का मार्ग प्रशस्त होता है। अतएव मध्यस्थ गति मानव का स्वभाव गति के रूप में मानवीयता को प्रमाणित करने के रूप में ही संभव होता है । फलस्वरूप समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में प्रामाणिकता और स्वायत्तता के साथ दिव्य मानव प्रतिष्ठा शिक्षा-कार्य और प्रमाण वैभवित रहता है। यही मानव परंपरा का सर्वांग सुन्दर वैभव है। इसे अनुभव मूलक विधि से ही सम्पन्न करना संभव है। यही दृष्टा पद परम्परा का भी प्रमाण है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर:194-195)**

- जागृत जीवन व जागृतिपूर्ण जीवन ही अपने कार्य व्यवहार, विचार और प्रयोगों को प्रमाणित करना ही जीवन दृष्टा पद प्रतिष्ठा मानव जागृति सहजता में होने का प्रमाण है। जीवन सहज अनुभव बल के आधार पर जीवन के सम्पूर्ण क्रियाएं अभिभूत होने के फलस्वरूप यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता का स्वीकृति होना व उसकी अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन सहज होना पाया जाता है । सम्पूर्ण सत्य स्थिति सत्य, वस्तु स्थिति सत्य, वस्तुगत सत्य के रूप में ज्ञानगम्य विधि से दृश्यमान होना पाया गया है । क्रम से सह-अस्तित्व में ही दिशा, काल, देश, रूप, गुण, स्वभाव, धर्म सहज अध्ययन **चेतना विकास मूल्य शिक्षा** विधि से बोध अनुभव ही है । यह हर जागृत मानव के समझ में होता ही है । मानवीयता पूर्ण व्यवहार सहज विधि से अर्थात् मानवीयतापूर्ण आचरण सहित अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी करने से इसी स्थिति में, इसी गति में हर व्यक्ति दृष्टापद अनुभव समाधान का प्रमाण प्रस्तुत करना सुगम, सार्थक होना समीचीन रहता ही है । इन्हीं तथ्यों के आधार पर मानव दृष्टा होना सह-अस्तित्व में अनुभव है, प्रमाणित होता है । **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 207)**

- पूर्वावर्ती विचार में रहस्यमयी ईश्वर केन्द्रित विचार के अनुसार ईश्वर ही कर्ता-भोक्ता होना भाषा के रूप में बताते रहे। इसी के आधार पर ब्रह्म, आत्मा या ईश्वर सबका दृष्टा होना बताने भरपूर प्रयास किये । यह मुद्दा रहस्य होने के आधार पर अभी तक वाद-विवाद में उलझा ही हुआ है । जबकि सह-अस्तित्ववाद जीवन ही मानव परंपरा में दृष्टा पद प्रतिष्ठा सहित कर्ता व भोक्ता के रूप में सफल होना देखा गया है । जागृति का प्रमाण केवल मानव परंपरा में ही होता है । जितने भी विधा से सह-अस्तित्व, जीवन और मानवीयतापूर्ण आचरण संगत विधि से किया गया तर्क से, विश्लेषण से, किसी भी दो ध्रुवों के बीच त्व सहित व्यवस्था सहज कार्य प्रणाली से, जीवनापेक्षा अर्थात् जीवन मूल्य और मानवापेक्षा अर्थात् मानव सहज लक्ष्य के आधार पर और सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज क्रम को जानने-मानने-पहचानने, निर्वाह करने के आशयों से अवधारणाएँ सहज रूप में ही जीवन में स्वीकार हो जाता है । इस क्रम में इस तथ्य का उद्घाटन **चेतना विकास मूल्य शिक्षा-संस्कार** विधि से होता है जीवन ही सार्थकता के लिये जागृत होता है। सार्थकता में जीना ही भोगना है । सार्थकता के लिये ही जागृतिपूर्ण विधि से सभी कार्य व्यवहार करता है । जागृति ही दृष्टा पद सहज प्रमाण है । करना ही कर्ता पद है और जीवनापेक्षा और मानवापेक्षा को भूरि-भूरि विधि से जीना ही भोक्ता पद है । शरीर केवल करने के क्रम में एक साधन के रूप में उपयोगी होना देखा गया है । अध्ययन क्रम में भी सार्थक माध्यम होना देखा गया । अध्ययन-अध्यापन करना भी कर्ता के संज्ञा में ही आता है । दृष्टा पद में पूर्णतया जीवन ही जागृति के स्वरूप में प्रमाणित होता है । यह प्रमाण जान लिया हूँ, मान लिया हूँ, प्रमाणित कर सकता हूँ के रूप में स्थिति के रूप में अध्ययन का प्रयोजन होता है । अर्थात् हर व्यक्ति में जागृति स्थिति में होता है, भोगने का जहाँ तक मुद्दा है, मानवापेक्षा सहज समाधान समृद्धि को भोगते समय में सम्पूर्ण भौतिक-रासायनिक वस्तुओं का शरीर पोषण, संरक्षण, समाज गति के अर्थ में अर्पित, समर्पित कर समृद्धि को स्वीकार लेता है । जहाँ तक समाधान, अभय और सह-अस्तित्व में जीवन ही अनुभव करना देखा गया है । जीवनापेक्षा संबंधी सुख, शांति, संतोष आनन्द का भोक्ता केवल जीवन ही होना देखा गया है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 208-209)**

- मानव परंपरा में **शिक्षा-संस्कार**, न्याय-सुरक्षा, उत्पादन कार्य, विनियम कोष, स्वास्थ्य-संयम, व्यवस्था व व्यवस्था में भागीदारी सहज मुद्दों पर जागृत सहज प्रमाण होना, जानने-मानने-पहचानने में निरीक्षण समर्थ होना और निर्वाह करने में निष्णात रहना ही प्रामाणिकता है । निष्णातता का तात्पर्य निरीक्षण पूर्वक हर कार्य व्यवहारों को पूर्ण रूपेण, पूर्णता के अर्थ में प्रतिपादित, प्रकाशित और प्रमाणित करना ही है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 225)**

- मानव में जागृत परंपरा स्थापित होने प्रमाणित होने और उसकी निरंतरता को बनाए रखने के लिए सर्वसुखवादी विधि और व्यवस्था ही एक मात्र शरण है । यह पहले से ही स्पष्ट हो चुकी है जागृति ही विधि है, इसे प्रमाणित करना ही व्यवस्था है। यही व्यवस्था मानवीयता पूर्ण **शिक्षा-संस्कार** सुलभता व्यवस्था अपने स्वरूप में न्याय-सुरक्षा सुलभता, विनियम-कार्य सुलभता, उत्पादन-कार्य सुलभता, स्वास्थ्य-संयम कार्य सुलभता रूप में होना देखा गया है । यह सर्वसुलभ होना समीचीन है, आवश्यक और संभव है । मानव परंपरा में जागृति का प्रमाण **मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार** ही है । जागृति और व्यवस्था के निरंतरता क्रम में स्वास्थ्य-संयम प्रणाली अपने आप मानव में, से, के लिये करतलगत होता है। इस प्रकार जागृति और जागृतिमूलक विधि से व्यवस्था सार्वभौम होना स्वाभाविक है । क्योंकि हर मानव जागृत होना चाहता ही है और हर मानव व्यवस्था में जीना चाहता ही है । यही अस्तित्व में अनुभव की महिमा है सह-अस्तित्व का प्रभाव है फलत: जागृति और जागृति का प्रमाण रूप सार्वभौम व्यवस्था मानव परंपरा में सार्थक होता है। यही "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" का प्रयोजन है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 226-227)**

- जीवन ही दृष्टा, सह-अस्तित्व ही दृश्य, न्याय, धर्म, सत्यपूर्ण दृष्टियों का क्रियाशीलता ही दृष्टि का स्वरूप है। इसका साक्ष्य है न्याय सुलभता (परस्पर मानव और नैसर्गिकता में) धर्म सुलभता (सर्वतोमुखी समाधान सुलभता) और जागृति सुलभता (प्रामाणिकता और प्रमाण सुलभता) यह सब जागृति केन्द्रित विधि से सह-अस्तित्व रूपी परम सत्य व्यवहार- कार्य रूप में सम्पन्न होना देखा गया है । जागृति हर व्यक्ति का आकांक्षा है ही। इसलिये परंपरा में निर्दिष्ट रूप में **शिक्षा-संस्कार** परंपरा में इनका सहज अध्ययन-मूल्यांकन पद्धति, प्रणाली, नीतियों को अपनाना ही परंपरा में वांछित परिवर्तन का स्वरूप है। दृष्टा पद रूपी जीवन अथवा दृष्टा पद प्रतिष्ठा में वैभवशील जीवन परंपरा में न्याय, धर्म, सत्य को अभिव्यक्त, संप्रेषित, प्रकाशित करने में मानव ही समर्थ है । इस तथ्य को परीक्षण, निरीक्षण पूर्वक देखने के उपरान्त ही उद्घाटित किया है। इसलिये कि मानवाकांक्षा, जीवनाकांक्षा ही सर्वशुभ के रूप में है। यह सर्वदा मानव परंपरा में सफल होते ही रहेगी । जागृत परंपरा में ही हर मानव और परिवार सर्वाधिक उपयोगी, सदुपयोगी, प्रयोजनशील होते हुए उपकारी होना देखा गया है । उपकारिता का तात्पर्य मानव को, मानव जागृति मार्ग को प्रशस्त कराते हुए देखने को मिला है । यह क्रिया वश जो मानव कर पाता है वह उपकारी होता है वह जागृति सहज प्रमाणों को प्रस्तुत करता ही है, वर्तमान में समीचीन मानव जो जागृत नहीं हुए हैं उन्हें जागृत होने के लिये योग्य प्रस्तुति के रूप में हो जाता है। यह सह-अस्तित्व में अनुभव सहज प्रामाणिकता सहित सर्वतोमुखी समाधान, समृद्धि सम्पन्न स्थिति और गति के रूप में होना देखा गया है; क्योंकि जागृतिगामी अध्ययन प्रणाली से हर व्यक्ति स्वायत्त होता है। स्वायत्तता का स्वरूप स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता का सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय (उत्पादन) में स्वावलंबी होना देखा गया है । ऐसे स्वायत्त मानव ही परिवार मानव के रूप में जीने देकर जीने में समर्थ होता है। यही अद्भूत सामर्थ्यवश सर्वतोमुखी समाधान और समृद्धि वैभवित होता है । यही हर स्वायत्त परिवार मानव सफलता का प्रमाण है और सर्वशुभ का भी प्रमाण है। अस्तु, मानव सत्य दृष्टि पूर्वक, धर्म दृष्टि पूर्वक, न्याय दृष्टि सहज स्वायत्त होता है और स्वायत्तता का मूल्यांकन कर पाता है । इसीलिये परिवार मानव का सार्वभौमता (परिवार मानवता में, से, के लिये सर्वमानव में स्वीकृति) प्रवाहित होना सहज है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 231-232)**

- मानव में संपूर्ण कारण रूपी दृष्टि (जागृति) के आधार पर हर व्यक्ति करणीय कार्यों का निर्धारण कर पाता है। ये निश्चित वैचारिक प्रक्रिया है । इन्हीं कारणवश करने, स्वीकारने के रूप में कार्यकलाप सम्पन्न होते हुए देखने को मिलता है । सर्वमानव में छः दृष्टियाँ क्रियाशील होने की आवश्यकता और संभावना ही अध्ययनगम्य है, इसे स्पष्ट किया जा चुका है। इसी के साथ यह भी स्पष्ट किया जा चुका है कि प्रिय, हित, लाभ दृष्टि पूर्वक कोई भी मानव सामाजिक होना संभव नहीं है, व्यवस्था में जीना अति दुरूह रहता ही है । इसी अवस्था को भ्रमित अवस्था के नाम से स्पष्ट किया गया । जागृतिपूर्वक मानव में न्याय, धर्म, सत्य, दृष्टि विकसित होती है । जागृतिपूर्वक मानव सामाजिक होता है और व्यवस्था में जीता है। हर मानव में, से, के लिये जागृति न्याय, धर्म, सत्य स्वीकृत है और वांछनीय है । भ्रमवश विभिन्न समुदाय परम्पराएँ अपने-अपने सामुदायिक अहम्ता के साथ उनके परंपरा में आने वाले सन्तानों को भ्रमित करने का तरीका खोज रखे हैं । इसलिये हर परंपरा में आने वाले संतान पुनः पुनः भ्रमित होते आए । यह काम बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक तक देखने को मिला । दसवें दशक में **"अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित दृष्टिकोण"** सम्पन्न कुछ लोगों में यह सुस्पष्ट हो गई कि विगत से परम्परा में प्राप्त **शिक्षा-संस्कार** भ्रम की ओर है । इससे छूटना आवश्यक है । इसी के साथ यह भी समझ में आया कि हर मानव परम्परागत समुदाय मानसिकता से बड़ा होना देखने को मिलता है । इसका साक्ष्य यही है परम्पराओं में कहे हुए विधि से जितना खराब होना था, उतना न होकर उतना भाग सही की ओर होना पाया जाता है । जैसे हर प्रकार की धर्मगद्दियाँ अपने-अपने धर्म के विरोधी सभी पापी है, विधर्मी हैं, अधर्मी हैं, इन सबका नाश होगा। नाश करने वाला ईश्वर परमात्मा, सर्वशक्तिमान है । धर्म को बचाने वाला ही विधर्मियों का संहार करेगा । ऐसे विधर्मियों को संहार करना न्याय है और इससे ईश्वर प्रसन्न होते हैं । यह तो हुई परस्पर विद्रोहीता के लिये तत्व। यदि ईमानदारी से हर धर्म परम्पराओं में कही हुई बातों पर तुला जाये तो सदा लड़-झगड़ कर मारते ही रहना चाहिये या मरते ही रहना चाहिये । इतना कुछ हुआ नहीं । इसके विपरीत धरती में जनसंख्या बढ़ते ही रहा । इसलिये पता चलता है परंपरा जिस बदतर स्थिति में डालने के लिये अपने-अपने वचनों को बनाये रखा है उससे बेहतरीन स्थिति में अधिकांश लोगों को देखा जाता है । जिसका गवाही में किसी भी देश, काल, जाति, मत, संप्रदाय पंथों के अनुयायी हो अथवा समर्थक हो उन किसी सामान्य मानव से यह पूछने पर कि परस्पर समुदाय लड़ना चाहिये या साथ में जीना चाहिये ? उत्तर साथ में जीना चाहिये मिलता है । इस प्रकार हमें समुदाय परम्पराओं के मान्यताओं से बेहतरीन मानव होने की इच्छा आज भी दिखाई पड़ते हैं। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 234-236)**

- ....इस धरती में कलात्मक विज्ञान, तकनीकी, व्यापार की **शिक्षा** ही स्थापित हुई दिखती है । **इस धरती में अभी तक न्याय पूर्ण व्यवहार और समाधानपूर्ण व्यवस्था मानवीयता पूर्ण शिक्षा में प्रवेश ही नहीं हो पाया । जबकि विनिमय व सार्वभौम व्यवस्था ही शिक्षा की सम्पूर्ण आत्मा है । ऐसी व्यवहार शिक्षा के लिये आवर्तनशील अर्थशास्त्र और व्यवस्था, व्यवहारवादी समाज शास्त्र और व्यवस्था, मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान और व्यवस्था अनिवार्यतम स्थिति है।** उत्पादन, प्रौद्योगिकी, तकनीकी को हर परिवार में समृद्धि सम्मत विधि से विकसित और स्थापित करने की आवश्यकता है। एक पीढ़ी समृद्ध होता है, आगे पीढ़ी को समृद्ध बनाने के लिये स्थापना कार्य को करते रहता है । समृद्धि के मूल में मानव व्यवहार ध्रुवीकृत होना आवश्यक है । मानव व्यवहार सूत्र मानव की परिभाषा और मानवीयतापूर्ण आचरण के रूप में अनुप्राणित होना देखा जाता है। फलस्वरूप परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है। **शिक्षा-संस्कार** से हर मानव में स्वायत्तता प्रमाणित होना ही इसकी सार्थकता है। इन तथ्यों को पहले भले प्रकार से स्पष्ट किया जा चुका है। यथार्थ यही है हर जागृत मानव सुख, शांति, संतोष को ही भोगता है और कोई चीज को भोगता नहीं है । सुविधा-संग्रह भी सुख, लक्षित होना सुस्पष्ट हो चुका है। इसी के साथ इसकी क्षणिकता-भंगुरता भी है, अतएव मानव इतिहास रूपी चारों सोपानों में कहीं भी सुख भोग की निरंतरता नहीं हो पायी। अब केवल परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था उसके पाँचों आयामों सहित कार्यप्रणाली में मानवापेक्षा सहित जीवनापेक्षा रूपी सुख, शांति, संतोष, आनंद भोगने में मिलता है। इसे भले प्रकार से हम देख पाये हैं। इस स्थिति के

लिये हर व्यक्ति जागृत हो सकता है। इसी तथ्य के आधार पर सर्वसुख समीचीन है । सर्ववांछनीयता भी यही है । इस प्रकार जीवन भोक्ता है, सुख भोग है, भोग्य वस्तु व्यवस्था है। शरीर सहित मानव समाधान-समृद्धि अभय, सह-अस्तित्व सहज तथ्यों को भोगता है।**(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 249-250)**

- मानव परंपरा जागृत होने के लिये अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित विश्व दृष्टिकोण को तर्क संगत विधि से अध्ययनगम्य होने के प्रणालियों से अभिव्यक्त होने के फलन में मानव परंपरा जागृत होना स्वाभाविक है। इसका प्रमाणों का धारक-वाहक अध्यापक ही होना पाया जाता है । निर्देशिका के रूप में वांग्मय और धारक-वाहकता के रूप में अध्यापक ही हो पाते हैं। विद्यार्थियों को जागृत **शिक्षा** प्रदान करने में समर्थ होना स्वाभाविक है। इस क्रम में मानव परंपरा जागृत होने का संयोग समीचीन है। जागृति निरंतर, न्याय, समाधान, सत्य सहज होता ही है, इसका वैभव ही मानवापेक्षा और जीवनापेक्षा के रूप में सार्थक हो जाता है। ऐसे सार्थकता को प्रमाणित करना ही जागृत मानव परम्परा का तात्पर्य है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 254)**

- सर्वशुभ विधि जागृति मूलक अभिव्यक्ति और जागृतिगामी **शिक्षा-संस्कार** ही है। यही अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था का सूत्र है। इस विधि से अनुभव मूलक विधि से अभिव्यक्त होने का कार्यक्रम ही **शिक्षा-संस्कार** के रूप में प्रभावित व वांछित होना देखा गया है। इन तथ्यों को हृदयंगम करने के लिये "समाधानात्मक भौतिकवाद", "व्यवहारात्मक जनवाद" को अवश्य ही अध्ययन करें। मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान सहज विधि से अस्तित्व सदा-सदा ही विकासोन्मुखी सह-अस्तित्व होने के कारण समाधान के अनंतर समाधान ही होना देखने को मिलता है। विकास का हर बिन्दु, हर कड़ी, हर अवस्था अपने आप में समाधान होना दिखाई पड़ती है। हर व्यक्ति को इसे हृदयंगम करना आवश्यक है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 256)**

- जीना कम से कम तीन आयामों में स्वयं स्फूर्त विधि से सम्पन्न होता है । तभी व्यवस्था में जीने का रस और सुख अपने आप मिलने लगता है । ऐसे तीन आयाम को न्याय सुलभता (न्याय प्रदायिता एवं पाने में सुलभता), उत्पादन सुलभता और विनिमय सुलभता पूर्वक ही हर परिवार व्यवस्था में जीता हुआ अनुभव करता है । ज्यादा से ज्यादा मानव, मानवीयतापूर्ण व्यवस्था में पाँचों आयामों में अपने भागीदारी को प्रमाणित करता है । यह उक्त तीनों के साथ **शिक्षा-संस्कार** सुलभता और स्वास्थ्य-संयम सुलभता है । इन्हीं व्यवहारिक आधारों के कारण मानव को जागृत और जागृतपूर्ण स्थितियों में देखा गया है । यह सबके लिये समीचीन है । इन्हीं दो स्थिति को क्रम से क्रियापूर्णता और आचरणपूर्णता का नाम दिया है। आचरण की विशालता में ही विशाल, विशालतर और विशालतम व्यवस्था में भागीदारी सम्पन्न होना सहज है । सम्पूर्ण प्रक्रिया का सफल स्वरूप समाधान और समृद्धि के रूप में मूल्यांकित होता है । अभय, सह-अस्तित्व मानवीयता पूर्ण आचरण का फलन है । इन तथ्यों को भली प्रकार से देखा गया है । इस प्रकार हर परिवार **मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार** पूर्वक स्वायत्त मानव और परिवार मानव के रूप में जीते हुए व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण प्रस्तुत करना सहज है । सहजता का तात्पर्य जागृति पूर्वक प्रमाण सहज गति ही सहज होना । जागृति नित्य समीचीन रहता ही है । यह परम्परा जागृत होने के उपरान्त ही सर्वसुलभ होता है । मानवापेक्षा, जीवनापेक्षा ही सार्वभौम अपेक्षा है । यही जागृति और कैवल्य का प्रमाण है।**(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 259-260)**

सन्दर्भ : व्यवहारवादी समाजशास्त्र
(संस्करण : 2009)

- यही दो अवलोकन का मुद्दा है कि

⇨ परंपरा विगत में मानव, मानव के साथ क्या किया ?

⇨ मानव मनुष्येत्तर प्रकृति के साथ क्या किया?

अभी तक अनेक समुदाय परंपराओं के रूप में विविध आधारों के साथ पीढ़ी से पीढ़ी को अनुप्राणित करता हुआ देखा जा रहा है। अनुप्राणित करने का तात्पर्य जिस-जिस परंपरा जिन-जिन आधारों अथवा मान्यताओं के साथ मानसिकता को, प्रवृत्तियों को, प्राथमिकताओं को अपनाते हुए आये हैं उसे अग्रिम पीढ़ी में स्थापित करने के लिए किया गया क्रिया-प्रक्रिया और संप्रेषणाओं से है। यह भी हम हर परंपराओं में देख पाते हैं कि वही मानसिकताएं विविधता के साथ प्रचलित है। विविधताओं में से अपना-पराया एक प्रधान मुद्दा है। इनके समर्थन में संस्कार, **शिक्षा**, संविधान और व्यवस्था परंपराएँ प्रधान हैं। दूसरे विधि से संस्कृति सभ्यता विधि-व्यवस्था के रूप में होना देखा जाता है। तीसरे विधि से रोटी, बेटी, राजनीति और धर्मनीति में एकता के आधार पर भी समुदायों का कार्य-व्यवहार दिखाई पड़ती है।

शिक्षा विधि प्राचीन समय से ऊपर कहे तीन प्रकार के एकता-अनेकता के आधार पर संपन्न होता हुआ इतिहासों के विधि से समझा जा सकता है। हर संविधान जो-जो धर्म और राज्य का संयुक्त मानसिकता के साथ चलने वाले सभी समुदाय अथवा प्रत्येक समुदाय अपने-अपने धर्म, अथवा राज्य मानसिकता के आधार पर और उसके समर्थन में **शिक्षा-संस्कारों** को स्थापित करने में सतत जारी रहा। कालक्रम से अधिकांश देशों में धार्मिक राज्य के स्थान पर आर्थिक राज्य, संविधान, विज्ञान के सहायता से स्थापित होता आया क्योंकि विज्ञान की सहायता से सामरिक दक्षता को बढ़ाने का अरमान प्रत्येक राजसंस्था का अपरिहार्य बिन्दु रहा। इसी सत्यतावश विज्ञान और तकनीकी इन्हीं अपरिहार्यता की सहयोगी होने के आधार पर विज्ञान का बढ़ावा, बिना किसी शर्त के होता रहा। **(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर:17-19)**

- आज की स्थिति में **विज्ञान शिक्षा** की स्वीकृति सभी देश, सभी समुदायों में सहज रूप में होना पाया जाता है। ऐसे विज्ञान और तकनीकी से जो घटित हुआ वह पहले स्पष्ट हो चुका है। विज्ञान और वैज्ञानिकों का तर्ज प्रकृति पर विजय पाने की घोषणा रही, वह धीरे धीरे धीमा होता हुआ देखने को मिलता है। विशेषकर विज्ञान संसार अपने संपूर्ण ज्ञान प्रक्रिया सहित संतुलन और संभावना के पक्षधर के रूप में दिखते हैं। इनके अनुसार संतुलन का तात्पर्य अपने प्रयोग विधि से जो कुछ भी घटना रूप में यंत्रों को प्राप्त किये यही इनका आद्यान्त प्रमाण है। ऐसे यंत्र और उनके अनुमानानुसार कार्य कर जाना संतुलन मानते हैं और ऐसे यंत्र अनेक बनने की सम्भावनाओं पर ध्यान दिये रहते हैं। **जबकि मानव कुल का संतुलन मनुष्य - मनुष्य से, मनुष्य और नैसर्गिकता से अपेक्षित है।** यह प्रत्येक व्यक्ति अपने में समझ सकता है जबकि संतुलन मानव का सह-अस्तित्व सहज आवश्यकता उपलब्धि और उसका उपयोग-सदुपयोग और प्रयोजनों के रूप में होना स्वाभाविक है। प्रयोजन सदा ही संतुलन है जिसकी अपेक्षा सर्वमानव में होना पाया जाता है। संतुलन ही अभय समाधान के रूप में और अभय समाधान सहज विधि से सह-अस्तित्व क्रम में समृद्धि का होना पाया जाता है। सह-अस्तित्व क्रम का तात्पर्य चारों अवस्थाओं में परस्पर उपयोगिता, पूरकता ही प्रमाणित होने से है। अभय-समाधान क्रम का तात्पर्य व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी से है। समृद्धि का तात्पर्य परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन से है। यही विधि से ग्राम परिवार-विश्व परिवार पर्यन्त समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व प्रमाण क्रम में संतुलन और उसकी निरंतरता मानव परंपरा सहज होना निश्चित सम्भावना है,

जिसकी आवश्यकता सर्वमानव में होना पाया जाता है। सम्भावनाएं नित्य समीचीन है। **(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर:20-21)**

- पाप मुक्ति के क्रम में पापमुक्ति को निश्चित स्थान, व्यक्ति के सम्मुख किये गये पापों को स्वीकार किया जाना निवारण के लिए विविध उपाय बताया गया है। ऐसे पाप स्वीकृति से पाप कार्यो में प्रवृत्ति क्षीण होगी, ऐसा भी सोचा गया है।

स्वार्थ, दुराव-छुपाव पाप के लिये कारण बताया। स्वार्थी के साथ संग्रह, सुविधा, भोग, अतिभोग, द्वेष यही प्रमुख विकारों को स्वीकारा गया। धार्मिक राजनीति के मूल में संग्रह-सुविधा अर्हता को ईश्वर प्रतिनिधी, राजा राजगद्दी और ईश्वरीय मार्ग-दर्शक एवं ईश्वर प्रतिनिधि के रूप में गुरू को मानते हुए सर्वाधिक संग्रह-सुविधा के लिये हर मनुष्य से अपर्ण-समपर्ण, भाग और कर के रूप में प्रभावित रहना देखा गया। कालक्रम विज्ञान युग के अनंतर अधिकांश लोगों में संग्रह, सुविधा, भोग की आवश्यकता जग गई। इसके लिये संघर्ष ही एक मात्र रास्ता दिखाई पड़ा। इसलिये हर व्यक्ति, परिवार, समुदाय परस्पर संघर्ष के लिये अपने को तैयार करता रहा। आज भी सर्वाधिक व्यक्ति, परिवार, समुदाय संघर्ष के लिए तैयारी करता हुआ देखने को मिलता है। इसे हर व्यक्ति देख सकता है। भक्ति विरक्ति के मार्ग-दर्शकों के रूप में पहचाने गये विविध प्रकार के धर्म गद्दी यती, सती, संत, तपस्वी, ज्ञानी, भक्त, विद्वान ये सब अपने तौर पर बहुत सारा प्रवचन उपदेश करने के उपरान्त भी आमूलत: कोई प्रमाण परंपरा के रूप में व्यवस्था और **शिक्षा** के अर्थ को सार्थक बनाने के लिये अभी तक पर्याप्त नहीं हुआ। दूसरी विधि से **शिक्षा** व्यवस्था, अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में, से, के लिये आवश्यकीय सूत्र-व्याख्या प्रमाण विधियाँ किसी एक परंपरा से अथवा संपूर्ण परंपराएं मिलकर अध्ययन गम्य विधि से प्रस्तुत नहीं हो पायी। इन्हीं कारणवश पुनर्विचार की आवश्यकता समीचीन हुई। विकल्प प्रस्ताव के रूप में प्रस्तुत है। **(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर: 22-23)**

- व्यवहारवादी समाजशास्त्र की परिभाषा –

परिभाषा - वर्तमान में विश्वास, मौलिक अधिकार पूर्ण विधि से मनुष्य, मनुष्य के साथ पहचाना गया। संबंध में मूल्य मूल्यांकन पूर्वक उभय तृप्ति, परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन में भागीदारी, मूल्य, चरित्र नैतिकतापूर्ण आचरणपूर्वक, व्यवस्था सहज प्रमाण को प्रस्तुत करते हुये समग्र व्यवस्था में भागीदारी व भागीदारी के प्रति सम्मति का सहज स्वरूप में प्रमाणित होना ही व्यवहारवादी समाज है; और शास्त्र का तात्पर्य **शिक्षा**-संस्कारपूर्वक ग्रहण योग्य सभी उपक्रम और कार्यप्रणाली है। इस प्रकार व्यवहारवादी समाज व शास्त्र का धारक, वाहक मानव ही होना स्पष्ट है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर:26)**

- विश्वास का तात्पर्य वर्तमान में सर्वतोमुखी समाधान और उसकी निरंतरता से है, सर्वतोमुखी समाधान का तात्पर्य अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन (अस्तित्व में मानव स्वयं अपने अविभाज्यता को दृष्टा पद प्रतिष्ठा रूपी महिमा सहित वर्तमान में होने की स्वीकृति और उसमें दृढ़ता और अस्तित्व ही सह-अस्तित्व। सह-अस्तित्व में ही विकास क्रम विकास जागृति क्रम जागृति रासायनिक भौतिक रचना-विरचना सहज प्रमाणों की स्वीकृति सहित प्रमाणीकरण क्रिया सम्पन्नता) से है। समाज शब्द का अर्थ भी उक्त स्पष्ट परिभाषा और उसके आशयों को पुष्ट करता है यथा पूर्णता के अर्थ में किया गया यत्न सहित गति है। यत्न का तात्पर्य जिस रूप में समाधान और उसकी निरंतरता प्रमाणित होता है। व्यवहार में यत्न को प्रयत्न शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। प्रयत्न का तात्पर्य प्रज्ञा सहित यत्न से है। प्रज्ञा का तात्पर्य फल परिणामों को भले प्रकार से अथवा संपूर्ण प्रकार से जानते हुए मानते, पहचानते हुए निर्वाह करने की क्रियाकलापों से है। समाज की परिभाषा स्वयं जिन-जिन तथ्यों को परम्परा में प्रमाणित करने को इंगित करता है इसे सार्थक बनाने के कार्यक्रमों को सामाजिक कार्यक्रम कहेंगे, क्योंकि हर व्यक्ति समाज परिभाषा का प्रमाण

होना एक सर्व स्वीकृति तथ्य है। यह भी इसमें मूल्यवान अथवा आवश्यकीय स्वीकृत है कि मानव ही अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था का धारक-वाहक होने योग्य इकाई है, साथ ही इसकी अनिवार्यता भी स्वीकृत है। नैसर्गिक रूप में जागृति नित्य समीचीन है। जागृति वर्तमान में ही प्रमाणित होती है, प्रमाणित करने वाली इकाई केवल मानव है। शुद्धत: इसका मूल रूप मानव अपने स्वत्व रूपी मानवीयता अथवा मानवत्व में, से, के लिए जागृत होना ही है। मानवत्व मानव को स्वीकृत वस्तु है।

मानवत्व पूर्वक ही मनुष्य अपने गौरव और वैभव को स्थिर बनाना चाहता है ऐसी मानवत्व की अपेक्षा को विविध प्रकार से मनुष्य व्यक्त करता ही है। इसी क्रम में बहुमुखी अभिव्यक्ति संप्रेषणा प्रकाशन होने के आधार पर बहुमुखी कार्य सम्पन्न होना भी एक आवश्यकता रहा है। ऐसी सुदृढ़ आधार पर ही सुदूर विगत से ही कम से कम चार आयामों में अपने परम्परा को बनाये रखे है। जैसा **शिक्षा**, संस्कार, विधि और व्यवस्था। दूसरे विधि से संस्कृति, सभ्यता, विधि और व्यवस्था है। इसे सभी समुदायों में स्वीकारा हुआ और निर्वाह करता हुआ देखने को मिलता है चाहे सार्थक न हो। इससे सुस्पष्ट हो जाता है भले ही मानव कुल अनेक समुदायों में बंटे क्यों न हो यह चारों अथवा चहुँ-दिशा वादी परम्परायें सभी देशकाल में सभी समुदाय में देखने को मिला। इन चारों आयामों में मानवीयता को समावेश कर लेना ही मानवीयतापूर्ण परम्परा का तात्पर्य है। जैसा **मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार**, विधि एवं व्यवस्था, संस्कृति, सभ्यता ही मानव परम्परा में अखण्डता का सूत्र है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 26-28)**

- ...शिक्षा-संस्कार में मानवीकृत **शिक्षा** को हम भले प्रकार से पहचानें है इसमें मानव का सम्पूर्ण आयाम, दिशा, परिप्रेक्ष्य और कोणों का अध्ययन है। देश और काल, क्रिया, फल, परिणाम सहज समाधानपूर्ण विधि को समझा गया है। यह सर्वमानव में जीवन सहज रूप में स्वीकृत है ही। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:73)**

- **जागृति का मूल कार्यक्रम शिक्षा-संस्कार ही है।** मानव परंपरा में भ्रमित विधि क्यों न हो उसमें भी **शिक्षा-संस्कार** अर्थात् हर समुदाय में भी **शिक्षा-संस्कार**, संविधान और व्यवस्था का चर्चा, स्वरूप, निश्चयन स्वीकृति सहित ही सामुदायिक संविधान और व्यवस्था देखने को मिला। इसके मूल में **शिक्षा-संस्कार** का होना स्वाभाविक रहा। मानवीयतापूर्ण परम्परा में भी **शिक्षा-संस्कार** व्यवस्था और संविधान को पहचाना गया है। इन चार मुद्दे में से **शिक्षा-संस्कार** ही मानव सहज सम्पूर्णता का होना पाया गया है। मानव सहज सम्पूर्णता का अर्थात् मानव अपने बहुआयामी अभिव्यक्ति, संप्रेषणा और प्रकाशन सहज अपेक्षा आवश्यकता स्वीकृतियों के रूप में नौ बिन्दुओं (पृष्ठ 72-75) में इंगित कराया -है। इसी नौ बिन्दुओं में इंगित वस्तु का अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, सहित व्यवहार, कर्म, अभ्यास पूर्ण विधि से प्रमाणित होना ही शिक्षा-संस्कार, सम्पन्नता और वाहकता; जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शनज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान में प्रमाणित होने के उपरान्त सहज होना पाया जाता है। इसे **शिक्षा** और **शिक्षण** संस्थापूर्वक ही सम्पूर्ण मानव में लोकव्यापीकरण करना परम आवश्यक है।

शिक्षण संस्थाएँ प्रचलित रूप में अनेकानेक भाषा, देश विधि से स्थापित है ही। इसके बहुसंख्या रूप में मानव अध्ययन किया हुआ है अर्थात् **शिक्षा-संस्कार** पाया हुआ है। प्रचलित **शिक्षा-संस्कार** से क्या फल, परिणाम, निष्पन्न हुआ है यह समीक्षित हो चुका है। जो मानव मानस में सर्वाधिक भाग नकारात्मक सूची के रूप में दिखाई पड़ता है। इसका भी नीर-क्षीर, न्याय अर्थात् स्पष्ट रेखाकरण इस प्रकार देखा गया है कि सामान्य आकांक्षा और महत्वाकांक्षा में सार्थक तकनीकी मानव सहज स्वीकृति के रूप में, सामरिक तंत्र और तकनीकी ह्रास विधि नियम रूपी विज्ञान अस्वीकृत है। जैसे-विखण्डन विधि ह्रास की ओर पदों को इंगित करता है। जैसे परमाणु एक व्यवस्था के रूप में है उसके विखण्डन के अनन्तर वह एक व्यवस्था के रूप में दिखाई नहीं पड़ता है इसके विपरीत अनिश्चित गति से दिखना हो पाता है क्योंकि निश्चित गति परमाणु में ही दिखाई पड़ता है और परमाणु में एक से अधिक अंशों का होना पाया जाता है। निश्चित गति का तात्पर्य हर निश्चित संख्यात्मक परमाणु अंशों से गठित परमाणुओं का आचरण निश्चित रहने से है। इनमें कोई दुविधा नहीं रहती है। अतएव परमाणु के विखण्डन के उपरान्त परमाणु सहज व्यवस्था, अणु विखण्डन के उपरान्त अणु सहज व्यवस्था, अणु रचित रचनाओं के विखण्डन के उपरान्त उन-उन रचना

सहज व्यवस्थाएँ दिखाई नहीं पड़ता है। इसका तात्पर्य यही हुआ, विखण्डन कार्य का उन्माद से ही व्यवस्था का विखण्डन होना सिद्ध हुआ। उन्माद इसलिये कहा गया कि जागृत मानव किसी व्यवस्था का विखण्डन करता नहीं। इतना ही नहीं हर जागृत मानव व्यवस्था का पोषक और संरक्षक, धारक-वाहक होना पाया जाता है। इस परीक्षित तथ्य के आधार पर हर मानव यह निश्चय कर सकता है कि विखण्डन विधि और कार्य मानव सहज मानवीयता का द्योतक नहीं है। इसी के साथ यह भी आवाज निश्चित रूप में मिलता है कि व्यवस्था, व्यवस्था में भागीदारी ही मानव तथा मानवीयता का द्योतक है। इस विश्लेषणोंपरान्त पाये गये फल-परिणामों का मूल्यांकन से इस निष्कर्ष में आते हैं कि मानव समाज अपने अखण्डता और सार्वभौमता के अर्थ में स्वीकृत है और अपेक्षा बनी हुई है। अतएव इसका मूल स्रोत रूपी मानवीय शिक्षा-संस्कार पक्ष मानवीयतापूर्ण व्यवस्था और मानवीयतापूर्ण आचरण रूपी सार्वभौम राष्ट्रीय चरित्र, नैतिकता और मूल्यों का अविभाज्य आचरण (संविधान) का स्वरूप और महिमाओं का आवश्यकता सूत्र पर आधारित विधि से अध्ययन करेंगे। क्योंकि अध्ययन से आचरण तक ही समाजशास्त्र का किंवा सम्पूर्ण शास्त्र का प्रयोजन और आवश्यकता स्वयं एवं सार्वभौम शुभ के रूप में तृप्ति और उसकी निरंतरता को पाना सहज समीचीन रहता ही है। इसलिये इसका अध्ययन और आचरण सुलभ है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:75-78)**

- पहले नौ बिन्दुओं में इंगित किये गये तथ्यों का अध्ययन ही शिक्षा-संस्कार का सर्वसाधारण और आवश्यक स्वरूप है। **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 78)**

(9 बिन्दु –

1. उत्पादन कार्य में स्वायत्त होने के उद्देश्य सहित प्रत्येक परिवार उत्पादन कार्य में भागीदारी का निर्वाह करना। समझदारी से समाधान, श्रम से समृद्धि।
2. उत्पादन कार्य में नियोजित होने वाले श्रम मूल्य का पहचान उसका मूल्यांकनपूर्वक श्रम विनिमय प्रणाली को अपनाना। यह लाभ हानि मुक्त होना स्वीकार्य है।
3. आवश्यकता से अधिक उत्पादन, उत्पादन से उपयोग, उपयोग से सदुपयोग, सदुपयोग से प्रयोजनशील विधियों को स्वीकारा गया है। उपयोग विधि से परिवार न्याय और व्यवस्था, सदुपयोग विधि से समाज न्याय और व्यवस्था, प्रयोजनीयता विधि से प्रामाणिकता और जागृति मानव कुल में लोकव्यापीकारण होने का सहज सुलभता को देखा गया।
4. व्यवहार विधि में मूल्य मूलक मानसिकता कार्य-व्यवहारों को स्वीकारा गया है। यह कम से कम विश्वास के रूप में पहचाना गया है। विश्वास को वर्तमान में ही पहचानना, मूल्यांकन करना सहज है। वर्तमान में विश्वास अनिवार्यता के रूप में पहचाना गया है।
5. विचार विधि में विकल्प सह-अस्तित्ववादी विचार को स्वीकारा गया है। यह अस्तित्व सहज विधि से सम्पूर्ण विधाओं में सह-अस्तित्व प्रभावशाली होने, सर्वमानव जीवन सहज रूप में ही साथ-साथ जीने के अरमानों के रूप में पहचानी गई है। इसे हम भली प्रकार से स्वीकार कर चुके है। इसे सर्वमानव तक पहुँचाने के लिए 'समाधानात्मक भौतिकवाद', 'व्यवहारात्मक जनवाद' और 'अनुभवात्मक अध्यात्मवाद' को प्रस्तुत किया जा चुका है। इसमें सम्पूर्ण इकाई अपने स्वभावगति में समाधान उसकी निरंतरता है। व्यवहारपूर्वक ही सर्वमानव आश्वस्त विश्वस्त होने की व्यवस्था है और चाहता है। इसे भले प्रकार से देखा गया। यही सर्वमानव में समाधान है। अस्तित्व में अनुभव होता है इसे प्रमाणित कर भी देखा है। हर मानव अनुभव (तृप्ति) मूलक विधि से जीना चाहता है। यही विचार में विकल्प है।
6. ज्ञान दर्शन विज्ञान में विकल्प क्यों, कैसा, क्या प्रयोजन को इस प्रकार समझा गया है। जीवन ज्ञान अध्ययनगम्य है इसीलिये यह सबको सुलभ हो सकता है। दूसरा सम्पूर्ण अस्तित्व ही मानव को देखने में आता है। अर्थात् समझने में आता है। इसलिये अस्तित्व दर्शन हमें समझ में आया है और सर्वमानव समझने योग्य है और चाहता है। विकास विधि सह-अस्तित्ववादी सूत्रों के आधार पर सम्पूर्ण विज्ञान विश्लेषित होना सहज है। इसीलिये सर्वमानव-मानस इसे समझने का माद्दा रखता है। इतना ही नहीं, इसे सर्वमानव चाहता है।

7. न्याय विधि मानव सहज आचरण रूप में हम पहचान चुके हैं। सर्वमानव जीवन सहज रूप में न्याय की अपेक्षा करता ही है।
8. स्वास्थ्य संयम - यह मानव कुल में बारम्बार विचार प्रयोग होते ही आया है। यह जीवन जागृति को व्यक्त करने योग्य रूप में कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय सम्पन्न मनुष्य शरीर तैयार रहने से ही है। पुनश्च, जीवन सहज जागृति को मानव परंपरा में प्रमाणित करना ही स्वस्थ शरीर का मूल्यांकन है। तीसरे प्रकार से, जीवन जागृति स्वस्थ शरीर द्वारा प्रमाणित होता है। जीवन जागृति का साक्ष्य जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान पूर्वक परिवार सभा से विश्व परिवार सभाओं में भागीदारी को निर्वाह् करना, सुख; शांति; संतोष; आनन्द का अनुभव करना, समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व को प्रमाणित करना। इसे हम भली प्रकार से स्वीकार कर चुके हैं।
9. शिक्षा-संस्कार में मानवीकृत **शिक्षा** को हम भले प्रकार से पहचानें है इसमें मानव का सम्पूर्ण आयाम, दिशा, परिप्रेक्ष्य और कोणों का अध्ययन है। देश और काल, क्रिया, फल, परिणाम सहज समाधानपूर्ण विधि को समझा गया है। यह सर्वमानव में जीवन सहज रूप में स्वीकृत है ही। **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर:70-73)**

- ...अस्तित्व में सदा-सदा ही समाधान और सामरस्यता सह-अस्तित्व सहज वर्तमान होने के कारण है। और विरोधाभास और विशेष तथा सामान्य जैसी विषमताओं का कोई गवाही नहीं है। ऐसा विरोधाभास मनुष्य में क्यों आया और कैसे आया इसके उत्तर में पहले विदित कराया गया है कि मनुष्य विभिन्न जलवायु में इस धरती में अवतरण होने और विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों में परंपरा को (अर्थात् पीढ़ी से पीढ़ी) को सुदृढ़ बनाने के क्रम में विरोधाभास को ही धातु युग, राज्य और आस्था युग तथा विज्ञान युग में भी स्वीकारना हुआ या सीमित रहना हुआ या विवश रहना हुआ। यही सम्पूर्ण अनिष्ट जो बुद्धिमान मानव जान लिया है, जिसको अभी भी जानना शेष है ऐसे सभी अनिष्ट घटनाओं का कारण सिद्ध हुआ है। यही मानव में अभी तक की भय, प्रलोभन, आस्थाओं से संबंधित सम्पूर्ण मान्यताएँ है। इसी में श्रेष्ठता-नेष्ठता, ज्यादा-कम, विद्वान-मूर्ख, ज्ञानी-अज्ञानी जैसी वितण्डावाद बना ही है। यही विरोधाभास समस्याओं के रूप में मानव परंपरा में भुक्त-भोगित स्थितियाँ है। वितण्डावाद और विषमताएँ किसी मानव को स्वीकार्य नहीं है। भले ही पंचमानव कोटि में से पशुमानव और राक्षस मानव क्यों न हो। विषमता दुष्टता की पीड़ा मानव को स्वीकार नहीं हुआ क्योंकि दुष्टता से, विषमता से सदा विरोध होते ही रहा। अब उसका निराकरण ही समाधान होना सहज है। समाधान, समृद्धि विधि से सम्पूर्ण विषमताएँ समाधान में परिवर्तित होने का मार्ग प्रशस्त होता है जैसा प्रत्येक मनुष्य समझदारी से समाधान श्रम से समृद्धि पूर्वक स्वायत्तता से समृद्ध होने से ही समाधानित होता है। यही परिवार मानव का स्वरूप भी है। यह **चेतना विकास मूल्य शिक्षा-संस्कार** विधि से सर्वसुलभ होने की व्यवस्था **मानवीय शिक्षा-संस्कार** परंपरा का वैभव है। **शिक्षा-संस्कार** मानव परंपरा में अविभाज्य अभिव्यक्ति संप्रेषणा है। **शिक्षा-संस्कार** परंपरा का अभिव्यक्ति संप्रेषणाएं मानव जागृति का प्रमाण है। जागृति के प्रमाण का तात्पर्य स्वायत्त मानव के रूप में पीढ़ी से पीढ़ी समृद्ध बनाने से है। इससे स्पष्ट हो गया है कि **शिक्षा-संस्कार** का उद्देश्य स्वायत्त मानव के रूप में समृद्ध करने में सक्षम रहना है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 78-79)**

- मूल्य, चरित्र, नैतिकताएं अविभाज्य रूप में स्वायत्त मानव में प्रमाणित होने का क्रम ही आचरण है। मानव अपने स्वायत्त आचरण सहित ही कायिक, वाचिक, मानसिक, कृत, कारित, अनुमोदित रूप में सामाजिक होना प्रमाणित करता है। संबंधों के आधार पर जैसा मानव संबंधों को प्रयोजनों और व्यवस्था के सूत्रों के रूप में देखा गया है कि सम्मान संबंध जिसमें सम्मानित होने वाला और सम्मान करने वाले का परस्परता में होने वाले कार्यव्यवहार सम्मान संबंध का साक्ष्य है। सम्मान संबंध में स्पष्ट हो चुका है कि स्वयं से अधिक जागृत प्रमाणित व्यक्तियों के प्रति, स्वयं के प्रति विश्वास के आधार पर स्वयं स्फूर्त विधि से मुखरित और आचरित होने वाला क्रियाकलाप जिसका प्रयोजन सम्मानित होने वाले व्यक्ति में सम्मान किया या स्वीकृति होना आवश्यक है। सम्मान परस्परता में मूल्यांकन है। ऐसा सम्मान करने और सम्मानित होने का मूल्यांकन उभयतृप्ति का स्रोत होना पाया जाता है। सम्मान करने,

सम्मान स्वीकृत करने का क्रियाकलाप ही जागृति सहज व्यवहार कहलाता है। संबंध स्वयं से, स्वयं के लिये, स्वयं में जाना, माना, पहचाना हुआ, निर्वाह करने के लिये आधार है। स्वयं में तृप्ति पाने का उद्देश्य अथवा तृप्त होने का उद्देश्य और तृप्त रहने का उद्देश्य बना ही रहता है। संबंधों को पहचानने के उपरान्त उसका प्रयोजन केवल भय मुक्ति ही है। भय मूलत: भ्रम के रूप में होना विदित है। भ्रम; अधिक, कम, अथवा विपरीत पहचान और मान्यता है। यही भय प्रलोभन का कारण और स्वरूप है। इसी क्रियाकलाप को भ्रम नाम हैं। यहाँ यह भी स्मरणीय बिन्दु है कि अस्तित्व में केवल मनुष्य ही अपने ही प्रयासों से भ्रमित होता है क्योंकि मानव में ही कर्म करने में स्वतंत्रता, फल भोगने में परतंत्रता दिखाई पड़ती है। कोई भी कार्य करने के मूल में विचारों का होना पाया जाता है। विचार पूर्वक ही ज्यादा, कम या विपरीत कार्यों में ग्रसित हो जाता है। भयपूर्वक मानव भ्रमित कार्यों को करता ही है, प्रलोभनपूर्वक भी करता है। भयपूर्वक सभी भ्रमित कार्य अस्वीकृतिपूर्वक होता है, प्रलोभन से संबंधित सभी कार्य स्वीकृतिपूर्वक होता है। इन दोनों विधा में भ्रम ही कारण है। आस्था विधा में स्वर्गवादी, जितने भी कल्पना-परिकल्पना मानव ने कर रखा है वह सब प्रलोभन का ही विस्तार रूप में होना पाया जाता है। नर्क में भी भय का ही विस्तार वर्णन होना पाया जाता है। इसके अतिरिक्त और कोई चीज आस्था विधा से खोजा जा रहा है वह प्रमाणित नहीं हो पाया अर्थात् समाज परंपरा में **शिक्षा**, संस्कार, व्यवस्था, संविधान के रूप में प्रमाणित नहीं हुआ है। इसका विकल्प में ही जीवन ज्ञान परम ज्ञान के रूप में जागृति और उसकी प्रमाण सहित परम्परा बनना संभव हो गई है। यह अध्ययनगम्य है। ऐसा जागृत मनुष्य का आचरण ही मानव कुल का वैभव और संविधान होना पाया जाता है। इसी के पुष्टि में सह-अस्तित्व दर्शन ज्ञान अध्ययनगम्य हुआ है। फलत: मनुष्य में स्वायत्तता की सम्पूर्ण स्रोत नित्य समीचीन है। हर मनुष्य जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में होने के आधार पर जीवन ही जागृति पूर्वक दृष्टा पद में अपने ऐश्वर्य को प्रमाणित करने की सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज और उसके वैभव को जानने, मानने, पहचानने और निर्वाह करने की आवश्यकता, अवसर समीचीन है। इस प्रकार हर व्यक्ति जागृति पूर्वक ही स्वायत्तता का प्रमाण है। स्वायत्त मानव रूप प्रदान करने की **शिक्षा-संस्कार** ही मानव परंपरा सहज जागृति का प्रमाण है।

परंपरा न हो ऐसे स्थिति में इसका कल्पना ज्ञान, दर्शन, विचार और योजना कैसे उपलब्ध हो यह प्रश्न मानव जाति में आता ही है। इस सभी मुद्दे पर अनुसंधानपूर्वक हम प्रमाणित हो चुके हैं। अब केवल **शिक्षा** विधा में प्रमाणित होने की गति सहित कार्य कर रहे हैं। इसी क्रम में यह व्यवहारवादी समाजशास्त्र प्रस्तुत है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 82-84)**

- नैसर्गिक संबंध सहज प्रक्रिया मानव में, से, के लिये अविभाज्य है। धरती, वायु, जल के साथ ही मानव शरीर परंपरा का होना पाया जाता है। ऐसी शरीर परंपरा स्वस्थ रहने की आवश्यकता है ही। शरीर स्वस्थता की परिभाषा पहले की जा चुकी है। जीवन जागृति पूर्वक परंपरा में व्यक्त होने योग्य शरीर ही स्वस्थ शरीर है। यह शरीर संतुलन का तात्पर्य है। नैसर्गिकता की पवित्रता इसके लिये एक अनिवार्य विधि है। इसी के साथ ऋतु संतुलन इस धरती पर उष्मा वितरण-विनियोजन कार्यक्रम में सशक्त भूमिका है। वातावरणिक और भूमिगत उष्मा धरती के ऊपरी सतह में संतुलन को बनाए रखने के लिये ऋतु संतुलित कार्यकलाप ही महत्वपूर्ण भूमिका है। ऋतु वातावरिणक उष्मा को भूमिगत करने और उसे आवश्यकतानुसार धरती अपने सतह में उपयोग करने के क्रम को बनाए रखता है। यथा आप हम सब इस बात को देखे हैं जैसे ही ठंडी ऋतु प्रभावित होता है वैसे ही धरती से उष्मा बर्हिगत होता हुआ दिखाई पड़ती है जिससे धरती के ऊपरी सतह में जो चारों अवस्था है उन्हें संतुलन प्रदान करता है। ग्रीष्म ऋतु में धरती अपने ऊपरी सतह के श्वसन द्वारा उष्मा सहित विरल द्रव्यों को अपने में समा लेता है। इसका विधि बाह्य वातावरण में उष्मा का दबाव अधिक होने, और धरती के ऊपरी सतह के कुछ नीचे तक कम होने के आधार पर क्रिया सम्पन्न होती है। इसे हर देश काल में परीक्षण किया जा सकता है, स्वीकारा जा सकता है। वर्षाकाल में धरती के सतहगत उष्मा और वातावरणिक उष्मा संतुलन स्थापित करने और उसे संरक्षित कर रखने का क्रियाकलाप दिखाई देता है। फलस्वरूप सम्पूर्ण फल, वृक्ष, पौधे फलवती होने का कार्य दिखाई पड़ती है। इससे स्पष्ट हो गया है कि धरती की ऊपरी सतह में संतुलन विधि से वर्षाकालीन, शीतकालीन और उष्णकालीन अन्न-वनस्पतियों को पहचाना जाता है। इसे संतुलित बनाए रखना, इसके लिये मानव स्वयं पूरक होना ही नैसर्गिक संतुलन का तात्पर्य है। ये सब अर्थात् मानव

संबंध, नैसर्गिक संबंध, ब्रह्माण्डीय संबंध निरन्तर वर्तमान है ही। इनके प्रति जागृत होना ही संबंधों को पहचानना-मूल्यों को निर्वाह करने का तात्पर्य है। मूल्यांकन विधि से उभयतृप्ति का प्रमाण होता है। जैसे - स्वयं पर विश्वास सम्पन्न हर मानव के परस्परता में होने वाली पोषण और पोषित होने की क्रिया; संरक्षित होने, संरक्षित करने की क्रिया; शिक्षित होने और **शिक्षा** प्रदान करने की क्रिया; समाधानपूर्ण कार्य करने, कराने और करने के लिये मत देने की क्रिया; न्याय प्रदान करने और न्याय पाने की क्रिया; संस्कार ग्रहण करने-कराने की क्रिया; सह-अस्तित्व सहज सम्पूर्णता को निर्देशित करने, निर्देशित होने की क्रिया; अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व को स्वीकार करने योग्य संस्कारों को स्थापित करने और स्वीकारने की क्रिया; अस्तित्व में विकास और जागृति को बोध कराने एवं बोध सम्पन्न होने की क्रिया। इसी प्रकार जीवन और जागृति को बोध कराने, बोध होने की क्रिया; व्यवस्था में जीने की स्वीकृति रूपी संस्कार प्रदान और स्वीकार क्रिया; अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी की आवश्यकता को बोध कराने एवं बोध होने की क्रिया।

समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्वपूर्ण जीने की कला में दृढ़ता को स्थापित करने और दृढ़ता से सम्पन्न होने की क्रियाकलापों में मूल्यांकन सहज तृप्ति को पाया जाता है। यही कोण, आयाम, परिप्रेक्ष्यों में विधिवत् तृप्ति पाने का स्रोत है। यह समीचीन है। यह एक आवश्यकता भी है। इन्हीं तृप्तियों को पाने के क्रम में मूल्यों का निर्वाह करना सहज है। इस प्रकार व्यवहार में सामाजिक होने का सम्पूर्ण अर्हता स्वायत्त मानव में **शिक्षा-संस्कार** पूर्वक समाहित होता है और प्रमाणित होता है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 88-90)**

- सामान्य आकांक्षा संबंधी वस्तुओं को पाने के लिये धरती को तंग करने की आवश्यकता उत्पन्न ही नहीं होता क्योंकि धरती के पेट में आहार, आवास, अलंकार संबंधी वस्तुएँ न्यूनतम है और ये वस्तुएँ धरती के ऊपरी सतह से ही प्राप्त हो जाती है। आहार के लिये कृषि, अलंकार के लिये भी कृषि और वन्य उपज पर्याप्त होता है। आवास के लिये भी धरती की ऊपरी सतह में मिलने वाले द्रव्यों से सुखद आवास स्थली को पाया जा सकता है। मानसिकता जागृत और भ्रमित का द्योतक है। मानव ही जागृत अथवा भ्रमित मानसिकता के आधार पर ही कार्य-व्यवहारों को निश्चय करता है। भ्रमित मानसिकता विधि से ही भय, प्रलोभन, स्वर्गाकांक्षा और उपभोक्ता विधि ही मानव के पल्ले पड़ता है और पड़ा ही है। जागृति सहज विधि से आवश्यकताएँ समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्वपूर्ण विधि से जीने की कला है। ये कितना आवश्यक है अब हर मानव समझ सकता है। अतएव सामान्याकांक्षा संबंधी वस्तुओं के विपुलीकरण के आधार पर हर परिवार समृद्ध होने, अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था क्रम में सर्वतोमुखी समाधान सम्पन्न होने, वर्तमान में विश्वास पूर्वक किए जाने वाली सम्पूर्ण कार्य व्यवहार से मानव अभयशील और पूर्ण होने तथा परम जागृति पूर्णता और उसकी निरन्तरता पूर्वक सह-अस्तित्व में समाज गति के साथ नित्य तृप्त होने का कार्यक्रम ही मानवीयतापूर्ण कार्यक्रम है। अतएव **मानवीयतापूर्ण शिक्षा कार्यक्रम**, मानवीय संस्कार समूच्चय कार्यक्रम, मानवीयतापूर्ण आचरण रूपी संविधान कार्यक्रम, मानवीयता सहज स्वास्थ्य-संयम कार्यक्रम, परिवार मूलक स्वराज्य कार्यक्रम का अध्ययन, अवधारणा और आचरण, व्यवहार ही मानवीयतापूर्ण मानव परंपरा का कार्य है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 90-91)**

- स्वायत्त मानव ही अर्थात् स्वायत्त नर-नारी ही परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होते हैं। परिवार का परिभाषा में वर्तमान होना ही स्वायत्त मानव का प्रमाण है। **मानवीय शिक्षा-संस्कारपूर्वक** ही हर विद्यार्थी स्वायत्तता सम्पन्न होता है। **मानवीय शिक्षा** का परिभाषा भी यही है। जब यह परिवार परिभाषा में प्रमाणित होते हैं तब सहज ही एक-दूसरे के साथ सम्बन्धों को पहचानते हैं, मूल्यों का निर्वाह करते हैं, परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन करते हैं और श्रम मूल्य का भी मूल्यांकन करते हैं। सम्बन्ध निर्वाह, मूल्य निर्वाह का मूल्यांकन करते हैं, उभयतृप्ति पाते हैं। यही परिवार मानव का प्रमाण है। यही परिवार मानव के रूप में अनेक परिवार सभा यथा परिवार समूह सभा, ग्राम परिवार सभा के रूप में संतुलन निर्वाचन विधि से कार्यरत होना पाया जाता है। परिवार

मानव, परिवार समूह, ग्राम परिवार और विश्व परिवारों तक सभी परिवार सभा क्रम से, (क्रम से का तात्पर्य विशालता और समग्रता की ओर) परिवार समृद्धि सम्पन्नता का व सभा विधि व्यवस्था का धारक-वाहक रूप में समाज और व्यवस्था को अभिव्यक्त करते हैं। हर परिवार, परिवार समूह, ग्राम परिवार, ग्राम परिवार समूह विधि से विश्व परिवार तक संतुलन का स्वरूप **मानवीय शिक्षा-संस्कार** न्याय, उत्पादन, विनिमय, स्वास्थ्य संयम, **मानवीय शिक्षा** सुलभता पूर्वक संबंध में सहज स्वायत्त रहना पाया जाता है। हर सुलभता में उभयता एक अनिवार्य स्थिति है। उभयता का तात्पर्य मनुष्य की परस्परता; नैसर्गिक अर्थात् जल, वायु, धरती और सूर्य उष्मा का परस्परता सदा रहता ही है। मनुष्य के परस्परता में संबंधों के साथ ही नैसर्गिक उपलब्धियों अर्थात् उत्पादन होता है। क्योंकि नैसर्गिक संयोग से ही हर उत्पादन होना देखा जाता है। ऐसा उत्पादन, विनिमय के लिये वस्तु होना पाया जाता है। और व्यवहार के लिये हर स्वायत्त मानव; संबंध दृष्टा, मूल्य दृष्टा होना पाया जाता है। जानने, मानने, पहचानने की विधि से संबंधों का पहचान होना पाया जाता है। उसकी स्वीकृति के फलन में जीवन सहज अक्षय शक्ति, अक्षय बल रूपी ऐश्वर्य; मूल्यों के रूप में एक दूसरे के लिये स्वीकार्य योग्य रूप में आदान-प्रदान होता है। यही मानव संबंध और मूल्यों का तात्पर्य है। ऐसे संबंधों को सात रूप में पहचाना गया है। और मूल्यों को क्रम से जीवन मूल्य को चार स्वरूप में, मानव मूल्य छह स्वरूप में, स्थापित मूल्य नौ स्वरूप में, शिष्ट मूल्य नौ स्वरूप में और वस्तु मूल्य दो स्वरूप में समझ सकते हैं। **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 91-92)**

- परम सत्य के रूप में सह-अस्तित्व दर्शन सहज ही अध्ययनगम्य हुआ है। जीवन ज्ञान, दृष्टा पद-प्रतिष्ठा, और उसकी आपूर्ती और उसकी निरंतरता क्रम में अध्ययनगम्य हो चुका है। इसीलिए **शिक्षा, शिक्षा** पूर्वक व्यवहार और कर्माभ्यास सहित प्रमाणित होना पाया गया है। इस शास्त्र में पहले ही जीवन ज्ञान और अस्तित्व दर्शन संबंधी स्वरूप को सर्वविदित होने के अर्थ से प्रस्तुत किया है। यह भी विदित हुआ है कि जीवन ज्ञान ही परमज्ञान, अस्तित्व दर्शन ही परम दर्शन और मानवीयतापूर्ण आचरण ही परम आचरण है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 99-100)**

- पहले इस तथ्य को स्पष्ट किया जा चुका है स्वायत्त मानव अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व वैभव के रूप में स्वयं में विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवसाय में स्वावलंबन, व्यवहार में सामाजिक रूप में प्रतिष्ठा है। यह जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन मूलक विधि से लोकव्यापीकारण होने के तथ्य को स्पष्ट किया है। ऐसे प्रत्येक मानव के सार्थक सफल और परिवार मूलक व्यवस्था का धारक-वाहक होना पाया जाता है। इस विधि से सर्वमानव, स्वायत्त मानव, परिवार मानव, परिवार व्यवस्था मानव के रूप में **शिक्षा-संस्कार** पूर्वक नित्य वर्तमान होने के आधार पर मानव जाति एक होने का अर्थ अपने आप में नित्य वर्तमान है। अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व विधि ही इसका मूल सूत्र है। सह-अस्तित्व में ही मानव परंपरा, समाधान, समृद्धि, अभय (वर्तमान में विश्वास), जीने की कला, विचार शैली और अनुभव बल में सामरस्यता होना पाया जाता है। इसकी संभावना नित्य समीचीन है। इसीलिए मानव जाति एक है। **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर:102-103)**

- जीवावस्था के स्मरण में मानव अपने को अनेक समुदायों में बाँटकर स्वयं परेशान है ही और धरती का शक्ल बिगाड़ दिया।

मानव जाति की एकता, अखण्डता, अक्षुण्णता मानव इसीलिए समझ सकता है मानव ही ज्ञानावस्था की प्रतिष्ठा है और प्रत्येक मानव जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने योग्य इकाई है। इन दोनों कारणों से मानव प्रतिष्ठा को मौलिक रूप में पहचाना जाता है।

इसलिये भी मानव जाति एक होने का सूत्र सार्वभौम व्यवस्था है। यह सर्वतोमुखी समाधान सहज अभिव्यक्ति, संप्रेषणा और प्रकाशन ही है। यह मानवीयतापूर्ण मानव सहज प्रमाण है। इसका स्वरूप स्वायत्त मानव से

परिवार मानव और परिवार सभा, ग्राम परिवार सभा और विश्व परिवार सभा क्रम में समाज के चारों आयाम और व्यवस्था के पाँचों आयामों में सामरस्यता सहज प्रमाणों को अक्षुण्ण बनाये रखे जाना स्पष्ट किया जा चुका है। मानव का वैभव प्रतिष्ठा और अपेक्षा अनुपम संगीत **चेतना विकास मूल्य शिक्षा** से ही अपने-आप सर्वसुलभ होता है। इस विधि से भी अर्थात् परिवार मूलक स्वराज्य विधि से सार्वभौमता का अर्थ सार्थक होता है। इसलिये भी मानव जाति एक होना पाया जाता है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:103)**

- अस्तित्व में प्रत्येक एक अपने 'त्व' सहित व्यवस्था है जैसे गाय, घोड़ा, बिल्ली सबमें उन-उनका 'त्व' देखने में मिलता है। गायत्व ही गाय का, श्वानत्व ही श्वान का, बिल्वत्व ही बिल्व वृक्ष का, धातुत्व ही धातु का एवं मणित्व ही मणि के पहचान का आधार है। इसी प्रकार मानवत्व ही मानव के पहचान का आधार है। मानवत्व ही अपने में ज्ञानावस्था की प्रतिष्ठा है। इसी आधार पर संज्ञानशीलता, संवेदनशीलता का संगीत बिन्दु अथवा तृप्ति बिन्दु ही मानवीयतापूर्ण आचरण के रूप में प्रमाणित हो जाता है।

इस विधि से सर्वमानव में मानवत्व समान रूप में विद्यमान होना स्पष्ट हो जाता है। यह मानव परंपरा सहज चौमुखी कार्यक्रमों के आधार पर सफल हो जाता है क्योंकि अभी जो कुछ भी इस चौमुखी कार्यक्रमों के द्वारा अग्रिम पीढ़ी को दिया जा रहा है वह अधिकांश आगे पीढ़ी में बहता हुआ देखने को मिलता है। जैसे विज्ञान शिक्षा, उन्मादत्रय शिक्षा, सुविधा संग्रह **शिक्षा** दिया जा रहा है यह अग्रिम पीढ़ी में उनके कल्पनाशीलता के साथ अनुरंजित, प्रतिरंजित होकर प्रभावशील रहता है। इसीलिये **मानवीयतापूर्ण शिक्षा** की संभावना, आवश्यकता समीचीन है। प्रयोजनों के लिये नितान्त अपेक्षा है ही। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 106-107)**

- सर्वमानव में शुभाकांक्षा समान - मानव शुभ चाहता ही है, करता ही आया है। यह भी पहले स्पष्ट हो चुका है कि आस्था से इंगित स्वर्ग और नर्क; प्रलोभन और भय का ही प्रतीक है। इन दोनों से भिन्न और कोई चीज देने की चाहत वांगमयों में इंगित होता हो वह किसी भी परंपरा में प्रमाण के रूप में वर्तमानित नहीं हो पाये हैं। आज का मानव किसी न किसी परंपरा में ही अपने को अर्पित किया है। परस्पर परंपराओं में भय, प्रलोभन, आस्थाओं में जो अंतर्विरोध है, दीवालों के रूप में है। शुभ चाहते हुए विरोधों को पाल रखना विविध परंपराओं के अनुसार किंवा धर्म संविधान, राज्य संविधान, में भी इनकी पहचान, विविधता की पहचान, प्राथमिकता की चर्चा बनी हुई है। इसीलिये शुभ चाहते हुए शुभ घटित न होने में दूरी अभी भी बनी हुई है। इस वर्तमान समय में अधिकांश मानव इस दूरी को मिटाने के लिए इच्छुक है। ऐसे दूरियों को वरदान के स्थान पर अभिशाप के रूप में पहचान चुके हैं। यही अग्रिम परिवर्तन की चिन्हित पहचान है। अग्रिम परिवर्तन की पहचान स्वाभाविक रूप में अनुभव, व्यवहार और तर्क संगत होना एक आवश्यकता बन चुकी है। अधिक संख्यात्मक मानव इस धरती पर सर्वशुभ के पक्षधर हैं। उसके लिये समुचित मार्ग, विचार, ज्ञान, प्रमाणों को जाँच पूर्वक अर्थात् परीक्षण, निरीक्षण पूर्वक अपनाना चाहते हैं, स्वीकारना चाहते हैं। यही सूत्र परिवर्तन के चाहत को सम्भावना के रूप में परिणित करता है। इसका आधार अनेक समाज सेवी संगठन जैसा मानवाधिकार संस्था अलग-अलग नामों से विभिन्न पक्षों में कार्य करता हुआ देखने को मिलता है। यह अभी तक जिन संविधानों अर्थात् धर्म संविधानों, राज्य संविधानों में क्रूरता, विकरालता, अश्लीलताओं को कम अथवा दूर करने में अपने को बारम्बार दुहराता है। साथ ही युद्ध प्रभाव से जो वीभत्सता है, प्राकृतिक प्रकोपों से त्रस्त मानव, अकाल, दुष्काल, और विशेष रोगों से पीड़ित एड्स जैसे रोग पीड़ित व्यक्तियों के प्रति अपने संवदेनाओं को अर्पित करते हुए इन्हें सांत्वना देने का घोर प्रयास करते आया है। इन सब प्रयासों को देखते हुए इनके मूल में अवश्य ही एक सार्वभौम व्यवस्था की अभिव्यक्ति की आवश्यकता बनी हुई है। इस ओर सार्वभौम व्यवस्था जैसा धरती में एक व्यवस्था की चर्चा, पहल, प्रयास भी लोगों ने किये हैं। जो ऐसे प्रयास किये हैं उनमें मानव, मानवत्व, सार्वभौम व्यवस्था का रूप रेखा, मानसिकता, विश्व दृष्टिकोण सहित प्रस्तावित होना प्रतिक्षित है।

ऐसे 'मानवाधिकार' धरती पर एक शासन, विचार या चर्चा, मेधावी मानवों के साथ जुड़ा है। हमारा यह प्रस्ताव है कि इसे सफल बनाने के लिये विश्व दृष्टिकोण संबंधी विकल्प आवश्यक है। इस विधा **में अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिन्तन ज्ञान** प्रस्तावित है। इसी क्रम में जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन सहज ही अध्ययन किये हैं। यह पूर्णतया दर्शन और ज्ञान के रूप में, पूर्वावर्ती दर्शन-ज्ञान के विकल्प के रूप में प्रस्तावित है। अस्तित्व ही स्वयं सह-अस्तित्व, नित्य विद्यमान होने के आधार पर सह-अस्तित्व स्वयं विचार का आधार, फलित होने का क्रम हमें अध्ययन गम्य हुआ है। इसलिए विचारधारा जो पूर्ववर्ती क्रम में प्राप्त है उसके स्थान पर सह-अस्तित्ववादी विचारधारा को प्रस्तावित किया है। अभी तक जो-जो शिक्षाएं इस धरती के मानव के साथ बीत चुकी है, इस समय में जो-जो शिक्षाएं दे रहे हैं उसके विकल्प में **मानवीयतापूर्ण सह-अस्तित्ववादी शिक्षा कार्यक्रम** प्रस्तावित है। सह-अस्तित्व सहज अध्ययन क्रम में हम यह पाये हैं अस्तित्व में व्यवस्था है, शासन नहीं है। इसीलिये सार्वभौम व्यवस्था शासन के विकल्प के रूप में प्रस्तावित है। इसी क्रम में शक्ति केन्द्रित शासन संविधान के स्थान पर समाधान केन्द्रित व्यवस्था रूपी संविधान मानवीय आचार संहिता के रूप में (सार्वभौम राष्ट्रीय आचार संहिता) प्रस्तावित किया है। इसके लिये कार्यक्रम का हम धारक-वाहक है। जीवन-ज्ञान, अस्तित्व दर्शन का अध्ययन शिविर कार्यक्रमों का आयोजन करते है और **शिक्षा** का मानवीयकरण कार्य में तत्पर है। मानवीयतापूर्ण आचरण विधि से हम जीते ही हैं। इन सभी कारणों से हम उक्त प्रस्तावों को प्रस्तावित करते हुए प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

उक्त प्रस्तावों के आधार पर मानवाधिकार सुस्पष्ट हो जाता है फलस्वरूप परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था पूर्वक सार्वभौम शुभ रूपी समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व को सर्वसुलभ कर सकते हैं। इसकी अक्षुण्णता का होना समीचीन है। यही सर्वशुभ है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:107-110)**

- मानव जाति एक होने के आधार पर ही मानव धर्म एक होने का अर्थात् सर्वतोमुखी समाधान सबको समीचीन होने का सत्य उद्घाटित हो पाता है। समाधान मूलत: मानव जीवन सहज उद्देश्य और प्रमाण है। इस उद्देश्य की पूर्ति जागृतिपूर्वक उजागर होती है। जागृति का सार्थक स्वरूप अस्तित्व में अनुभव है। अस्तित्व नित्य वर्तमान होते हुए अनुभव का घोषणा, सत्यापन, प्रमाण, मानव ही मानव के लिये अर्पित करता है। प्रामाणिकता ही व्यवहार में सर्वतोमुखी समाधान के रूप में प्रमाणित हो जाता है। अस्तित्व में अनुभव ही जागृति परमता का द्योतक है। जागृति ही भ्रम मुक्ति है। आदिकालीन अथवा सुदूर विगत से सुना हुआ 'मुक्ति' शब्द का अर्थ सह-अस्तित्व में अनुभव रूप में सार्थक होता है। इसे भली प्रकार से देखा गया है। सह-अस्तित्व में अनुभव सर्वसुलभ होने का मार्ग **मानवीय शिक्षा-संस्कार** विधि से समीचीन है और प्रशस्त है। सह-अस्तित्व शाश्वत सत्यरूपी, नित्य सत्यरूपी, परम सत्यरूपी न घटते-बढ़ते हुए मानव सहित अविभाज्य वर्तमान है। इसमें खूबी यही है अस्तित्व ही चार अवस्था में प्रकाशमान है। जिसमें से एक अवस्था स्वयं में मानव है। अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व ही इसका मूल सूत्र है। सह-अस्तित्व ही विकास, पूरकता, उदात्तीकरण, फलस्वरूप रासायनिक-भौतिक रचनाएँ, विरचनाएँ सम्पन्न होते हुए देखने को मिलता है। देखने वाला मनुष्य ही है। विकास, अर्थात् परमाणु में विकास, पूरकता, पूर्णता, संक्रमण, जीवन और जीवन जागृति प्रमाणित होता है। जीवन में जीवन जागृति का प्रमाण मानव ही प्रस्तुत करता है। मानव अपने में जागृतिपूर्णता में उसकी निरन्तरता सहज विधि से ही सर्वतोमुखी समाधान सम्पन्न परंपरा को बनाए रखना सहज है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 112-113)**

- सर्वमानव सहज रूप में ही समान है। इसीलिये मानव धर्म सर्वमानव में समान है। यह तथ्य समझ में आता है। सर्वतोमुखी समाधान का तात्पर्य ही है स्वयं व्यवस्था में और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का निर्वाह करना। इसी विधि से मानव अपने में चिरआशित स्वराज्य को पाकर सुख, शांति, संतोष और आनन्द को पाकर; समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व को प्रमाणित करता है। यही मुख्य रूप में मानव का चाहत भी है। मूलत: धर्म एक शब्द है। हर शब्द किसी का नाम है। धर्म शब्द से इंगित वस्तु मानव जागृति और उसका प्रमाण रूपी प्रामाणिकता, सर्वतोमुखी समाधान ही है। इसका स्वीकृत स्वरूप ही सुख, शांति, संतोष, आनन्द है। इसका दृष्टा पद में भी सुख, शांति, संतोष

आनन्द है। इसका दृश्य रूप ही व्यवस्था है। वह परिवार सभा से विश्व परिवार सभा तक गुँथे हुए स्वरूप में दिखाई पड़ती है। व्यवस्था सहज अभिव्यक्ति ही अथवा फलन ही समाधान, समृद्धि, अभय और सह-अस्तित्व है। इस प्रकार जीवन सहज लक्ष्य, मानव सहज अर्थात् अखण्ड समाज सहज लक्ष्य, संगीत, विन्यास है, यही समाधान के रूप में निरूपित होती है। सह-अस्तित्व और अनुभव में संगीत है। यही आनन्द के नाम से विख्यात होता है। न्याय, उत्पादन, विनिमय, स्वास्थ्य-संयम, शिक्षा-संस्कार में होने वाला अनुभव ही सर्वतोमुखी समाधान है। यह मानव सहज जागृति की अभिव्यक्ति और संप्रेषणा है। सम्पूर्ण मानव अपने परिवार सहज आवश्यकता से अधिक कार्य करता है इसके फलन में समृद्धि का अनुभव होता है। यह भी समाधान है। हर परिवार सभा से विश्व परिवार सभा तक सम्बन्धों का पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन और उभयतृप्ति पाने की विधि जागृतिपूर्वक सम्पन्न होता है। यह निरन्तर समाधान है। लाभ-हानि मुक्त विनिमय प्रणाली जागृति सहज मानव की अपेक्षा है। इस विधि से विनिमय कार्य का क्रियान्वयन स्वयं समाधान है। स्वास्थ्य संयम, स्वाभाविक रूप में जीवन जागृति को शरीर के द्वारा मानव परंपरा में प्रमाणित करने योग्य शरीर है। यही स्वास्थ्य का निश्चित स्वरूप है। जागृतिपूर्ण परंपरा में सर्वमानव अपने स्वास्थ्य को स्वस्थ बनाये रखने का उपाय और स्रोत बना ही रहता है। यह स्वयं में समाधान है। **प्रत्येक मानव मानवीय शिक्षा-संस्कार पूर्वक स्वायत्त मानव, परिवार मानव, विश्व परिवार मानव के रूप में प्रमाणित हो पाता है**। यह सर्वतोमुखी समाधान है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:114-115)**

- मानव धर्म परम्परा के रूप में सहज ही अर्पित होता है, प्रवाहित होता है। इसी का नाम संस्कार है। संस्कार का तात्पर्य भी पूर्णता के अर्थ में किया गया कृतियाँ और स्वीकृतियाँ है। ऐसी स्वीकृतियाँ सार्थक होते हैं। इसी का नाम होता है सम्प्रदाय। सम्यक प्रकार से प्रदायन क्रिया, सम्प्रदाय है। **मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार** परंपरा ही पावन रूप में संस्कार है। ऐसी पवित्रता की धारक वाहकता केवल मानव में होना पाया जाता है। इस प्रकार मानव धर्म और मानव सम्प्रदाय सर्वशुभ के अर्थ में सार्थक होता है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:116)**

- मानवीय सभ्यता, संस्कृति, विधि, व्यवस्था सर्वमानव में, से, के लिये समान है - संस्कृति का स्वरूप के सम्बन्ध में पहले भी सामान्य विवरण प्रस्तुत किये गये हैं। मानवीय संस्कृति का पोषण सभ्यता करती है, सभ्यता का पोषण विधि करती है, विधि का पोषण व्यवस्था करती है और व्यवस्था का पोषण संस्कृति करती है। इस प्रकार आवर्तनशीलता क्रम सुस्पष्ट है। संस्कृति का मूलरूप संस्कार है। संस्कार का मूलरूप जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान ही है। अस्तित्व और मानव से संबंधित अध्ययन बोधगम्य होना ही **शिक्षा-संस्कार** का तात्पर्य है। ऐसी **शिक्षा-संस्कार** ही मानवीयतापूर्ण परम्परा का मार्गदर्शक होता है। मानवीयतापूर्ण परम्परा अपने-आप में ऊपर कहे चारों आयाम सम्पन्न रहता ही है। ऐसी **शिक्षा-संस्कार** से प्राप्त स्वीकृतियों, अवधारणाओं, अनुभवों, विचार शैली सहित सर्वतोमुखी समाधान मानसिकता से सम्पन्न होना ही मानवीय संस्कार सफलता का प्रमाण है। यही सभ्यता का आधार है।.... **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:118 -119)**

- जागृतिपूर्ण सभी मानव इस संविधान के धारक वाहक हैं। प्रत्येक मनुष्य जागृति में, से, के लिये मानव परंपरा में मनुष्य के रूप में प्रस्तुत हैं। इसीलिये जागृत हैं या जागृत होने योग्य हैं। प्रत्येक जागृत मनुष्य मानवीय शिक्षा-संस्कार पूर्वक स्वतंत्रता और स्वराज्य का धारक-वाहक और प्रेरक है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य शिक्षा-संस्कारपूर्वक जागृत होता है। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:125)**

- स्वतंत्रता :- प्रत्येक मानव अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था (मानव धर्म) में भागीदारी निर्वाह करने, कराने एवं करने के लिये मत देने में स्वतंत्र है। अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था की अक्षुण्णता **मानवीय शिक्षा-संस्कार**, स्वास्थ्य-संयम, न्याय-सुरक्षा, उत्पादन-कार्य, विनिमय-कोष, सुलभता सहित है जिसका क्रियान्वयन दस सीढ़ी में

होता है। 1. 'परिवार' सभा, 2. 'परिवार समूह' सभा, 3. 'ग्राम परिवार' सभा, 4. 'ग्राम समूह' परिवार सभा, 5. 'ग्राम क्षेत्र' परिवार सभा, 6. 'मंडल' परिवार सभा, 7. 'मंडल समूह' परिवार सभा, 8. 'मुख्य राज्य' परिवार सभा, 9. 'प्रधान राज्य' परिवार सभा और 10. 'विश्व राज्य'। **(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर:126)**

- संतुलन

जागृत **शिक्षा-संस्कार** विधि से प्रत्येक मानव जागृत होना पाया जाता है। **शिक्षा** ग्रहण करने की अर्हता सम्पूर्ण मानव में विद्यमान है। जीवन अनेक बार अथवा मानव बारंबार, मानव परंपरा में जागृत होने का प्रयत्न करता है। इसे हम सब देखे हुए हैं। मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार उपलब्ध होने के उपरान्त ही हर मानव में, से, के लिये संतुलन एक नित्य उत्सव का आधार बिन्दु है। संतुलन का मूल रूप सम्पूर्ण मानव में संतुलन, अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी करता हुआ दसों सीढ़ियों में परस्पर पूरकता पूर्वक मानव सहज जीने की कला को प्रमाणित करने के रूप में है। ऐसे संतुलन का स्वरूप -

1. **शिक्षा-संस्कार**-व्यवस्था और संविधान में सामरस्यता
2. मानवीय संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था में सामरस्यता
3. मानवीय व्यवस्था सहज पाँचों आयामों में सामरस्यता
4. सम्बन्ध-मूल्य-मूल्यांकन और उभयतृप्ति में सामरस्यता
5. नैसर्गिक सम्बन्ध और मानवीयतापूर्ण विधि से जीने की कला में सामरस्यता
6. दसों सीढ़ियों में परस्पर उपयोगिता, पूरकता और सामरस्यता
7. व्यवसाय, व्यवहार, विचार और अनुभव में सामरस्यता

यही संतुलन का प्रमाण है। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर: 128)**

- परिवार सभा सभ्यता - सम्बन्ध, मूल्य, मूल्यांकन विधियों से सम्पन्न अनुभव ही सभ्यता की प्रतिष्ठा है। परिवार ही अपने परिपक्वता विधि से सभा के स्वरूप में प्रमाणित होता है। इस प्रकार सभा ही सभ्यता की अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन स्रोत है। सभा स्वरूप क्रम से दस सीढ़ियों में स्पष्ट है। मूलत: परिवार सभा ही अन्य स्तरीय सभाओं की रचना-कार्य और प्रवृत्तियों को प्रवर्तित करता है। परिवार में समाधान, समृद्धि और परस्परता में विश्वास, प्रतिष्ठा के रूप में अनुभव होना ही, उसकी विशालता की आवश्यकता स्फूर्त होती है। इसी क्रम में परिवार के अन्य कार्य सूत्र भी आशय के रूप में सूत्रित रहता ही है। धरती में अकेले व्यक्ति या परिवार नाम की स्वरूप की व्यवस्था नहीं है। अनेक व्यक्ति, अनेक परिवार के रूप में मानव प्रकाशित है। इसलिये परस्पर परिवार में विश्वास का सूत्र फैलना एक आवश्यकता रहता ही है। इसी क्रम में परिवार समूह, ग्राम मुहल्ला परिवार होना एक साधारण विधि है। इसमें परिवार का आशित विनिमय, न्याय, स्वास्थ्य-संयम, शिक्षा-संस्कार अपेक्षा के रूप में ही रहता है। क्योंकि परिवार आवश्यकीय सभी सामान्य आकांक्षा एवं महत्वाकांक्षा सम्बन्धी वस्तुओं को निर्मित नहीं करता। आवश्यकता से अधिक एक-दो वस्तुओं को अवश्य ही उत्पादित करता है एवं विनिमय पूर्वक अन्य वस्तुओं में बदलने की आवश्यकता बनी रहती है। यह एक आवश्यकीय प्रक्रिया है। इसे दूर-दूर तक सूत्रित करना एक आवश्यकता है। मानव जागृतिपूर्वक ही सामाजिक होना पाया जाता है। यह **शिक्षा-संस्कारपूर्वक** ही होता है। इसका परीक्षण, सर्वमानव के साथ होना सहज है। इस विधि से संबंधों को विशाल और विशालतम रूप देना आवश्यकता है। इसी विधि से ग्राम परिवार सभा से विश्व परिवार सभा तक सम्बन्ध रचना मानव का चिर कामना नैसर्गिकता सहज विधि से स्पष्ट हुआ है। इस विधि से धरती के मानव न्याय, जो अखण्ड समाज के अर्थ को ध्वनित करता है, के साथ समाधान जो सार्वभौम व्यवस्था को ध्वनित करता है, के साथ जागृति जो इन दोनों को संतुलित रूप में प्रमाणित है, के साथ निरन्तर जीने की कला को, अनुभव बल को, विचार शैली को सर्वथा परिपूर्ण रूप में जानना, मानना, पहचानना,

निर्वाह करना संभव है। जागृत परंपरा ही शिक्षा-संस्कार, न्याय-सुरक्षा, विनिमय-कोष, उत्पादन-कार्य और स्वास्थ्य-संयम के रूपों में हर सभा के परस्परता में, हर सभा में प्रमाणित होता है और उसका मूल्यांकन होना एवं उसकी तृप्ति सर्वसुलभ होना ही मानवीयतापूर्ण आचार संहिता का परम लक्ष्य है। अस्तु :-

1. मानव का मौलिक आधार, उसके विशालता का स्वरूप, आवश्यकता का उद्गमन, सार्थकता का स्वीकार हर मानव में है ही।
2. हर मानव प्रमाणित होना ही चाहता है।
3. सार्थक होने का सहज स्रोत मानवीय शिक्षा-संस्कार ही है। और
4. परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में ही सम्पूर्ण प्रमाण प्रमाणित होता है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:133-135)**

- परिवार की पहचान, उसकी विशालतमता ही समाज का स्वरूप है। व्यवस्था अपने में न्याय, उत्पादन, विनिमय, स्वास्थ्य- संयम और **शिक्षा-संस्कार** सुलभता ही है और समाज अपने- आप में सम्बन्ध, मूल्य, मूल्यांकन, उभय तृप्ति विधि ही जागृति का साक्ष्य है। इसी उभय तृप्ति का नामकरण ही 'न्याय' है। यह सभी परिवार में हो सकता है, आवश्यकता है, यह सर्वविदित है। इसका स्रोत निरंतर जागृत परिवार है। दूसरा जागृत परिवार और उसके संतुलन के लिए **मानवीय शिक्षा-संस्कार** परंपरा ही है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर:136)**

- सर्वतोमुखी समाधान और तृप्ति सहज निरंतरता सर्वमानव का अभीष्ट है। जागृत मानसिकता का संतुलन और सार्थक स्वरूप यही है। संतुलन ही मानव सहज स्वभाव गति है। ऐसे स्वभाव गति का प्रमाण स्वरूप स्वायत्त मानव और परिवार मानव ही है। स्वायत्त मानव, **मानवीय शिक्षा-संस्कार** पूर्वक सार्थक होता है। **मानवीय शिक्षा-संस्कार** परंपरा और **शिक्षा** ग्रहण करने की अपेक्षा हर मानव में निहित है।....**(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:137)**

- अध्ययन, मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार ही मानव को सदा-सदा के लिये जागृति व जागृति परम्परा के लिये समीचीन स्रोत है। ऐसे शिक्षा-संस्कार को हर मनुष्य के लिये सुलभ होना मानव सहज अथवा मानवीयतापूर्ण मानव के पुरूषार्थ का मूल्यांकन है। इससे पता चलता है कि मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार परम्परा मानव परम्परा का पुरूषार्थ है। पुरूषार्थ का तात्पर्य ही है, अपनी प्रखर प्रज्ञा और उसका निरंतर कार्य है। ऐसा प्रखर प्रज्ञा मानव में ही प्रमाणित होता है। प्रधान रूप में यही मानव सहज मौलिकता प्रखर प्रज्ञा ही जागृति और जागृति पूर्णता का प्रमाण है। इसकी अभिव्यक्ति ही जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान है। ऐसे जागृति रूपी अथवा जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन रूपी जागृति को प्रमाणित करना ही प्रखर प्रज्ञा का प्रमाण है। इस विधि से हर मनुष्य इसे अध्ययन विधि से जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना ही जागृति और उसकी परम्परा है। निर्वाह करने के क्रम में ही आचरण, व्यवस्था, व्यवस्था में भागीदारी प्रमाणित होता है। आचरण में मूल्य, चरित्र, नैतिकता मूल रूप में अविभाज्य रूप में वर्तमान रहता है। परिवार व समाज विधा में चरित्र प्रधान विधि से मूल्य और नैतिकता प्रमाणित होता है। मूल्य प्रधान विधि से परिवार व्यवस्था और नैतिकता प्रधान विधि से समग्र व्यवस्था प्रमाणित होती है। जागृत परंपरा में ही स्वत्व स्वतंत्रता अधिकार सहज कार्यक्रम परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था के रूप में स्पष्ट है ही।.... **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:144-145)**

- .... स्वायत्त मानवाधिकारोपरान्त ही विवाह घटना का उपयोगी और सार्थक होना पाया जाता है। स्वायत्त मानव का पहचान स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक और व्यवसाय में स्वावलंबन सहज प्रमाण के आधार पर सम्पन्न होना व्यवहारिक है। ऐसी अर्हता को

शिक्षा-संस्कार परंपरा में प्रावधानित रहना मानव सहज वैभव में से एक प्रधान आयाम है। इस प्रकार **चेतना विकास मूल्य शिक्षा** सम्पन्न शिक्षित व्यक्ति ही अध्ययनपूर्वक अपने में स्वायत्तता का अनुभव करने और सत्यापित करता है। **मानवीयतापूर्ण शिक्षा**, मानवीयतापूर्ण ज्ञान, दर्शन और आचरण सम्पूर्ण अध्ययनोपरांत किये जाने वाले हर सत्यापन को वाचिक प्रमाण के रूप में स्वीकारना नैसर्गिक व्यवहारिक आवश्यक मानव परंपरा में से प्रयोजनशील होना देखा गया है क्योंकि परस्पर सम्बोधन सत्यापन के साथ ही सम्बंध, कर्तव्य व दायित्वों की अपेक्षाएँ और प्रवृत्तियाँ परस्परता में अथवा हरेक पक्ष में स्वयं स्फूर्त होना पाया जाता है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:150-151)**

- विवाह सम्बन्ध समय में आयु की परिकल्पना का होना पाया जाता है। आयु के साथ स्वास्थ्य, समझदारी, ईमानदारी, कारीगरी की अर्हता जिम्मेदारी, भागीदारी सहित दाम्पत्य सम्बन्ध में प्रवृत्ति यह प्रधान बिन्दुएं हैं। इसका परिशीलन विवाह संबंधके लिये उत्सवित नर-नारियाँ का सत्यापन, अभिभावकों की सम्मति, **शिक्षा-संस्कार** जिनसे ग्रहण किये और उसे अध्ययनपूर्वक जिन अभिभावकों और आचार्यों के सम्मुख प्रमाणित किया, उनकी सम्मति यह प्रधान रूप में जाँच पूर्वक एकत्रित कर लेना आवश्यक है। इस संयोजन कार्य को करने वाला व्यक्ति प्रधानत: विवाह सम्बन्ध में प्रवेश करने वाले हर नर-नारी का पहला अभिभावक होंगे, दूसरा शिक्षक या आचार्य रहेंगे, तीसरे स्थिति में भाई-बहन और मित्र रहेंगे। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:151-152)**

- ....इससे यह स्पष्ट हो गया है कि हर मनुष्य चाहे नर हो चाहे नारी हो, स्वस्थ रहने के मापदण्ड अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व क्रम में स्वायत्त मानव के रूप में स्पष्ट किया जा चुका है। जिनमें ही मानवत्व रूपी स्वत्व, स्वतंत्रता, अधिकार को स्वयं स्फूर्त विधि से प्रमाणित होना पाया गया है। ऐसा स्वायत्त मानव स्वस्थ मानव परिवार परंपरा में, व्यवहार परंपरा में, उत्पादन परंपरा में, विनिमय परंपरा में, स्वास्थ्य-संयम परंपरा में, **मानवीयता पूर्ण शिक्षा-संस्कार** परंपरा में और न्याय-सुरक्षा परंपरा में भागीदारी को निर्वाह करना ही समग्र व्यवस्था में भागीदारी का तात्पर्य है। यह समझदार परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था विधि से समाज रचना परिवार से ग्राम परिवार, ग्राम परिवार से विश्व परिवार तक और ग्राम स्वराज्य सभा से विश्व परिवार सभा तक इन सभी आयामों में भागीदारी का सूत्र, व्याख्या अग्रिम अध्यायों में स्पष्ट हो जाएगी। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:159)**

- कल्पनाशीलता कर्म स्वतंत्रता का प्रयोग हर मानव संतान जन्म समय से ही करता है। मौलिक अधिकार सम्पन्न जागृत मानव परंपरा में अर्पित होता है। इसका साक्ष्य जन्म से ही हर मानव संतान में न्याय की अपेक्षा, सही कार्य-व्यवहार करने की इच्छा और सत्यवक्ता होना। कम से कम तीन वर्ष के शिशुओं के अध्ययन से एवं अधिक से अधिक पाँच वर्ष के शिशुओं के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है। इसे हर मानव निरीक्षण, परीक्षण पूर्वक अध्ययन कर सकता है। यही मुख्य बिन्दु है। इस आशयों को अर्थात् शिशुकाल में से मुखरित इन आशयों का आपूर्तिकरण ही जागृत मानव परंपरा का वैभव है।

जीवन ज्ञान, सह-अस्तित्व दर्शन ज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान केन्द्रित **मानवीयतापूर्ण शिक्षा प्रणाली**, पद्धति, नीतिपूर्वक किये गये अध्ययन-अध्यापन कार्य विधि से शिशुकालीन तीनों अपेक्षाओं का भरपाई होता है। जीवन ज्ञान सम्पन्नता से हर मनुष्य में दृष्टा पद प्रतिष्ठा में, से, के लिये वर्तमान में विश्वास होता है। फलत: न्यायप्रदायी क्षमता प्रमाणित हो जाती है। अस्तित्व दर्शन की महिमावश सह-अस्तित्व, सह-अस्तित्व में व्यवस्था, व्यवस्था में भागीदारी उसकी आवश्यकता और प्रयोजन बोध होता है जिससे सही कार्य-व्यवहार करने का अर्हता स्थापित होता है।

अस्तित्व ही परमसत्य होने का बोध जीवन सहित अस्तित्व दर्शन के फलस्वरूप परम सत्य बोध होना स्वाभाविक है। इसलिये सत्य बोध सहित सत्य वक्ता का तृप्ति पाना सहज समीचीन है। यही **मानवीयतापूर्ण शिक्षा-**

संस्कार की सारभूत उपलब्धि, जागृति और समीचीनता सहज है। अतएव मानव परंपरा स्वयं जागृत होने की आवश्यकता अनिवार्यता स्पष्ट है।

परम्परा जागृति का तात्पर्य **शिक्षा-संस्कार** पंरपरा का मानवीयकरण फलत: परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था सर्वसुलभ होने का कार्यक्रम ही अखण्ड समाज का कार्यक्रम है। यही जागृत पंरपरा का स्वरूप है। यह हर नर-नारियों में जीवन सहज रूप में स्वीकृत है। इसलिये इसका आचरण, समझ और विचार समीचीन है।

मानव परंपरा में ही हर परिवार मानव अपने संतानों को परम ज्ञान, परम दर्शन, परम आचरण सम्पन्न बनाने में स्वाभाविक रूप में सार्थक होगा। क्योंकि जागृत मानव हर आयाम, कोण, दिशा, परिप्रेक्षों में जागृति सहज कार्यकलापों, आचरणों, विचारों और प्रमाणों को वहन किया करता है। दूसरे भाषा में अभिव्यक्त संप्रेषित और प्रकाशित करता है। ऐसे मौलिक क्षमता का अर्थात् जागृति पूर्ण क्षमता के लिये हर अभिभावक जिम्मेदार, भागीदार रहना पाया ही जाता है।

जागृत पंरपरा में हर अभिभावक जागृत मानव पद में प्रमाणित रहने के आधार पर ही अपने संतानों में न्याय प्रदायी क्षमता, समाधानपूर्ण कार्य-व्यवहार (सही कार्य-व्यवहार) करने की योग्यता, और सत्यबोध सम्पन्न सत्यवक्ता होने की अर्हता को स्थापित करना सहज है।

जागृत मानव परंपरा में पीढ़ी से पीढ़ी किताब के बोझ से छुटकारा अथवा कम होने की प्रणाली बनेगी क्योंकि जागृतिपूर्ण परंपरा में समझ के करो विधि पूर्णतया प्रभावशील रहता है। इसी के साथ समझ में "जीने दो जीयो" वाला सूत्र भी सहज ही चरितार्थ होता है। समझने का मूल स्रोत, पहला स्रोत जिस परिवार में जो शिशु अर्पित रहता है वही परिवार सर्वाधिक जिम्मेदार होता है। इस तथ्य पर हम सुस्पष्ट हो चुके हैं कि हर स्वायत्त मानव परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होता है। यही जागृत मानव प्रतिष्ठा है। यह मौलिक अधिकार में गण्य है। ऐसे जागृत परिवार में अर्पित हर संतान के लिये जागृति सहज **शिक्षा-संस्कार** के लिये हर अभिभावक पर्याप्त होना पाया जाता है। शिशुकाल में आज्ञापालन-अनुसरण विधि हर शिशुओं में प्रभावशील रहता है। यही अपने को अर्पित करने का साक्ष्य है। अर्पित स्थिति में हर सम्बोधन, हर प्रदर्शन, हर प्रकाशन अनुकरण योग्य रहता ही है। इसी अवस्था में जागृति क्रम में संयोजित करना ही **संस्कार-शिक्षा** का तात्पर्य है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:176-179)**

- समितियों में सम्बोधन:-

गुरू-शिष्य - शिक्षा-संस्कार विधा में

आचार्य-आवेदक - न्याय-सुरक्षा विधा में **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:183)**

- मानव अपने परंपरागत विधि से संदेश और निर्देशपूर्वक ही प्रमाणित होने की विधि स्पष्ट हो जाता है। संदेश प्रणाली में अस्तित्व सहज कार्य और मानव सहज कार्य का संदेश समाया रहता है। यही **शिक्षा** तंत्र के लिये संपूर्ण वस्तु है। ऐसे संदेश के क्रम में काल, देश निर्देशन अवश्यंभावी है। इसी से पहचानने, निर्वाह करने का प्रमाण परंपरा में स्थापित होता है।....**(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर:186)**

- मानव सहज सभी सम्बन्ध पूर्णता को प्रतिपादित करने के लिये अनुबंधित रहने के कारण ही है। हर सम्बन्धों का पहचान के साथ ही मूल्यों का उद्गमन जीवन सहज रूप में व्यक्त होता है। इसका मूल स्रोत जीवन अक्षय शक्ति, अक्षय बल सम्पन्न रहना ही है। यह भी हम समझ चुके हैं कि जीवन ही शरीर को जीवन्त बनाए रखता है और जीवन अपने आशयों को शरीर के द्वारा मानव परम्परा में, से, के लिये अर्पित करता है। पहला-समझदारी को प्रमाणों के रूप में अर्पित करता है और प्रबोधनों के रूप में अर्पित करता है। प्रबोधन किसी को बोध के लिए अर्पित होता है और प्रमाण स्वतृप्ति और तृप्तिपूर्ण परम्परा के आशय में घटित होती है। यह जीवन जागृति की स्वाभाविक क्रिया है। जागृत

मानव ही व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण होना पाया जाता है। व्यवस्था स्वयं में न्याय, उत्पादन और विनिमय सुलभता ही है। इन्हीं की निरन्तरता के लिये स्वास्थ्य-संयम और **मानवीय शिक्षा-संस्कार** एक अनिवार्य स्थिति है। इस प्रकार व्यवस्था का पाँच आयाम होता है। इन्हीं आयामों में भागीदारी, व्यवस्था में भागीदारी का तात्पर्य है। इस प्रकार हर जागृत मानव (परिवार मानव) सहज रूप में व्यवस्था को प्रमाणित करता है। यही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का आधार और अभिव्यक्ति है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर:190-191)**

- परिवार सम्बन्ध, मानव सम्बन्ध, समाज सम्बन्ध ये सब आवश्यकतानुसार उपयोग करने का नाम है। ये सबका निर्देशित अर्थ, चिन्हित अर्थ अखण्ड समाज ही है। अखण्ड समाज का पहचान, लक्ष्य, प्रयोजन और प्रणाली, पद्धति, नीतियों के समानता से है। मानव लक्ष्य समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व होना ही है। प्रयोजन व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी है। मानवीयतापूर्ण पद्धति न्याय, उत्पादन, विनिमय, स्वास्थ्य-संयम और **शिक्षा-संस्कार** में पूरकता प्रणाली परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था प्रणाली और नीति तन, मन, धन रूपी अर्थ के सुरक्षा हैं, यही मानव का मौलिक अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन है।...**(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर:194)**

- जागृत परम्परा में मानव ही सम्पूर्ण आयाम, कोण, दिशा व परिप्रेक्ष्य सर्व देशकाल में जागृत **शिक्षा** यथा अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन रूपी जीवन ज्ञान सहज परम ज्ञान, अस्तित्व दर्शन सहज सह-अस्तित्व रूपी परम दर्शन, मानवीयतापूर्ण आचण रूपी परम आचरण, ज्ञान-विज्ञान विवेक सम्मत समाधानपूर्ण **शिक्षा-संस्कार** सुलभ होता है। जागृति सहज मानवीयतापूर्ण आचरण और मानव सहज परिभाषा के अनुरूप शास्त्रों का प्रणयन स्वाभाविक रूप में ही है। आवर्तनशील अर्थशास्त्र अपने सह-अस्तित्व सहज सूत्रों के प्रतिपादन सहित व्याख्यायित हुआ है। यह परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन के लिये अपनाया हुआ उत्पादन कार्य में नियोजित श्रम, उत्पादन सहज उपयोगिता के आधार पर उसका मूल्यांकन फलस्वरूप श्रम विनिमय प्रणाली स्थापित होती है। यह समझ के करो विधि से सर्वसुलभ हो जाता है। इसी क्रम में यह व्यवहारवादी समाजशास्त्र भोगोन्मादी समाज शास्त्र के स्थान पर प्रस्तावित किया है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:195-196)**

- माता-पिता :- सम्बन्धों का क्रम पहले सूची में प्रस्तुत किया जा चुका है। उसमें से पहला सम्बन्ध माता-पिता और पुत्र-पुत्री संबंध है। हर शिशु, हर वृद्ध जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में ही होना देखा गया है। शरीर विधा से मानव परंपरा की निरंतरता के लिये एक शरीर रचना वह भी वंशानुगत विधि से सम्पन्न होना पाया जाता है। हर संतान के लिए माता-पिता का सम्बन्ध इसी आधार पर होना पाया जाता है। इसके अनंतर शरीर संरक्षण, पोषण के आधार पर माता-पिता के सम्बन्धों को पहचाना गया है। यह पोषण और संरक्षण रूपी अपेक्षा शिशुकालीन संबोधन में ही निहित रहना पाया जाता है। जैसे ही शिशुकाल से कौमार्य अवस्था शरीर के आयु के अनुसार गणना हो पाता है ऐसी स्थिति में पुत्र-पुत्री के सम्बोधन में भी अपेक्षाएँ आरंभ होते हैं। ये अपेक्षाएं मानवीयतापूर्ण सभ्यता, संस्कृति, भाषा के आधार पर होना पाया जाता है। माता-पिता शिशुकाल में शिशु से कोई अपेक्षा नहीं करते। यह सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है। जैसे ही शिशु काल से यौवन काल आता है, (शरीर के आधार पर ही इस समय को पहचाना जाता है), तब तक माता-पिता की अपेक्षाएँ और बढ़ जाती हैं विशेषकर जीवन जागृति सहज संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था के अनुरूप देखना चाहते हैं। यह घटित होना सफलता का द्योतक है। इसी के साथ मानवीय शिक्षा-संस्कार जुड़ा ही रहता है। फलस्वरूप हर अभिभावकों से अपेक्षित अपेक्षाएँ सभी संतानों में सफल होने की स्थिति निर्मित हो जाती है। इसका कार्यसूत्र मानवीय शिक्षा-संस्कार सुलभ होना और उसका मूल्यांकन, परामर्श, प्रोत्साहन परिवार में हो पाना, मानवीयतापूर्ण परंपरा में सहज हो जाता है। इसका स्वरूप अर्थात् हर विद्यार्थी का स्वरूप शिक्षा-संस्कार काल में ही स्वायत्त मानव के रूप में परिणित और परिवार में प्रमाणित हो जाता है। इसलिये परिवार में स्वायत्तता का अनुभव सहज हो जाता है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 199-201)**

- **शिक्षा** ही संस्कार रूप में जब प्रतिष्ठित होता है उसी मुहूर्त से जीवन जागृत होना स्वाभाविक होता है। जागृति पूर्ण मानव परिवार का वातावरण पाकर प्रमाणित होने की आवश्यकता-संभावना बलवती होती है। यही समाज गति का मूलसूत्र है।**(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 201)**

- भाई-बहन :- भाई-भाई, भाई-बहन, बहन-बहनों के बीच उनके सम्बन्ध और परस्पर परीक्षण कार्यकलाप जागृतिगामी दिशा, व्यवहार और कार्यप्रणाली के साथ गतिशील होता है। यही परस्पर पूरकता विधि को प्रमाणित करता है। इसका स्रोत **मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार** परंपरा ही है। बाल्यावस्था से ही घर परिवार, शिक्षण संस्थाओं में **मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार** सुलभ होना सहज रहता ही है। इसके फलस्वरूप प्राप्त शिक्षा-संस्कार और कल्पनाशीलता-कर्म स्वतंत्रता के योगफल में मुखरण होना स्वाभाविक क्रिया है। मुखरण होने का तात्पर्य हर विद्यार्थी अपने-अपने ढंग से प्रकाशित-संप्रेषित होना ही है।

प्रत्येक जीवन, मानव पंरपरा में जागृति और जागृतिपूर्ण होने और प्रमाणित होने के उद्देश्य से ही इस शरीर को जीवन्त बनाए रखने, शरीर संवेदना का दृष्टा होने के अर्हता सहित शरीर यात्रा को आरंभ करता है। परंपरा जागृत रहने के आधार पर ही जीवन जागृति पंरपरा बनना सहज संभव है। जागृत परंपरा का स्वरूप पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है। पुनश्च यहाँ स्मरण के लिये **अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन** फलत: अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व में अनुभव सम्पन्नता के प्रामाणिकता सहित जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान में, से, के लिये प्रयोजन और प्रक्रिया विधि से बोधगम्य कराने वाली अध्ययन, अध्यापन, शिक्षण, प्रशिक्षण (पारंगत हुआ को सिखाना, किया हुआ को कराना) विधि से अस्तित्व सहज व्यवस्था रूपी वैभव की अवधारणाओं को स्थापित करना ही **शिक्षा-संस्कार** का प्रधान प्रभाव और परंपरा है। यही सर्वप्रथम मानवकृत वातावरण का महिमा है। यह जागृति का द्योतक है। इस क्रम में हर व्यक्ति सह-अस्तित्व में, से, के लिये आश्वस्त, विश्वस्त होना एक आवश्यकता रहता ही है। इसके आधार पर समग्र अस्तित्व का अवधारणा हर मानव जीवन में स्थापित होता है। प्रत्येक मनुष्य स्वयं को समझने के क्रम में मैं अपने में क्या हूँ ? कैसा हूँ ? क्या चाहता हूँ ? इस प्रकार के प्रश्न चिन्ह विद्यार्थियों में लुप्त-सुप्त-प्रकट कार्य होना पाया जाता है। इसका उत्तर स्वयं में सह-अस्तित्व सहज अवधारणा के रूप में स्थापित होना पाया जाता है जैसा-

1. मैं मनुष्य हूँ - मैं मनाकार को साकार करने वाला व मन: स्वस्थता का आशावादी व प्रमाणित करने वाला हूँ।
2. मैं ज्ञानावस्था की इकाई हूँ।
3. मैं शरीर व जीवन का संयुक्त साकार रूप हूँ। मानव परंपरा प्रदत्त मेरा शरीर तथा सह- अस्तित्व में परमाणु में विकास फलत: जीवन सहज स्वरूप हूँ।
4. मैं जीवन सहज रूप में जानने-मानने-पहचानने-निर्वाह करने का क्रिया कलाप हूँ। शरीर रूप में पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों व उसके क्रियाकलाप का दृष्टा हूँ।
5. मैं मानवत्व सहित व्यवस्था हूँ।
6. मैं बौद्धिक समाधान व भौतिक समृद्धि सम्पन्न हूँ अथवा सम्पन्न होना चाहता हूँ।
7. मैं जीवन जागृतिपूर्णता और उसकी निरंतरता चाहता हूँ, साथ ही भ्रम, भय व समस्याओं से मुक्त होना चाहता हूँ।
8. मैं सार्वभौम व्यवस्था व अखण्ड समाज में भागीदार होने का अधिकारी होना चाहता हूँ, स्वानुशासित होना चाहता हूँ एवं प्रत्येक मानव को ऐसा होता हुआ देखना चाहता हूँ।.... **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 204-207)**

- **गुरू-शिष्य सम्बन्ध -** इस सम्बन्ध में सम्बोधन का आशय सुस्पष्ट है। एक समझा हुआ, सीखा हुआ, जीया हुआ का पद है दूसरा समझने, सीखने, करके जीने का इच्छा, प्रवृत्ति जिज्ञासा का प्रस्तुति, ऐसे जिज्ञासु को शिष्य अथवा विद्यार्थी कहा जाता है, नाम रखा जाता है, सम्बोधन भी किया जाता है। दूसरे को गुरू आचार्य नाम से सम्बोधित

किया जाता है। इस प्रकार गुरू का तात्पर्य प्रामाणिकता पूर्ण व्यक्ति का सम्बोधन। प्रामाणिकता का स्वरूप, समझदारी को समझाने व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी के रूप में जीते हुए रहते हैं, दिखते हैं। फलस्वरूप मानवीयतापूर्ण आचरण, मानव का परिभाषा हर करनी में, कथनी में व्याख्यायित रहता है। यही गुरू के स्वरूप को पहचानने की विधि है। समझदारी का तात्पर्य सुस्पष्ट हो चुका है जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान में पारंगत रहना। उसका प्रमाण अध्ययन प्रणाली से बोधगम्य करा देना ही समझाने का तात्पर्य है। मानव सहज जागृति परंपरा में स्वाभाविक ही हर अभिभावक जागृत रहना पाया जाता है। घर, परिवार, बंधु-बान्धवों से भी सम्बोधन पहचान सहित कितने भी भाषा बोलने के लिए सीखाए रहते हैं उन सबमें मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार सूत्रों से अनुप्राणित सार्थक विधि रहेगा ही। जब विद्यार्थी विद्यालय में पहुँचने के पहले से ही मानवीयतापूर्ण संस्कारों का बीजारोपण होना स्वाभाविक है। यही जागृत परंपरा का मूल प्रमाण है।

शिक्षा-संस्कार में अथ से इति तक मानव का अध्ययन प्रधान विधि से अध्यापन कार्य सम्पन्न होना सहज है। अध्ययन मनुष्य का, मानव में, से, के लिये ही होना दृढ़ता से स्वीकार रहेगा। प्रत्येक मनुष्य के अध्ययन में शरीर और जीवन का सुस्पष्ट बोध सुलभ होना पाया गया है। जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन निबद्ध विधि से अध्ययन सुलभ होने के कारण अस्तित्व मूलक मानव का पहचान, मानवीयतापूर्ण पद्धति, प्रणाली, नीति समेत पारंगत होने की विधि रहेगी। इसी विधि से हर आचार्य विद्यार्थियों को शिक्षण-**शिक्षा** पूर्वक अध्ययन कार्य को सम्पन्न करने में समर्थ रहते हैं। जिसमें उनका कर्तव्य और दायित्व प्रभावशील रहना स्वाभाविक है। क्योंकि हर आचार्य शिक्षा, शिक्षण, अध्ययन का प्रमाण स्वरूप में स्वयं प्रस्तुत रहते हैं इसलिये यह सार्थक होने की संभावना अथवा निश्चित संभावना समीचीन रहता है।

हर आचार्य स्वायत्तता विधि से परिवार में प्रमाणित रहते ही हैं। यही सर्वमानव का वांछित, आवश्यक और नित्य गति रूप जो अपने-आप में सुख-सुन्दर-समाधान है जिसका फलन समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व है। जिन प्रमाणों के आधार पर जीवन तृप्ति ही सुख, शांति, संतोष, आनन्द के नाम से ख्यात है। यही भ्रम-मुक्ति गतिविधि प्रमाण के रूप में हर विद्यार्थी के रूप में समीचीन रहता है। इस प्रकार भ्रम-मुक्त परंपरा का स्वरूप, कार्य, महिमा, प्रयोजन प्रमाण के रूप में रहना ही शिक्षा-संस्कार परंपरा का वैभव अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के रूप में गतिशील रहता है।

प्रत्येक स्वायत्त आचार्य व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलंबी और व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण होना देखा जाता है। फलस्वरूप हर विद्यार्थी ऐसे सुखद स्वरूप में जीने के लिये प्रवृत्त होना स्वाभाविक है। आदर्श मानव सार्वभौमिकता के अर्थ में स्वायत्त मानव के रूप में ही होना देखा गया। स्वायत्त मानव का शिक्षा-संस्कार विधि से प्रमाणित होना और स्वायत्त मानव का प्रमाण परिवार में होना, परिवार मानव का प्रमाण व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी के रूप में स्पष्ट किया जा चुका है। इसी के साथ यह भी स्पष्ट हो चुका है कि सार्वभौम व्यवस्था का संतुलन अखण्ड समाज रचना से और अखण्ड समाज का संतुलन सार्वभौम व्यवस्था से है। इस विधि से शिक्षण संस्था (अध्ययन केन्द्रों) का स्वरूप अभिभावकों से नियंत्रित रहना और अध्ययन केन्द्र (शिक्षण संस्थाओं) का प्रयोजन कार्यकलाप जागृतिपूर्ण आचार्यों से नियंत्रित रहना देखा गया है। इसका तात्पर्य यही है हर अध्ययन केन्द्र में आचार्यों को व्यवसाय में स्वावलंबी रहने के लिये मानवीय आवश्यकता संबंधी वस्तुओं का उत्पादन करने के लिये योग्य व्यवस्था बनी रहेगी। उसे सदा-सदा बनाये रखना ही अभिभावकों से नियंत्रित अध्ययन केन्द्रों का स्वरूप है। अध्ययन केन्द्र में स्वाभाविक ही आवश्यकतानुसार भवन, अध्ययन और अध्यापन के लिये आवश्यकीय साधन और आचार्यों को व्यवसाय में स्वालंबन को प्रमाणित करने योग्य कृषि संबंधी, अलंकार संबंधी, गृह निर्माण संबंधी, पशुपालन संबंधी, ईंधन नियंत्रण संबंधी, ईंधन सम्पादन संबंधी, ईंधन नियोजन संबंधी, दूरश्रवण संबंधी, दूरगमन संबंधी और दूरदर्शन संबंधी यंत्र-उपकरणों को निर्मित करने योग्य साधनों को बनाये रखना ही व्यवसाय में स्वालंबन का प्रमाणस्थली के रूप में उपयोगी रहेगा।

अध्यापन कार्य के लिये धन-वस्तु को विद्यार्थियों को शिक्षित, प्रशिक्षित, अध्ययनपूर्ण कराने के लिए एकत्रित की जाएगी। इसे अभिभावक समुदाय तय करेंगे, एकत्रित करेंगे। भवन, प्रयोग सामग्री, साधनों को संजोए

रखेंगे। इसका नियंत्रण, परिवर्धन, परिवर्तन, नवीनीकरण आदि कार्यों में स्वतंत्र रहेंगे। आचार्य कुल विद्यार्थियों को परिवार-मानव और व्यवस्था-मानव में प्रमाणित होने योग्य स्वायत्त मानव का स्वरूप प्रदान करेंगे जो स्वयं अपने मौलिक अधिकारों का प्रयोग करने में समर्थ हो जायेगा एवं दूसरों को कराएगा, करने के लिये सम्मति देगा।

अध्ययन संस्थाओं की अभीप्सा, स्वरूप, लक्ष्य, सामान्य क्रिया प्रणाली स्पष्ट हो चुकी है। मानव कुल में समर्पित संतानों को शिक्षा-संस्कार की अनिवार्यता होना पहले से स्पष्ट है। इसे सार्थक और सुलभ बनाने के क्रम में परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था को दस सोपानों में स्पष्ट किया जा चुका है। व्यवस्था की निरंतरता में प्रधान आयाम मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार, पद्धति, प्रणाली, नीति ही है। शिक्षित हर व्यक्ति स्वायत्त होना सहज है। स्वायत्तता ही शिक्षित और संस्कारित व्यक्ति का प्रमाण है। ऐसी स्वायत्तता सर्वमानव स्वीकृत तथ्य है। इसलिये सार्वभौम नाम प्रदान किये हैं। सार्वभौम का तात्पर्य सर्वमानव स्वीकृत है, स्वीकृति योग्य है। मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार पूर्वक स्वायत्त मानव का स्वीकृति परिवार और व्यवस्था में भागीदारी करने के लक्ष्य से स्वीकृत होता ही है। ऐसे सार्वभौम रूप में स्वीकृत मनुष्य ही मौलिक अधिकारों का प्रयोग करते हुए अपने को समाधानित और वातावरण को समाधानित करने में निष्ठान्वित रहना स्वाभाविक है। उसके लिये दायित्व और कर्तव्यशील रहना स्वाभाविक है। इन्हीं तथ्यों के आधार पर हर परिवार में समाधान, समृद्धि, अभय और सह-अस्तित्व वर्तमान में प्रमाणित होता है। व्यवस्था, परिवार और समाज सदा ही वर्तमान में, से, के लिये अपने त्व सहित वैभवित होना है।

मानवत्व सहित, मानवत्व के लक्ष्य में, स्वायत्त मानव शिक्षापूर्वक स्वरूपित होता है। जिसका प्रमाण परिवार, ग्राम परिवार, विश्व परिवार में भागीदारी के रूप में और परिवार सभा, ग्राम परिवार सभा और विश्व परिवार सभा में भागीदारी को निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित होता है। यही परिवार मूलक स्वराज्य गति का स्वरूप है।

जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान सहज अध्ययन, न्याय, धर्म, सत्य प्रमाणित करने योग्य क्षमता, पात्रता को स्थापित करता है। अस्तित्व दर्शन स्वयं विज्ञान का सम्पूर्ण आधार है। अस्तित्व में ही समग्र व्यवस्था सूत्र और कार्य देखने को मिलता है। यही अस्तित्व दर्शन का जीवन जागृति क्रम में होने वाला उपकार है। विज्ञान का काल, क्रिया, निर्णयों की अविभाज्यता और सार्थकता की दिशावाही होना पाया जाता है। घटनाओं के अवधि के साथ काल को एक इकाई के रूप में स्वीकारने की बात मानव की एक आवश्यकता है। जैसे सूर्योदय से पुर्नसूर्योदय तक एक घटना है। यह घटना निरंतर है। निरंतर घटित होने वाला घटना नाम देने के फलस्वरूप उस घटना से घटना तक निश्चित दूरी धरती तय किया रहता है। इसे हम मानव ने एक दिन नाम दिया। अब इस एक दिन को भाग-विभाग विधि से 60 घड़ी, 24 घंटा आदि नाम से विखंडन किया। मूलत: एक दिन को धरती की गति से पहचानी गई थी, खंड-विखंडन विधि से छोटे-से-छोटे खंड में हम पहुँच जाते हैं और पहुँच गये हैं। फलस्वरूप वर्तमान की अवधि शून्य सी होती गई। धरती की क्रिया यथावत् अनुस्यूत विधि से आवर्तित हो ही रही है। इससे पता लगता है मनुष्य के कल्पनाशीलता क्रम से किया गया विखंडन यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता से भिन्न स्थिति में अथवा भिन्न स्थिति को स्वीकारने के लिये बाध्य करता गया। यह भ्रम, भ्रमित आदमी को और भ्रमित होने के लिये सहायक हो गया। इसका सार तथ्य विखण्डन विधि से किसी तथ्य को पहचानना संभव नहीं है। अथक कल्पनाशीलता मनुष्य के पास, दूसरे नाम से विज्ञानियों के पास हैं ही और कल्पनाशीलता वश ही विखण्डन प्रवृत्ति के रूप में सत्य का खोज के लिए, जो कुछ भी यांत्रिक, सांकरिक विधि (संकर विधि) प्रयोग किया गया। उन प्रयोगों को काल्पनिक मंजिल मान लिया गया। उस मंजिल को अंतिम सत्य न मानने का प्रतिज्ञा भी करते आया। इन दोनों उपलब्धियों को विखण्डन विधि से पा गये ऐसा विज्ञान का सोचना है। गणित का मूल गति तत्व मनुष्य का कल्पना है। प्रयोजन यंत्र प्रमाण है और उसके लिये विघटन आवश्यक है। यही मान्यताएँ है। जबकि देखने को यह मिलता है कि किसी यंत्र का संरचना अथवा संकरित पौधा, संकरित जीव-जानवर का शरीर संकरित बीज इन क्रियाकलापों को करते हुए विधिवत् संयोजन होना पाया जाता है अथवा किया जाना पाया जाता है।

अध्ययन क्रम में विश्लेषण एक आवश्यकीय भाग है। हर विश्लेषण प्रयोजनों का मंजिल बन जाना ही विश्लेषण का सार्थकता है। सार्थकताओं का प्रमाण स्वयं मनुष्य होने की आवश्यकता सदा-सदा ही बना रहता है। इसका

स्रोत अस्तित्व में ही है। मानव का प्रयोजन स्रोत भी सह-अस्तित्व ही है। अस्तित्व में प्रयोजन का स्वरूप व्यवस्था के रूप में वर्तमान है। और विश्लेषण का स्वरूप सह-अस्तित्व के रूप में वर्तमान है। सह-अस्तित्व व्यवस्था के लिये सूत्र है व्यवस्था वर्तमान सहज सूत्र है। वर्तमान में ही मानव समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व को व्यवस्था के फलस्वरूप पाता है। मानव इस शुभ प्रयोजन के लिये अपेक्षित, प्रतीक्षित सा रहता ही है। मानव कुल में सर्वमानव का दृष्ट प्रयोजन यही है। यह सह-अस्तित्व विधि से सार्थक होता है। अस्तु विश्लेषण का आधार और सूत्र सह-अस्तित्व विधि ही है। जैसे सह-अस्तित्व विधि से एक परमाणु एक से अधिक परमाणु अंशों से गति और निश्चित चरित्र सहित व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी को प्रमाणित करता है। यह सह-अस्तित्व प्रवृत्ति परमाणु अंशों में ही होना प्रमाणित होता है। क्योंकि परमाणु अंशों की प्रवृत्ति परमाणु गठन का एकमात्र सूत्र होना पाया जाता है। इस प्रकार हर परमाणु अंश व्यवस्था में वर्तमानित रहना उसमें व्यवस्था स्वीकृत होने का द्योतक है। मूलत: सूक्ष्मतम इकाई का स्वरूप परमाणु अंशों के रूप में होना पाया गया। परमाणु अंश स्वयं स्फूर्त विधि से ही परमाणु के रूप में गठित रहना होना अस्तित्व में स्पष्ट है। अतएव व्यवस्था का मूल सूत्र मनुष्य के कल्पना प्रयास के पहले से ही विद्यमान है क्योंकि ऐसी अनंतानंत परमाणुओं के गठन में मनुष्य का कोई योगदान नहीं है। यहाँ इसे उल्लेख करने का तात्पर्य इतना ही है कि जागृत मानव पंरपरा में मानव सही करने, कराने एवं करने के लिये सम्मति देने योग्य होता है। जागृति का प्रमाण गुरू होना पाया जाता है। जागृत होने की जिज्ञासा शिष्य में होना पाया जाता है।

इसके लिये सार्थक विधि, विज्ञान एवं विवेक सम्मत प्रणाली होना है। भाषा के रूप में विज्ञान और विवेक का प्रचलन है ही। किन्तु प्रचलित विज्ञान विधि से चिन्हित सोपान प्रयोजन के लिये स्पष्ट नहीं हुआ। और विवेक विधि से चिन्हित, रहस्य मुक्त प्रयोजन पूर्वावर्ती दोनों विचारधारा से स्पष्ट नहीं हुई। सर्वसंकटकारी घटना का निराकरण हेतु सह-अस्तित्व रूपी अस्तित्व, व्यवस्था रूपी प्रयोजन चिन्हित रूप में सुलभ होता है। यही शिक्षा-संस्कार का सारभूत अवधारणा और बोध है।

हर अध्यापन कार्य सम्पन्न करने वाला गुरू अपने में पूर्णतया जागृत रहना, जागृत रहने के प्रमाणों को निरंतर व्यक्त करने योग्य रहना आवश्यक है। यही अध्यापन कार्य सम्पन्न करने योग्य व्यक्ति को पहचानने-मूल्यांकन करने का आधार है। अस्तित्व अपने में चारों अवस्थाओं में वैभवित रहना इसी पृथ्वी पर दृष्टव्य है। यह चारों अवस्था परस्परता में सह-अस्तित्व सूत्र में, से, के लिये सूत्रित है। इसी सूत्र सहज महिमा को परमाणु गठन से रासायनिक-भौतिक रचना और विरचनाओं को विश्लेषण करना ही काल-क्रिया-निर्णय और उसके प्रयोजनों का स्रोत है। यह काल-क्रिया-निर्णय सहित प्रयोजन संबद्ध होने की आवश्यकता ज्ञानावस्था कि इकाई रूपी मानव का ही प्यास है। यही जिज्ञासा का स्वरूप है। इसी विश्लेषण अवधि में या क्रम में परमाणु में विकास, जीवन, जीवनी क्रम जीवावस्था में, मानव परंपरा में जीवन जागृति क्रम, जागृति, जागृति पूर्णता उसकी निरंतरता की भी पूरकता एवं संक्रमण विधियों का विश्लेषण स्पष्ट हो जाता है। ऐसा जागृत जीवन ही दृष्टा पद प्रतिष्ठा में कर्ता-भोक्ता होना प्रमाणित हो जाता है। फलस्वरूप मानव में व्यवस्था सहज रूप में जीने, समग्र व्यवस्था में भागीदारी की आवश्यकता-अर्हता का संयोगपूर्वक उत्साहित होने का, प्रवृत्त होने का, प्रमाणित होने का कार्य सम्पादित होता है। यही जागृति घटना और उसकी निरंतरता ही विवेक और विज्ञान सम्मत प्रणाली, पद्धति, नीति का वैभव है। इसकी आवश्यकता सर्वमानव में है। इसकी आपूर्ति मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार विधि से ही सम्पन्न होता है।

जागृति पूर्णता एवं उसकी निरंतरता ही गुरूता का तात्पर्य है। यह जागृतिपूर्णता का धारक वाहकता और उसकी महिमा है। इसी के साथ हर मानव में जीवन सहज रूप में जागृति स्वीकृत रहता ही है। जागृति सहज ही अभिव्यक्ति क्रम में आरूढ़ रहता है। आरूढ़ता का तात्पर्य स्वजागृति के प्रति निष्ठान्वित रहने से है। और स्व-जागृति के प्रति निष्ठा स्वयं के प्रति विश्वास का द्योतक है। स्वयं के प्रति विश्वास मूलत: स्वायत्त मानव में प्रमाणित रहता ही है। स्वायत्त मानव का स्वरूप और मूल्यांकन मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार का द्योतक होना पाया जाता है। दूसरे भाषा में प्रमाण होना पाया जाता है। यही सफल, सार्थक, वांछित और अभ्युदयशील **शिक्षा** है। **शिक्षा** का परिभाषा भी इसी के समर्थन में ध्वनित होता है। **शिक्षा** का परिभाषा अपने में शिष्टतापूर्ण दृष्टि का संकेत करता है।

शिष्टता और सुशीलता ये अपेक्षाएँ सर्वमानव में विद्यमान है। शिष्टता का परिभाषा मानव अपने मानवत्व सहित व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करने में विश्वास और उसकी अभिव्यक्ति है। सुशीलता का

तात्पर्य मूल्य, चरित्र, नैतिकता का अविभाज्य रूप में सभी स्थिति - गतियों में व्यक्त होना ही है। ऐसी शिष्टता हर मानव में, हर मनुष्य से, हर मनुष्य के लिये अपेक्षित रहना पाया जाता है। ऐसी शिष्टता ही सभ्यता का सूत्र है और संस्कृति सहज गति है। इस प्रकार सभ्यता हर स्थिति में मूल्यांकित होता है और संस्कृति हर गति में चिन्हित और मूल्यांकित होता है। इसी महिमावश अथवा फलवश हर मानव, मानव का परिभाषा सहज विधि से सोचने, सोचवाने, बोलने, बोलवाने और करने-कराने योग्य स्वरूप में प्रमाणित हो जाता है। यह शिष्टता, सुशीलता और परिभाषा एक दूसरे के पूरक होना पाया जाता है। यही समाज गति है। समाज गति का ही दूसरा नाम सार्वभौम व्यवस्था है। इस प्रकार परिवार क्रम में शिष्टता, सुशीलता और परिवार व्यवस्था क्रम में मानव का परिभाषा प्रमाणित होता ही रहता है। इससे पूर्णतया स्पष्ट होता है कि व्यवस्था क्रम और परिवार क्रम अविभाज्य वर्तमान है।

शिक्षा-संस्कार का परस्पर पूरकता प्रबोधन पूर्वक शिष्टता, सुशीलता और मानवीय परिभाषा सहज मुखरण विधि को बोधगम्य करा देना **शिक्षा** और उसकी विधि की प्रामाणिकता है। जिसका फलन अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था और उसकी निरंतर गति है। यही सर्वमानव सर्वशुभ सहज विधि से जीने देने का और जीने का सहज गति है। समाधान और सुख के रूप में पहचानना बनता है।

सुख ही मानव धर्म होना पाया जाता है और ख्यात भी है। ख्यात का तात्पर्य सर्वस्वीकृत है। यह समाधानपूर्वक ही सर्वसुलभ होना होता है। समाधान सहज नित्य गति सर्वदेशकाल में सम्पूर्ण दिशा, कोण, परिप्रेक्ष्यों में और आयामों में जागृति सहज मानव में, मानव से, मानव के लिये दृष्टव्य है। अर्थात् हर जागृत मनुष्य समाधान को देखने योग्य होता ही है। देखने का तात्पर्य समझने से ही है। समाधान का गति रूप सदा-सदा मानव परंपरा में ही नियम और न्याय सहज तृप्ति बिन्दु के रूप में पहचाना जाता है। नियम अथवा सम्पूर्ण नियम नैसर्गिकता और वातावरण के साथ प्रभावशील रहना पाया जाता है। न्याय मानव सहज संबंध/मूल्यों के रूप में वर्तमान होना पाया जाता है। सम्पूर्ण मूल्यों का अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन जीवन जागृति का ही महिमा है। दूसरे भाषा से जीवन तृप्ति का ही महिमा है। जीवन तृप्ति; जागृति पूर्णता और उसकी निरंतरता में ही देखने को मिलता है। यह सर्वमानव का अपेक्षा है। हर परिवार में जागृत अभिभावक जागृति पूर्ण **शिक्षा** संपन्न युवा पीढ़ी में सामरस्यता अपने-आप परिवार मानव सहज विधि से प्रमाणित होता है। ऐसे सफल परिवार का पहचान, मूल्यांकन सहित गतित रहना ही मानव परंपरा की आवश्यकता, गरिमा, महिमा सहित प्रतिष्ठा है। जागृति पूर्ण मानव ही गुरू पद में वैभवित होना स्वाभाविक है। जागृति पूर्ण परंपरा में ही हर मनुष्य संतान में जागृत पद प्रतिष्ठा को स्थापित करना सहज है। इस विधि से जागृति परंपरा के अर्थ में शिक्षा-संस्कार सार्थक होना पाया जाता है जिसकी अपेक्षा भी सर्वमानव में होना भी सहज है। शिक्षा-संस्कार, उसकी सफलता का मूल्यांकन स्वायत्त मानव, परिवार मानव के रूप में **शिक्षा** अवधि में ही मूल्यांकित हो जाता है। मूल्यांकन का आधार भी यही दो मापदण्ड है। **(अध्याय : 6, पृष्ठ नंबर : 212-224)**

- **शिक्षा-संस्कार** सम्पन्न होने के उपरान्त हर व्यक्ति को स्वायत्त और परिवार मानव के रूप में पहचानना स्वाभाविक होता है। परिवार मानव के रूप में ही हर सम्बन्धों का निर्वाह होना, प्रमाणित होना और प्रयोजित होना मूल्यांकित होता है। इसी आधार पर मौलिक अधिकारों को कार्य, व्यवहार, आचरण रूप में प्रमाणित करना ही परिवार मानव सहज सार्थकता है। परिवार मानव संबंधों में, से एक विवाह सम्बन्ध एक पत्नी, एक पति संबंध है। परिवार मानव का कार्य रूप अपने आप में व्यवस्था में जीना ही है। दूसरी भाषा में मानवीयतापूर्ण परिवार में ही व्यवस्था का प्रमाण सदा-सदा के लिये वर्तमानित रहता है। यही जागृत मानव परंपरा का भी साक्ष्य है। परम्परा में प्रधान आयाम परिवार और व्यवस्था का नित्य प्रेरणा स्रोत **शिक्षा-संस्कार** ही होना पाया जाता है। अतएव स्रोत और प्रमाण के संयुक्त रूप में ही अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था का सूत्र प्रतिपादित होता है। निष्कर्ष यही है परिवार में ही समाज सूत्र और व्यवस्था सूत्र कार्य, व्यवहार, आचरण रूप में प्रमाणित होना ही मानव परंपरा का वैभव है। यही मानवीयता पूर्ण परिवार का तात्पर्य है। इसी में समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व का प्रमाण प्रसवित होता है। इस क्रम में हर परिवार में समाधान और समृद्धि का दायित्व, कर्तव्य, आवश्यकता और प्रयोजन

परिवार के सभी सदस्यों में स्वीकृत होना और प्रभावशील रहना ही अथवा प्रमाणित रहना ही परिवार की महिमा और गरिमा है। मानवीयता पूर्ण परिवार का अपने परिभाषा में भी यही तथ्य इंगित होता है जैसा परिवार में भागीदारी निर्वाह करता हुआ हर सदस्य एक दूसरे के संबंधों को पहचानते हैं; मूल्यों का निर्वाह करते हैं और मूल्यांकन करते हैं। फलस्वरूप उभयतृप्ति एक दूसरे के साथ विश्वास के रूप में जानने, मानने, पहचानने और निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित होता है। यही परिवार सहज गतिविधि का प्रधान आयाम है। इसी के साथ दूसरा आयाम परिवार में भागीदारी निर्वाह करता हुआ हर सदस्य परिवार गत उत्पादन-कार्य में भागीदारी का निर्वाह करते हैं। फलस्वरूप परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन होना पाया जाता है। जिससे समृद्धि का स्वरूप सदा-सदा परिवार में बना ही रहता है। इसीलिये परिवार और ग्राम परिवार, परिवार समूह और परिवार के रूप में जीने की कला अपने आप में प्रसवित होती है। समृद्धि के साथ समाधान, सम्बन्धों, मूल्य, मूल्यांकन के आधार पर बनी ही रहती है। समाधान और समृद्धि सूत्र परिवार में विश्वास के रूप में प्रमाणित होता ही है। इसी आधार पर विशालता की ओर विश्वास के फैलाव की आवश्यकता निर्मित होता है। यही सह-अस्तित्व के लिये सूत्र है। इस प्रकार से परिवार और व्यवस्था का दूसरे भाषा में परिवार मूलक विधि से व्यवस्था का संप्रेषणा, प्रकाशन सर्वसुलभ हो जाता है। ऐसी सर्वसुलभता **मानवीय शिक्षा-संस्कार** स्वरूप से ही हो पाता है। यही शुभ, सुंदर, समाधानपूर्ण परिवार विधि है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 226-228)**

- मानव सहज जागृति प्रभाव विशालता की ओर गतिशील होना स्वाभाविक है। जैसा **मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार** एक परिवार में परिवार का विरासत न होकर सम्पूर्ण विश्व मानव का स्वत्व होना पाया जाता है। इसीलिये **मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार** सार्वभौम होना सहज है। इसी प्रकार न्याय-सुरक्षा, उत्पादन-कार्य, विनिमय-कोष, स्वास्थ्य-संयम क्रियाकलाप भी सार्वभौम होता ही है। इन पाँचों आयाम का सार्वभौम रूप में वर्तमान होना ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का द्योतक है। दाम्पत्य संबंध ऐसी व्यवस्था में भागीदारी का संकल्पोत्सव होना पाया जाता है, ऐसे संकल्प का प्रमाण समाधान और समृद्धि का स्वरूप ही है। यही परिवार मानव का लक्ष्य और आवश्यकता है।**(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 229-230)**

- .....व्यवस्था के आयामों में विनिमय एक आयाम है। व्यवस्था रूप में ही संपूर्ण आयाम सहित परंपरा स्पष्ट होती है यथा **मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार** परंपरा अन्य सभी चार आयामों के लिये स्त्रोत और संतुलन सूत्र होना पाया जाता है। प्रत्येक आयाम में मानव अपने संतुलन पूर्वक कार्य-व्यवहार करने के क्रम में हर सूत्र व्याख्यायित हो जाता है। यथा **मानवीय शिक्षा-संस्कार** में ये देखने को मिलता है कि यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता रूप में समझा हुआ को संस्कारों के रूप में; किया हुआ को प्रमाणों के रूप में दूसरी भाषा में जिया हुआ को अथवा जीने की विधि को प्रमाण के रूप में देखा जाता है। समझने का जो कार्यक्रम है जिसमें समझाने वाली क्रिया समाहित रहती हैं यही संस्कार का कारण है यह अध्ययन पूर्वक सम्पन्न होना पाया जाता है।

शिक्षा-संस्कार ही परस्परता में संतुलन विधि से प्रमाणों का सूत्र और जीने की विधि में उसका व्याख्या स्वाभाविक रूप में संपन्न होता है। यही **शिक्षा-शिक्षण** और संस्कार में संतुलन का तात्पर्य है अर्थात् हर व्यक्ति में समझा हुआ सभी समझदारी जीने की कला में प्रमाणित होता है। समझदारी का संपूर्ण स्वरूप जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान, व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी का होना पाया जाता है।....**(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 234-235)**

- तन, मन, धन हर मानव में प्रमाणित वैभव सहज तथ्य है। हर जागृत मानव, जागृत परिवार मानव सहज रूप में अर्थ का सदुपयोग और सुरक्षा करने में समर्थ रहता ही है यह समर्थता ही मौलिक अधिकार के रूप में ज्ञात होता है। संपूर्ण मौलिक अधिकार जागृति के सहित प्रमाण के रूप में देखने को मिलता है। ऐसी जागृति **शिक्षा-संस्कार** विधि से ही सम्पन्न होना स्पष्ट है।... **(अध्याय : 6, पृष्ठ नंबर : 236)**

- दृष्टा पद का प्रमाण ही है जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना; यह हर मानव में स्वीकृत है, अपेक्षित है। यह जागृति पूर्वक सफल होता है। अतएव मनुष्य दृष्टा पद जागृति प्रतिष्ठावश ही निरीक्षण, परीक्षण, सर्वेक्षण कार्य संपन्न करता है। फलस्वरूप मानवत्व सहित जीने का प्रमाण वर्तमानित होता है। इसी क्रम में तन, मन, धन का सदुपयोग-सुरक्षा स्वाभाविक कार्य होने के कारण सदुपयोग विधि से सुरक्षा प्रमाणित होता है; और सुरक्षा-विधि से सदुपयोग प्रमाणित होता है। यही न्याय-सुरक्षा का, संतुलन का तात्पर्य है। सदुपयोग और सुरक्षा करने की संपूर्ण संभावना, मानव परंपरा में प्राकृतिक ऐश्वर्य के रूप में देखने को मिलता है। प्राकृतिक ऐश्वर्य नैसर्गिकता के रूप में समीचीन है। मानव परंपरा संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था के रूप में समीचीन है। संस्कृति क्रम में **शिक्षा-संस्कार** ही प्रधान मुद्दा है और सभ्यता में इसी **शिक्षा-संस्कार** का प्रमाणपूर्वक पोषण विधि प्रमाणित होता है; यह एक आचरण का ही स्वरूप है। इसी के साथ नैसर्गिकता समीचीनता अपने-आप में ऋतु-संतुलन के रूप में वर्तमानित रहना ही उसकी सार्थकता है और मानव के लिये अपरिहार्यता है। इसे सुरक्षित रखना मानव का मौलिक अधिकार है। इस प्रकार मानवीयतापूर्ण पद्धति, सभ्यता रूपी मानवीय आचरण ही मौलिक अधिकारों के रूप में विभिन्न आयामों में विभिन्न सार्थक अर्थों में प्रायोजित होना पाया जाता है। इस प्रकार अर्थ का सदुपयोग ही सुरक्षा को प्रमाणित करता है। यही संतुलन का तात्पर्य है। ऐसी न्याय-सुरक्षा क्रम में उत्पादन-कार्य एक आयाम है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:237-238)**

- परिवार में स्वायत्त मानव का ही भागीदारी होना जागृत परम्परा सहज गतिविधि है। इसका संपूर्ण गति व्यवस्था सहज पाँचों आयामों में होना पाया जाता है। परिवार मानव ही व्यवस्था और समाज का बीज रूप होना देखा गया। स्वायत्त मानव जागृति पूर्ण परंपरा सहज **शिक्षा-संस्कार** का फलन के रूप में होना देखा गया। स्वायत्त मानव परिवार मानव के रूप में प्रमाण है। परिवार मानव ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का बीजरूप है यही मुख्य बिन्दु है।... **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 241)**

- "मानव बहुआयामी अभिव्यक्ति है।" मानव सहज परंपरा में अनुसंधान, अस्तित्व मूलक मानवीयतापूर्ण अध्ययन, **शिक्षा** व संस्कार, आचरण व व्यवहार, व्यवस्था, संस्कृति-सभ्यता और संविधान ही सहज प्रमाण है। यही मौलिक विधान है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:250)**

- .....समाधान व्यवस्था का सूत्र है। इसका व्याख्या उक्त सभी मौलिक अधिकारों में व्याख्यायित हुई है। समस्या पूर्वक कोई मौलिक अधिकार वर्तमान होता ही नहीं है। इसी कारणवश हर व्यक्ति को जागृत होने की आवश्यकता बनी है। सभी विधाओं में मानव अपने को संतुलन बनाये रखने का न्याय और नियम में सामरस्यता ही है। फलस्वरूप समाधान, व्यवस्था उसकी अक्षुण्णता स्वाभाविक रूप में प्रमाणित होना सहज है। इसमें हर व्यक्ति अपना भागीदारी करना स्वाभाविक है; चाहत हर व्यक्ति में है ही। इसे सर्व-सुलभ बनाने के लिये **मानवीयकृत शिक्षा योजना, जीवन विद्या योजना**, परिवार मूलक स्वराज्य योजना सहज विधियों से सर्वमानव जागृत होना सदा-सदा बना रहेगा। इस प्रकार जागृति और जागृति पूर्णता को कार्य-व्यवहार, व्यवस्था के रूप में सतत् बनाये रखना ही अक्षुण्णता का तात्पर्य है। संपूर्ण मानव को मानवत्व के आधार पर समानता का अनुभव करना अखण्डता का तात्पर्य है। हर जागृत मानव हर जागृत मानव के साथ जो कुछ भी मैं समझता हूँ उसे सभी मानव समझा है या समझ सकते हैं; मैं जो कुछ सोचता हूँ, जो कुछ भी समाधान के रूप में सोचता हूँ ऐसा सर्वमानव सोच सकते है; समाधान और प्रामाणिकता के पक्ष में मैं जो कुछ भी बोल पाता हूँ और बोलता हूँ इसे सर्वमानव बोल सकता है अथवा बोलता है; जो कुछ भी मैं पाया हूँ उसे सर्वमानव पा सकता है, जो कुछ भी हम करते हैं उसे सर्वमानव कर सकता है। जितना भी हम जीने देकर

जिया हूँ हर व्यक्ति जीने देकर जी सकता है; मैं व्यवस्था में जीता हूँ सर्वमानव व्यवस्था में जी सकता है या जियेगा। मैं समाधान सहज निरंतरता में सुखी हूँ। हर व्यक्ति समाधान सहज विधि से सुखी है या सुखी हो सकता है। मैं न्याय और नियमपूर्वक हर कार्य-व्यवहार को निश्चय करता हूँ और क्रियान्वयन करता हूँ वैसे ही हर व्यक्ति निश्चयन करता है और निश्चयन कर सकेगा। मैं प्रमाणिक हूँ हर व्यक्ति इस धरती पर प्रमाणिक होगा और प्रमाणिक हो सकता है। इस विधि से मानसिकता, विचार और समझदारी संपन्न होना है। ऐसा जीना ही मानव का परिभाषा मानवीयतापूर्ण आचरण सार्वभौम व्यवस्था व अखण्ड समाज और समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व का नित्य वैभव है। यही जागृत मानव समाज का स्वरूप कार्य-विचार और नजरिया है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 251-253)**

- शारीरिक स्वस्थता और जीवन स्वस्थता का स्वरूप मानव में ही अपेक्षित है। अर्थात् मानव परंपरा में अपेक्षित है। यह पीढ़ी से पीढ़ी में अपेक्षा का आधार है। इसी नियति सहज सह-अस्तित्व सहज आधारवश ही मानव अपने संचेतना को प्रमाणित करने के लिये तत्पर है। इसकी सार्थकता का स्वरूप प्रदान करने का कार्य **मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार परंपरा** ही आहूत करेगा। आहूतता का तात्पर्य मानवीयता सहज अपेक्षा के अनुरूप अवधारणाओं को पीढ़ी से पीढ़ी में स्थापित करने का क्रिया कलाप। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 256-257)**

- जागृति सहज कार्यक्रम दायित्व और कर्तव्य के आधार पर ही सुयोजित हो पाता है। ऐसे सुयोजन परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था के रूप में सर्वसुलभ होता है। जागृति पूर्वक जीने की कला ही सुयोजना का साक्ष्य है। परिवार मूलक स्वराज्य-व्यवस्था में व्यवस्थापूर्वक ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी सम्पन्न होना पाया जाता है। इसी सत्यवश, यही सत्यता मानव परंपरा में सर्वतोमुखी समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व के रूप में प्रमाणित होता है; जिसका अक्षुण्णता सहज होना पाया जाता है। मानव का अभीष्ट सदा-सदा से ही और सदा-सदा के लिये शुभ ही शुभ होना देखा गया है। ऐसा सार्वभौम शुभ अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था रूपी कार्यक्रम ही है। ऐसा कार्यक्रम स्वाभाविक रूप में ही जागृति सहज **शिक्षा-संस्कार** विधि से स्पष्ट हो जाती है। **मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार** अपने-आप में अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन, मध्यस्थ दर्शन (सह-अस्तित्ववाद) के रूप में स्पष्ट हो जाता है। यही सह-अस्तित्व दर्शन ज्ञान, जीवन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान सम्पन्नता सहित होने वाले अध्ययन, अवधारणा, अनुभव है। सह-अस्तित्व में अनुभव के आधार पर ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का प्रमाण मानव परंपरा में ही प्रमाणित होना समीचीन है। यही जागृति का द्योतक है। मानवीयतापूर्ण परंपरा का प्रमाण **मानवीय शिक्षा-संस्कार** सुलभता, न्याय-सुरक्षा सुलभता, विनिमय-कोष सुलभता, उत्पादन-कार्य सुलभता और स्वास्थ्य-संयम सुलभता ही है। इन्हीं पाँच आयामों के योगफल में संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था अपने-आप प्रमाणित होता है और अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का स्वरूप और उसकी निरंतरता बना ही रहता है। ऐसे भागीदारी में दायित्व, कर्तव्य का प्रमाण हर मानव में, से, के लिए सहज सुलभ होता है। **(अध्याय: 8, पृष्ठ नंबर: 263-264)**

- मानव परंपरा अपने में बहुआयामी अभिव्यक्ति होना सुदूर विगत से अभी तक और अभी से सुदूर आगत तक होना दिखाई पड़ता है। मानव परंपरा में **शिक्षा-संस्कारादि** पाँचो आयाम सहित ही स्वस्थ परंपरा होना स्पष्ट हो चुकी है। इन्हीं पाँचों आयामों में हर व्यक्ति कार्यरत होना ही बहुआयामी अभिव्यक्ति का तात्पर्य है। इसी क्रम में विभिन्न दृष्टिकोणों, निश्चित दिशाओं और हर देशकाल में प्रमाणित होने योग्य इकाई मानव है अर्थात् सभी आयामों में प्रमाणित होने योग्य इकाई मानव है। ऐसे प्रमाणित होने के क्रम में मौलिक रूप में अधिकार स्वत्व स्वतंत्रता पूर्वक अर्थात् स्वयं स्फूर्त विधि से प्रयोग करना स्वाभाविक रहता ही है। साथ ही जागृति व जागृतिपूर्ण परंपरा में ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था प्रमाणित होता है।

जागृति ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था सहज परंपरा रूप में मानव संतानों को सुलभ हो जाती है। **शिक्षा-**स्वरूप में सह-अस्तित्व विधि से प्रयोजन कार्य-विश्लेषण विधि को अपनाना सहज है। सह-अस्तित्व विधि से विज्ञान

विधियाँ सकारात्मक होना पाया जाता है। अन्यथा नकारात्मक होती है। सकारात्मक का आधार सह-अस्तित्व और व्यवस्था है। इसी आधार पर होने वाली स्पष्ट अवधारणाएँ निष्ठा का सूत्र होना देखा गया। निष्ठा का तात्पर्य वर्तमान में विश्वासपूर्वक किये जाने वाले क्रियाकलाप हैं। सभी क्रियाकलाप व्यवहार, व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी सहज प्रमाण है। इन्हीं व्यवहार वैभव मानव में स्वत्व स्वतंत्रता अधिकार ही स्वराज्य व्यवस्था कहलाता है। मूलत: स्वराज्य व्यवस्था मानव का समझ प्रक्रिया का संयुक्त वैभव ही है - वह भी जागृति पूर्ण वैभव है। अतएव हम जागृतिपूर्वक मानव लक्ष्य एवं जीवन लक्ष्यों को सफल बनाते हैं। जो दायित्व और कर्तव्य पूर्वक ही सफल होता है। इसलिये न्यायपूर्ण व्यवहार कार्यों में दायित्व और कर्तव्य मूल्यांकित होता है। इसी के साथ जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना सुलभ होता है। इसी विधि से न्याय सुलभता का मार्ग प्रशस्त होता है। न्याय सुलभता सर्व स्वीकृति तथ्य है। न्यायिक विधि से अखण्ड समाज, पाँचों आयामों में स्वराज्य विधि से सार्वभौम व्यवस्था प्रमाणित होना स्वाभाविक है। हर मानव अपने को जागृतिपूर्वक इन दोनों मुद्दे में अपने उपयोगिता, सदुपयोगिता, प्रयोजनीयता को मूल्यांकित करता है। यही स्वस्थ सामाजिक मानव और व्यक्तित्व का तात्पर्य है। यह हर व्यक्ति की आवश्यकता है। इस विधि से सम्पूर्ण दायित्वों, कर्तव्यों को उसके प्रयोजन सहित प्रमाणित करना, मूल्यांकित करना सहज है। **(अध्याय : 8, पृष्ठ नंबर : 265-266)**

- सम्बन्ध का तात्पर्य स्वयं में पूर्णता सहित हर मानव में पूर्णता के अर्थ में अनुबंधित रहना स्वाभाविक है। यह मानव में ही प्रमाणित होने वाला मौलिक अभिव्यक्ति है। यही ज्ञानावस्था का परिचायक है। इसी के साथ मानव को, इसकी अपेक्षा, आवश्यकता नियति सहज विधि से देखने को मिलता है। अर्थात् मनुष्य संबंध के अनुरूप प्रयोजनों को प्रमाणित करने में निष्ठा स्वयं स्फूर्त होता है। अपेक्षाओं के अनुसार सार्थक होना, चरितार्थ होना ही सम्बन्धों का सम्पूर्ण प्रयोजन है। प्रयोजनों का सूत्र अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था, परिवार मानव और स्वायत्त मानव रूप में ही मानव परंपरा में देखने को मिलता है। यही प्रयोजनों का मूल रूप है। इसे ज्ञानावस्था का स्वरूप भी कहा जा सकता है। जागृत मानव परंपरा में यह सार्थकता का स्वरूप **शिक्षा-संस्कारपूर्वक** परंपरा में स्थापित होता ही रहेगा। **जागृत शिक्षा-संस्कार** के सम्बन्ध में स्पष्ट किया जा चुका है। जागृतिपूर्ण परंपरा अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व विधि से अनुप्राणित रहने के आधार पर ही जागृत मानव परंपरा का अक्षुण्णता समीचीन रहना पाया जाता है। अतएव सम्पूर्ण सम्बन्ध और उसका सम्बोधन निश्चित प्रयोजन के अर्थ में अपेक्षित रहना ही सम्बोधन का तात्पर्य है। इसमें हर व्यक्ति जागृत रहना यह प्राथमिक दायित्व है। इन्हीं दायित्वों, मौलिक अधिकारों का प्रयोजन सहज ही सफल हो पाता है। फलस्वरूप मानव परंपरा में जीने की कला विधि के रूप में प्रमाणित होता है। विधि का प्रमाण स्वयं सम्बन्ध-मूल्य-मूल्यांकन-उभयतृप्ति, मानव परिभाषा के अनुरूप हर मनुष्य अपने मौलिक अधिकार रूपी स्वतंत्रता का प्रयोग करना, तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग-सुरक्षा करना और स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष, दयापूर्ण कार्य-व्यवहार में निष्ठान्वित रहना विधि है। यही सम्पूर्ण उत्सवों का आधार होना पाया जाता है। **(अध्याय : 9, पृष्ठ नंबर : 273-274)**

- अखण्ड समाज विधि में होने वाले उत्सवों को संस्कारोत्सवों के रूप में पहचाना जाता है। इन सभी संस्कारों में जीवन जागृति ही परम लक्ष्य होना पाया जाता है। संस्कारों का अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन क्रम में ही उत्सवानुभूति होना, उसकी सार्थकता का होना देखा गया है। इस क्रम में जन्म संस्कारोत्सव, जन्मदिनोत्सव, नामकरणोत्सव, **शिक्षा-संस्कारोत्सव** (धर्म-कर्म, दीक्षा-व्यवहार, उत्पादन संस्कार), विवाहोत्सव मुख्य हैं। नैसर्गिक उत्सव ऋतुकाल के अनुसार मनाने की व्यवस्था है। क्योंकि सम्पूर्ण वनस्पति संसार भी ऋतुकाल के अनुसार उत्सवित होने के स्वरूप में देखा जाता है। यह सर्वविदित तथ्य है। **(अध्याय: 9, पृष्ठ नंबर: 273)**

- जन्म संस्कार उत्सव/जन्मोत्सव - मानव परंपरा में हर माता-पिता संतान प्राप्ति के साथ अपने में गौरव और सम्मान का अनुभव करना और होना पाया जाता है। इसी सम्मान और गौरव के समर्थन में उत्सव का स्वरूप बनता है। उत्सव में उत्साह और प्रसन्नता मूल स्रोत है। किसी उद्देश्य, किसी प्रयोजन, किसी वस्तु प्राप्ति के अर्थ में ही उत्साह-

प्रसन्नता का प्रमाण मानव कुल में सफलता के अर्थ को प्रतिपादित करता है। जैसे-एक पति-पत्नी की कोख से संतान प्राप्ति अपने-आप में शरीर-सम्बन्ध का फलन के रूप में होना देखा गया है। हर मनुष्य शरीर और जीव शरीरों की रचना गर्भाशय में ही होना देखा गया है। अत्याधुनिक संसार में भी इसके लिये कई कृत्रिम उपायों को खोजा गया है। सफलता अभी भी विचाराधीन है। कृत्रिम विधि यदि सफल भी होता है तो इसकी सफलता में भी गर्भाशय सहज सटीक वातावरण को कृत्रिम रूप में निर्मित करने के उपरान्त ही सफल होने की व्यवस्था है।

ऐसे कृत्रिम गर्भाशय संरचना वातावरण संबंधी कृत्यों को समान करने के लिये जितना श्रम, जितना वस्तु, जितना समय लगता है, लग सकता है वह सर्वाधिक निरर्थकता अपव्यय के खाते में जायेगा। अस्तित्व में यही सिद्धान्त है जो जिसको अपव्यय करेगा उससे वह वंचित हो जायेगा। कृत्रिम गर्भाशय निर्माण विधि स्वयं अपव्ययता के आधार पर ही मानव मन में कल्पित हो पाता है। इस अपव्ययता क्रम में स्वाभाविक सार्थक नियति सहज विधि से रचित शरीर रचना के अंगभूत गर्भाशय की आवश्यकता, विशेषकर मानव शरीर में गर्भाशय की आवश्यकता एवं तत्संबंधी उत्सव से मनुष्य वंचित होना भावी हो जाता है। इससे यह पता लगता है कि इस मुद्दे पर कृत्रिम उपायों की निरर्थकता का हर सामान्य मनुष्य स्वीकार कर सकता है। अतएव प्रकृति सहज स्त्री-पुरूष शरीर रचना उसका सम्पूर्ण अंग-अवयवों का उपयोग-सदुपयोग-प्रयोजनीयता क्रम में शरीर स्वस्थता और जीवन स्वस्थता रूपी संयमता के संयोगपूर्वक ही विधि-विहित कार्यकलापों में प्रवृत्त होना पाया जाता है। यह जीवन जागृति पूर्वक ही सफल होना देखा गया है। ऐसा जीवन जागृति **मानवीयता पूर्ण शिक्षा-संस्कार परंपरा** पूर्वक सर्व सुलभ होने के तथ्य स्पष्ट हो चुका है।...**(अध्याय:9, पृष्ठ नंबर: 274-275)**

- **शिक्षा-संस्कार व्यवस्था** :-बनाम मानव जाति, धर्म, कर्म, व्यवहार, दीक्षा, संस्कार - हर मानव में, से, के लिये और मानव परंपरा में, से, के लिये एक अनिवार्य अध्ययन, अवधारणा, अनुभव प्रमाण है। इसी क्रम में मानव परंपरा अपने संपूर्ण वैभव को स्वायत्त मानव, परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होना सहज है। फलस्वरूप अखण्ड समाज में भागीदारी पूर्वक समाज मानव और सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारीपूर्वक व्यवस्था मानव के रूप में प्रमाणित होना शिक्षा-संस्कार का सार्थक प्रयोजन है।

शिक्षा-संस्कार का आधार रूप अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन, मध्यस्थ दर्शन (सह-अस्तित्ववादी विधि) से सम्पन्न होना देखा गया है। यही परम जागृति का द्योतक है। यही जागृत मानव परंपरा की आवश्यकता है। मध्यस्थ दर्शन का तात्पर्य मध्यस्थ जीवन, मध्यस्थ बल, मध्यस्थ शक्ति, मध्यस्थ सत्ता सहज विधि से अध्ययन कार्य को सह-अस्तित्व सूत्र में पूर्णतया सजा लिया गया। यही **शिक्षा** का महत्वपूर्ण उपलब्धि है। मध्यस्थ जीवन का स्वरूप नियम, न्याय, धर्म, सत्य पूर्ण विधियों से जीने की कला ही है। यही परिवार मूलक स्वराज्य के रूप में स्वतंत्रता और स्वानुशासन के रूप में प्रमाणित होना देखा गया है। यही मध्यस्थ जीवन का वैभव है। ऐसा स्वराज्य और स्वतंत्रता हर मनुष्य में, से, के लिये एक चाहत होता ही है। जैसे :- हर मानव संतान को जन्म से ही न्याय का याचक, सही कार्य-व्यवहार का इच्छुक, सत्य वक्ता होने के रूप में देखा गया है। इन्हीं आशयों की पूर्ति के लिये नियम, न्याय, सर्वतोमुखी समाधान, जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान सहज तथ्यों को अवधारणा में स्थापित कर लेना ही मानवीयतापूर्ण **शिक्षा** का स्वरूप और कार्य है। इस कार्य विधि के अनुसार मानव परंपरा अपने जागृति को प्रमाणित करता है। यही जागृत मानव परंपरा का तात्पर्य है।

मध्यस्थ सत्ता अपने आप में व्यापक रूप में विद्यमान है। इसे हर दो वस्तुओं के बीच में रिक्त स्थली के रूप में देख सकते हैं। इसी रिक्त स्थली का नाम मध्यस्थ सत्ता है। क्योंकि इसी में सम्पूर्ण प्रकृति भीगा, डूबा, घिरा हुआ दिखाई पड़ता है। ऐसी सत्ता हर एक में पारगामी होना और हर परस्परता में पारदर्शी होना देखने को मिलता है। यही मध्यस्थ सत्ता है। इसी सत्ता में संपृक्त मानव, जीवन और शरीर का संयुक्त रूप में विद्यमान है। सम्पूर्ण प्रकृति संपृक्त है ही। मानव अपने में मध्यस्थ सत्ता में संपृक्तता को अनुभव करने का अवसर समान रूप में होना पाया जाता है।

मध्यस्थ जीवन अस्तित्व में दृष्टा पद प्रतिष्ठा सहज विधि में अपने में विश्वास करना, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलंबन पूर्वक हर मानव में प्रमाणित करना

समीचीन है। इसी आधार पर मानव अपने मौलिक अधिकार संवेदनशीलता और संज्ञानशीलता में संतुलन को पाकर नित्य समाधान सम्पन्न होने का अवसर नित्य समीचीन है। यही जागृत परंपरा है। फलस्वरूप मध्यस्थ जीवन प्रमाणित होता है।

सर्वतोमुखी समाधान स्वयं न तो अधिक होता है न कम होता है। अधिक कम होने के आरोप ही सम-विषम कहलाता है। अस्तित्व स्वयं कम और ज्यादा से मुक्त है इसीलिये अस्तित्व स्वयं मध्यस्थ रूप में होना पाया जाता है। यही सह-अस्तित्व का स्वरूप है। सह-अस्तित्व स्वयं समाधान सूत्र, व्याख्या और प्रयोजन है। मानव अस्तित्व में अविभाज्य है। मानव जागृति पूर्वक ही समाधान सम्पन्न होने की व्यवस्था है और हर मनुष्य स्वयं भी समाधान को वरता है। इसीलिये अस्तित्व सहज अपेक्षाएँ सब विधि होना पाया जाता है। सम-विषमात्मक आवेश सदा ही समस्या का स्वरूप होना पाया जाता है। मानव सदा-सदा ही जागृति और समाधान को वरता है। समाधान संदर्भ मध्यस्थ है। नियम और न्याय के संतुलन में समाधान नित्य प्रसवशील है। यही जागृति का आधार है। यही उत्सव का सूत्र है। उत्सव की परिभाषा पहले से की जा चुकी है। शिक्षा-संस्कार का शुरूआत जब कभी भी आरंभ होता है जिस तिथि में होता है शिक्षा-संस्कार के आरंभोत्सव के रूप में अनुभव के रूप में सम्मान करना एक आवश्यकता है क्योंकि हर मानव संतान अभिभावकों और सुहृदयों के अपेक्षा के अनुरूप जागृत होना एक आवश्यकता है। जागृत परंपरा में हर मानव संतान का अभिभावक, सुहृदय बन्धुओं का जागृत रहना स्वाभाविक है। इसी आधार पर जागृत मानव संतान में जागृति की अपेक्षा होना एक स्वाभाविक, नैसर्गिक तथ्य है। अस्तु, जागृति सहज अपेक्षाएँ अग्रिम पीढ़ी में संस्कार का आधार होना भी स्वाभाविक है। इसी के आधार पर जिस दिन से **शिक्षा** का आरंभ होता है उस दिन सभी बंधु-बांधव मिलकर विधिवत जागृति की अपेक्षा संबंधी चर्चा, परिचर्चा, गोष्ठी, गायन आदि विधियों से सम्पन्न करना जागृति क्रम संस्कार के लिये अपेक्षित है।

जिस समय में शिक्षा-संस्कार सम्पन्न हो जाते हैं उस समय में जागृति का प्रमाण सभा, उत्सव सभा के बीच हर पारंगत नर-नारी अपने को स्वायत्त मानव के रूप में सत्यापित करने, परिवार मानव के रूप में कर्तव्य और दायित्वशील होने और अखण्ड समाज-सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करने में अपने निष्ठा को सत्यापित करने के रूप में उत्सव समारोह को सम्पन्न किया रहना मानव परंपरा में एक आवश्यकता है।

जाति सम्बन्धी मुद्दे पर मानव जाति की अखण्डता को पूर्णतया स्वीकारा हुआ मानसिकता जिसके आधार पर सम्पूर्ण सूत्रों का प्रतिपादन करना हर स्नातक के लिये एक आवश्यकता और परंपरा के लिये एक अनिवार्यता बना ही रहेगा। इस उत्सव में ज्यादा से ज्यादा पहले से पारंगत और प्रौढ़ लोग मूल्यांकित करने के रूप में उत्सव का पहल बनाए रखने की एक आवश्यकता इसलिये है कि हर स्नातक अपने उत्साह का पुष्टि विशाल और विशालतम रूप में प्रमाणित होने की प्रवृत्ति उद्भमित होना देखा गया है।

धर्म और दीक्षा संस्कार को जागृति पूर्णता, स्वानुशासन, प्रामाणिकता के रूप में प्रतिपादित करना हर स्नातक व्यक्ति का अपने ही उद्देश्य और मूल्यांकन के विधि से एक आवश्यकता बना ही रहता है। जिसके आधार पर प्रौढ़ और बुजुर्ग लोग समय-समय पर आवश्यकतानुसार मूल्यांकन कर सके और तृप्ति पा सके। उत्सव कार्य में एक आवश्यकता यह बना ही रहता है।

कर्म और व्यवहार संस्कार का सत्यापन हर मनुष्य अपने स्वायत्तता में निष्ठा के रूप में सत्यापित करना स्वाभाविक कार्य है। अतएव इसे व्यवहार में सामाजिक और व्यवसाय में स्वावलंबन के रूप में ही पहचाना जाता है। जिसका सत्यापन हर स्वायत्त मानव (नर-नारी) करता है। यह उत्सव का स्वरूप में एक अंग बनके रहना आवश्यक है। ऐसी शिक्षा-संस्कार सम्पन्नता का उत्सव हर ग्राम में हर वर्ष सम्पन्न होना स्वाभाविक है आवश्यकता भी है क्योंकि अग्रिम पीढ़ी के लिये यह उत्सव प्रेरणा स्रोत बनकर ही रहता है। संस्कार मर्यादा बोध कराने वाला पारंगत आचार्य ही रहेंगे।

स्नातक अवधि में पहुँचा हुआ सभी गाँव के स्नातकों का संयुक्त उत्सव सभा सम्पन्न होना भी आवश्यकता है। यह शिक्षण संस्था में ही समारोह रूप में सम्पन्न होना सहज है। इस उत्सव का प्रयोजन परस्पर स्नातकों का सत्यापन, श्रवण, साथ में अध्ययन अवधि में बिताये गये दिनों की स्मृति के साथ मूल्यांकित करने का शुभ अवसर समीचीन रहता है। इस अवसर के आधार पर हर एक स्नातक को अन्य स्नातक सत्यापन के आधार पर प्रामाणिकता को मूल्यांकित करने का अवसर बना रहता है। इस अवसर का सटीक प्रस्तुति और सदुपयोग उत्सव के स्वरूप में वैभवित

होना स्वाभाविक है। इन्हीं के साथ इनके सभी आचार्यों का मूल्यांकन और आशीष, आशीष का तात्पर्य स्नातक में जो स्वायत्तता स्थापित हुई है वह नित्य फलवती होने स्वायत्त मानव, समाज मानव, व्यवस्था मानव के रूप में प्रमाणित होने के आशयों को व्यक्त करने के रूप में उत्सव अपने आप में शुभ, सुन्दर, समाधानपूर्ण होना देखा जाता है। **(अध्याय: 9, पृष्ठ नंबर: 279-284)**

- **शिक्षा-संस्कार का मूल्यांकन :-** शिक्षा-संस्कार क्रम में स्वायत्त मानव लक्ष्य के अर्थ में, जो जीवन ज्ञान, सह-अस्तित्व दर्शन ज्ञान मूलक विवेक और विज्ञान विधि सहित मानवीयता पूर्ण आचरण के अर्थ में **शिक्षा** कार्य सम्पन्न हुआ रहता है उससे विद्यार्थी अपना मूल्यांकन करेंगे। हर कक्षा में विद्यार्थी अपना मूल्यांकन स्वयं करने की परंपरा होगी। इस मूल्यांकन विधि में हर विद्यार्थी स्व निरीक्षण पूर्वक ही मूल्यांकन करना हो पाता है। इसमें किताबों की संख्या गणना गौण हो जाता है। वस्तु के रूप में कहाँ तक जानना, मानना, पहचानना परिपूर्ण हो चुका है, इसके पहले परिपूर्णता की ओर जितने भी सीढ़ियाँ कक्षावार विधि से बनी रहती है उसके अनुसार किस सीढ़ी तक जानना, मानना, पहचानना संभव हो चुका रहता है, निर्वाह करने में जिन-जिन विधाओं में, सम्बन्धों में पारंगत हुए रहते हैं इसका सत्यापन करना ही मूल्यांकन प्रणाली रहेगी।

संस्कारों के संबंध में जाति, धर्म, कर्म, दीक्षा, विधा भी स्व-निरीक्षण पूर्वक ही विद्यार्थी अपने में, से मूल्यांकित करने की व्यवस्था बना रहेगा। जब सभी विद्यार्थी अपना-अपना मूल्यांकन लेखिक-अलेखिक विधियों से प्रस्तुत करते हैं। यह परस्पर अवगाहन करने का एक संगीतमय स्थिति बन ही जाती है। इससे परस्पर प्रेरकता और पूरकता दोनों संभव हो जाता है फलस्वरूप धारकता-वाहकता में सुगमता निर्मित होना पाया जाता है। **शिक्षा** का सम्पूर्ण सार्थकता स्वायत्त मानव के रूप में प्रमाणित होना ही है। परिवार मानव के रूप में संकल्पित होना और प्रमाणित होना ही है। हर शिक्षा, शिक्षण शाला-मंदिर संस्थाएँ अपने-आप में एक परिवार होना स्वाभाविक है। परिवार के अंगभूत रूप में ही **शिक्षा** कार्य सम्पादित होना ही स्वाभाविक है। इसीलिये हर शिक्षण संस्था में परिवार मानव रूप में प्रमाणित होना सभी विद्यार्थियों के लिये सहज है। इस प्रकार स्वायत्त मानव और परिवार मानव का प्रमाण और उसका मूल्यांकन स्वाभाविक रूप में जीवंत होना पाया जाता है।

मनुष्य का सम्पूर्ण वर्चस्व स्वायत्त मानव और परिवार मानव के रूप में मूल्यांकित हो जाता है। जो मानवीयतापूर्ण आचरण का ही प्रमाण है। दूसरा समझे हुए को समझाने की विधि में अर्थात् जीवन-ज्ञान, अस्तित्व दर्शन को विवेक, विज्ञान, व्यवहार सूत्रों सहित समझाने की विधि से, समझा हुआ प्रमाणित होता है। इस प्रकार हर विद्यार्थी अपने में समझा हुआ को समझाकर प्रमाणित होने की व्यवस्था मानवीय शिक्षा-संस्कारों में सर्वसुलभ होता है। एक विद्यार्थी दूसरे को समझाने के उपरान्त समझाया हुआ को स्वयं ही मूल्यांकित करेगा। फलस्वरूप सभी विद्यार्थियों में पारंगत विधि होना स्पष्ट हो पाता है। तीसरे में किया हुआ को कराने की विधि से भी हर विद्यार्थी प्रमाणित होना उसका मूल्यांकन स्वयं करना मानवीय **शिक्षा** संस्थान में सहज रूप में रहता ही है। इसका मूलभूत स्वायत्त मानव परिवार मानव के रूप में कार्य-व्यवहार करता हुआ शिक्षक, आचार्य, विद्वान ही **शिक्षा** सहज वस्तु प्रक्रिया, प्रणाली, पद्धति, नीति का धारक-वाहक होना पाया जाता है। इसकी अक्षुण्णता बना ही रहता है। इस प्रकार **शिक्षा** का धारक-वाहक रूपी आचार्यों से शिक्षित होने के उपरान्त हर विद्यार्थी अपना मूल्यांकन करने की स्थिति में उभयतृप्ति का होना देखा जाता है। यथा-विद्यार्थी और आचार्यों के परस्परता में यह स्पष्ट हो जाता है। इस मूल्यांकन प्रणाली में दायित्व और कर्तव्य बोध सुदूर आगत तक स्वीकृत होना स्वाभाविक होता है। यही संस्कार का मौलिक स्वरूप है। इसी सार्वभौम आधार पर हर शिक्षित व्यक्ति मौलिक अधिकारों को स्वतंत्रतापूर्वक प्रयोग करने में सफल हो जाता है।**(अध्याय:10, पृष्ठ नंबर:295-298)**

- यह तथ्य पहले स्पष्ट हो चुका है कि स्वायत्त मानव **शिक्षा-संस्कार** पूर्वक विधिवत् दीक्षित होना, सर्वसुलभ होना यह जागृत मानव परंपरा का देन के रूप में विदित हो चुकी है। यही प्रधान रूप में **शिक्षा-संस्कार** पूर्वक सार्वभौमता को प्रमाणित करता है। यही स्वायत्तता को प्रमाणित करता है। **(अध्याय:10, पृष्ठ नंबर:308)**

सन्दर्भ : आवर्तनशील अर्थशास्त्र

(संस्करण:2009)

- मानव में शुभाशुभ प्रवर्तन का आधार मानसिकता ही है। सर्वत्र मानसिकताएं परंपराओं से अनुप्राणित होना पाया जाता है। परंपराओं को **शिक्षा**, संस्कार, संविधान और व्यवस्था के स्वरूपों, आशयों, अनुप्राणन प्रणालियों पर आधारित रहना पाया जाता है। दूसरे विधि से संस्कृति, सभ्यता, विधि व व्यवस्था उसका प्रेरक और अनुप्राणन प्रणालियों पर निर्भर होना पाया जाता है। इन दोनों प्रणालियों से अनुप्राणित मानव परंपरा दिखाई पड़ती है। इसका समीक्षा मूल्यांकन यहीं है अभी तक साक्षरता, विज्ञान, उपदेश, आस्था और आंकलानात्मक ज्ञान समेत परस्परता में कुण्ठा, निराशा, भय से होता हुआ, प्रलोभन से ग्रसित होता रहा। फलस्वरूप संग्रह भोग लिप्सा से तंत्रित होकर द्रोह, विद्रोह, शोषण और युद्ध के लिए तत्पर होता हुआ सर्वाधिक समुदायों को देखा गया। जबकि हर मानव सर्वशुभ कामना करता ही रहा, अभी भी कर रहा है। ऐसे सर्वशुभ घटित न होने का क्या कारण रहा इसको परिशीलन किया गया और पाया गया कि -

1. नित्य वर्तमान रूपी अस्तित्व को सटीक अध्ययन करने में हम मानव जाति असफल रहे हैं। इसके स्थान पर रहस्यमयी ईश्वर को अथवा ब्रह्म को ज्ञान रूप में स्वीकारा गया। इसी को सत्य भी कहा गया। ऐसा सत्य ज्ञान संपन्न व्यवहार गति देखने को नहीं मिला, जिससे समाधान, समृद्धि, अभय और सह अस्तित्व चरितार्थ नहीं हो सका। अतएव सर्वशुभ को चाहने और होने में सदा ही दूरी बना रहा।

2. अस्थिरता अनिश्चयता मूलक वस्तु केन्द्रित चिन्तन को तर्क संगत विधि से विज्ञान मान लिया गया। विज्ञान को नियमों के रूप में प्राप्त कर, गणितीय भाषा सहित प्रयोग योग्य स्वरूप देना माना गया और उसे क्रियान्वयन करने की प्रक्रियाओं को तकनीकी कहा गया। यह सब मानवेत्तर संसार के साथ, वह भी पदार्थावस्था के साथ, अर्थात् मृत, पाषाण, मणि, धातुओं के साथ यंत्रीकरण, तंत्रीकरण, जल, थल, नभ प्रदेशों में स्वत्व गतिकरण कार्यकलापों के रूप में दिखने को मिलता है। ये सब उपलब्धियाँ विज्ञान का ही देन स्वीकारा गया है। उल्लेखनीय घटना यही है कि विज्ञान वैज्ञानिक नियमों और सिद्धांतों से मानव का अध्ययन सर्वतोमुखी विधि से सम्पन्न नहीं हो पाया है। फलस्वरूप अर्थशास्त्र भी किंवा प्रचलित सभी शास्त्र अथवा सभी प्रकार के शास्त्र मानव से आशित सर्वशुभ रूपी प्रयोजनों को चरितार्थ करने में सर्वथा पराभवित रहे हैं। जबकि हर मानव हर विधा के कर्ता-धर्ता भी सर्वशुभ चाहते हैं। इसलिए रहस्य और अस्थिरता अनिश्चयता से मुक्त नित्य वर्तमान रूपी सह-अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन अवश्यंभावी रहा ही। अस्तित्व न तो घटता है, न बढ़ता है, नित्य वर्तमान प्रकटनशील है ही इसलिए अस्तित्व स्थिर होना पाया जाता है। स्थिरता का मतलब निरंतर होना ही है। वर्तमान सहज प्रकाशन है। इसीलिए रहस्य विहीन है, यथार्थ वास्तविकता, सत्यतामय है। अस्तु इसकी स्थिरता स्पष्ट है। इस प्रकार अस्तित्व अपने में महिमा समेत होना समझ में आता है।

3. अस्तित्व में मानव भी अविभाज्य इकाई है। मानव सहज रूप में संचेतनशील होना पाया जाता है। संचेतना का मूल स्रोत के रूप में शरीर का रचना-कार्य जीवन का संयुक्त प्रणाली, लक्ष्य और अध्ययन, पहले बीती हुई दोनों प्रकार के विश्व दृष्टिकोण, तर्क, मीमांसा और प्रतिपादनों से अध्यनगम्य नहीं हो पाया है। उन दोनों विश्व दृष्टिकोणों को ईश्वर केन्द्रित और वस्तु केन्द्रित माना गया है। इन दोनों के विचार और कार्य यात्रा के फलन रूप में बीसवीं शताब्दी की अंतिम दशक में भी देख पा रहे हैं जो **शिक्षा** संबंधी समीक्षा (पूर्व में किया गया है) सहित लाभोन्माद, कामोन्माद, और भोगोन्माद विधियों से ग्रसित, त्रस्त मानस रहस्यमी आस्थाओं के लिए बाध्य होता हुआ असमानता, विषमताओं से प्रताड़ित होता हुआ अधिक और कम से, श्रेष्ठ और नेष्ठ के, ज्ञानी और अज्ञानी के, विद्वान और मूर्ख के सविषमताओं से कुण्ठित, होना पाया जाता है क्योंकि विद्वान-ज्ञानी, सक्षम-समर्थ, अमीर और बली ये सभी अपने में सार्वभौम शुभ को घटित करने में असमर्थ रहना पाया गया। इसलिए इस विधि से ये सब भी कुण्ठित हैं एवं इसके विपरीत बिन्दु में

दिखने वाले मानव भी कुण्ठित है ही। इसलिए मानव का अध्ययन और स्वभाव गति सम्पन्न मानव का स्वरूप मानसिकता, विचार, योजना, कार्य प्रणालियों को अध्ययन करना और कराना एक आवश्यकता ही रहा है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 22-25)**

- अस्तित्व में मानव अविभाज्य वर्तमान परंपरा है। अस्तित्व में मानव ही सर्वाधिक रूप में विकसित होना दिखाई पड़ता है। यह :-

1. मानवेत्तर प्रकृति से अपने को सार्वभौम शुभ के आधार पर ही भिन्न होना स्पष्ट हो जाता है।
2. दूसरे विधि से मानव परंपरा चारों आयाम सम्पन्न है।
3. मानव ही भूतकाल और घटनाओं का स्मरण, वर्तमान में विज्ञान सम्मत विवेक, विवेक सम्मत विज्ञान योजना कार्य-व्यवहारों और व्यवस्था को निश्चयन करने योग्य है। विज्ञान-विवेक का तात्पर्य संपूर्ण विश्लेषण ज्ञान सम्मत होने से है और विवेक का तात्पर्य प्रयोजन सम्मत होने से है। ज्ञान का तात्पर्य जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान एवं मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान से है। विवेक का तात्पर्य संपूर्ण विवेचनाएं प्रयोजनों के अर्थ में स्वीकार योग्य रूप स्पष्ट होने से है। विवेचना का तात्पर्य विवेचना सहित विख्यात विधि (सबके लिए स्वीकार योग्य) से वस्तुओं, घटनाओं को जानने-मानने-पहचानने की क्रियाकलापों से है। इस प्रकार विज्ञान, ज्ञान और विवेक सहज सार्थकता और चरितार्थता स्पष्ट है। यह अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन और सह-अस्तित्ववादी विश्व दृष्टिकोणों के आधार पर स्पष्ट हो जाता है।

स्पष्टता के लिए मानवकुल आदिकाल से तरसता ही रहा है। प्रयास भी स्पष्टता के क्रम में अभिप्रेत रहा है। मूल मान्यताएं समुदाय और वर्ग केन्द्रित होने के आधार पर तथा दूसरी ओर रहस्य और वस्तुओं के आधार पर जितने भी सोचा गया, प्रयत्न किया गया, प्रयोग किया गया, वर्ग और समुदाय सीमा में ही हितों को सोचना बना। इसलिए सर्वशुभ चाहते हुए वह घटित होना संभव नहीं हुआ। इन तथ्यों का अवलोकन करने पर विकल्प की आवश्यकता और अनिवार्यता स्वाभाविक रूप में स्वीकृत होता है अन्यथा भ्रमित रहना ही होगा।

ऊपर वर्णित घटनाओं का वर्णन, आंकलन और विश्लेषण से यह स्पष्ट हो चुकी है कि वस्तु केन्द्रित विश्व दृष्टिकोण और रहस्यमय ईश्वर केन्द्रित विश्व दृष्टिकोण से मानव का अध्ययन मानव के लिए तृप्तिदायक अथवा समाधानपूर्ण विधि से संपन्न नहीं हो पाया इसलिए मानव के लिए योजित **शिक्षा संस्कार और शिक्षा संस्कार** को समृद्ध बनाने के लिए प्रबंध-निबंध, पाठ-पाठ्यक्रम, साहित्य, कला सभी मिलकर भी अधूरा ही रह गया। इस मायने में कि सार्वभौम शुभ सर्व सुलभ होने में नहीं आया। साथ ही यह तथ्य अपने आप में अवश्य ही उपादेयी रहा है कि उक्त दोनों प्रकार के विश्व दृष्टिकोण, उससे सम्बन्धित सभी प्रयास **अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिन्तन** के पहले मानव परंपरा में परिलक्षित होना अवश्यंभावी रहा। अस्तु इस बात पर हम सर्वमानव सहमत हो सकते हैं कि बीता हुआ सभी परिवर्तनों का समीक्षा फलनों के साथ ही विकल्प की ओर ध्यानाकर्षण होना संभव, आवश्यक और अनिवार्य है। **(अध्याय:2, पृष्ठ नंबर: 25-27)**

(अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन का मूल अवधारणाएं निम्नलिखित हैं :-

1. अस्तित्व नित्य वर्तमान है। वर्तमान का तात्पर्य होने-रहने से है।
2. अस्तित्व में मानव अविभाज्य है। अविभाज्यता का तात्पर्य मानवत्व सहित होने-रहने के रूप में कार्यरत रहने से है।
3. अस्तित्व सहित ही संपूर्ण पद, अवस्था, दिशा, देश, कोण, आयाम, परिप्रेक्ष्य स्थिति-गति का होना पाया जाता है। इसी के साथ सह-अस्तित्व में ही विकास क्रम, विकास, जागृतिक्रम, जागृति में ही संपूर्ण पद, अवस्था, स्थिति गति को देखा जाता है।

उदाहरण के रूप में प्रत्येक नर-नारी सह-अस्तित्व में किसी पद और अवस्था में संपूर्ण जड़-चैतन्य प्रकृति का पहचान होना पाया जाता है इनके स्थिति गति को जागृति के आधार पर मानवत्व सहित व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में देखा जाता है।

4. मानव ही दृष्टापद में है एवं इसे वैभवित, प्रमाणित, व्यवहृत करने योग्य इकाई है। अस्तु मानव ही कर्ता-भोक्ता होना भी पाया जाता है।
5. मानव ही प्रत्येक इकाई में अनन्त कोणों का दृष्टा, एक से अधिक इकाईयों के दिशा, काल और देश का दृष्टा, प्रत्येक एक में स्थिति गति का दृष्टा, प्रत्येक इकाई में अविभाज्य रूप में वर्तमानित रूप, गुण, स्वभाव, धर्म रूपी आयामों का दृष्टा, व्यक्ति, परिवार, ग्राम, देश, राष्ट्र और विश्व परिवार रूपी परिप्रेक्ष्यों का दृष्टा होना अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिन्तन सहित सह-अस्तित्व रूपी शाश्वत क्रियाकलाप क्रम में, परमाणु में विकास गठनपूर्णता, उसकी निरंतरता, चैतन्य पद में संक्रमण जीवनपद, जीवनी क्रम, जीवन जागृति क्रम, जागृति, मानवीयतापूर्ण मानव परंपरा और जीवन जागृति पूर्णता फलस्वरूप देव मानव, दिव्य मानव पदों का दृष्टा, कर्ता, भोक्ता होना पाया जाता है। इसी क्रम में स्पष्ट किए गये मानव पद में क्रियापूर्णता और दिव्य मानव पद में आचरण पूर्णता और उसकी निरंतरता का होना पाया जाता है। इस विधि से अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिन्तन की अवधारणाएं स्वयं स्पष्ट करता है कि पूर्वावर्ती दोनों विचारधारा से समाधान के अर्थ में भिन्न होना स्पष्ट है। अवधारणा का तात्पर्य ही अध्ययनपूर्वक धारणा के अनुकूल स्वीकृतियों से है। मानव की धारणा, प्रत्येक मानव में सुख, शांति, संतोष और आनन्द के अर्थ में नित्य वर्तमान होना पाया जाता है। किसी भी मानव का परीक्षण करने पर यह पाया जाता है कि सुख, शांति, संतोष, आनन्द के आशा अपेक्षा में ही संपूर्ण कार्यकलाप विन्यासों को करता है। परीक्षण क्रम में 5 ज्ञानेन्द्रियों से जो कुछ भी पहचानता है, पहचानने के मूल में प्रवृत्ति है वह सुखापेक्षा ही दिखाई पड़ती है। संपूर्ण मानव संपूर्ण प्रकार के अध्ययनों को सुखापेक्षा से ही किया रहता है। प्रत्येक मानव से सम्पादित होने वाली संपूर्ण अभिव्यक्ति संप्रेषणा, प्रकाशनों का परीक्षण से भी सुख-शांति, संतोष, आनन्द सहज आशा आकांक्षा से ही व्यक्त होना पाया जाता है। अस्तित्व में नित्य वर्तमान प्रकाशन को सुख की अपेक्षा आकांक्षा से ही स्वीकारना चाहता है। यही सुख, शांति, संतोष, आनंद परंपरा में प्रमाणित होने की स्थिति में समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व के रूप में मूल्यांकित हो जाता है।

उक्त विधि से सह-अस्तित्व सहज रूप में ही नित्य प्रभावी होना पाया जाता है फलस्वरूप सार्वभौम शुभ परस्पर पूरक होना सहज है। समाधान का प्रमाण मानव के सर्वतोमुखी शुभ की अभिव्यक्ति में, संप्रेषणा में और प्रकाशन में सम्पन्न होने वाली फलन है। सर्वाधिक रूप में यही अभी तक देखने में मिला है कि मानव ही मानव के लिए समस्या का प्रधान कारण है। व्यक्तिवादी समुदायवादी विधि से प्रत्येक मानव समस्याओं को पालता है, पोषता है और वितरण किया करता है। परिवार मानव के रूप में प्रत्येक व्यक्ति समाधान को पालता है पोषता है और वितरित करता है, क्योंकि जो जिसके पास रहता है वह उसी को बंटन करता है। स्वायत्त मानव ही परिवार मानव के रूप में प्रमाणित हो पाता है। स्वायत्त मानव का तात्पर्य स्वयं स्फूर्त विधि से व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलंबी, होने की अर्हता से है। यह प्रत्येक व्यक्ति में सह-अस्तित्व दर्शनज्ञान जीवन ज्ञान जैसी परम ज्ञान, अस्तित्व-दर्शन जैसी परम-दर्शन और मानवीयतापूर्ण आचरण रूपी परम आचरण अध्ययन और संस्कार विधि से स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक और व्यवसाय में स्वालंबन के रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है, पाया गया है। इसी विधि से परिवार मानव का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। इसे अध्ययन विधि से लोकव्यापीकरण करना मानवीयतापूर्ण परंपरा का कर्तव्य और दायित्व है। इसी क्रम में आवर्तनशील अर्थव्यवस्था अवश्यंभावी है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 27-30)**

- परिवार का तात्पर्य सीमित संख्यात्मक स्वायत्त नर-नारियों का न्याय पूर्वक सहवास रूप है। यह अपने आप में स्वयं स्फूर्त विधि से परस्पर संबंधों को पहचानना मूल्यों को निर्वाह करना, मूल्यांकन करना और उभय तृप्ति पाना

होता है। इसी के साथ-साथ समझदार परिवारगत उत्पादन कार्य में परस्पर पूरक होना, परिवार की आवश्कता से अधिक उत्पादन करना अथवा होना होता है। यही परिवार का कार्यकलाप का प्रारंभिक स्वरूप है। संबंध, मूल्य, मूल्यांकन विधि से समाज रचना और अखंड समाज होना पाया जाता है अथवा संभावनाएं है ही । समाज रचना विधि ही व्यवस्था का आधार है। व्यवस्था का स्वरूप पांचों आयामों में यथा

1. न्याय सुरक्षा,
2. उत्पादन कार्य
3. विनिमय कोष
4. स्वास्थ्य संयम, और
5. **शिक्षा** संस्कार

कार्यकलापों के रूप में प्रमाणित हो पाता है और उसकी निरंतरता संभावित है। सभी आयामों में भागीदारी को निर्वाह करना ही समग्र व्यवस्था में भागीदारी का तात्पर्य है। ऐसी व्यवस्था सार्वभौम होने की संभावना समीचीन है जिसकी अक्षुण्णता मानव परंपरा में भावी है। ऐसी व्यवस्था को कम से कमएक गाँव से आरंभ करना और सभी आयामों में भागीदारी को निर्वाह करने योग्य अर्हता सें समूचे ग्राम वासियों को सम्पन्न करना एक आवश्यकता है। ऐसे अर्हता से सम्पन्न परिवार मानव और परिवार कम से कम 100 परिवार के सह-अस्तित्व में परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था समझदारी पूर्वक प्रमाणित हो पाता है। ऐसी परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था में ही आवर्तनशील अर्थशास्त्र चरितार्थ होना सहज संभव है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 30-31)**

- जीवन प्रत्येक व्यक्ति में समान रूप से क्रियाशील रहना पाया जाता है। इसके लिए अध्ययन वस्तु करने वाला मानव है। मानव के अध्ययन क्रम में सर्वप्रथम हम कल्पनाशीलता और कर्म स्वतंत्रता को देख पाते हैं। कल्पनाशीलता का उपयोग विविध विधि से होता हुआ कर्म स्वतंत्रता सहज कार्य-विन्यास गति में सर्वेक्षित होना पाया जाता है। इसके साथ परीक्षण-निरीक्षण एक आवश्यकता बनी रहती है। आबाल, वृद्ध, गरीब-अमीर, ज्ञानी-अज्ञानी, विद्वान और मूर्ख सभी व्यक्तियों में कल्पनाशीलता कर्म स्वतंत्रता संप्रेषित होता हुआ देखने को मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि सभी मानव में यह समान रूप से विद्यमान है। समानता के मुद्दे में मानव का ध्यान मात्रा और गुणों के ओर दौड़ना स्वाभाविक है। यह जीवन का ही एक अपेक्षा है साथ ही कल्पनाशीलता कर्मस्वतंत्रता जीवन सहज गति स्वरूप होना पाया जाता है। तथापि जीवन अपने मात्रा सहित ही वैभवित है। ऐसी मात्रा को एक गठनपूर्ण परमाणु के रूप में जाना गया है और माना गया है। फलस्वरूप जीवन के क्रियाकलापों को पहचानना संभव हो गया है। इसके प्रमाण में निर्वाह करना स्वाभाविक घटना है अथवा स्वाभाविक स्थिति है। (गठनपूर्ण परमाणु का तात्पर्य यह है कि उसमें कोई अंश, किसी भी परिवेश से अथवा मध्य से विस्थापित न होता हो और न ही उसमें प्रस्थापित होता हो। यही भार बन्धन और अणु बन्धन से मुक्त और क्रम से आशा, विचार इच्छा बन्धनों से कार्य करता हुआ देखने को मिलता है। इसे प्रकारान्त से जीव संसार में भी आशा बन्धन को वंशानुषंगीय विधि से कार्य करता हुआ देखने को मिलता है। प्रत्येक मानव में ये तीनों प्रकार के बन्धन सहित कार्य करता हुआ कल्पनाशीलताओं, उसके क्रियान्वयन क्रम में कर्म स्वतंत्रता का नियोजन दृष्टव्य है। यह भय और प्रलोभन, संग्रह और द्वेष से ग्रसित होना सुदूर विगत से इस वर्तमान बीसवीं शताब्दी की दसवें दशक तक स्पष्ट हो चुकी है। ऐसे बंधनवश ही व्यक्तिवादी अहमताओं और अहमताओं से अहमताओं का टकाराव विविध प्रकार से होते ही आई। यही मानव परंपरा में संघर्ष का स्रोत रहा है। इसका वर्तमान में साक्ष्य यही है **शिक्षा** जैसी परंपरा में लाभोन्मादी अर्थशास्त्र, भोगोन्मादी समाजशास्त्र, कामोन्मादी मनोविज्ञान शास्त्र, पठन-पाठन, साहित्य कलाओं में रुचि और विवशताएं है।) अब बंधन से मुक्ति क्रम में समझदारी व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी होना सहज समीचीन है इसलिए आवर्तनशील विधि को जागृतपूर्वक पहचानना संभव हुआ। **(अध्याय:2, पृष्ठ नंबर: 33-34)**

- परंपरा का स्वरूप **मानवीयतापूर्ण शिक्षा**, मानवीयतापूर्ण संस्कार, मानवीयतापूर्ण संविधान और मानवीयतापूर्ण व्यवस्था के रूप में ही नित्य वैभव और गति होना ही सार्थकता है। ऐसी सार्थक स्थिति को परंपरा में प्रमाणित करने के लिए सह-अस्तित्व दर्शन ज्ञान, जीवन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान को अध्ययनगम्य करना ही होगा। इस विधि से मानव परंपरा जागृत होने और वैभवित होने की संभावनाएं स्पष्ट है। इसी क्रम में आवर्तनशीलता का साक्षात्कार भी एक अनिवार्य बिन्दु है। यह स्वयं अर्थात् जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान पूरकता विधि से आवर्तनशील है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 41)**

- पहले धीरता, वीरता, उदारता का स्वरूप स्पष्ट किया जा चुका है। मानव मूल्य के रूप में दया, कृपा, करूणा, जीवन जागृति पूर्णता का प्रमाण रूप में अथवा साक्ष्य रूप में व्यवहृत होना पाया जाता है। दया को मानव के आचरण में जीने देकर स्वयं जीने के रूप में देखा गया है। जीने देने के क्रम में पात्रता के अनुरूप **शिक्षा-संस्कार** को सुलभ कर देना, प्रमाणित होता है। दूसरे विधि से पात्रता के अनुरूप वस्तुओं को सहज सुलभ करा देने के रूप में स्पष्ट होता है। कृपा का व्यवहार रूप प्राप्त वस्तु के अनुरूप योग्यता को स्थापित करने के रूप में है। उदाहरण के रूप में मानव है, मानव एक वस्तु है, मानव में मानवत्व सहित व्यवस्था के रूप में जीने की योग्यता को स्थापित कर देना ही कृपा सहज तात्पर्य है। करूणा का तात्पर्य पात्रता के अनुरूप वस्तु; वस्तु के अनुरूप योग्यता को स्थापित करने के रूप में देखा जाता है। यह मूलत: मानव में उदारता और दया, देवमानव में दया प्रधान रूप में और कृपा करुणा; दिव्यमानव में दया, कृपा, करूणा प्रधान रूप में, व्यवहृत होने की अर्हता प्रमाणित हो पाती है। ऐसे परिवार मानव, देव मानव, दिव्य मानव के रूप में समृद्ध होने योग्य परंपरा को पा लेना ही जागृति परंपरा का लक्षण और रूप है। इससे यह स्पष्ट हो गया कि जागृति परंपरा पूर्वक ही सर्वमानव, मानवत्व रूपी सम्पदा से सम्पन्न होता है। ऐसे सम्पन्नता क्रम में आवर्तनशील अर्थशास्त्र, व्यवहारवादी समाजशास्त्र और मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान सहज **शिक्षा-संस्कार** विधा में चरितार्थ करना एक आवश्यकता है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 49-50)**

- पूरे गाँव में आवर्तनशीलता को इस प्रकार पहचानना आवश्यक और सहज है कि प्रत्येक परिवार समूचे ग्राम परिवारों के साथ एक दूसरे को किसी संबंध से पहचानते हैं, मूल्यों का निर्वाह करते हैं मूल्यांकन करते हैं। सदा तृप्ति मिलती ही रहती है। दूसरा श्रम मूल्यों के आधार पर वस्तु मूल्यों का मूल्य निर्धारित करते हैं और परस्पर विनिमय करते हैं। हर परिवार में आवश्कता से अधिक उत्पादन कार्य स्पष्ट रहता ही है। इस प्रकार वस्तुओं का उत्पादन, विनिमय और न्याय-सुरक्षा कार्यकलाप एक दूसरे से पूरक विधि से आवर्तनशील होते हैं। क्योंकि श्रम नियोजन, श्रम मूल्य में सामरस्यता, संबंध और मानव मूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य में सामरस्यता और उसका नित्य गति के रूप में व्यवहार और विनिमय एक-दूसरे के लिए पूरक होते हैं और नित्य गतिशील रहते हैं इस प्रकार इसकी आवर्तनशीलता समझ में आती है।

इसी क्रम में परिवार सहज सहवास, ग्राम मोहल्ला सहज सहयोग, राष्ट्र और विश्व परिवार सहज सह अस्तित्व के रूप में आवर्तनशील अर्थ व्यवस्था को जानना-मानना-पहचाननना-निर्वाह करना नियति सहज समीचीन है। परिवारमूलक विधि से एक ग्राम और ग्राम मूलक विधि से एक परिवार व्यवस्था पांचों आयामों के रूप में वैभवित होना सहज है। यही पाँचों आयामों की परस्पर पूरकताएं आवर्तनशीलता को प्रमाणित करना मानव का सहज अपेक्षा और जागृति क्रम घटना की समीचीनता अध्ययनगम्य हो जाता है। एक ग्राम व्यवस्था में न्याय सुरक्षा कार्य में भागीदारी, विनिमय कोष कार्यो में भागीदारी निरंतर समीचीन रहता है। परिवार व्यवस्था में जीना प्रमाणित रहता है। इन तीनों आयामों के लिए स्रोत रूप में स्वास्थ्य संयम कार्यों में भागीदारी और **शिक्षा संस्कार** कार्यों में भागीदारी की आवश्यकता, सम्भावना और प्रयोजन समीचीन रहता ही है। हर समझदार परिवार मानव कहे गये पाँच आयामों में भागीदारी को निर्वाह करने योग्य होता ही है। इसका स्रोत **शिक्षा-संस्कार** विधि से सम्पन्न होने की व्यवस्था है। **(अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर: 57-58)**

- समूचे व्यवस्था का अर्थात् एक परिवार से विश्व परिवार, मानव व्यवस्था को पहचानने-निर्वाह करने के क्रम में दस सीढ़ियों में पहचानना सहज है। यथा

1. परिवार सभा व्यवस्था
2. परिवार समूह सभा व्यवस्था
3. ग्राम परिवार सभा व्यवस्था
4. ग्राम समूह परिवार सभा व्यवस्था
5. ग्राम क्षेत्र परिवार सभा व्यवस्था
6. मंडल परिवार सभा व्यवस्था
7. मंडल समूह परिवार सभा व्यवस्था
8. मुख्य राज्य परिवार सभा व्यवस्था
9. प्रधान राज्य परिवार सभा व्यवस्था और
10. विश्व राज्य परिवार सभा व्यवस्था।

इन दसों सीढ़ियों का अन्तर संबंध हर एक व्यक्ति 10 व्यक्ति को अथवा हर 10 व्यक्ति एक-दूसरे को मानव सहज संबंधों के रूप में पहचानने, उसमें निहित मूल्यों को निर्वाह करने के रूप में समझा गया है। इस क्रम में एक परिवार सभा से कम से कम 10 व्यक्ति होना मानते हुए इसे चित्रित किया गया है। 10 व्यक्ति में से एक व्यक्ति को किसी निश्चित काल तक परिवार समूह सभा व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करने के लिए निर्वाचित करेंगे। ऐसे 10 परिवारोंं में से निर्वाचित एक-एक व्यक्ति मिलकर एक परिवार समूह सभा के रूप में कार्य करना होगा। ऐसे 10 परिवार समूह सभाएं अपने में से एक-एक व्यक्ति निर्वाचित करेंगे। ऐसे 10 व्यक्ति मिलकर एक ग्राम मोहल्ला स्वराज्य परिवार सभा व्यवस्था गठित करेंगे। यही निर्वाचित 10 व्यक्ति मिलकर, ग्राम के कम से कम 1000 व्यक्ति में से ही 5 समितियों को मनोनीत करेंगे। ये 5 समितियाँ क्रम से 1.न्याय-सुरक्षा, 2.उत्पादन-कार्य, 3.विनिमय-कोष, 4.**शिक्षा-संस्कार** और 5.स्वास्थ्य-संयम समितियाँ रहेंगी। इसमें मूलत: महत्वपूर्ण मुद्दा यही है परिवार के सभी सदस्यों को स्वयं पर विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तिव में संतुलन, व्यवसाय में स्वावलंबी, व्यवहार में सामाजिक योग्य क्षमता-योग्यता-पात्रता को स्थापित करने के उपरांत ही परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था सभा का गठन करना सहज है। ऐसे 10-10 व्यक्तियों का 10 ग्राम स्वराज्य परिवार सभाओं में से 1-1 व्यक्ति को निर्वाचित करेंगे। ऐसे 10 व्यक्ति मिलकर एकग्राम समूह परिवार सभा का गठन करेंगे। और इसमें भी पांच आयाम रूपी समितियों को मनोनीत व्यक्तियों से गठित करेंगे। इसी प्रकार क्रम से प्रधान राज्य परिवार सभा का गठन, पाँचों आयाम रूपी समितियों का मनोनयन सम्पन्न होगा। इस धरती पर जितने भी प्रधान राज्य परिवार सभाएं होंगी वे सब अपने-अपने निर्वाचित सदस्यों को पहचानने, इस प्रकार विश्व परिवार सभा व्यवस्था भी मनोनयन पूर्वक 5 व्यवस्था समितियों को गठित करेगा। ये सभी समितियाँ ग्राम से विश्व तक अंतर सम्बन्धित रहना होगा। सभी स्तरीय सभाएं इन पाँचों समितियों का मूल्यांकन करते हुए श्रेष्ठता की ओर कार्य और प्रयोजन पर बल देते रहना बनता है। इस विधि से भविष्य का हर क्षण उत्सव मय होना समझ में आता है। **(अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर: 58-60)**

- इस प्रकार एक परिवार से विश्व परिवार तक सम्बन्ध रचना कार्य सूत्र सम्बन्धी ढांचा स्पष्ट हुई। इसी क्रम में ग्रामोद्योग, कृषि, पशुपालन, कुटीर उद्योग को ऊर्जा संतुलन को सर्वाधिक विश्वसनीय बनाने के लिए जो तकनीकी की धारक वाहकता है वह **शिक्षा परंपरा** में ही रहेगी। प्रत्येक अध्यापक आचार्य विद्वान और मेधावीजन ही उपकार कार्य के रूप में प्रौद्योगिकी योजनाओं को तकनीकी कर्माभ्यासों को जन सामान्य में पहुँचाने का कार्य करते हीरहेंगे। क्योंकि व्यवहारवादी समाज का कार्य व्यवहार विचार अनुसंधान और संधान ही कार्यकलाप के रूप में निरंतर मानव के सम्मुख बना ही रहता है। प्रत्येक व्यक्ति में श्रेष्ठता को प्रमाणित करने का अरमान और निष्ठा स्वीकृत है। इसे प्रमाणित करने का प्रयासोदय प्रत्येक व्यक्ति में समीचीन है। इसीलिए परंपरा जागृत होने के उपरांत ही ये सर्वसुलभ होना अभिप्रेत है। इसी क्रम में आवर्तनशीन अर्थव्यवस्था को व्यवस्था कार्य व्यवहार के अंगभूत रूप में पहचानना एक अनिवार्य स्थिति रही है।

बड़े-बड़े उद्योगों का भी स्थान अवश्य ही बना रहेगा। अधिकांश प्रौद्योगिकियाँ लघु उद्योग सीमा तक ही केन्द्रित होना रहेगा। इन सबका यथावत् संचालन कार्य भी ग्राम स्वराज्य सीमा में सर्वाधिक सम्पन्न होना जैसे-जैसे आगे की सीढ़ियाँ होंगी वैसे-वैसे इनका तादात धटने की व्यवस्था है दिखाई पड़ती है। आवर्तनशीलता क्रम में प्रत्येक सीढ़ी में जिम्मेदारियों का सूत्र या दायित्वों का सूत्र बना ही रहेगा। **शिक्षण संस्थाओं** में सर्वाधिक जिम्मेदारी समायी रहना स्वाभाविक है। **शिक्षा संस्कार** ही स्वायत्त मानव का स्वरूप देने में अथवा स्वरूप को स्थापित करने का सार्थक मानसिकता प्रमाण कार्यप्रणाली है। वस्तु प्रणालियाँ समाहित रहेगी। वस्तु प्रणाली का तात्पर्य जीवन ज्ञान, सह-अस्तित्व दर्शन ज्ञान और मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान ही है। इसका प्रबोधन कार्य प्रणालियाँ पूरकता और आवर्तनशील विधियों से सम्पन्न होता रहेगा। यह नैसर्गिक संतुलन और पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने में सार्थक होगा। **(अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर: 62-63)**

- सम्पूर्ण उत्पादनों को कृषि, पशुपालन और उद्योग के रूप में समझा गया है। कृषि व पशुपालन संबंधी उत्पादन कार्य भी लाभाकांक्षा में आना सहज रहा। बाकी सभी व्यापार कार्य में प्रसक्त हुए। फलत: कृषि भी लाभाकांक्षा से पीड़ित होता रहा। चाहे कृषि उपज हो अथवा प्रोद्योगिकी उपज हो, लाभाकांक्षा बनी ही है। इतना ही नहीं **शिक्षा** और ज्ञान संबंधी आदान-प्रदान भी व्यापारोन्मुखी लाभाकांक्षी संग्रहवादी होने के कारण से भोगोन्मादी समाजशास्त्र का प्रचलन हुआ। इस क्रम में मानव परंपरा भोगवादी-संग्रहवादी सभ्यता के लिए विवश होता गया। उल्लेखनीय तथ्य यही रहा संग्रह का तृप्ति बिन्दु किसी भी देश काल में किसी एक व्यक्ति को भी नहीं मिल पाया। इसका प्रभाव सभी वर्ग पर प्रभावित है। इसमें कुछ लोग ऐसे सोचते हैं कि जितना अध्यात्मवादी विचार और भौतिकवादी विचार इन्हीं में कहीं संतुलन बिन्दु की आवश्यकता है। अध्यात्मवादी विचार के अनुसार अन्तरमुखी विचार होना पाया जाता है और भौतिकवादी विधि से बहिमुर्खी विचार होता है। बर्हिमुखी विचार से विज्ञान का अनुसंधान होता है और अन्तर्मुखी विचार से विज्ञान का विकास नहीं होता है। स्वान्त: सुख या शांति की संभावना बनती है इन कारणों के साथ-साथ मानव को कुछ देर अन्तर्मुखी, कुछ देर बहिर्मुखी रहना चाहिए ऐसी मान्यता पर कुछ लोग अपना मत व्यक्त करते हैं। इस विधि में हर वर्ग, हर तबका, हर जाति, हर संस्कृति यथास्थिति को बनाए रखने के लिए संभावनाओं पर बल देते हैं। इसका प्रबोधन अधिकांश रूप में विज्ञान व्यक्ति जो अपने संग्रह कार्य में जुटे रहते हैं। विद्यार्थियों को इन बातों के लिए प्रेरणा देते हैं। फलस्वरूप ऐसे प्रयासों का निरर्थक होना भावी हो जाता है। इसी क्रम में यह भी बताया करते हैं, ऐसा बैठो, ऐसा सोचो, ऐसा ध्यान करों, किसी एक भंगिमा-मुद्रा में कुछ देर बैठे रहने का अभ्यास होने पर किसी को ध्यान होना-करना मान लेते हैं। यह भी इसके साथ-साथ देखा गया है इन सभी प्रकार की साधनाएं अन्तरतुष्टि का साधन मानी जाती है। जबकि अन्तर्तुष्टि जागृति के रूप में ही होना पाया जाता है। **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 96-97)**

- जब से प्राणावस्था के अन्न-वनस्पति-फल-फूल जल्दी और बड़ा, ज्यादा होने के उद्देश्यों से जितना भी प्रयत्न किया गया, जिसको बहुत गंभीर और जटिल प्रक्रिया मानते हुए उसे संरक्षित कर रखते हुए, इतना ही नहीं उसे विशेषज्ञता के खाते में अंकित करते हुए, उसके सम्मान से प्रलोभित होते हुए जो कुछ भी कर पाए। उन सबके परिणाम में यही देखने को मिला एक गुलाब के फूल को बड़ा बनाने के क्रम में बड़े से बड़े बनाते गए। उसके लिए अधिकाधिक हवा और पानी ग्रहण करने की प्रवृत्ति दिए। फलस्वरूप गुलाब का फूल बड़ा हो गया। उसके गुणवत्ता को नापा गया तब यह पता चला वह अपने स्वरूप में रहते समय जितना भी छोटा या बड़ा था, भौगोलिक और जलवायु के अनुसार, देखी गई थी, उसी के समान उसका गुणवत्ता मिला। इसी प्रकार अंगूर में, टमाटर में, फूलों में और अनाजों में देखा गया। सभी अनाज में पुष्टि तत्व, तैल तत्व प्रधान होना पाया जाता है। इसे कितना भी बड़ा बनाया जाए, मूल पुष्टि तत्व और तेल तत्व उतना का उतना ही रह जाता है। कुछ अनाजों में यह देखा गया है पहले जो सुगंध बनी रहती थी इन प्रक्रियाओं के साथ गुजरने से अपने-आप सुगंध समाप्त हो गई। इन सभी घटनाओं को ध्यान में रखने पर पता चलता है, हम क्रम से भ्रम के बाद भ्रम की ओर चल दिए। यही घटना कृषि के साथ भी हुई। भ्रम का तात्पर्य ही होता है - अधिमूल्यन, अवमूल्यन, निर्मूल्यन। जैसे मानव को समझने के क्रम में निर्मूल्यन, प्रतीक मुद्राओं का

अधिमूल्यन, उपयोगिता मूल्य का अवमूल्यन किया गया एवम् मानव को समझने के मूल में जीव कोटि का मानते हुए झेल लिया। यही निर्मूल्यन होने के फलस्वरूप भ्रम के शिकंजे में कसता ही गया। नैसर्गिकता का अवमूल्यन- मानवेत्तर जीव कोटि वन खनिज के मूल्यों का नासमझी वश दुरुपयोग किया। वन और खनिज के दुरुपयोगिता क्रम में धरती का अवमूल्यन हुआ। मानव जब वैज्ञानिक युग में आया तब से धरती में निहित वन-खनिज संसार पर आक्रमण तेजी से बढ़ाया। उन-उन समय में इसको उपलब्धियाँ मान ली गई। इसके परिणाम में आज की स्थिति में परिवर्तन पाते हैं अथवा दुष्परिणामों को पाते हैं। दूषित हवा, पानी, धरती, अनाज, धरती का वातावरण और दूषित इरादे। लाभोन्मादी, भोगान्मादी, कामोन्मादी **शिक्षा तंत्र**, प्रचार तंत्र और गति माध्यम का दुरुपयोग, ये सब साक्ष्य भ्रमित मानव मानस के उपक्रम के रूप में हम पाते हैं। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:111-112)**

- मानवत्व मानव का 'स्वत्व' होने के आधार पर व्यवस्था का स्वरूप परिकल्पना जागृत मानव में बना ही रहा है। प्रकारान्तर से प्रयोग होता ही रहा है। मानवत्व मानव में स्वीकृत अथवा स्वीकार होने योग्य वस्तु है। यह सर्वसुलभ होने के लिए आवश्यकीय ज्ञान, विवेक, विज्ञान **शिक्षा** की आवश्यकता है। सह-अस्तित्व ही **शिक्षा** का मूल सूत्र है जिसके समर्थन में विकास, जागृति, उपयोगिता-पूरकता और उदात्तीकरण क्रियाकलापों का अध्ययन है। इसी विधि से पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था और ज्ञानावस्था ये सब परस्पर पूरक होना स्पष्ट होता है। फलस्वरूप मानव का व्यवस्था विधि से सम्पन्नता पूर्वक वैभवित होना दिखायी पड़ता है। प्राणावस्था के सम्पूर्ण ऐश्वर्य नियंत्रण प्रणाली से व्यवस्था को प्रमाणित करना सहज हैं। यह बीज-वृक्ष विधि से स्पष्ट हो जाती है। पदार्थावस्था नियम विधि से व्यवस्था के रूप में प्रमाणित है यह परिणामानुषंगी विधि से स्पष्ट है। जबकि मानव संस्कारानुषंगीय जागृति सहज विधि से परिवार रूपी व्यवस्था एवं समग्र व्यवस्था में भागीदारी की आवश्यकता एवं संभावना समीचीन है। मुख्यत: मानव जीवन जागृति सहज समझ प्रधान संस्कारानुषंगीय अभिव्यक्ति होना, संपूर्ण जीव वंशानुषंगीय अभिव्यक्ति होना, संपूर्ण प्राणावस्था बीजानुषंगीय अभिव्यक्ति होना, सम्पूर्ण पदार्थावस्था परिणामानुषंगीय व्यवस्था होना देखा गया है। अतएव सभी अवस्थाएँ अपने-अपने में मौलिक होना स्वाभाविक है। मानव भी अपने मौलिकता को पहचानने-निर्वाह करने, जानने-मानने के क्रम में झेलता ही रहा। भले ही भ्रमपूर्वक क्यों न हो भ्रम की पीड़ा से पीड़ित होने के उपरांत निर्भ्रमता समीचीन है ही। अतएव निर्भ्रमता प्रमाणों में से एक प्रमाण आवर्तशील अर्थशास्त्र और व्यवस्था भी है। इसे हृदयंगम करने के उपरांत हर मानव परिवार में समृद्धिपूर्वक जीना सहज है। इस विधि से जागृति क्रम में मानव चलकर जागृति और उसकी निरंतरता के पद में संरक्षित, नियंत्रित हो पाना स्पष्ट हुआ। इस से मानव पूरकता विधि से मानवेत्तर प्रकृति के साथ सह-अस्तित्वशील होने का स्वरूप अध्ययनगम्य होता है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:113-115)**

- प्रौद्योगिकी विधा से गुजरता हुआ आज का मानव भय-प्रलोभन के स्थान पर न्याय की आवश्यकता पर ध्यान देने योग्य हुआ। क्योंकि प्रौद्योगिकीय कार्यवाही क्रम में समृद्ध, संतुलित धरती का शक्ल बिगड़ गयी। युद्ध सम्बन्धी आतंक परस्पर समुदायों में पहले से ही रहा। उसी के साथ-साथ धरती और धरती के वातावरण सम्बन्धी असंतुलन का भय और धीरे-धीरे गहराता जा रहा है। इसी के साथ-साथ जनसंख्या बहुलता, मानव चरित्र और प्रौद्योगिकी के योगफल में अनेकानेक रोग और विपदाओं का सामना करता हुआ वर्तमान में मानव कुछ प्रतिशत विद्वान, मनीषी विकल्प के पक्षधर हैं या आवश्यकता को अनुभव करते हैं। इसी बेला में विकल्प की सम्भावना समीचीन हो गया। ये तो सर्वविदित है कोई भी अनुसंधान-अध्ययन विधि पूर्वक प्रस्तुत होने पर **शिक्षा** संस्थाओं के माध्यम से लोकव्यापीकरण की आशा की जाती है। अध्ययनकारी विधि को इस प्रकार सोचा गया है कि तर्क संगत प्रणाली सत्य समझ में आने के विधि, संगीतीकरण की अपेक्षा अभी तक की अध्यवसायिक मन:पटल में आ चुकी है। यह भी मान्यता है सत्य है। सत्य क्या है? इसका उत्तर अभी तक शोध के गर्भ में ही निहित है। अतएव विकल्प के रूप में अस्तित्वमूलक, मानव केंद्रित चिंतन प्रस्ताव के रूप में मानव सम्मुख प्रस्तुत हुआ है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:128-129)**

- हर व्यक्ति में निपुणता-कुशलता-पांडित्य सहज धारक वाहकता संभव और समीचीन है। यह सर्ववांछा भी है। इनमें से निपुणता-कुशलता, पाण्डित्य का प्रयोग और प्रमाण अकेले व्यक्ति या परिवार में नहीं होती। क्योंकि निपुणता-कुशलता-पांडित्य सम्पन्नता ओर उसका क्रियाकलाप अकेले में नहीं हो पाती और प्रमाणित नहीं होता। इसके विपरीत अकेले में प्रमाणित होने की सभी परिकल्पनाएँ भ्रम होना स्पष्ट है। इस प्रकार निपुणता, कुशलता, पांडित्य का उपार्जन एक से अधिक मानव (समुदाय) अथवा संस्थान में ही संभव होना पाया जाता है। जैसे कुछ भी स्वीकार्य योग्य संस्कारों को संस्कार ग्राही-संस्कार प्रदायी घटना के रूप में **शिक्षा-शिक्षण** कार्य में ग्राही-प्रदायी व्यक्तियों को अलग-अलग देखा जाता है। इस क्रम में निपुणता-कुशलता-पांडित्य को प्रमाणित करने के लिए व्यवस्था प्रणाली जिसका स्वरूप स्वराज व्यवस्था प्रणाली है यह प्रमाणित होने के लिए 'परिवार समूह' का होना आवश्यक है।

स्वराज्य का परिभाषा ही है स्वयं का वैभव को प्रमाणित करने का सम्पूर्ण दिशा-कोण-आयाम-काल-परिप्रेक्ष। वैभव का स्वरूप न्याय-सुलभता, उत्पादन सुलभता-विनिमय सुलभता ही है। ऐसे वैभव का नित्य स्रोत मानव कुल में **शिक्षा-संस्कार**, स्वास्थ्य-संयम कार्यप्रणाली है। अस्तु,"स्वराज्य के अंगभूत विधि से ही आवर्तनशील अर्थशास्त्र का अध्ययन मानवीयतापूर्ण होना सहज है।" इतना ही नहीं अर्थात् केवल आवर्तनशील अर्थ-शास्त्र ही स्वराज्य का संपूर्ण सूत्र न होकर समाज शास्त्र, संविधान शास्त्र, मनोविज्ञान शास्त्र, उत्पादन-कार्य शास्त्र ये सब स्वराज्य का अंगभूत होना पाया जाता है। इसी के साथ-साथ सटीक अध्ययन करने के लिए और दर्शन इन शास्त्रों की पुष्टि के लिए तर्कसंगत विचारों को पाना भी एक अनिवार्यता बना रहता है इसे प्रस्तावित किये है। न्याय और समाधानपूर्ण सह-अस्तित्ववादी मानव इकाई का अध्ययन और साम्य ऊर्जा में संपृक्त प्रकृति रूपी अस्तित्व में से साम्य ऊर्जामयता को अध्यात्म, ईश्वर, परमात्मा, शून्य आदि के नामों से जानने की विधि में अनुभव अर्थात् मानव में होने वाली अनुभव और उसके प्रमाणों का अध्ययन आवश्यक है। यही तर्कसंगत विचारों का आधार भी होना पाया जाता है। जिससे उपर कहे शास्त्रों का पुष्टि होना देखा गया है। इस विचार के मूल में ही अनुभव रूपी दर्शन का महिमा देखा गया है जिसको इंगित करने के लिए, हृदयंगम करने के लिए मध्यस्थ दर्शन सहज रूप में ही मध्यस्थ सत्ता, मध्यस्थ क्रिया, मध्यस्थ जीवन का प्रतिपादन के रूप में व्यवहार, कर्म, अभ्यास और अनुभव दर्शन के रूप में समीचीन हुई अर्थात् उपलब्ध हो गई है। इस प्रकार परम सत्य को जानने-मानने के लिए दर्शन, उसे तर्कसंगत अर्थात् -विज्ञान सम्मत विवेक, विवेक सम्मत विज्ञान विधि से संप्रेषित करने के लिए विचार, सत्यमयता को तर्कसंगत विचार प्रणाली पूर्वक व्यवहार विधा में अर्थात् परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में प्रमाणित करने के क्रम में शास्त्रों का होना मानव परंपरा सहज आकांक्षा, आवश्यकता और उपलब्धियाँ हैं। इस प्रकार परम सत्य रूप में सह-अस्तित्व है। अस्तित्व में मानव भी एक अविभाज्य इकाई है। इसी विधि से यह भी हम पाते हैं अस्तित्व में प्रत्येक एक अपने 'त्व' सहित व्यवस्था के रूप में होना सत्य है। इन्हीं दो (परम सत्य और सत्य) तथ्यों के आधार पर प्रत्येक एक का लक्ष्य आचरण और प्रमाण ही केवल व्यवस्था सहज आधार होना पाया जाता है। इस नजरिया से मानव मानवत्व सहित जीने की कला क्रम में, दूसरे भाषा से मानवत्व सहित प्रमाणित होने के क्रम में, सत्य को समझना परमावश्यक रहा है यही जागृति सहज प्रमाण हैं। अस्तित्व न तो रहस्य है न ही दुरुह-जटिल है। अस्तित्व को सत्ता में संपृक्त प्रकृति के रूप में हर व्यक्ति समझने योग्य है और अस्तित्व ही सह-अस्तित्व होने के कारण पदार्थ, प्राण-जीव अवस्था के साथ-साथ ज्ञानावस्था में स्वयं को पहचान पाना सहज है। सह-अस्तित्व में ही व्यवस्था सर्वत्र-सर्वदा वैभवित है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:131-133)**

- मानव अपने परंपरा में व्यवस्था के रूप में जीने के लिए जागृत होना एक अनिवार्यता-आवश्यकता बनी रही। परंपरा के रूप में जागृति का तात्पर्य सत्य परंपरा में प्रवाहित रहने से ही है। मानव परंपरा में सत्य प्रवाहित रहने का प्रमाण **शिक्षा** में परम-सत्य रूपी अस्तित्व ही सह-अस्तित्व के रूप में व्याख्यायित होना और बोध अनिवार्य रहा। इसी के फलस्वरूप मानवीय संस्कार को परंपरा के रूप में वहन करना स्वाभाविक है। **मानवीय शिक्षा-संस्कार की परिणती ही परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था और मानवीय आचार संहिता रूपी संविधान सहज ही प्रवाहित होता है। इसीलिए शिक्षा-संस्कार में सह-अस्तित्व दर्शन ज्ञान को परम दर्शन के रूप में, जीवन ज्ञान को परम ज्ञान के रूप में, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान को परम आचरण के रूप में वहन करना मानवीयतापूर्ण परंपरा की गरिमा और महिमा**

है। महिमा का तात्पर्य समझदारी सहित जागृतिपूर्वक व्यवस्था के रूप में जीना और समग्र व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करना ही है। गरिमा का तात्पर्य प्रामाणिकता और उसकी निरंतरता को बनाए रखने से है। यह भी इंगित किया जा चुका है न्याय सुलभता, विनिमय सुलभता और उत्पादन सुलभतापूर्वक ही मावीयतापूर्ण व्यवस्था को पहचाना जा सकता है। फलस्वरूप समग्र व्यवस्था में भागीदारी का सौभाग्य उदय होना पाया जाता है। यह भी स्पष्ट हो चुका है हर मानव जागृत होना चाहता है, प्रामाणिक होना चाहता है, व्यवस्था में ही जीना चाहता है। इस विधि से प्रत्येक व्यक्ति की साम्य-कामनाएँ मानव परंपरा का अथवा मानव पंरपरा सहज लक्ष्य का आधार है। अतएव मानव परंपरा में से के लिए परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था ही एकमात्र शरण है। ऐसी व्यवस्था में आवर्तनशील अर्थ व्यवस्था एक अनिवार्य आयाम है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:133-135)**

- उपयोगिता और कला मूल्य का मूल्यांकन होना सहज है। इसी मूल्यांकन क्रिया को श्रम मूल्य का नाम दिया। उत्पादन क्रम में अनेक वस्तुएं होना पाया जाता है। यह महत्वाकांक्षा और सामान्य आकांक्षा के रूप में वर्गीकृत है। इनमें से सामान्य आकांक्षा सम्बन्धी किसी वस्तु का उसमें भी किसी एक आहार वस्तु का मूल्यांकन सर्वप्रथम करना आवश्यक है। इस क्रिया को इस प्रकार किया जा सकता है कि जैसे गेहूँ को एक गाँव में कई परिस्थितियों में बोया जाता है। उत्पादन भी विभिन्न तादादों में होता है। उसका सामान्यीकरण उत्पादन तादातों के मध्य बिन्दु में सामान्य मूल्य रूप होना सहज है। जब एक वस्तु का उपयोगिता व कला मूल्य का मूल्यांकन हो जाता है, उसी प्रकार गाँव में उत्पादित हर वस्तु का मूल्यांकन हर स्वायत्त मानव से सम्पन्न होना स्वाभाविक है। ऐसे स्वायत्त मानव ही परिवार मानव और विश्व परिवार मानव तक अपने वर्चस्व को अथवा अपने वैभव को प्रमाणित करना संभव होने के कारण परिवार समूह, ग्राम परिवार तक एक गाँव में ही मूल्यांकन क्रिया का ध्रुवीकरण हो पाता है। फलस्वरूप ग्राम में उत्पादित वस्तुओं का विनिमय गाँव में होने में कोई अड़चन नहीं रह जाती है। परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था का प्रमाण कम से कम एक गाँव से ही होना संभव है। इसीलिए परिवार मूलक विधि से ही यह सफल होना एक निश्चित विधि है। परिवार सफलता के लिए अर्थात् परिवार स्वायत्तता के लिए स्वायत्त मानव का स्वरूप, उसकी सार्वभौमता अनिवार्य है। स्वायत्त मानव का स्वरूप प्रदान करने का प्रेरक तत्व ही **मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार** परंपरा है। **मानवीयता पूर्ण शिक्षा-संस्कार** परम्परा का मूल वस्तु अथवा सम्पूर्ण वस्तु जीवन-ज्ञान, अस्तित्व दर्शन और मानवीयतापूर्ण आचरण ही है। आज की स्थिति में भय और आस्था दोनों प्रलोभन के चक्कर में आकर अस्वीकृत होते जा रहे हैं। प्रलोभन की आपूर्ति का स्रोत और संभावना दोनों न होने के कारण, दूसरा उसकी तृप्ति बिन्दु न होने के कारण पागलपन छा जाना आवश्यंभावी रही है। अतएव इससे मुक्ति पाने के लिए कुछ लोग इच्छा रखते हैं। अधिकांश लोग निराशा, कुण्ठा ग्रसित हो चुके हैं। ऐसी स्थिति में हर मोड़-मुद्दे में विकल्प की आवश्यकता है ही। यहाँ की प्रासंगिकता आवर्तनशील अर्थशास्त्र और कार्यक्रम से यह सारी परेशानियाँ दूर होकर स्वस्थ अर्थात् समाधानित, समृद्ध, अभय, सह-अस्तित्वशील परिवार को साकार कर लेना संभव हो गया है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:137-138)**

- परिवार मूलक ग्राम स्वराज्य सभा अपने ही ग्राम के व्यक्तियों में से 5 समितियों को गठित करेगा। यह प्रधानत:- (1) न्याय-सुरक्षा करेगा अथवा न्याय सुरक्षा को संतुलित बनाए रखेगा, (2) उत्पादन-कार्यकलाप को संतुलित बनाए रखेगा, (3) विनिमय कोष कार्यों को संतुलित बनाए रखेगा, (4) **शिक्षा-संस्कार** कार्य को संतुलित बनाए रखेगा और (5) स्वास्थ्य-संयम कार्यों को संतुलित बनाए रखेगा। इन्हीं कार्यकलापों के आधार पर क्रमश: (1) न्याय-सुरक्षा समिति (2) उत्पादन-कार्य समिति (3) विनिमय-कोष समिति (4) **शिक्षा-संस्कार** समिति और (5) स्वास्थ्य-संयम समिति नामकरण होगा। कार्य और नाम से यह सुस्पष्ट है कि इस स्वरूप के साथ मानव प्रयोजन, आवश्यकता और अनिवार्यता को अनुभव कर सकता है। इसी क्रम में विश्व परिवार सभा तक 5-5 समितियों का गठन होना सहज है। और हर समिति हर स्तरीय समिति एक दूसरे के साथ संचार और अनुप्राणन संबंध को बनाए रखेंगे। इसमें से विनिमय कोष समिति के द्वारा विनिमय कार्यों को गाँव में और एक-दूसरे गाँव के साथ सार्थक होगी। हर गाँव

में ग्राम सभा ही वस्तु मूल्यों का मूल्यांकन, उसका ध्रुवीकरण क्रियाकलापों की विधि पर निर्णय लेगा। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:139-140)**

- मानव में यह देखा गया है इस धरती की अधिकाधिक हर वस्तु को उपभोग करने के क्रम में धरती का शोषण पूर्वक व्यवसाय किया। दोहन, संग्रहण क्रम में लाभ के आधार पर मानव ही मानव को बेचकर संग्रह, संघर्ष, भोगाभिलाषाओं को पूरा करने के लिए सुदूर विगत से प्रयत्न किया। ये अभिलाषाएँ कहीं अपने तृप्ति बिन्दु तक पहुँच नहीं पायी। तृप्ति सर्वसुलभ होने की स्थिति बन नहीं पायी। इससे सुस्पष्ट है मानव-मानव को, अस्तित्व को, जीवन को, जागृति को न समझते हुए भी विद्वता का अर्थात् ज्ञानी-विज्ञानी होने को स्वीकार करता रहा। उक्त चारों मुद्दों से इंगित तथ्य अभी तक न तो **शिक्षा** में आया है, न तो **शिक्षा** में प्रचलित है, न ही व्यवहार में मूल्यांकित है, इतना ही नहीं राज्य संविधानों में और धर्म संविधानों में उल्लेखित नहीं हो पाया है। व्याख्यायित-सूत्रीत नहीं हो पाया है। इन गवाही के साथ उपर किया गया समीक्षा स्पष्ट हो जाता है। जीवन, जीवन जागृति, सह-अस्तित्व और मानव के अध्ययन के उपरान्त ही जीवन और जागृति सर्वमानव में, से, के लिए समानता का तथ्य लोकव्यापारीकरण होना दिखाई पड़ती है। यहाँ समझने का तात्पर्य समझाने योग्य परंपरा से ही है। **शिक्षा-संस्कार** परंपरा ही इसके लिए प्रधान रूप में उत्तरदायी है। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:144-145)**

- विज्ञान युग आने के उपरांत **उन्माद त्रय** का लोकव्यापीकरण कार्यों में **शिक्षा** और युद्ध एवं व्यापार तंत्र का सहायक होना देखा गया। यही मुख्य रूप में धरती को तंग करने में सर्वाधिक लोगों के सम्मतशील होने में प्रेरक सूत्र रहा। यह समीक्षीत होता है कि सर्वाधिक मानव मानस वन, खनिज अपहरण कार्य में सम्मत रहा। तभी यह घटना सम्पन्न हो पाया। यहाँ इस बात को स्मरण में लाने के उद्देश्य से ही जन मानस की ओर ध्यान दिलाना उचित समझा गया कि धरती का पेट फाड़ने की क्रिया को मानव ने ही सम्पन्न किया। इस धरती का या हरेक धरती का दो ध्रुव होना आंकलन गम्य है। मानव इस मुद्दे को पहचानता है। इस धरती के दो ध्रुवों को मानव भले प्रकार से समझ चुका है। इसी को दक्षिणी ध्रुव-उत्तरी ध्रुव कहा जाता है। इसे पहचानने के क्रम में धरती के सम्पूर्ण द्रव्यों और वस्तुओं के साथ-साथ उत्तर के ओर चुम्बकीय धारा प्रवाह और प्रभाव बना ही रहती है। ये धारा प्रवाह धरती ठोस होने का आधार बिन्दु है। क्योंकि परमाणु में ही भार बंधन, अणु-बंधन के कार्य को देखा जाता है। यही क्रम से ठोस होने के कार्यकलापों को सम्पादित कर लेता है। शरीर रचना में सभी अंग-अवयव एक साथ रचना क्रम में समृद्ध होकर सर्वांग सुन्दर हो पाता है। इसी क्रम में अपने आप में सर्वांग सुन्दर होने के कार्यकलाप क्रिया को यह धरती स्पष्ट कर चुकी है। इसके प्रमाण में ठोस, तरल, विरल और रासायनिक-भौतिक रचना-विरचना धरती के सतह में नित्य प्रसवन के रूप में सम्पन्न होता हुआ देखा जाता है। यह भी हमें पता है यह धरती के पेट में से जो कुछ भी बाहर करना होता है वह स्वयं प्रयास से ही अथवा स्वयं के निश्चित कार्यकलाप के प्रणालीबद्ध विधि से भूकम्प एवं ज्वालामुखी बाहर कर देता है। इससे हमें यह मालूम होता है कि धरती के लिए आवश्यकीय सभी खनिज वस्तु धरती के पेट में ही समायी रहती है। यह अपने सम्पूर्ण तंदुरस्ती को व्यक्त करने के क्रम में धरती पर अथवा धरती की सतह पर रासायनिक-भौतिक रचना-विरचनाएँ सम्पन्न हो पाती है। प्राणावस्था के अनंतर ही इस धरती पर ऋतुक्रम का प्रभाव, उसी क्रम में जीवावस्था और ज्ञानावस्था का शरीर रचना क्रमश: रचना क्रम में श्रेष्ठताएँ स्थापित हुई। जीवन किसी निश्चित सह-अस्तित्व विधिपूर्ण वातावरण को पाकर ही गठनपूर्णता सम्पन्न होने की क्रिया भी प्राकृतिक विधि से स्थापित है। परमाणु में विकासपूर्णता और उसकी निरंतरता ही जीवनपद है। यही चैतन्य इकाई है। यह अणुबन्धन-भारबन्धन से मुक्त रहने के कारण एवं आशा, विचार, इच्छा बन्धन से संयुक्त रहने के कारण भ्रम-मुक्ति की अपेक्षा बने रहने के कारण मानव परंपरा में जीवन शरीर को संचालित करना सह-अस्तित्व सहज प्रभाव और उद्देश्य भी है।

जीवन में ही आशा, विचार, इच्छा बन्धन से ही भ्रमित होकर उन्मादत्रय विधि से जो कुछ भी धरती के साथ मानव कर बैठा है वह इस प्रकार से अलंकारिक स्वरूप में है कि सर्वांगसुन्दर मानव के आंतों को अथवा गुर्दों को, अथवा हृदयतंत्र को बाहर करने के उपरान्त सटीक शरीर व्यवस्था चलने की अपेक्षा करना जितना मूर्खता भरी होती है वैसे ही धरती के आन्त्र तंत्रों को अर्थात् भीतर की तंत्रण द्रव्यों को बाहर करने के उपरान्त स्वस्थ्य धरती की अपेक्षा रखना

भी उतनी ही मूर्खता है। ये सब कहानियों के मूल में सार संक्षेप यही है मानव "उन्मादत्रय, तकनीकी, ह्रासविधि ज्ञान रूपी विज्ञान" के संयुक्त रूप में जो कुछ भी क्रिया कलाप कर पाया वह सब सर्वप्रथम धरती के सर्वांगसुन्दरता और स्वस्थ्ता के विपरीत होना आकलित हो चुकी है।

धरती का ठोस होने के क्रम में दो ध्रुव स्थापित होना, परमाणुओं का भारबल सह-अस्तित्व प्रभावी अणु संघटन क्रिया कलाप में यह धरती अपने ठोस रूप को बनाए रखा है। ऐसी सर्वांग सुन्दर धरती में छेद करते-करते एक से एक गइराई में पहुँचकर चीजें निकालने की हविस पूरा किया जा रहा है। हविस का तात्पर्य शेखचिल्ली विधि से है। इन सभी कार्यों के परिणामस्वरूप जितने भी खतरे ज्ञात हो चुके हैं, उससे अधिक भी हो सकते है, इस तथ्य को स्वीकारा जा सकता है। धरती ठोस होने के क्रम में भारबन्धन सूत्र से सूत्रित होने के क्रम में सतह पर उसका प्रभाव स्थापित रहना सहज है। ऐसी चुम्बकीय धारा का मध्यबिन्दु, इस धरती के मध्य में ही होना स्वाभाविक है। तभी ध्रुवस्थापना का होना पाया जाता है। इस धरती में दोनों ध्रुव बिन्दु है। इसीलिए चुम्बकीय धारा का मध्य बिन्दु ध्रुव से ध्रुव तक स्थिर रहना आवश्यक है। इसी ध्रुवतावश ही यह धरती अपने सर्वांगसुन्दर स्वस्थ्यता को बनाए रखने में सक्षम, समृद्ध होने में तत्पर रही ही है। विज्ञान युग के अनन्तर ही सर्वाधिक स्थान पर धरती का पेट फाड़ने का कार्यक्रम सम्पन्न होता आया। इसी क्रम में धरती के मध्य बिन्दु में जो चुम्बकीय धारा ध्रुव रूप में स्थित है वह विचलित होने की स्थिति में यह धरती अपने में से में ही बिखर जाने में देर नहीं लगेगी । इस खतरे के संदर्भ में भी मानव अपने ही कर-कमलों से किये जाने वाले कार्यों के प्रति सजग होने की आवश्यकता है। दूसरे प्रकार के खतरे की ओर ध्यान जाना भी आवश्यक है। पहले वाला करतूत से संबंधित है तो दूसरा खतरा परिणाम से है।

इस धरती के मानव अभी तक इस बात को तो पहचान चुके है कि इस धरती के वातावरण में प्रौद्योगिकी विधि से विसर्जनीय तत्वों के परिणामस्वरूप जल-वायु-धरती प्रदूषित विकृत हो चुकी है। यह होते ही रहेगा। इसी क्रम में धरती के वातावरण में उथल-पुथल पैदा हो चुकी है। यह भी ज्ञात हो चुका है प्राणरक्षक विरल पदार्थों का, द्रव्यों की क्षति हो रही है। वनस्पति संसार भी सेवन करने में और उसे प्राणवायु के रूप में परिवर्तित करने में अड़चन, अवरोध पैदा होता जा रहा है। इसी क्रम में धरती के वातावरण में स्थित वायुमंडल में विकार पैदा हो चुकी है और ऊपरी हिस्सा क्षतिग्रस्त हो चुकी है। इसका क्षतिपूर्ति अभी जैसा ही मानव संसार रासायनिक उद्योगों के पीछे लाभ के आधार पर पागल है और खनिजतेल और कोयला का उपयोग करने के आधार पर प्रदूषण और धरती का वातावरण में क्षतिपूर्ति की कोई विधि नहीं है। यह भी पता लग चुका है। इसके बावजूद उन्मादवश प्रवाहित होते ही जाना बन रहा है। इस क्रम में एक सम्भावना के रूप में एक खतरा अथवा अवर्णयीय खतरा दिखाई पड़ती है। वह है, इस धरती में जब कभी भी पानी का उदय हुआ है, रासायनिक प्रक्रिया की शुभ बेला ही रही है। पानी बनने के अनन्तर ही यह धरती रासायनिक रचना-विरचना क्रम को बनाए रखने में सक्षम हुई है। यह संयोग ब्रह्माण्डीय किरणों के संयोग से ही सम्पन्न होना सहज रहा है। इस विधि से समझने पर धरती के वातावरण में जो विरल वस्तु का अभावीकरण हो चुका है या होता जा रहा है, वही विशेषकर ब्रह्माण्डीय किरणों को और सूर्य किरणों को धरती में पचने का रूप प्रदान कर देता है। इसी विधि से ब्रह्माण्डीय किरणों के संयोगवश पानी का उदय हुआ, वह निकल जाने के उपरान्त अथवा और कुछ वातावरण में विकार के उपरान्त यदि वही ब्रह्माण्डीय किरण, सूर्य किरण पानी में सहज रूप में होने वाली रसायनिक गठन के विपरीत इसे विघटित करने वाली ब्रह्माण्डीय किरणों का प्रभाव पड़ना आरंभ हो जाए उस स्थिति को रोकने के लिए विज्ञान के पास कौन सा उपहार है ? इसके उत्तर में नहीं-नहीं की ही ध्वनि बनी हुई है। तीसरा खतरा जो कुछ लोगों को पता है, वह है यह धरती गर्म होते जाए, ध्रुव प्रदेशों में संतुलन के लिए बनी हुई बर्फ राशियाँ गलने लग जाए तब क्या करेंगे ? तब विज्ञान का एक ध्वनि इसका उपचार के लिए दबे हुए स्वर से निकलता है- बर्फ बनने वाली बम डाल देंगे । इस ध्वनि के बाद जब प्रश्न बनती है, कब तक डालेंगे ? कितना डालेंगे ? उस स्थिति में अनिश्चयता का शरण लेना बनता है। इन सभी कथा-विश्लेषण समीक्षा का आशय ही है **हम सभी मानव उन्मादत्रय से मुक्त होना चाहते हैं, मुक्त होना एक आवश्यकता है,** इस आशय से धरती के सतह में समृद्धि, समाधान, अभय, सह-अस्तित्वपूर्वक जीने की कला को विकसित करना आवश्यक है। यही सर्वोपरि बेहतरीन जिन्दगी का शक्ल है। इसमें मानव कुल से द्रोह, विद्रोह, शोषण और युद्ध सर्वथा विसर्जनीय है। **(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर:166-172)**

- शक्ति केंद्रित आधारों पर पंचायती राज्यों, ग्राम पंचायतों, ग्राम समितियों के नाम से, रूप से सोचा गया है। यह सूझबूझ भी यथावत् शक्ति केंद्रित होने के कारण शासन संघर्ष, द्रोह-विद्रोह प्रकट होना देखा गया। अतएव इन सब का विकल्प सार्वभौम व्यवस्था मानसिकता ज्ञान विवेक विज्ञान पूर्वक सम्पन्न होना ही एक मात्र शरण है। ऐसी शरणस्थली को पाना, सम्पन्न होना, समृद्धि होना, इसका धारक वाहकता में हर व्यक्ति का भागीदार होना ही इसका गति है। ऐसी गति सम्पन्नता ही मानवाधिकार कहलाता है। यही चेतना विकास मूल्य **शिक्षा** पूर्वक सफल होने का प्रस्ताव है। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:174-175)**

- मानव ही जागृतिपूर्वक धरती का संतुलन को बनाए रख पाता है। भ्रमित होकर धरती के साथ सारा अत्याचार किया। भय और प्रलोभन दोनों भ्रम का ही द्योतक है। भय और प्रलोभन से अधिकांश लोग पीड़ित हैं साथ ही सर्वाधिक लोग ग्रसित हैं। यह अन्तर्विरोध का कारण बनी हुई है। इसके आगे आस्थाएँ मानव परिकल्पना में आयी, वह भी भय और प्रलोभन में चक्कर काटता हुआ देखने को मिली। दूसरे भाषा में इसका प्रमाण परंपरा स्थापित नहीं हो पाया। इसीलिए आस्था के नाम से कितने भी प्रयास हुए उनका अंतिम परिणाम भय और प्रलोभन के रूप में गण्य हुआ। इन सभी घटनाओं के चलते मानव में मानवीयता का अनुसंधान अपेक्षित रहा। यह जीवन ज्ञान, सह-अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान सहज रूप में प्रत्येक मानव के स्वीकृति सहज रूप में विवेक-विज्ञान पूर्वक व्यवहार में प्रमाणित होता है। इस क्रम में मानवीयतापूर्ण आचरण ही मानव का शरण है, गरिमा-महिमा है, जागृति को प्रमाणित करने के लिए परमावश्यक है। प्रत्येक मानव में जीवन ज्ञान पूर्वक अस्तित्व दर्शन ही है। यही सम्पूर्ण ज्ञान, विवेक और विज्ञान सम्मत तर्क विधि से मानवीयतापूर्ण आचरण में निरंतर प्रवर्तित करना पाया जाता है। मानव के सर्वेक्षण से पता लगता है प्रत्येक मानव जागृत होना चाहता है। इस क्रम में **मानवीय शिक्षा** द्वारा ही इन ज्ञान-विज्ञान विवेक का लोकव्यापीकरण सहज है और आवश्यकता भी है। इन्हीं तथ्यों पर आधारित आवर्तनशील अर्थशास्त्र मानवीयतापूर्ण परंपरा में, से, के लिए प्रस्तुत है। इसी से अथवा इसी विधि से मानवीयतावूर्ण आचरण, विचारपूर्वक समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व का अनुभव सर्वसुलभ होना भावी और समीचीन है। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:178-179)**

- अभी तक विविध प्रकार की परंपराएँ स्थापित रहते हुए भी सार्वभौम शुभ किसी परंपरा में स्थापित नहीं हुई। इसलिए किसी परम्परा को मानवीयतापूर्ण परम्परा में ध्यान देने की आवश्यकता समीचीन हुई। हर परम्परा प्रकारान्तर से भ्रमित रहने के उपरांत ही असमानताएँ भ्रमात्मक कर्मों का प्रेरणा और प्रभाव **शिक्षा**, संस्कार, संविधान, व्यवस्था और प्रचार तंत्र के मंशा पर आधारित रहती है। अंततोगत्वा संग्रह और भोग ही मानव परंपरा को हाथ लगी। इन दोनों मुद्दों पर ज्यादा और कम की बात प्रभावित होता ही है। इन दोनों विधाओं में तृप्ति बिन्दु कहीं मिलता नहीं है। यही तथ्य परंपरागत उक्त पाँचों प्रकार के प्रयास भ्रमात्मक होने का प्रमाण है। उल्लेखनीय घटना यही है सर्वमानव शुभ चाहते हुए भी भ्रम से ग्रसित हो जाता है। इसी भ्रमवश ज्यादा और कम वाला भूत भय और प्रलोभन के आधार पर ही बन बैठा है। इसका निराकरण, तृप्ति स्थली को परम्परा में पहचानना ही है, निर्वाह करना ही है। जानना-मानना ही है।

इसके तृप्ति स्थली को हर मानव इस प्रकार देख सकता है और जी सकता है कि स्वयं में विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवसाय (उत्पादन) में स्वावलंबी, व्यवहार में सामाजिक होने के उपरांत व्यक्ति स्वायत्त होता है और परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होता है। यही वांछित, आवश्यकीय, सार्वभौम मानव का स्वरूप और गति स्पष्ट हो जाती है। परिवार मानव में राग-द्वेष का पूर्णतया उन्मूलन हो जाता है। समझदारी का स्त्रोत **मानवीयता पूर्ण शिक्षा-संस्कार** ही है। जागृति के अनन्तर भ्रम का प्रभाव निष्प्रभावी होना स्वाभाविक है। भ्रमवश ही राग द्वेष से मानव पीड़ित रहता है। इस बात का सम्मति प्राचीन काल से भी स्वीकृत है। भ्रम निवारण की अथवा जागृति के लिए मार्ग प्रशस्त न होने के फलस्वरूप निषेधनी को बताकर ज्ञान होने की आशा

बंधाए रखे थे। ऐसी आशा के अनुरूप घटनाएँ घटित नहीं हो पाई, क्योंकि जागृति की आवश्यकता रही। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:180-181)**

- परिवार और व्यवस्था अविभाज्य है। परिवार हो, व्यवस्था नहीं हो और व्यवस्था हो परिवार नहीं हो, ये दोनों स्थितियाँ भ्रम का द्योतक है। पूर्वावर्ती आदर्शवादी और भौतिकवादी विचारों के आधार पर सभी शक्ति-केन्द्रित शासन अवधारणाएँ परिवार के साथ सूत्रित होना संभव नहीं हो पाई। हर परिवार में कुछ संख्यात्मक व्यक्तियों को और उनके परस्परता में सेवा, आज्ञा पालन, वचनबद्धता को पालन करता हुआ, निर्वाह किया हुआ भी उल्लेखित है, दृष्टव्य है। इनमें श्रेष्ठता की ऊचाइयाँ भी उल्लेखों में दिखाई पड़ती है। साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इनमें से किसी आदर्श का गति अनेक नहीं हो पायी। यही बिन्दु में हम और एक तथ्य पर नजर डाल सकते हैं। बहुतायत रूप में अच्छे आदमी हुए हैं और अच्छी परम्परा नहीं हो पायी। क्योंकि जबसे मानव समुदायों में राज्य और धर्म की दावा समायी है तब से अभी तक शक्ति केंद्रित शासन ही रहा है। इसकी गवाहियाँ धर्म-संविधान और राज्य संविधान ही है। ऐसे धर्म और राज्य संविधान की मंशा के बारे में हम पहले से स्पष्ट हो चुके हैं। इन दोनों प्रकार संविधानों के प्रभावित रहते भय और प्रलोभन का ही प्रचार होना समीचीन प्रवर्तन रहा है। कला, साहित्य, शास्त्र, विचार, दर्शन सभी भय और प्रलोभन से भरे पड़े हैं अथवा इसी के परस्त होकर बैठ गए हैं। इन स्मरणों के साथ साथ उल्लेखनीय तथ्य इतना ही है कि इस धरती पर स्थित मानव परंपरा में भय और प्रलोभन के रहते, इस धरती का संतुलन-ज्ञान सम्पन्न होना, मानव द्वेष विहीन अथवा राग द्वेष विहीन परिवार का होना, अखण्ड समाज होना, सार्वभौम व्यवस्था होना सर्वथा संभव नहीं है। इसके स्थान पर इसी के पीछे विद्वता का परिकल्पना ज्ञान-रसायन, कर्मों का दुहाई, पाप-पुण्य का नारा ही हाथ लगा रहेगा अथवा सभी मानव मन में घर किया रहेगा। फलस्वरूप शुभ के स्थान पर अशुभ घटनाएँ दुहराते ही रहेगा। इस ढंग से परम्परा भ्रमित रहने के आधार पर मानव अपने में से जागृत होने का रास्ता समाप्त प्राय होता है। यह सब स्थितियाँ रहते हुए भी कोई न काई मानव चिंतन को आगे बढ़ाने, विकल्प को प्रस्तुत करने का यत्न-प्रयत्न करता है। इसका प्रमाण यही है आदर्शवाद का विकल्प भौतिकवाद के रूप में आयी। आदर्शवाद और भौतिकवाद का मूल तत्व व्यवस्था के रूप में शक्ति केंद्रित शासन ही रहा है। अतएव इन दोनों के विकल्प के रूप में अस्तित्वमूलक मानव केंद्रित चिंतन ही सह-अस्तित्ववादी, सर्वतोमुखी समाधानपूर्ण व्यवस्था को अध्ययनगम्य होने के लिए प्रस्तुत है और मानवीयतापूर्ण आचार संहिता रूपी संविधान को समाधान केंद्रित व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अतएव कर्मों के आधार पर मानव का विविधताएँ पाप-पुण्य-स्वर्ग-नर्क शक्ति केंद्रित शासन में भागीदारी, रहस्यमूलक, लक्षणात्मक धर्म संविधान वह भी शक्ति केंद्रित विधि से कल्पित ढांचा-खांचा में भागीदारी, व्यापार जैसा शोषण में भागीदारी, भ्रमात्मक साहित्य-कला में भागीदारी, भ्रमात्मक आस्थाओं में भागीदारी, लाभोन्मादी उत्पादन कार्यों में भागीदारियों के आधार पर पाप-पुण्य का व्याख्या करते रहे हैं। इसी के साथ-साथ रहस्य में छुपी हुई सत्य, ईश्वर, ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, देवी-देवता जैसी कल्पनाओं में प्रमाणित होने के लिए प्रकल्पित भांति-भांति साधना-अभ्यास, योग, यज्ञ, जप, तप, पूजा, पाठ, प्रार्थना, गायन क्रियाकलापों को भक्ति और विरक्ति के परिकल्पित रेखा सहित किए जाने वाले जितने भी कार्यकलाप हैं, ये सबको पुण्यशील कर्म मान लिया गया है। जानने की क्रिया अभी तक शेष है। इसी के साथ यह भी निर्देशन अथवा इंगित तथ्य यही है ऐसी पुण्यशीलों के सेवा-सुश्रुषा, अपर्ण-समपर्ण से भी पुण्य मिलेगा और पुण्यशीलों से पुण्य बंटती है, ऐसे उल्लेख और आश्वासनों को पूर्वावर्ती शास्त्र, धर्मशास्त्र परिकथाओं में उल्लेख किया है। **यहाँ ध्यानाकर्षण का तथ्य यह है कि सह-अस्तित्व ही परम सत्य है। अस्तित्व स्वयं में सत्ता में संपृक्त प्रकृति है। अस्तित्व ही सह-अस्तित्व के रूप में नित्य वैभव है। सह-अस्तित्व में ही नित्य समाधान है। यह सम्पूर्ण ज्ञान और दर्शन इन बिन्दुओं पर देखा गया है सह-अस्तित्व में जीवन ज्ञान, और सह-अस्तित्व दर्शन ज्ञान। इसी के फलस्वरूप मानवीयतापूर्ण आचरण सर्वसुलभ होना होना, दूसरे भाषा में चेतना विकास मूल्य शिक्षा संस्कारपूर्वक लोकव्यापीकरण होना सहज है।** जीवन-ज्ञान के पश्चात् प्रत्येक मानव जीवन का अमरता को, नित्यता को पहचान पाता है। फलस्वरूप जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में मानव परंपरा को होना प्रमाणित हो जाता है। इसी क्रम में शरीर रचना भौतिक-रासायनिक द्रव्यों से सम्पन्न होना देखा जाता है। इसी आधार पर शरीर

की भंगुरता अथवा विरचना स्वीकृत हो जाता है। और जीवन ही दृष्टा, कर्ता, भोक्ता होने का तथ्य हर मानव में सुदृढ़ होता है। फलस्वरूप सर्वतोमुखी समाधान स्रोत और कारण जागृत जीवन ही होना स्पष्ट होता है अथवा सर्वतोमुखी समाधान का धारक वाहक जीवन ही होना स्पष्ट हो जाता है। यह सर्वसुलभ होना ही जागृत परंपरा का द्योतक है। इस प्रकार जीवन की नित्यता समझ में आने के फलस्वरूप शरीर को छोड़कर जीवन ही अपने स्वरूप में देवी-देवता, भूत-प्रेत आदि नामों से जाने जायेंगे। यह देवी-देवता सम्बन्धी रहस्य उन्मूलन होने का सहज विधि फलस्वरूप तत्सम्बन्धी भ्रम से मुक्त होने का सुख स्वाभाविक रूप में समीचीन है। मानव सहज रूप में रहस्य से मुक्त होने की अभिलाषाएँ होना पाया जाता है। **(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर:183-187)**

- हर परंपराएँ **शिक्षा** विधा में, संस्कार विधा में, संविधान विधा में और व्यवस्था विधा में अपने को निर्भय अथवा श्रेष्ठ मानते हुए चलते हैं जबकि ऐसा हुआ नहीं रहता है। इसका साक्ष्य अंतर्विरोध और बाह्य विरोध है, मतभेद और वाद-विवाद ही है। इससे मुक्त होने की अपेक्षा सब में है। अर्थात् वाद-विवाद आदि विसंगतियों से किंवा युद्ध से भी, शोषण से भी मुक्ति चाहते हैं। खूबी यही है कि ऐसा शुभ चाहने वाले हर समुदाय अपने को शुभ का आधार मान लेते हैं, उन्हीं-उन्हीं के अनुसार शुभ घटित हो ऐसा सोचते हैं। जैसे युद्ध तंत्र में बुलंदी पर पहुँचा हुआ देश युद्ध न करने का उपदेश देता है। बाकी सब यह सोचते हैं यह हम पर शासन करना चाहता है या हमको धर दबोचना चाहता है। संग्रह में पारंगत और संग्रह में लिप्त, भ्रष्टाचार में लिप्त व्यक्ति क्रम से संग्रह भ्रष्टाचार विरोधी भाषण करते हैं और संग्रह के पक्ष में मन, वचन, कार्यों को बुलंद किए रहते हैं। इसी प्रकार भ्रष्टाचार में सराबोर धर्माध्यक्ष, राज्याध्यक्ष, राष्ट्राध्यक्ष, शिक्षाध्यक्ष, ज्ञानाध्यक्ष जैसे लोग सदा संग्रह में लिप्त रहते ही हैं। और संसार को कड़ी मेहनत, ईमानदारी का पाठ सुनाते हैं और त्याग और वैराग्य का उपदेश देते फिरते हैं। जबकि गहराई से सोचने पर कितनी विडम्बना की बात है कि व्यापार तंत्र में अमोघ सफलता प्राप्त चोटी की संग्रह समर्थ व्यापारी विद्वान संग्रह की निरर्थकता को बयान करते रहते हैं। कायिक, वाचिक, मानसिक रूप में संग्रह को दिन में दूनी रात में चौगुनी बनाने की सार्थक तिकड़म, तिकड़म का तात्पर्य अपने दूषित मानसिकता को सफल बनाने के तरीकों जिसको वह स्वयं विरोध करता है, में लगे रहते हैं। शिक्षाविद भी संग्रह तंत्र से जकड़ चुके हैं। यह अपने समय को बेचकर आजीविका चलाने के लिए तत्पर हो गए हैं। इस प्रकार **शिक्षा**-व्यापार, धर्म-व्यापार, राज्य-व्यापार, वस्तु-व्यापार और व्यापार में अधिकार प्राप्त पारंगत सभी व्यक्ति संग्रह के चंगुल में ही जकड़े हुए दिखाई देते हैं। अपवाद रूप में कोई-कोई संग्रह समर्थ न हो पाए हो। ऐसे लोगों का खास आदर्श कम से कम लोगों में अंकित हुआ हो सकता है। सर्वाधिक लोगों का मन में सर्वाधिक संग्रह समर्थ लोगों का ही कार्य चित्र बसता ही जा रहा है। कलाकारों को कहना ही क्या है ? भिखारी से भिखारी का अभिनय करने को तैयार है और ज्यादा से ज्यादा पैसा-धन चाहिए। इन कलाकारों से मार-कूट, दहाड़-विध्वंस व्यापार-प्यार में पागल होने वाले गाने, जितने भी द्रोह-विद्रोह का अभिनय, त्याग, तपस्या का अभिनय एक ही व्यक्ति से करा ली जाए, उनको सिर्फ पैसा चाहिए। इनके संग्रह जब तक धर्म, राज्य, वस्तु, व्यापारियों, बिचौलियों से संग्रह शिखर उपर नहीं गया तब तक ये चैन से कोई अभिनय नहीं कर पाते हैं और आगे की बेचैनी बनी ही रहती है। अतएव सभी आयामों में कार्यरत व्यक्ति का आदर्श उन्नीसवीं शताब्दी से संग्रह युग सर्वाधिक प्रचुर होता आया और बीसवीं शताब्दी से प्रखर होता हुआ देखा गया। उसके पहले राजगद्दी और धर्मगद्दी में कोष संग्रह की बात रही। इन दोनों में से सर्वाधिक संग्रह राजकोष में होना पाया जाता रहा। बीसवीं शताब्दी में वस्तु व्यापार, बिचौलियों का संग्रह बुलंद हुआ। बीसवीं शताब्दी के मध्य से ही बिचौलियों और कलाविदों का तेवर ज्यादा संग्रह की ओर तीव्रता से बढ़ा। इसी के साथ-साथ विश्व सुन्दरियों की मानसिकताएँ संग्रह समर्थता की ओर प्रवृत्तशील होना देखा गया। ये सब कहानी कहने के मूल में एक ही बात है जो-जो स्मरणीय तबके ख्यात होने वाले पद में आसीन व्यक्ति कुल मिलाकर संग्रह के चक्कर में ही चक्कर काटता हुआ दिखाई पड़ते हैं। अन्य सामान्य सभी व्यक्ति इन्हीं का लक्ष्यों, रहन-सहन, भोग-बहुभोग आदि क्रियाकलापों से प्रभावित प्रवृत्त होना पाया गया। इसी विधि से सर्वाधिक जन मानस में संग्रह और भोगेच्छाएँ तीव्रता से प्रभावित हुई। इससे यह तथ्य को स्मरण कराना रहा कि प्रकारान्तर से कोई भी संग्रह करे इसी धरती का वस्तु या वस्तु का प्रतीक पत्र मुद्रा को ही होना देखा गया। संग्रह के साथ-साथ द्रोह-विद्रोह-शोषण-युद्ध मानसिकता बना ही रहता है। यह मानसिकता कितने भी ऊँचाई तक पहुँच गई हो पर अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का सूत्र

व्याख्या नहीं बन पाई। जबकि सार्वभौम शुभेच्छा और अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था की प्यास बना ही है।इसलिए लाभोन्मादी अर्थशास्त्र के विकल्प को अवगाहन करना आवश्यक होगा।

मानवीय शिक्षा-संस्कार से स्वायत्त मानव, स्वायत्त मानवों से स्वायत्त परिवार, स्वायत्त परिवार व्यवस्था से स्वायत्त ग्राम परिवार व्यवस्था, ग्राम समूह परिवार व्यवस्था क्रम में विश्व परिवार व्यवस्था को पाना सहज है। **मानवीयतापूर्ण शिक्षा** की संपूर्णता अपने आप में जीवन ज्ञान, सह-अस्तित्व दर्शन ज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान ही है। अपने आप का तात्पर्य मानव अपना ही निरीक्षण-परीक्षणपूर्वक ज्ञान सम्पन्न, दर्शन सम्पन्न, आचरण सम्पन्न होने से है। दूसरी विधि से अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व में परमाणु में विकास, गठनपूर्णता, जीवनी क्रम, जीवन का कार्यकलाप, जीवन जागृति क्रम, जीवन जागृति, क्रियापूर्णता उसकी निरंतरता और प्रामाणिकता (जागृति पूर्णता) उसकी निरंतरता दृष्टापद से है। इस प्रकार **मानवीय शिक्षा** का तथ्य अथ से इति तक समझ में आता है। इसी समझदारी के आधार पर हर मानव अपने में परीक्षण, निरीक्षण करने में समर्थ होता है। फलस्वरूप स्वायत्त परिवार व्यवस्था से विश्व परिवार व्यवस्था तक हम अच्छी तरह से सार्वभौमता, अक्षुण्णता को अनुभव कर सकते हैं। इस विधि से सेवा, व्यवस्था के अंगभूत कर्तव्य के रूप में, व्यवस्था दायित्व के रूप में, उत्पादन आवश्यकता, उपयोगिता, सदुपयोगिता के रूप में, परिवार व्यवहार सम्बन्ध, मूल्य, मूल्यांकन अर्पण, समर्पण और उभयतृप्ति के रूप में वर्तमान होना पाया जाता है। यह अधिकांश मानव में अपेक्षा भी है। इसी विधि से धरती की संपदा संतुलन विधि से सदुपयोग होना स्वाभाविक है, अर्थ का सदुपयोग होना ही आवर्तनशीलता है । **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर:187- 191)**

- ....जागृत मानव परंपरा में मानव का जागृत होना सहज है। हर व्यक्ति जागृत होना चाहता ही है, वरता भी है; परंपरा जागृत न होने का फल ही है भ्रमित रहना। भ्रमित परंपरा में अर्पित हर मानव संतान भ्रमित होने के लिए बाध्य हो जाता है। **परंपरा का कायाकल्प अर्थात् परिवर्तन और सर्वतोमुखी परिवर्तन एक अनिवार्यता है ही। इसकी सफलता जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान पर आधारित है जो अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन हैजिसके आधार पर ही मध्यस्थ दर्शन (सह-अस्तित्ववाद) स्पष्ट रूप में अध्ययनगम्य है।**

मध्यस्थ दर्शन मूलत: मध्यस्थ सत्ता, मध्यस्थ क्रिया, मध्यस्थ गति और मध्यस्थ जीवन का प्रतिपादन है जो वाङ्गमय के रूप में स्पष्ट हो चुका है जिसके अध्ययन से मानवीयतापूर्ण आचरण स्वयं स्फूर्त रूप में प्रमाणित होता है।

जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान ही अनुभव बल का स्वरूप और स्रोत है। यही अनुभव बल, विचार शैली के रूप में संप्रेषित होते हुए देखा जाता है। ऐसे स्थिति में विज्ञान सम्मत विवेक, विवेक सम्मत विज्ञान विधि से विचार शैली का स्वरूप होना पाया गया। ऐसी विचार शैली स्वयं में मध्यस्थ दर्शन सूत्रों से एवम् सह-अस्तित्ववादी सूत्रों से सूत्रित होना स्वाभाविक रहा। यही सह-अस्तित्ववाद, **समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद और अनुभवात्मक अध्यात्मवाद** के रूप में प्रस्तुत है। यही विचार शैली पुन: शास्त्रों के रूप में संप्रेषित हुई है। इसमें से **आवर्तनशील अर्थचिन्तन शास्त्र और व्यवस्था का मूल स्वरूप** इस प्रबंध के द्वारा मानव कुल के लिए अर्पित है। इसी के साथ-साथ व्यवहारवादी समाजशास्त्र जो स्वयं में मानवीयतापूर्ण आचार संहिता रूपी संविधान सूत्र और व्याख्या है तथा मानव **संचेतनावादी मनोविज्ञान** मानव कुल के विचारार्थ प्रस्तुत है। भ्रमित मानव भी शुभ चाहता है। शुभ का स्वरूप समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व है। यह सर्वमानव स्वीकृत है। इनके सार्वभौमता को अध्ययन विधि से सुस्पष्ट करना ही मध्यस्थ दर्शन (अनुभव बल), विचारशैली और शास्त्र (जीने की कला) का उद्देश्य है। अतएव आवर्तनशील अर्थचिन्तन का आधार सह-अस्तित्व तथा सहअस्तित्व में मानव में अनुभव सहज जीना ही है। अस्तित्व ही स्वयं सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति के रूप में सह-अस्तित्व होना देखा गया है। यही अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिन्तन का ध्रुव बिन्दु है। अस्तित्व नित्य वर्तमानता के रूप में स्थिर होना नित्य प्रमाण है। अस्तित्व ही सह-अस्तित्व नित्य प्रमाण होने के आधार पर परमाणु में विकास, गठनपूर्णता-जीवनपद फलत: परिणाम का अमरत्व ज्ञात होता है। जीवन ही जीवनी क्रम, जीवन जागृति क्रम में गुजरता हुआ जागृत पद में क्रियापूर्णता, जिसका प्रमाण में मानव,

स्वायत्त मानव, परिवार मानव, व्यवस्था मानव के रूप में स्वयं में व्यवस्था, समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण उसमें पारंगत विधिपूर्ण **शिक्षा-संस्कार**, परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था और मानवीय आचार संहिता रूपी संविधान का अध्ययन सहज है। इसी के साथ-साथ सह-अस्तित्व में संपूर्ण जड़-प्रकृति अर्थात् रासायनिक-भौतिक रचना-विरचना का अध्ययन स्वाभाविक रूप में समाहित है। जिसमें सम्पूर्ण भौतिक वस्तुओं को तात्विक, मिश्रण और यौगिक रूप में अध्ययन करना सहज हो चुका है और रासायनिक द्रव्यों में, से, प्राणकोषा, और प्राणावस्था का रचनासूत्र (प्राणसूत्र) जीव शरीर और मानव शरीर रचना सूत्र क्रम में विकसित होकर इस धरती पर चारों अवस्थाओं में परंपरा के रूप में स्थापित रहना पाया गया। सह-अस्तित्व नित्य प्रभावी होने के आधार पर जड़-चैतन्य प्रकृति में सह-अस्तित्व सहज रूप में वर्तमान है। संपूर्ण सम्बन्धों का सूत्र भी सह-अस्तित्व ही है। जीवन और शरीर का संबंध भी निश्चित अर्थ और प्रमाण सहित ही वर्तमान हैं। जीव शरीरों के साथ जीवन का संबंध वंशानुषंगीय विधियों से कार्य करने के रूप में प्रमाणित है मानव शरीर और जीवन का संबंध संस्कारानुषंगीय विधि से सार्थक और प्रमाणित होना पाया जाता है। संस्कार का तात्पर्य ही है स्वीकृतिपूर्वक (अवधारणापूर्वक) प्रवर्तनशील होने से अथवा प्रवर्तित होने से है। यही मानवीय संस्कृति-सभ्यता-विधि-व्यवस्था के रूप में सहज अभिव्यक्ति-संप्रेषणा-प्रकाशन है।

(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 208-210)

- जागृत मानव परंपरा में अध्ययन पूर्वक **शिक्षा संस्कार**-होना देखा गया। जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान विधिवत् अध्ययनपूर्वक बोधगम्य होना हो पाता है। इसको अभिव्यक्ति, संप्रेषणा क्रम में प्रामाणिकता और प्रमाण होना पाया जाता है। इसी विधि से यह सुस्पष्ट है कि उक्त परम ज्ञान-परम दर्शन के आधार पर सह-अस्तित्ववादी विचार शैली, शास्त्र बोध होना और साक्षात्कार होना स्वाभाविक है। बोध और साक्षात्कार के क्रम में नित्य आचरण पूर्वक पुष्टि, अनुभवमूलक प्रणाली से नित्य स्रोत बनाए रखना, इसे प्रत्येक मानव अनुभव कर सकता है। मानव अपने में सुखी होने के क्रम में सर्वतोमुखी समाधान की आवश्यकता और अनिवार्यता स्पष्ट हो जाती है। यही सह-अस्तित्वपूर्वक सुखी होने का रास्ता है। इस क्रम में मानव में स्वायत्तता परिवार और विश्व परिवार में प्रमाणित हो पाता है। इसी विधि से समाज रचना और परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था अविभाज्य रूप में प्रमाणित होता है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 212-213)**

- न्यायपूर्ण व्यवहार ही मानवीयता पूर्ण व्यवहार है। मानवीयता पूर्ण व्यवहार से तात्पर्य है मानवीयता के प्रति निर्विरोधपूर्ण व्यवहार जिसको समझना व समझाना अखंड मानव समाज की दृष्टि से आवश्यक है। इसके लिए अध्ययन व चेतना विकास मूल्य **शिक्षा** अनिवार्य है। **(अध्याय: 8, पृष्ठ नंबर: 230)**

- इस चित्र में स्पष्ट किया गया पाँचों आयाम रेखाकार और वर्तुलाकार विधि से अन्तर सम्बन्धित और कार्यरत रहते हैं। रेखाकार विधि से अन्तर्संबंध, वर्तुलाकार विधि से पांचों समितियों को अविभाज्य सम्बन्ध आवर्तनशीलता के रूप में देखने को मिलता है। इसके मूल में मानव ही **मानवीय शिक्षा-संस्कार** पूर्वक स्वायत्त मानव, परिवार मानव (समाज मानव) और व्यवस्था मानव के रूप में प्रमाणित होना ही परिवार मूलक के स्वराज्य व्यवस्था का अबाध गति है।.... **(अध्याय:8, पृष्ठ नंबर: 233-234)**

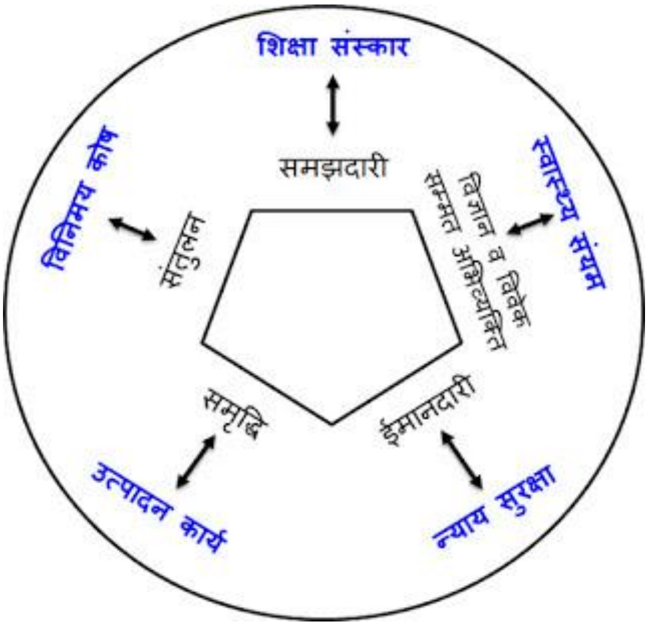

•

सामान्य आकाँक्षा (स्थानीय सर्वेक्षण के आधार पर)		महत्वाकाँक्षा (स्थानीय ग्राह्यता के आधार पर)	
आहार आवास अलंकार स्वास्थ्य संयम शिक्षा संस्कार	संबंधी वस्तु एवं उपकरण	दूरगमन दूरश्रवण दूरदर्शन	संबंधी उत्पादन एवं उपकरण

(अध्याय:8, पृष्ठ नंबर:235)

- मूल्यांकन सम्बन्धी निश्चयन हर ग्राम से आरंभ होकर विश्व परिवार विनिमय-कोष तक सम्बद्ध रहना आवश्यक है। **शिक्षा** पूर्वक हर व्यक्ति में निपुणता, कुशलता, पाण्डित्य सुलभ होता है। फलस्वरूप उत्पादन कार्य में दक्ष होना पाया जाता है। इसी आधार पर प्रत्येक व्यक्ति में स्वायत्तता पूर्ण लक्ष्य अध्ययन काल से ही समाहित रहता है।....**(अध्याय: 8, पृष्ठ नंबर: 237)**

- हर परिवार अपने प्रतिष्ठा के अनुरूप आवश्यकताओं का निर्धारण करने में **मानवीयता पूर्ण शिक्षा संस्कार** के बाद ही समर्थ होना पाया जाता है। ऐसे परिवार मानवों से सम्बद्ध परिवार अपने आवश्यकता की तादात, गुणवत्ता सहित आवश्यकताओं को अनुभव करेंगे और उत्पादन-कार्य को अपनायेंगे।.....**(अध्याय: 8, पृष्ठ नंबर: 237-238)**

- .....**शिक्षा-संस्कार** पूर्वक आवश्यकीय सभी तकनीकी **शिक्षा** को जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन सहित सह-अस्तित्व मानसिकता से सम्पन्न कराने की व्यवस्था रहेगी। फलस्वरूप न्याय सुलभता और स्वास्थ्य-संयम समितियों का अंतरसम्बन्ध अपने-अपने विशालता सहित सम्पूर्ण कार्य करने की व्यवस्था रहेगी। **(अध्याय:8, पृष्ठ नंबर:241)**

- परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था योजना -

स्वराज्य व्यवस्था के लिए पूर्व तत्परता एवं आकलन-

शिक्षा सम्बन्धी आंकलन :-

पाठशाला है या नहीं। यदि है तो कहाँ तक पढ़ाई होती है ? कितने विद्यार्थी हैं ? कितने शिक्षक हैं ? आयु, वर्ग के आधार पर **शिक्षा** का सर्वेक्षण। **शिक्षा** पाठ्यक्रम का निर्वाह कैसा है ? स्थानीय आवश्यकतानुसार **शिक्षा** दी जाती है या केवल किताबी ज्ञान दिया जाता है ? **शिक्षा** प्राप्त कर कितने व्यक्ति गाँव में रह रहे हैं ? कितने गाँव छोड़ दिए हैं ? महिलाओं व बच्चों में जागरूकता कैसी है ? कितने साक्षर हैं? कितने साक्षर होना शेष है ? आयु वर्ग के अनुसार।

निकटवर्ती तकनीकी व अन्य समाज सेवी संस्थाओं के सहयोग की संभावना। **(अध्याय: 9, पृष्ठ नंबर: 257-258)**

- **शिक्षा-संस्कार व्यवस्था**

ग्राम में शिक्षा-संस्कार व्यवस्था का संचालन "शिक्षा-संस्कार समिति" करेगी। शिक्षा-संस्कार समिति में कम से कम एक व्यक्ति होगा या अधिक से अधिक तीन व्यक्ति होंगे।

"शिक्षा-संस्कार समिति" के सदस्यों की अर्हता :-

शिक्षा-संस्कार समिति के सदस्यों की अर्हताएं निम्न प्रकार होंगी :-

1. प्रत्येक सदस्य जीवन-विद्या एवं वस्तु-विद्या में पारंगत रहेगा।
2. वह व्यवहार में सामाजिक व व्यवसाय में स्वावलम्बी होगा।
3. उसमें स्वयं में विश्वास व श्रेष्ठता के प्रति सम्मान करने का प्रमाण रहेगा।
4. प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलित होने का प्रमाण रहेगा।

शिक्षा-संस्कार व्यवस्था के मूल उद्देश्य :-

प्रत्येक मानव को -

1. व्यवहार में सामाजिक।
2. व्यवसाय में स्वावलम्बी।
3. स्वयं के प्रति विश्वासी।
4. श्रेष्ठता के प्रति सम्मान करने में पारंगत करना जिससे व्यक्तित्व व प्रतिभा का संतुलन हो सके।

शिक्षा-संस्कार व्यवस्था का स्वरूप :-

1. प्रत्येक मानव को व्यवहार व्यवसाय (उत्पादन) **शिक्षा** में पारंगत बनाना।
2. प्रत्येक मानव को व्यवसाय (तकनीकी शिक्षा) **शिक्षा** में पारंगत कर एक से अधिक व्यवसायों में स्थानीय आवश्यकताओं के आधार पर निपुण व कुशल बनाना।
3. प्रत्येक मानव को साक्षर बनाने।
4. "ग्राम सभा" पाठशाला की व्यवस्था, स्थानीय आवश्यकतानुसार करेगी।
5. आयु वर्ग के आधार पर **शिक्षा** प्रदान करने की व्यवस्था होगी।

शिक्षा की व्यवस्था निम्नलिखित कोटि के ग्रामवासियों के लिए की जावेगी।

1. बाल **शिक्षा**
2. बालक जो स्कूल छोड़ दिए हैं व दस वर्ष से अधिक आयु के हैं, ऐसे बच्चों को 30 वर्ष के अन्य अशिक्षित व्यक्तियों के साथ व्यवहार **शिक्षा** व व्यवसाय **शिक्षा** में पारंगत बनाने की व्यवस्था रहेगी।

3. **30** वर्ष की आयु से अधिक स्त्री पुरूषों को साक्षर बनाकर, व्यवहार **शिक्षा** में पारंगत बनाने की व्यवस्था होगी।
4. स्थानीय परिस्थितियों के आधार पर आवश्यकता होने पर स्त्री पुरूषों के लिए अलग **शिक्षा** व्यवस्था होगी जो कि ''स्वास्थ्य-संयम समिति'' के साथ मिलकर कार्य करेगी।
5. व्यवसाय **शिक्षा** के लिए ''शिक्षा-संस्कार समिति'' ''उत्पादन सलाहकार समिति'' व ''विनिमय-कोष समिति'' के साथ मिलकर कार्य करेगी व सम्मिलित रूप से यह तय करेगी कि ग्राम की वर्तमान व भविष्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर, किस-किस व्यक्ति को, किस-किस व्यवसाय की **शिक्षा** दी जाए। ''विनिमय-कोष समिति'' ऐसे उपायों की जानकारी देगी,जिनकी गाँव से बाहर अच्छी मांग है।
6. कृषि, पशुपालन, ग्राम शिल्प, कुटीर उद्योग, ग्रामोद्योग व सेवा में जो पहले से पारंगत है, उनके द्वारा ही अन्य ग्रामवासियों को पारंगत करने की व्यवस्था की जायेगी।
7. यदि उपर्युक्त **शिक्षा** में कभी उन्नत तकनीकी विज्ञान व प्रौद्योगिकी को समावेश करने की आवश्यकता होगी तो उसको समाविष्ट करने की व्यवस्था रहेगी।
8. व्यवहार **शिक्षा** के लिए ''शिक्षा-संस्कार समिति'' ''स्वास्थ्य-संयम समिति'' के साथ मिलकर कार्य करेंगी।
9. मानवीयता पूर्ण व्यवहार (आचरण) व जीने की कला सिखाना व अर्थ की सुरक्षा तथा सदुपयोगिता के प्रति जागृति उत्पन्न करना ही, व्यवहार **शिक्षा** का मुख्य कार्य है।

रुचि मूलक आवश्यकताओं पर आधारित उत्पादन के स्थान पर मूल्य व लक्ष्य-मूलक अर्थात् उपयोगिता व प्रयोजनशीलता मूलक उत्पादन करने की **शिक्षा** प्रदान करना। जिससे प्रत्येक मानव में अधिक उत्पादन, कम उपभोग, असंग्रह, अभयता, सरलता, दया, स्नेह, स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष, बौद्धिक समाधान, प्राकृतिक सम्पत्ति का उसके उत्पादन के अनुपात में व्यय व उसके उत्पादन में सहायक सिद्ध हों। ऐसी मानसिकता का विकास करना, व्यवहार **शिक्षा** में समाविष्ट होगा।

कालान्तर में ''ग्राम शिक्षा-संस्कार समिति'' क्रम से ग्राम समूह, क्षेत्र सभा, मंडल सभा, मंडल समूह सभा, मुख्य राज्य समूह सभा, प्रधान राज्य सभा व विश्व राज्य की ''शिक्षा-संस्कार समिति'' से जुड़ी रहेगी। अत: विश्व में कहीं भी स्थित कोई जानकारी ''ग्राम-शिक्षा-संस्कार समिति'' को उपरोक्त सात स्त्रोतों से तुरंत उपलब्ध हो सकेगी। पूरी जानकारी का आदान-प्रदान कम्प्यूटर व्यवस्था द्वारा आपस में जुड़ा रहेगा। इसी प्रकार अन्य चारों समितियाँ भी ऊपर तक आपस में जुड़ी रहेगी। **(अध्याय:9, पृष्ठ नंबर: 268-272)**

- स्वास्थ्य-संयम व्यवस्था- ग्राम के सभी व्यक्तियों के स्वास्थ्य एवं संयम की जिम्मेदारी, ग्राम स्वास्थ्य-संयम समिति की होगी। यह समिति **शिक्षा-संस्कार** समिति के साथ मिलकर कार्य करेगी। स्वास्थ्य-संयम संबंधी पाठ्यक्रम और कार्यक्रम को तैयार कर **शिक्षा** में सम्मिलित कराएगी। ग्राम चिकित्सा केन्द्र की व्यवस्था, योगासन, व्यायाम, अखाड़ा खेल कूद व्यवस्था, स्कूल के अलावा खेल मैदान (स्टेडियम), सांस्कृतिक भवन, क्लब आदि व्यवस्था का दायित्व, ग्राम स्वास्थ्य समिति का होगा। समिति स्थानीय रुप से उपलब्ध जड़ी-बूटियों द्वारा औषधि बनाने के लिए आवश्यकीय व्यवस्था करेगी। .....**(अध्याय: 9, पृष्ठ नंबर: 283-284)**

- व्यवहार में न्याय (मानवीय व्यवहार) –> विनिमय में न्याय-

..... ''न्याय सुरक्षा समिति'' सुरक्षा कार्य को ग्राम वासियों के तन, मन, धन रूपी अर्थ के सदुपयोग के आधार पर क्रियान्वयन करेगा। जैसे :-

1. ग्राम में सुरक्षा.
2. उत्पादन एवं विनिमय सुरक्षा.

3. परिवार सुरक्षा.
4. **मानवीय शिक्षा-संस्कार सुरक्षा.**
5. स्वास्थ्य संयम सुरक्षा.
6. नैसर्गिक सुरक्षा.
7. संगीत, साहित्य, कला की सुरक्षा. **(अध्याय: 9, पृष्ठ नंबर: 291)**

शिक्षा संस्कार सुरक्षा :-

1. न्याय सुरक्षा समिति यह सुनिश्चित करेगी कि प्रत्येक ग्रामवासी को मानवीय **शिक्षा** (व्यवहार **शिक्षा** व व्यवसाय **शिक्षा**) ठीक से मिल रही है या नहीं। जो स्कूल छोड़ दिए हैं, स्कूल में नहीं आते हैं, उनके लिए उनके परिवार वालों से मिल जुलकर, **शिक्षा** संस्कार को सुलभ कराएगी।
2. मानवीय **शिक्षा** में कहीं से भी व्यतिरेक उत्पन्न होता है तो उसको दूर करने की व्यवस्था करेगी।
3. शिक्षकों का मूल्यांकन करेगी ठीक से **शिक्षा** प्रदान कर रहे हैं या नहीं ? समय-समय पर आकर मार्ग दर्शन देगी। **(अध्याय: 9, पृष्ठ नंबर: 294-295)**

- मूल्यांकन, प्रोत्साहन, निष्ठावान प्रक्रिया-

शिक्षा-संस्कार समिति के कार्यों का मूल्यांकन :-

"ग्राम सभा" ग्राम के प्रत्येक व्यक्ति व परिवार में "शिक्षा-संस्कार समिति" के कार्यों का मूल्यांकन निम्न आधारों पर करेगी:-

1. संबंधों और मूल्यों की पहचान और निर्वाह, मानवीयता पूर्ण व्यवहार का मूल्यांकन।
2. स्वयं के प्रति विश्वास व श्रेष्ठता के प्रति सम्मान क्रिया का मूल्यांकन।
3. मानवीय आचरण (स्व धन, स्वनारी/स्वपुरूष, दया पूर्ण कार्य) का मूल्यांकन।
4. ग्राम जीवन व परिवार व्यवस्था में विश्वास व निष्ठापूर्ण आचरण का मूल्यांकन।
5. ग्राम व्यवस्था व ग्राम जीवन में भागीदारी का मूल्यांकन।
6. प्रत्येक व्यक्ति व परिवार से किया गया तन, मन व धन रूपी अर्थ की सदुपयोगिता का एवं सुरक्षा का मूल्यांकन।
7. मानव स्वयं व्यवस्था के रूप में संप्रेषित, अभिव्यक्त, प्रकाशित होने व समग्र व्यवस्था में भागीदार होने व उसकी संभावना का मूल्यांकन।
8. किसी व्यक्ति में बुरी आदत हो तो उसके, उससे (बुरी आदत से) मुक्त होने के आधार पर मूल्यांकन। **(अध्याय:9, पृष्ठ नंबर: 297-298)**

सन्दर्भ : मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान

(संस्करण: 2008)

- मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान

मैं इस मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान रूपी प्रबंध को मानव के समक्ष अर्पित करते हुए, परम प्रसन्नता का अनुभव करता हूँ। कामोन्मादी मनोविज्ञान जो आज **शिक्षा** में प्रचलित है, (जिसमें कामुकता के आधार पर संपूर्ण वर्चस्व उभरने की बात कही गई है) इससे मैं सहमत नहीं हो पाया क्योंकि मैं सदा समाधान को चाहता हूँ सुखी होना चाहता हूँ, समृद्धि पूर्वक जीना चाहता हूँ। इसी के साथ यह भी मैंने स्वयं को मूल्यांकित किया कि प्रचलित मनोविज्ञान के स्थान पर क्या होना चाहिए। जो कुछ भी प्राप्त साहित्य आज तक है, इसके सहारे इसका उत्तर नहीं निकल पाया। फलस्वरूप गहन चिंतन किया। इसके परिणाम में यह मनोविज्ञान अपने आप स्फूर्त हुआ।....**(प्राक्कथन से)**

- क्रिया का सम्पूर्ण स्वरूप, विभक्त प्रकृति के कार्य-कलापों के रूप में देखा जाता है। निर्णयों का स्वरूप प्रत्येक एक में प्रमाणित होने वाले नियंत्रण, संतुलन, पूरकता, विकास, परमाणु में, रचनाओं में उदात्तीकरण और रचना अर्थात रासायनिक रचना; विकास और संक्रमण; संक्रमण और जीवनी-क्रम; जीवनी क्रम, जीवन जागृति क्रम, जागृति और जीने का कार्यक्रम; जीने का कार्यक्रम और व्यवस्था; व्यवस्था और समाज; व्यवस्था और जागृति; जागृति और संचेतना (जानना, मानना, पहचानना और निर्वाह करने का क्रिया कलाप) सहित; समाधान, समृद्धि, अभय एवं सह-अस्तित्व को प्रमाणित करने की **शिक्षा** परम्परा हो। इसके लिए आवश्यकीय सभी यंत्रों सहित प्रयोग परम्परा को पहचानने, निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित करना है। इस प्रकार विज्ञान पद्धति, प्रयोजनों की पुष्टि है। **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर: 26)**

- कौमार्य अवस्था में जैसे ही, "करो, न करो" - का चक्र चलना आरंभ होता है (जो माता, पिता करते रहते हैं, उसे नकारने' की स्थिति में और जो माता, पिता नकारते रहे, उसे स्वीकार करने से या शंका उत्पन्न करने से) माता, पिता का ममता सूत्र डगमगाना आरंभ होता है। माता, पिता की ममता का सूत्र, उदारतापूर्वक सूत्रित रहता है। ममता डगमगाने का तात्पर्य, उदारता का भी, डगमगाना होता है।

इसी क्रम में, **शिक्षा** की भी बात आती है, क्योंकि सम्पूर्ण संस्कार "करो, न करो" में सिमट ही जाता है। जैसे ही यांत्रिक, तकनीकी विज्ञान, आकलनात्मक **शिक्षा** आरंभ होती है, वैसे ही मानव संतान में प्रचलित **शिक्षा** को प्रबोधन पूर्वक स्मृति के आधार पर परीक्षण विधि को अपनाते हुए विद्यार्थियों को विद्वान घोषित किया जाता है। आदि काल से पुस्तक और स्मृति को दुहराना विद्वता मानी जाती रही है। अभी इस दशक में, बहुतायत लोगों में यह स्मृति विकसित हो चुकी है, नकारने के रूप में - (१) स्मृति विद्वता नहीं है। (१) पुस्तकें विद्वता नहीं है (१) विज्ञान विद्वता नहीं है। कुछ विज्ञानी इस पक्ष में है कि सम्पूर्ण विज्ञान और तकनीकी में, पारंगत होने के बाद भी, बेहतरीन समाज का प्रणेता न हो पाने, परिवार सहज संगीत और समाधान रूपी लय से वंचित रहने के आधार पर, विज्ञान को मानव संतुष्टि का सम्पूर्ण ज्ञान नहीं है - ऐसा मूल्यांकन हैं। इसके मूल में यह भी विश्लेषण आता है कि भौतिकी विधि से किए गए सूक्ष्म अनुसंधान के उपरान्त भी, मानव और जीवन, व्याख्या और सूत्र से रिक्त है। इसका खेद भी वैज्ञानिक, व्यक्त करते हैं और कुछ विज्ञानी यह भी कहते हैं कि जो कुछ भी विकास होना है, वह इसी विधि से होना है और सूक्ष्मतम अनुसंधानों से, जितनी भी काली दीवालें सम्मुख हैं वे दूर हो जावेंगी। सर्वेक्षण से यह पता लगता है कि विज्ञान परस्त सभी आदमी, विज्ञान से ही "प्रकृति रूपी सत्य समझ में आता है" - ऐसा दावा करते हैं। 200 वर्ष की

अवधि में ही 50% से अधिक विज्ञानी (इतना ही नहीं) श्रेष्ठ प्रतिभा सम्पन्न विद्यार्थियों में से 50% अधिक लोग, आज की स्थिति में, काली दीवालों को भांप लिए हैं। क्योंकि वैज्ञानिक प्रयोग किये जाते हैं। उससे प्राप्त फल, परिणाम को अंतिम नहीं माना जाता है। अंतिम सत्य को समझा हुआ विज्ञानी मानव के सम्मुख प्रस्तुत नहीं हुआ है। विज्ञान विधि से हटकर, अनुसंधान करने का आधार ही, न रहने की स्थिति में परम्परा सहज (की) गति में घुल जाते हैं अथवा मिल जाते हैं अथवा दब जाते हैं। इन तीनों स्थितियों में अतृप्ति की पीड़ा बनी ही रहती है। इस कुण्ठाग्रस्त बिन्दु के उत्तर में, अस्तित्व मूलक मानव-केन्द्रित चिंतन, पूरकता उदात्तीकरण, रचना, विरचना और विकास, संक्रमण, जागृति, प्रामाणिकता सहज सूत्रों से, पारंपरिक धाराओं से हटकर शोध करने का एक अवसर प्रदान करता है।

कोई समुदाय परम्परा सार्वभौम न हो पाने की स्थिति में ही जातिवाद, नस्लवादी, रंगवादी, भाषावादी, पूजापाठ, अभ्यासवादी, सम्प्रदायवादी मानसिकता के अतिरिक्त, वर्गवादी मानसिकता के आधार पर भी "करो, न करो" वाला कार्यक्रम प्रकारान्तर से सभी संप्रदायों में बना रहता है। जीवन सहज रूप में, प्रत्येक मनुष्य में सार्वभौमता ही अपेक्षित है। इसी के आधार पर समुदाय परंपराओं में, मानव जिसे स्वीकारता है, उन्हीं की संतानें उसे नकार देती हैं। कहीं कहीं परंपराएं जिसे नकार देती हैं, उसे स्वीकार कर भी लेता है। इस प्रकार पीढ़ी से पीढ़ी में, शोधात्मक और विद्रोहात्मक विधियों से प्रकाशन होते आया है। इस प्रकार प्रत्येक सम्बंध कुछ काल के बाद, परस्परता में कुछ सार्वभौमता और उसका भरोसा बनते तक ऐसे शोध और विद्रोह, भावी हो गए हैं। इसीलिए **मानव केन्द्रित चिंतन समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेंदारी को हर मानव द्वारा निर्वाह करने की आवश्यकता को उजागर किया है।** जिसकी आवश्यकता सह-अस्तित्व सहज विधि से भावी मानव ही सार्वभौम आचरण, सार्वभौम ज्ञान और सार्वभौम दर्शन का, धारक, वाहक है। **प्रत्येक मनुष्य सार्वभौमता की अपेक्षा में ही है। यह प्रमाणित हो जाता है। इसी के पक्ष में, मानवीयतापूर्ण आचरण, अस्तित्व दर्शन और जीवन-ज्ञान प्रस्तावित है।** इस क्रम में मानव का अपने अभीष्ट अर्थात अभ्युदय को सम्पूर्ण विधि से प्रमाणित करने की आशा, विचार, इच्छा और संकल्प है। ऐसी स्थिति के लिए ही, मानव का अध्ययन जीवन ज्ञान के आधार पर सुलभ हो गया है। इस "मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान" में जागृत जीवन क्रिया-कलाप का सत्यापन है। **(अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर: 31-33)**

- अनुसंधान और लोकव्यापीकरण-

मानव सहज रूप में, निरंतर अनुसंधान शोध और प्रयास करते आया। मानव परम्परा में सुदूर विगत से दो अनुसंधान प्रधान है। एक अनुसंधान है, रहस्यमयी ईश्वर केन्द्रित चिंतन प्रणाली, जिसका मूल आशय यह है कि "ईश्वर से सब कुछ होता है।" इसका लोकव्यापीकरण **शिक्षा** के माध्यम से सम्पन्न किया गया। दूसरा अनुसंधान, अस्थिरता मूलक, वस्तु केन्द्रित चिंतन। इसका आशय है, "वस्तु से सब कुछ होना"। वस्तु केन्द्रित चिंतन का भी लोकव्यापीकरण **शिक्षा** के माध्यम से संपन्न हुआ है। तीसरी विधि से किसी देवी, देवता, दिव्य पुरुष से अथवा मूर्ति से सब कुछ होता है। इसका भी यथाविधि अनुसंधान हुआ। वांग्मय बना। प्रकारान्तर से इसका भी लोकव्यापीकरण हुआ। इनको क्रम से (१) ईश्वरवाद बनाम अध्यात्मवाद। (१) भौतिकवाद बनाम द्वंद्ववाद। और (१) देववाद बनाम अधिदैवीवाद नाम दिया गया है। इनमें प्रमाण विधियों के लिए आदमी तरसा एवं तरने, तारने का प्रयास किया। इन तीनों प्रकार के अनुसंधानों में शब्द को प्रमाण माना गया। मानव, ईश्वरीय व अध्यात्म और देवी व आदर्शों को मानते हैं।

पहली विधि से अध्यात्म, अतिगहन आदर्श है, मौन है, निर्विशेष है और आचरण के रूप में विरक्तिवादी (साधन चतुष्टय सम्पन्नता) है। तृतीय प्रकार के चिंतन का आदर्श, उन उन देवी देवताओं के नाम से प्राप्त वांग्मय का उच्चारण सहित, ऐतिहासिक स्मृतियों अथवा कल्पित स्मृतियों से, चित्रित रूप में जो व्यक्त रहते हैं, उनको आदर्श पुरुष, आदर्श चरित्र, आदर्श ज्ञान और दर्शन मानते हैं। यह परम्परागत के रूप में, भक्ति के रूप में आया रहता है। ऐसे

आकार प्रकार के स्मारक और स्मारक स्थलियों को आदर्श स्थान मानना कार्यक्रम है। इन दोनों, प्रथम और तृतीय चिंतन के अनुसार, और एक साम्यता है कि सामान्य व्यक्तियों को स्वार्थी, अज्ञानी और पापी के रूप में निरुपित करना और उससे मुक्ति दिलाने के लिए प्रकारान्तर से दिया गया आदर्शात्मक दर्शन, आदर्शात्मक ज्ञान के आधार पर, कार्यक्रम प्रस्तुत करना। इसी के साथ उपासना और उपासना के कर्मकाण्डों का भी लोकव्यापीकरण करने की प्रक्रिया सम्पन्न होते आई। द्वितीय प्रकार (भौतिकवाद) के अनुसंधानों का प्रमाण, यंत्रों के रूप में प्रस्तुत हुआ।

"सब कुछ होने" के तात्पर्य में, ध्रुवीकृत बिंदू यही है कि मानव कितने ही प्रश्न और जिज्ञासा करता है, उन सबका उत्तर मिल जाय और व्यवहार में प्रमाणित हो जाय। देखने को यही मिल रहा है कि जितने भी जिज्ञासा और प्रश्नों को समाधानित करने के प्रयास हुए, उसके उपरान्त भी, प्रश्न चिन्हों की संख्याएं बढ़ती गई। आदर्शवादी चिंतन, जनमानस में आस्था के रूप में (अर्थात नहीं जानते हुए भी मानने के रूप में) है। इस प्रकार आस्थाओं में विविधता हुई। न जानते हुए मानने के आधार पर अंतर्विरोध हुआ, यही प्रश्नों की स्थली है। द्वितीय प्रकार के अनुसंधान यंत्र प्रमाण तक पहुंचकर, व्यवहार प्रमाण में, प्रमाणित होने में असमर्थ हुए, फलस्वरूप विद्वानों में भी अंतर्विरोध हुआ तथा यांत्रिकता और संचेतना के बीच प्रश्न चिन्ह बनते गए। यही, प्रश्न चिन्हों में वृद्धि होने की स्थली दिखाई पड़ती है। चतुर्थ प्रकार का चिंतन - अस्तित्व मूलक, मानव केन्द्रित चिंतन।

अस्तित्व मूलक, मानव केन्द्रित चिंतन - सह-अस्तित्व दर्शन बनाम मध्यस्थ दर्शन, जीवन ज्ञान और मानवीयता पूर्ण आचरण का प्रतिपादन सार्वभौम व्यवस्था अखण्ड समाज के अर्थ में व्याख्या विश्लेषण सहित प्रस्तुत है। विगत चिंतन क्रम में मानव अभी तक योग संयोग से, अथक प्रयास से, सूझ बूझ तैयार कर पाया। इन सबके पश्चात जो जिज्ञासाएं, प्रश्न चिन्ह विविध प्रकार से समीचीन हैं, इन सबका उत्तर और समाधान अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन है क्योंकि अस्तित्व ही, सह-अस्तित्व के रूप में, नित्य समाधानित है। अस्तित्व में ही मनुष्य भी अविभाज्य है, जीवन भी अस्तित्व में अविभाज्य है। अस्तित्व में ही अपने "त्व" सहित, व्यवस्था के रूप में आचरण है। इन तीनों बिंदुओं को जानना-मानना, पहचानना और निर्वाह करना ही पूर्ण दर्शन, पूर्ण ज्ञान एवं पूर्ण आचरण का तात्पर्य है।

इसी क्रम में, मानव में जीवन और जीवन में अंतर्सम्बन्ध सहज क्रिया-कलाप स्पष्ट होता है। यही आचरण, वाणी अर्थ सम्बन्ध सहज क्रिया-कलाप बनाम भाषा आचरण; व्यवहार कार्यकलाप बनाम सम्बन्ध सहज आचरण; व्यवस्था बनाम सर्वतोमुखी समाधान सहज आचरण के लोकव्यापीकरण करने की सम्पूर्ण संभावना समीचीन है।

आचरणों की विविध विधाओं में से, जागृत जीवन सहज आचरणों को देखने पर पता चलता है कि संख्या के रूप में 122 (एक सौ बाईस) आचरणों को देखा गया है। इन-इन के नाम सहित जागृत जीवन में ही होने वाली क्रिया, अभिव्यक्ति, संप्रेषणाओं का विश्लेषणपूर्वक, उन-उन आचरणों को, सार्थक विधि से इंगित करने की प्रक्रिया प्रस्तुत है। सह-अस्तित्व में सम्पूर्ण क्रियाएं आचरण में गण्य हैं और मानव कुल में सम्पूर्ण आचरण विश्लेषणपूर्वक इंगित होना संभव है। इसलिए सम्पूर्ण अस्तित्व ही अध्ययन सुलभ हुआ।

प्रत्येक मनुष्य जीवन रूप में ही समान है, यह बल-शक्ति, क्रिया और लक्ष्यों के रूप में समान होना देखा गया है। इसी आधार पर अर्थात जीवन के आधार पर ही, जीवन-सहज क्रिया कलाप, प्रत्येक मनुष्य को समझ में आना सहज संभव है। जीवन में पांच आयाम, बल और शक्ति के रूप में, पहले से ही इंगित किया जा चुका है। जिसमें से मन जीवनबल है और आशा जीवनशक्ति है। इसी प्रकार वृत्ति-विचार, चित्त-इच्छा, बुद्धि-ऋतम्भरा और आत्मा-प्रामाणिकता के रूप में अध्ययन गम्य है। इन्हीं अक्षय बल, अक्षय शक्ति के चलते मन में चौंसठ (64) आचरण, वृत्ति में छत्तीस (36) आचरण, चित्त में सोलह (16) आचरण, बुद्धि में चार (4) आचरण, और आत्मा में दो (2) आचरणों को पहचाना गया है। यह प्रस्तुत है।

भ्रमित मानव मन की क्रियाएं सर्वाधिक मान्यताओं के आधार पर सम्पन्न होती हुई दिखाई पड़ती हैं। मान्यता का आधार शरीर, इन्द्रिय और इंद्रिय संवेदनाएं हैं। इन पर आधारित मान्यताओं से प्रत्येक मनुष्य

समस्याग्रस्त रहता है। प्रमाणिकता के लिए मन अनुभव मूलक विधि से क्रियायों को संपन्न करता है। यह विचार, इच्छा, ऋतम्भरा, प्रामाणिकता सहज क्रम में, जीवन जागृति का प्रमाण प्रस्तुत होता है।

"मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान" में जीवन जागृति विधि सम्पन्नता को स्पष्ट किया गया है। आस्वादन क्रम में भी नियम-पूर्वक इन्द्रिय संवेदनाओं का आस्वादन नियम, न्याय, धर्म, सत्यात्मक वैभव का आस्वादन, अखंड सामाजिकता का आस्वादन, सार्वभौम व्यवस्था का आस्वादन और अस्तित्व में अनुभव का आस्वादन यह जागृतिपूर्णता की विधि है।

अजागृत मानव मन का सहज कार्यकलाप, इन्द्रियों की तादात्मता वश, इन्द्रिय संवेदनाओं को सत्य समझने के आधार पर अथवा शरीर को जीवन मान लेने के आधार पर भ्रमित होना पाया जाता है। इसी के पक्ष में जीवन सहज, विचार और इच्छा संयुक्त होकर कल्पनाशीलता का प्रसव और कार्य होते ही रहता है। आलंबन के लिए प्रिय, हित, लाभात्मक दृष्टियां कार्यरत हो जाती हैं, फलस्वरूप इन्द्रिय तृप्ति के लिए दिवारात्रि सोचता हुआ, कल्पना करता हुआ, चित्रित करता हुआ, प्रयास करते हुए, प्रयोग करते हुए, मनुष्यों को पहचाना जा सकता है। इस प्रकार मान्यता का दो पक्ष स्थापित होता है, जिसमें से इंद्रिय संवेदना सापेक्ष मनोविज्ञान प्रचलित हो चुका है। जिसके लोकव्यापीकरण होने के उपरान्त भी मानव परम्परा, बेहतरीन समाज की (अर्थात व्यक्ति समुदाय मानसिकता के चुंगल से छूटकर, अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था सहज) मानसिक व्यवस्था बन नहीं पाई।

इसका मूल कारण, इंद्रिय संवेदनाओं को सत्य मानना रहा अथवा अनिवार्य मानना रहा। जबकि जीवन-ज्ञान, अस्तित्व दर्शन, मानवीयता पूर्ण आचरण ध्रुवों के आधार पर, मानव संचेतनावादी मानसिकता (अथवा मनोविज्ञान) स्पष्ट हो जाता है क्योंकि मानव संचेतना का तात्पर्य ही है, जानने मानने, पहचानने, निर्वाह करने में तृप्ति और उसकी निरंतरता का नित्य वर्तमान होना। ऐसे वर्तमान होने का, मानव परम्परा में ही प्रमाणित होना, सहज है।

जानने-मानने और पहचानने-निर्वाह करने के लिए अस्तित्व ही सम्पूर्ण वस्तु है। अस्तित्व में ही जीवन और जीवन जागृति प्रमाणित होती है तथा अस्तित्व में ही रासायनिक द्रव्यों से गर्भाशय में रचित रचना रूपी मानव शरीर भी सहज सुलभ होता है। यह दोनों अर्थात जीवन जागृति और मानव शरीर के सह-अस्तित्व में ही मानवीयता सहज वैभव का प्रमाणित होना पाया जाता है। इस प्रकार मानव परम्परा में ही, जीवन जागृति प्रमाणित होने की नियति सहज व्यवस्था है। नियति का मतलब, अस्तित्व में नियम-पूर्ण स्थिति, गति से है। नियम ही न्याय, न्याय ही धर्म, धर्म ही सत्य, सत्य ही अस्तित्व, और अस्तित्व ही नियम के रूप में देखने को मिलता है। इन सभी स्थितियों को सत्यापित करने वाला मनुष्य ही है। इसे सत्यापित करने के लिए अस्तित्व ही सम्पूर्ण वस्तु है। अस्तु अस्तित्व ही त्रिकालाबाध सत्य है। ऐसा होने के कारण जो कुछ भी सत्यापन मनुष्य करता है, उसका अस्तित्व सहज होना, परम आवश्यक है, यह समझ में आता है। समझने का तात्पर्य भी जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना ही है। समझने वाली वस्तु, जीवन्त मानव ही है। इस प्रकार दोनों ध्रुव स्पष्ट हो जाते हैं। समझने वाली वस्तु जीवन है समझने के लिए सह अस्तित्व ही है। इस प्रकार जीवन ही दृष्टा है यह स्पष्ट हुआ। देखने वाला ही समझ सकता है। देखने का तात्पर्य भी समझना ही है। इसमें और भी खूबी यह है कि जीवन भी अस्तित्व में अविभाज्य है। इस प्रकार अस्तित्व ही सभी अवस्थाओं में है, यह स्पष्ट हो जाता है। यथा पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था, ज्ञानावस्था। ज्ञानावस्था में, जागृतिसहज व्यवस्था है। जागृत अवस्था में प्रमाणित अवस्था और इनकी परंपराएं, नियति सहज व्यवस्था हैं। नियति का तात्पर्य भी नियमपूर्ण स्थिति गति से है। नियमपूर्ण स्थिति गति हर अवस्था में देखने को मिलती है। इस प्रकार जीवन दृष्टा है इस आधार पर सम्पूर्ण अस्तित्व ही, जीवन में, जीवन से, जीवन के लिए दृश्य है- यह समझ में आता है। इस तथ्य से यह स्पष्ट है कि अस्तित्व ही सभी अवस्थाओं में अथवा पदों में वर्तमान रहता है। अस्तित्व में ही, द्रष्टा पद

प्रतिष्ठा भी वर्तमान है। मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान, जागृतिपूर्ण जीवन का अध्ययन है और मानव परम्परा में प्रमाणित होने की विधियों से सम्पन्न है।

जागृति जीवन के 122 आचरण

अक्षय बल की क्रियाएं (प्रत्यावर्तन)	अक्षय बल का नाम	जीवन का अवयव	अक्षय शक्ति का नाम	अक्षय शक्ति की क्रियाएँ (परावर्तन)
अनुभव	आत्मा	मध्यांश	प्रमाण	प्रमाणिकता
बोध: आनन्द अस्तित्व	बुद्धि	**प्रथम परिवेश**	ऋतम्भरा	संकल्प: धी धृति
चिंतन: 1 श्रुति 2 मेधा 3 कांति 4 निरीक्षण 5 संतोष 6 प्रेम 7 वातसल्य 8 श्रृद्धा	चित्त	**द्वितीय परिवेश**	इच्छा	चित्रण: 1 स्मृति 2 कला 3 रूप 4 गुण 5 श्री 6 अनन्यता 7 सहजता 8 पूज्यता
तुलन: 1 विद्या 2 कीर्ति 3 निश्चय 4 शांति 5 कृपा 6 दम 7 तत्परता 8 कृतज्ञता 9 गौरव 10 विश्वास 11 सत्य 12 न्याय 13 तादात्मता 14 संयम 15 वीरता 16 भाव 17 जाति 18 तुष्टि	वृत्ति	**तृतीय परिवेश**	विचार	विश्लेषण: 1 प्रज्ञा 2 वस्तु 3 धैर्य 4 दया 5 करुणा 6 क्षमा 7 उत्साह 8 सौम्यता 9 सरलता 10 सौजन्यता 11 धर्म 12 संवेदना 13 साहस 14 नियम 15 धीरता 16 संवेग 17 काल 18 पुष्टि

अक्षय बल की क्रियाएं (प्रत्यावर्तन)	अक्षय बल का नाम	जीवन का अवयव	अक्षय शक्ति का नाम	अक्षय शक्ति की क्रियाएँ (परावर्तन)
1 भक्ति				1 तन्मयता
2 ममता				2 उदारता
3 सम्मान				3 सौहाद्र
4 स्नेह				4 निष्ठा
5 पुत्र–पुत्री				5 अनुराग
6 स्वामी/साथी				6 दायित्व
7 सेवक/सहयोगी				7 कर्तव्य
8 स्वायत्त				8 समृद्धि
9 हित				9 स्वास्थ्य
10 प्रिय				10 प्रवृत्तियाँ
11 उल्लास				11 हास
12 शील				12 संकोच
13 गुरू आ				13 प्रामाणिक
14 शिष्य				14 जिज्ञासु
15 भाई–मित्र स्				च 15 प्रगति
16 बहन	मन	चतुर्थ परिवेश	आशा	16 उन्नति
17 स्वीकृति वा				य 17 स्वागत
18 रुचि द				न 18 पहचान
19 सुख				19 स्फूर्ति
20 पति/पत्नि न				20 यतीत्व/सतीत्व
21 माता				21 पोषण
22 पिता				22 संरक्षण
23 मृदु/कठोर				23 वहन/संवहन
24 शीत–उष्ण				24 पोषण
25 खट्टा				25 पोषण
26 मीठा				26 पोषण
27 चिरचिरा				27 पोषण
28 कड़ुआ				28 पोषण
29 कसैला				29 पोषण
30 खारा				30 पोषण
31 सुगन्ध/ दुर्गन्ध				31 श्वसन/ निःश्वसन
32 सुरूप/ कुरूप				32 स्वागत/ अस्वागत

(अध्याय:5.1, पृष्ठ नंबर: 34-41)

- सार्वभौमता, प्रत्येक 'एक' की स्थिति गति है। यह संप्रेषणा, प्रकाशन, कार्य-व्यवहार, स्वयं व्यवस्था और सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी के रूप में प्रमाणित होता है। मानव परम्परा में परस्परता का अनुभव होना ही, मूल्यांकन कार्य प्रणाली का आधार है। जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने का तृप्ति बिंदु ही, अनुभव के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार अनुभव, एक व्यवहारिक एवं सार्वभौम अभिव्यक्ति के रूप में प्रमाणित होता है। इसे परीक्षण निरीक्षण सहित प्रमाणित करना भी संभव है (अथवा मानव सहज कार्य है)। इसकी संभावना के रूप में, सामान्य विधि से, यह पता लगता है कि प्रत्येक मनुष्य व्यवस्था को वरता है (अथवा व्यवस्था में जीना चाहता है)। इस आशय की सार्वभौमता को, अध्ययन गम्य कराना मानव परम्परा का ही प्रधान कार्य है। **शिक्षा** पूर्वक ही सम्पूर्ण अवधारणाएं स्थापित हो पाती हैं। प्रचार, व्यवहार, व्यवस्था पूर्वक, पुष्ट होते हैं। मानव अभी तक अपनी संचेतना के प्रति जागृत होने के क्रम में ही है। संभावनाएं समीचीन हैं ही। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 53)**

- ऐसा शुभ मानस सम्पन्न मानव, व्यर्थताओं से, अवांछनीयताओं से, अस्वीकृत दबावों से ग्रसित क्यों रहा है ? - इसका उत्तर यही मिलता है कि परंपराएं सड़ चुकी हैं अथवा भ्रमित मान्यताओं से परम्परा ग्रसित हो चुकीं हैं। फलत: प्रत्येक शुभ मानस सम्पन्न संतान, परम्परागत, भ्रमवादी प्रभावों से प्रभावित हो जाती है। इसके साक्ष्यों को देखें - जैसे - (१) प्रत्येक संतान किसी अभिभावक की गोद में ही होती है, यह सबको विदित है। अभिभावकों में (अथवा सर्वाधिक अभिभावकों में) उनकी परिभाषा में कहे हुए सभी आशय, सार्थक नहीं हो पाते, जबकि होना चाहिए। यही आशय स्वीकृत है। न हो पाना किसी अभिभावक को स्वीकृत नहीं है। (१) दूसरी विधि में प्रत्येक मानव संतान, किसी न किसी **शिक्षा**-शिक्षण संस्थान में, अर्पित होती है, वे संस्थान अभ्युदय पूर्ण **शिक्षा** और शिक्षण पूर्ण संस्कार विधियों से अनभिज्ञ रहते हैं।

दूसरी भाषा में, इस धरती पर, जितनी भी शिक्षण संस्थाएं, विगत से आज तक हुई है, उनमें मानवाभ्युदय सम्पन्नता और उसकी सार्वभौमता प्रमाणित नहीं हो पाई। फलत: विद्यार्थी के लिए यही शेष रह जाता है कि जो **शिक्षा**, शिक्षण संस्थान, अभी तक जो कुछ भी, प्रावधानित कर पाए हैं, उसे ही पढ़ें। इससे यही हो पाया जैसा कि अभी सम्पूर्ण मानव दिख रहे हैं, देख रहे हैं, कर रहे हैं, करा रहे हैं, भूल रहे हैं, झेलने के लिए बाध्य कर रहे हैं। इसका एक वाक्य में सार है - समस्याओं का विपुलीकरण होना। आरंभिक समय से अभी तक, समस्याएं अधिक होते ही आई हैं, समस्यायें कभी स्वीकार नहीं हो पायी। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 58-59)**

- 15. स्वायत्त - 16 समृद्धि (आवश्यकता से अधिक उत्पादन)

परिभाषा :- स्वायत्त = समृद्धि का अनुभव ही स्वायत्त है।

मूल्यांकन, आवश्यकता से अधिक होने के बिन्दु में ही तृप्ति का अनुभव होना पाया गया है। इसे हर व्यक्ति अपने में जाँच सकता है। ऐसा जाँचने के क्रम में इस तथ्य का भी मूल्यांकन होता है कि हम आवश्यकता से अधिक उत्पादन किये है या नहीं। आवश्यकता से अधिक उत्पादन परिवार की सीमा में ही मूल्यांकित होता है। परिवार में सभी सम्बन्धों का सम्बोधन जागृत मानव प्रकृति को जाँचने के लिए एक आवश्यकता है।

इस विधि से सोचा जाय तो पता लगता है कि १० व्यक्तियों के बीच में सीमित, संयत संतानों के साथ सर्वाधिक सम्बन्धों का सम्बोधन परिवार में सुलभ हो जाता है, फलस्वरूप हर के साथ कर्तव्य और दायित्व स्फुर्त होना पाया जाता है। स्वयं स्फुर्ति सदा-सदा जागृति के आधार पर सम्पन्न होना पाया गया। जागृति समझदारी के अर्थ में सार्थक है। इस प्रकार समझदार मानव ही सम्बन्ध, मूल्य, मूल्यांकन, उभय तृप्ति करने में सक्षम है। इसकी आवश्यकता हर मानव में रहती ही है। इसे सार्थक रूप देना मानव परम्परा का अभीष्ट है। जागृति सर्वमानव को स्वीकृत है, इस

विधि से समझदारी, लोक व्यापीकरण होने का स्रोत मानव परम्परा ही है उसमे भी **शिक्षा-संस्कार** विधा ही प्रबल प्रभावी स्रोत है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 63)**

- स्वराज्य व्यवस्था के प्रधान आयाम पांच हैं :-

(1) न्याय सुलभता (2) उत्पादन सुलभता (3) विनिमय सुलभता
(4) स्वास्थ्य संयम सुलभता (5) **शिक्षा संस्कार सुलभता।**

प्रथम तीनों के स्रोत के रूप में **मानवीयतापूर्ण शिक्षा संस्कार** सुलभता और स्वास्थ्य संयम सुलभताएं, समाविष्ट रहती ही हैं। यही मानव परम्परा की विवेक व विज्ञान पूर्ण गति व संगति है। प्रत्येक मनुष्य व्यवस्था को ही वरता है। व्यवस्था में, से, के लिए समृद्धि सहज है। अस्तु स्वयं व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी के वैभव क्रम में ही उपयोगिता, सदुपयोगिता और प्रयोजनीयता प्रमाणित होती है। साथ ही आवश्यकता से अधिक उत्पादन से, शोषण विहीन विनियम से तथा न्याय सुलभता से वर्तमान में विश्वास होता है। **(अध्याय:5.1, पृष्ठ नंबर:65)**

- प्रतिभा सहित व्यक्तित्व में स्वाभाविक रूप में सर्वतोमुखी समाधान समाज न्याय, परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन में भागीदारी, स्वास्थ्य संयम में जागृति, मानवीय **शिक्षा** संस्कार सम्पन्न व्यक्ति ही व्यवहार में सामाजिक तथा व्यवसाय में स्वावलम्बी होता है। वह अपने आहार-विहार, व्यवहार में स्वास्थ्य संयम का प्रमाण, प्रस्तुत करता है। यही सम्पूर्ण सौंदर्य का आधार बनता है। ऐसे व्यक्तित्व रूपी, सौंदर्य अनुभूति के आधार पर ही, मानवीयता पूर्ण पद्धति, प्रणाली, नीति पूर्ण अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का सूत्र और व्याख्या, स्वाभाविक रूप में सम्पन्न होती है। अस्तित्व सहज रूप में, नियति क्रम विधि से, अपने मानवत्व सहित, मानव व्यवस्था है और समग्र व्यवस्था में भागीदारी के लिए प्रेरित है और प्रेरक है। यह प्रत्येक मनुष्य की जीवन-सहज प्यास है। इसे परीक्षण, निरीक्षण, सर्वेक्षण पूर्वक आकलित किया जा सकता है। यह सब जीवन और शरीर के संयुक्त अध्ययन का फलन है। इस प्रकार प्रिय लगने वाली प्रवृत्तियां, मानव सहित व्यवस्था के अर्थ में हैं। मान्यताओं और प्रवृत्तियों के आधार पर, सदा सदा के लिए सबसे प्रिय व्यक्तित्व, सुन्दर, सुख और समाधान के रूप में, सबको सुलभ हो सकता है। मानव मानसिकता का तथा विधि सहज मानसिकता का (अथवा नियति सहज मान्यता का) फलन, हर व्यक्ति के लिए समीचीन है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 68-69)**

- 23 शील - 24 संकोच

परिभाषा - शील :- जागृति सहज वैभव को **शिष्टता** के रूप में सभी आयाम, कोण, दिशा, परिप्रेक्ष्य में प्रमाणिकता को इंगित कर लेना और कराने की क्रिया का नाम शील है। शिष्टता पूर्ण लक्षण। शिष्टता अर्थात पूर्ण जागृत मानव के द्वारा जागृति के अर्थ में किया गया अभिव्यक्ति संप्रेषणा व प्रकाशन।

संकोच :- अस्वीकृति को **शिष्टता** से, प्रस्तुत करना।

मानव में आदि काल से ही परस्पर शिष्टता की अपेक्षा बनी ही रही। इसकी अभिव्यक्ति में, संप्रेषणा में, उत्पादन में, व्यवहार में, प्रकाशन में, व्यवस्था में अच्छे होने की अपेक्षा रही, जो सफल न हो पाया। युद्ध में, द्यूत (जुआ-खेलने) में, कला-कविता में और इसी के साथ व्यापार में भी मानव, शिष्टता की अपेक्षा करते आया। मूलत: आशित इन मुद्दों पर शिष्टता का अच्छा लगने के रूप में अपेक्षाएं रही, जो ध्रुवीकरण न होने से, शिष्टता का लक्षण भी, अनिश्चयता के चंगुल में आया, अत: व्यक्ति केन्द्रित रूप में शिष्टता की बात टिक गई। जिससे जैसा बना, वह उसकी

शिष्टता बनती गई। इस प्रकार राष्ट्रीय, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक शिष्टताएं, **शिक्षा** सुलभ, व्यवहार सुलभ, व्यवस्था सुलभ नहीं हो पाईं।

मानव संचेतना सहज विधि से किए गये सम्पूर्ण अध्ययन के फलस्वरूप, शिष्टता का स्वरूप नाम और कार्य के रूप में - सूची रूप में प्रस्तुत है :-

नाम कार्य

1. सौम्यता - स्वेच्छा से, स्वयं स्फूर्त विधि से, स्वयं की नियंत्रण क्रिया।
2. सरलता - ग्रंथि व तनाव रहित अंगहार, क्रियाकलाप।
3. पूज्यता - गुणात्मक विकास, जागृति सहज स्वीकृति सहित किए गए क्रियाकलाप।
4. अनन्यता (एकात्मता) - मनुष्य की परस्परता में, पूरक क्रियाकलाप।
   प्रामाणिकता व समाधान में निरंतरता। अविकसित के विकास में सहायक क्रिया।
5. सौजन्यता- सहकारिता, सहयोगिता, सहभागिता सहज क्रिया-कलाप।
6. सहजता -
   1) स्पष्टता एवं प्रामाणिकता पूर्ण क्रियाकलाप।
   2) आंडबर तथा रहस्यता से मुक्त व्यवहार, रीति, विचार एवं अनुभव की एक सूत्रता क्रिया।
7. उदारता -
   1) स्व प्रसन्नता पूर्वक कार्य।
   2) दूसरों के उत्थान के लिए आवश्यकतानुसार तन, मन, धन रूपी अर्थ का अर्पण, समर्पण क्रिया।
8. अरहस्यता - जिस प्रकार से स्वीकृत है, उस अवधारणा, स्मृति अथवा श्रुति को यथावत प्रस्तुत करने का क्रियाकलाप।
9. निष्ठा- लक्ष्य को स्मरण पूर्वक प्राप्त करने का निरंतर प्रयास।

उपरोक्त चित्रित शिष्टता के स्वरूप में, मानव स्वयं परीक्षण कर सकता है। हम जितना भी किए हैं, सब में यही उत्तर निकलता है। ये क्रियाएं सभी व्यक्ति कर सकते हैं और मैं भी करता ही हूं। इन शिष्टता पूर्ण क्रियाओं को करते समय, जो लक्षण एक दूसरे को दिखाई पड़ते हैं, वह सब शिष्टता के अर्थ में ही, स्वीकार होता है। ये सब नाम दिए गए हैं। ये सब लक्षणों सहित नाम हैं। शिष्टता का ध्रुवीकरण, मूल्यों के आधार पर ही होता है। मूल्यों को अनुभव सहित जीने वाला, प्रत्येक मनुष्य शिष्टता पूर्ण विधि से प्रस्तुत करता है। फलस्वरूप मूल्यों का प्रमाणीकरण मूल्यांकन हो जाता है।

मूल्य-मूल्यांकन, सम्बंधों के साथ मूल्यों की अनुभूतिपूर्वक ही, मूल्यांकन होना पाया जाता है। इसी शिष्टतापूर्ण पद्धति से अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, लोकव्यापीकरण होना सहज है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर:71-73)**

- मानव के "स्वत्व", स्वतंत्रता एवं अधिकार के लिए मानव ही प्रमाणों का आधार है। प्रत्येक मनुष्य स्वयं को प्रमाणित करना भी चाहता है। मानव को प्राप्त **शिक्षा-संस्कारों** में प्रत्येक मनुष्य को प्रमाणित करने की अथवा प्रमाणित होने की, स्व-प्रमाणों पर विश्वास होने की अथवा कराने का स्पष्ट बिंदु, स्पष्ट विश्लेषण, स्पष्ट प्रकिया पूर्वक, स्पष्ट प्रयोजनों के साथ मनुष्य के अधिकारों को जोड़ा नहीं गया (अथवा जोड़ना संभव नहीं हुआ था)। जबकि प्रत्येक मनुष्य में जीवन समान है। जीवन शक्तियां समान है, जीवन बल समान है, जीवन लक्ष्य समान हैं, समाज-लक्ष्य समान हैं, व्यवस्था लक्ष्य समान है, (जीवन सहज समानता के आधार पर) जीवन सहज शक्ति, बल, लक्ष्य संभावनाओं की समानता के आधार पर ही, संबद्ध रहना पाया जाता है। जीवन लक्ष्य जागृति है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर:74)**

- मूल्यों का प्रमाण, जानने का प्रमाण, मानने का प्रमाण, पहचानने का प्रमाण, निर्वाह करने का प्रमाण, नियम का प्रमाण, न्याय का प्रमाण, सत्य सहज प्रमाण, अस्तित्व सहज प्रमाण, सह-अस्तित्व सहज प्रमाण, जीवन कार्य सहज प्रमाण, व्यवस्था सहज कार्यों का प्रमाण, विकास सहज प्रमाण, संक्रमण सहज प्रमाण, रचना सहज प्रमाण, विरचना सहज प्रमाणों को, मानव ही प्रस्तुत करता है। इसमें से आंशिक प्रक्रियाओं को किसी भी यंत्र अथवा जीवों को सिखाकर, मानव ने स्वयं को धन्य मान लिया। उल्लेखनीय बात यही है कि स्वयं को प्रमाण का आधार होने का गौरव स्वीकारना, इसको प्रमाणित करना प्रतीक्षित रहा है। इसके लिए जीवन-विद्या **शिक्षा** का मानवीकरण सम्पन्नता के अनंतर, मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान, व्यवहारवादी समाजशा (मानवीय आचार संहिता रूपी संविधान) और आवर्तनशील अर्थव्यवस्था को, हृदयंगम करने के क्रम में, मानव में स्वयं के प्रति विश्वास करना, फलत: श्रेष्ठता के प्रति सम्मान करना संभव हो जाता है। इस विधि से मानव, अपने में संतुष्टि संपन्न होता है। सर्वतोमुखी समाधान, स्वानुशासन, समाज न्याय, व्यवसाय में स्वावलम्बन प्रमाणित होता है। यही स्वयं में संतुष्ट होने का प्रमाण है। व्यवहार प्रमाण में ही, लक्षण और वस्तुएं (अथवा लक्षणों सहित वस्तुएं) प्रमाणित होती हैं। इस प्रकार अस्तित्व में सम्पूर्ण स्थिति, गति, कार्य और प्रयोजन को मानव परम्परा में प्रमाणित होना आवश्यक है। नियति सहज रूप में नित्य सहज और समीचीन है। **(अध्याय:5.1, पृष्ठ नंबर:74-75)**

- **गुरू - प्रामाणिक**

परिभाषा : **गुरू :- शिक्षा संस्कार** नियति क्रमानुवषंगीय विधि से, जिज्ञासाओं और प्रश्नों को समाधान रूप में, अवधारणा में प्रस्थापित करने वाला मनुष्य गुरू है। जागृति क्रम में मानव को अप्राप्त का प्राप्त, अज्ञात का ज्ञात करने के लिए, होने के लिए विधि, नियम, प्रक्रिया सहज समझदारी में पारंगत बनाना ही प्रमाणिकता का प्रमाण है। प्रमाणिकता पूर्ण गुरूजन ही अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व रूप में अवधारणा को प्रतिस्थापित करा सकता है। अवधारणायें अस्तित्व, विकासक्रम, विकास, जीवन, जीवनी क्रम, जीवन जागृतिक्रम, जीवन जागृति सहज रूप में, परस्परता में, अर्थात समझा हुआ और समझने के लिये तथा मनुष्यों से है। गुरूजन इन मुद्दों में पारंगत रहेंगे, यह समझदारी है, समझदारी के आधार पर ही **मानवीय शिक्षा-संस्कार** संपन्न होता रहेगा, संस्कार का तात्पर्य ही अवधारणा है। विद्यार्थियों में स्थापित होने से उसकी निरंतरता का प्रमाण व्यवहार व्यवस्था में प्रमाणित होने से है। फलस्वरूप ही अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी सहज कार्य-कलाप हर **मानवीय शिक्षा-संस्कार** सम्पन्न मानव से चरितार्थ होना पाया जाता है।

प्रामाणिक :- प्रमाणों का धारक वाहक - यथा अस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण समुच्चय को प्रयोग, व्यवहार, अनुभव पूर्ण विधि से, प्रमाणित करना और प्रमाणों के रूप में जीना।

प्रामाणिकता मानव में जागृति सहज अभिव्यक्ति है। जीवन- जागृति पूर्वक मनुष्य प्रामाणिक होता है। प्रामाणिकता प्रत्येक मनुष्य की परम आवश्यकता है। इसलिए गुरू, प्रामाणिकता के रूप में सुस्पष्ट है। **शिक्षा** संस्कार के केन्द्र में जो व्यक्ति विराजमान होते हैं, उनका प्रामाणिक होना, व्यवहारिक रूप में वांछनीय है। इस प्रकार गुरू, आचार्य, प्रवक्ताओं की प्रामाणिकता ही, मानव परम्परा का त्राण और प्राण है।

प्रामाणिकता का, प्रमाणों के रूप में व्यक्त होना मानव सहज है। सम्पूर्ण प्रमाण अनुभव मूलक व अनुभवगामी प्रणाली से स्पष्ट होते हैं। प्रमाणों की अभिव्यक्ति अनुभवमूलक ही होती है क्योंकि सम्पूर्ण प्रमाण प्रयोग, व्यवहार और अनुभव ही हैं। व्यवहार और प्रयोग में जो प्रमाणित होना है वह भी, अनुभव साक्ष्य के आधार पर स्पष्ट होता है। यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता प्रमाणित होती है। न होना, प्रमाण भी नहीं होता, सम्पूर्ण प्रमाण, प्रयोजनों के रूप में होना सहज है।

मनुष्य भी अस्तित्व में अविभाज्य है और द्रष्टा पद प्रतिष्ठा सम्पन्न है। यही अनुभव क्षमता का प्रमाण है। अनुभव क्षमता ही, दृष्टा पद में प्रकाशित है। दृष्टापद, विकास व जागृति की महिमा है। जागृति प्रत्येक मनुष्य का अभीष्ट है क्योंकि जागृति पूर्वक ही मनुष्य का निर्भ्रम और सफल होना अस्तित्व सहज है। जागृति ही अनुभव प्रकाश है। मनुष्य जीवन और शरीर के, संयुक्त रूप में प्रकाशित है। जागृति क्रम में मनुष्य, अग्रिम जागृति का प्रयास करते आया है। अभी भी प्रामाणिकता पूर्ण पद्धति, प्रणाली, नीति पूर्वक जीने की कला का समृद्ध होना समीचीन है। मानव परम्परा उनकी धारक-वाहक है, हर मानव संतान को इसकी अवश्यकता है। यह परम्परा है।

अस्तित्व, विकास, जीवन, जीवन जागृति, रासायनिक-भौतिक रचना-विरचना की यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता के फलस्वरूप अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था सर्वसुलभ होती है। अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था ही मानव कुल का प्रमाण और प्रामाणिकता का प्रयोजन है तथा उसकी निरंतरता हो, यह इसलिए अनिवार्य है कि धरती में दूरी का बोझ हल्का हो गया है। यह विज्ञान की कार्य महिमा है। सार्वभौम व्यवस्था को पहचानने के क्रम में, मानव स्वयं ही अखंड समाज, समाधान, समृद्धि, अभय तथा सह-अस्तित्व के रूप में प्रमाणित होता है।

सार्वभौम व्यवस्था में मानव में न्याय, विनिमय, उत्पादन, स्वास्थ्य-संयम और **मानवीय शिक्षा-संस्कार** सुलभ होता है। तभी सुखद, सुन्दर, समाधान पूर्ण समृद्ध मानव परम्परा वैभवित होगी। अतएव ऐसी सर्व वांछित घटनाओं को साकार एवं सर्वसुलभ करने के लिए प्रामाणिक परम्परा ही एक मात्र शरण है। प्रामाणिकता पूर्वक ही **शिक्षा**-संस्कार, संविधान व स्वराज्य व्यवस्थाएं सफल हो पाती हैं। इसीलिए प्रामाणिक परम्परा को पाने के लिए आचार्य, शिक्षक, गुरू, व्यवस्थापक, संविधान एवं **शिक्षा** की वस्तु का प्रामाणिक होना अनिवार्य है। इसे पाने के लिए अस्तित्व सहज जीवन-विद्या, वस्तु-विद्या का संतुलित अध्ययन, प्रतिभा व व्यक्तित्व के संतुलित उदय का अध्ययन व व्यवहार में सामाजिक तथा व्यवसाय में स्वावलम्बन के संतुलित क्रियान्वयन का अध्ययन, प्रामाणिक परम्परा के लिए आवश्यक है। इस प्रकार गुरू का स्वरूप, प्रामाणिकता का स्वरूप, लोक मानसिकता में स्वीकृत होना पाया जाता है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 76-78)**

- **शिष्य - जिज्ञासु**

परिभाषा : शिष्य :- जागृति लक्ष्य की पूर्ति के लिए **शिक्षा संस्कार** ग्रहण करने, स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत व्यक्ति, जिसमें गुरू का सम्बन्ध स्वीकृत हो चुका रहता है। यही जिज्ञासात्मक शिष्टता है।

जिज्ञासु :- जीवन ज्ञान सहित निर्भ्रम **शिक्षा** ग्रहण करने के लिए तीव्र इच्छा का प्रकाशन।

समझने, सीखने, करने के लिए पूर्ण जिज्ञासा सहित प्रयत्न संपन्न व्यक्ति, शिष्य के रूप में शोभनीय होता है। सफल होने के सभी लक्षणों से युक्त वातावरण में विश्वास होना और विश्वास को वातावरण में प्रभावित करने, प्रमाणित करने की सभी प्रक्रिया अध्ययन है।

अस्तित्व, विकास, जीवन, जीवन जागृति, रासायनिक-भौतिक रचना-विरचना, सम्पूर्ण मानव के लिए समझने-समझाने की वस्तु है। सीखने की जो कुछ भी प्रमाणित वस्तु है, यह मानव में मानवीयतापूर्ण आचरण, कर्म अर्थात व्यवसाय में स्वावलम्बन, व्यवस्था में भागीदारी, मानवीयता पूर्ण आचरण का अभ्यास, प्रामाणिकता सहज अभिव्यक्ति है। साथ ही सार्वभौम व्यवस्था और अखंड समाज में निष्ठा है। ये सम्पूर्ण जिज्ञासाएं व्यावहारिक रूप में चरितार्थ होती हैं। प्रौढ़ता की पराकाष्ठा में, से, के लिए स्वानुशासन की जिज्ञासा का होना पाया जाता है। जिज्ञासा मानव सहज प्रकाशन है।

जिज्ञासा में ही न्यायिक अपेक्षाएं संयत, नियंत्रित होती हैं। मानव मूलत: सहज रूप में सही कार्य व्यवहार करने का इच्छुक है, न्याय सहज अपेक्षा और सत्य वक्ता है। इस आधार पर - जिज्ञासाएं उद्गमित होते ही रहती हैं।

जब तक प्रमाणिकता का स्रोत, मानव परम्परा में स्थापित न हो जाए, तब तक इसी जिज्ञासा की पुष्टि में, कल्पनाशीलता- कर्म स्वतंत्रता पुन:प्रयास के साथ क्रियान्वित रहते ही हैं। इसे प्रत्येक मनुष्य में देखा जा सकता है। सम्पूर्ण जिज्ञासाएं अज्ञात को ज्ञात करने, अप्राप्त को प्राप्त करने के क्रम में हैं। कर्मस्वतंत्रता और कल्पनाशीलता, जीवन तृप्ति के पक्ष में, प्रमाण और स्रोतों को अन्वेषण करने की प्रक्रिया है। यह सदा ही जीवन सहज अभीप्सा है। अभीप्सा का तात्पर्य - अभ्युदय के लिए कल्पना और इच्छाओं को बनाए रखने की क्रिया है।

जीवन तृप्ति का तात्पर्य - स्वराज्य और स्वतंत्रता में प्रमाणित होना है। इसे पाने के पहले, इस संदर्भ में सम्पूर्ण अध्ययन संपन्न होने में शिक्षा-संस्कार की प्रमुख भूमिका है। यह अध्ययन भी, जिसका एक अनिवार्य भाग है। मानव परम्परा के जागृत होने के उपरान्त ही इसके, सबको सुलभ होने की संभावना समीचीन है।

परम्परा जागृत होने का तात्पर्य है - मानवीय **शिक्षा** संस्कार, मानवीय आचार संहिता रूपी संविधान, परिवार मूलक स्वराज्य रूपी अखंड समाज व्यवस्था और स्वास्थ्य-संयम सम्बन्ध में पूर्णतया प्रामाणिकता को, व्यवहार में प्रमाणित करना। यही जागृति की सफलता का स्वरूप है। इसीलिए समझदारी सहज **शिक्षा** की आवश्यकता है। जागृति परम्परा की आवश्यकता इस दशक में बढ़ रही है, जो मानवतावादी दृष्टिकोण को विकसित करने के स्वरों के रूप में, सुनने को मिलता है। यह सभी राजनैतिक दलों, संस्थाओं और सभी समाज-सेवी संस्थाओं के लोक शिक्षण में, धर्म नैतिक संस्थाओं इतना ही नहीं व्यापार केन्द्र संस्थाओं की, उदारता पूर्ण विधि को व्यक्त करते हुए (अथवा उदारतावादी विचारों को व्यक्त करते हुए) संवादों के रूप में सुनने को मिला है।

कम से कम, इस दशक में मानवतावादी दृष्टिकोण की आवश्यकता पर बल देने वाली गोष्ठियां सभी स्तरों पर पाई जाती हैं। इसलिए मानव परम्परा जागृत होने की संभावना समीचीन होती है। जागृति के आधार पर मानव संचेतना सहज वर्तमान में सभी समुदाय चेतनाएं विलय होने की घटना की संभावना समीचीन हो चुकी है। क्योंकि आदर्शवाद और भौतिकवाद सदूर विगत से अभी तक जो कुछ भी समुदायों और वर्गों का संघर्ष मतभेद और शक्ति प्रयोग (संघर्ष और सामरिक विधि से) करता हुआ मानव तंत्र के परिणाम स्वरूप आज की स्थिति में प्रदूषण, बढ़ती हुई जनसंख्या, धरती का तापमान, बढ़ती हुई समुद्र की सतह, ये सब प्रधान संकट हैं।

इन संकटों के साये में जीने का रास्ता केवल संघर्ष और युद्ध ही है। इसी मोड़ पर धरती पर जीते-जागते 600 करोड़ से अधिक मानवों को जीने के लिए मजबूर कर दिया है। यह केवल उक्त दो प्रकार की विचार प्रर्वतन योजना कार्य का ही परिणाम है।आदर्शवादी धरती के साथ कम से कम अपराध करते रहे हैं। भले ही मानव के साथ परस्पर परिवार, समुदाय, वर्ग के रूप में संघर्षरत रहे हैं। इसी संघर्ष के साथ जुड़े भौतिकवादी आविष्कारों के सहारे धरती के साथ अपराध करना राज्य स्तर पर स्वीकृत हो चुका है अर्थात हर राज्य ऐसे अपराध करना स्वीकार कर चुका है।

पर्यावरण समस्या का मूल तत्व खनिज तेल व कोयला ही है। इसके विकल्प के रूप में सूर्य-उष्मा, प्रवाह-बल की उपयोगिता विधि व उसके लोकव्यापीकरण की आवश्यकता है। इसी से जल, थल व वायु प्रदूषण निवारण होना सुस्पष्ट है। बढ़ती हुई जनसंख्या का कारण केवल असुरक्षा, वह भी मानव में निहित अमानवीयता का भय ही है। प्राकृतिक भय के रूप में भूकम्प, बाढ़, ये सब आता ही है। इसी के साथ बीमारी भी भय का स्रोत है। जहां तक रोग की बात है औषधि, उपचार, उपाय के सहारे निराकरण कर लेना सहज है।

भूकम्प और बाढ़ जनित भय का निराकरण बाढ़ की सीमायें व भूकम्प की निश्चित दिशा में मानव को पहचानने में आता है, उसी के आधार पर इसका निराकरण होता है। जब से धरती के साथ अपराध अर्थात धरती के भीतर की चीजों का अपहरण करने के लिए या शोषण करने के लिए प्रयत्न किया है, तब से धरती की भूकम्प सम्बन्धी दिशायें विचलित हुई हैं। यह भी मानव को पता है। धरती के साथ अपराध बन्द करने पर धरती अपनी निश्चित विधि से ही अपने सौभाग्य को बनाये रखने में सक्षम है। अतएव धरती के साथ अपराध करने की स्वीकृतियों में परिवर्तन करने की आवश्यकता, इसके लिए भरपूर समझदारी की आवश्यकता है।

नासमझीवश ही मानव अपराध करता पाया जाता है। अतएव भयमुक्ति के उपरान्त ही मानव परम्परा में स्वयं स्फुर्त जनसंख्या नियन्त्रण होने की व्यवस्था है। "ऐसी व्यवस्था ही परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था है। इस

व्यवस्था के अनुसार परम्परा बनने की स्थिति में हर गांव व नगर कितने जनसंख्या के आवास योग्य हैं, इसका निर्धारण होता है। इसी विधि से जनसंख्या नियन्त्रण होना समीचीन है।

धरती का तापक्रम बढ़ना परिणामत: समुद्र में जलस्तर बढ़ना। अत: यह सुस्पष्ट है कि धरती में निहित खनिज, तेल एवं कोयला ही ताप पचाने के द्रव्य हैं। अतएव इन द्रव्यों का शोषण न किया जाए, तभी संतुलन की स्थिति आना संभव है। चक्रवात व तूफान भी अपने निश्चित दिशा व स्थान में आना पाया जाता है। इससे बचकर मानव सुखपूर्वक पीढ़ी-दर-पीढ़ी धरती पर बने रह सकता है। अतएव **शिक्षा** की परिपूर्णता मानव परम्परा में प्रमुख मुद्दा है।

जन्म से मानव संतान अनुकरण-अनुसरण करती हुई देखने को मिलती है। यही आज्ञापालन और सहयोग कार्यों में प्रमाणित होने का सूत्र है। परम्परा, जागृति और प्रामाणिकता का, सहज धारक-वाहक होने के आधार पर ही, परम्परा से अग्रिम पीढ़ी को, प्रामाणिकता पूर्ण शिक्षा-संस्कार सुलभ होता है। ऐसी स्थिति पाने के लिए जागृति विधि से, शिक्षा-संस्कार को स्थापित करना, सर्वप्रथम आवश्यकता है। फलस्वरूप मानव संतानों में सहज ही जिज्ञासा उद्गमित होना समीचीन है।

मानव परम्परा में प्रामाणिकता ही प्रधान वैभव है। जागृति ही इसका मूल स्रोत है। इसका धारक-वाहक केवल मानव है। सम्पूर्ण प्रमाणों की अभिव्यक्ति तथा संप्रेषणा का आधार भी केवल मानव है। मानव संतानों में प्रयासोदय, शैशव अवस्था में ही देखने को मिलता है। उसी के साथ-साथ आज्ञापालन और सहयोग प्रवृत्ति प्रकारान्तर से सभी मानव संतानों में देखने को मिलती है। इसी के साथ अनुकरण कार्यों में प्रमाणित करने का (अथवा अनुकरित कार्यों को प्रमाणित करने का) सिलसिला दिखाई पड़ता है।

प्रत्येक संतान में पांचों ज्ञानेन्द्रिय सहज कार्य-कलापों को व्यक्त करने की स्वाभाविक क्रियाएं देखने को मिलती हैं। यह शरीर यात्रा के आरंभ से ही होना स्पष्ट है। प्रत्येक शिशु में स्वस्थता की पहचान, परम्परा से ही पांचों ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों के क्रिया-कलाप से ही है। इस प्रकार ज्ञानेन्द्रिय पूर्वक, कर्मेन्द्रियों सहित **शिक्षा** ग्रहण करना भी देखा जा रहा है। इस प्रकार मानव संतानों में, कोई ऐसी अड़चन नहीं है कि जिसे परम्परा प्रावधानित करना चाहती है उसे वह ग्रहण न करे। इससे यह पता लगता है कि शिशु काल की अपेक्षा के अनुरूप प्रौढ़ पीढ़ी में समाधान एवं तृप्ति प्रदान करने योग्य वस्तु ही नहीं है।

शैशविक (शिशु) मानसिकता के आधार पर हर शिशु न्याय का याचक (अभिभावकों के भरोसे पर), सही कार्य-व्यवहार करने का इच्छुक (अनुसरण और अनुकरण के आधार पर), और सत्य वक्ता होता है (सुने देखे के आधार पर), इसी से मानव संतान को क्या चाहिए पीछे पीढ़ी से यह स्पष्ट हो जाता है कि :-

1. न्याय प्रदायी क्षमता योग्यता को स्थापित करने की विधि से, न्यायापेक्षा की तृप्ति होना पाया जाता है।
2. सही कार्य-व्यवहार को करने की इच्छा की तृप्ति, व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलम्बन की क्षमता, योग्यता, पात्रता को स्थापित करने के आधार पर संपन्न होता है।
3. सत्यवक्ता होने की तृप्ति, अस्तित्व सह-अस्तित्व रूपी सत्य बोध से होती है। अस्तित्व दर्शन से सत्य बोध, जीवन-ज्ञान से व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलम्बन तथा मानवीयता पूर्ण आचरण में पारंगत होने से, न्याय प्रदायी क्षमता प्रमाणित होती है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 78-83)**

- मानव, परम्परा सहज रूप में बहु-आयामी पहचान प्रवृत्ति वर्तमान है। अस्तित्व ही, सह-अस्तित्व होने के फलस्वरूप पदार्थावस्था ने परिणामानुषंगीय विधि से, विविध तत्वों के रूप में, संतुलन को व्यक्त किया है। प्राणावस्था ने, बीजानुषंगीय विधि से, विविध वनस्पतियों के रूप में संतुलन को व्यक्त किया है। जीवावस्था में वंशानुषंगीय विधि से, अनेक प्रकार की जीव परम्परा ने, संतुलन को व्यक्त किया है। मानव के लिए संस्कारानुषंगीय विधि से, समाधान, समृद्धि, अभय और सह-अस्तित्व को प्रमाणित करना सार्थकता है। इसे स्वराज्य व स्वतंत्रता पूर्वक, मानवीय संस्कृति (सम्बंधों की पहचान, स्थापित शिष्ट मूल्य का निर्वाह), मानवीय सभ्यता (मानव मूल्य व जीवन मूल्यों का वर्तमान में

प्रमाणीकरण), विधि (मानवीयता पूर्ण आचारण संहिता) की रक्षा, व्यवसाय आवश्यकता से अधिक उत्पादन सहित (स्वयं व्यवस्था होने में विश्वास और परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था जो - **(1) शिक्षा संस्कार** (2) न्याय-सुरक्षा (3) उत्पादन कार्य (4) विनियम कोष (5) स्वास्थ्य-संयम व्यवस्था में भागीदारी को प्रमाणित करना, मानव परम्परा की सार्थकता है। मानव, परम्परा के रूप में अखंड है। मानवीयता पूर्ण संस्कार परम्परा में, **मानवीय शिक्षा संस्कार** सार्वभौम है। मानव परम्परा में स्व-राज्य, स्वतंत्रता सार्वभौम है। मानव परम्परा में न्याय सुरक्षा, श्रम नियोजन व श्रम विनियम रूपी विनियम कार्य, सार्वभौम प्रमाणित होता है। साथ ही मानव जाति में अखंडता मानव धर्म, इसके अनुसंधान का उद्देश्य, प्रामाणिकता और सर्वतोमुखी समाधान, सार्वभौम है। इसलिए मानव, अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था के रूप में सहज है। **(अध्याय:5.1, पृष्ठ नंबर: 101)**

- माता ही शरीर का पोषण, भाषा का पोषण, नाम का पोषण, परिचयों का पोषण, संस्कृति का पोषण करने के क्रम में संस्कारों का निक्षेपण सहज रूप में करती है। प्रत्येक मां अपनी संतान को सम्बंधों का सम्बोधन, प्रारंभिक अवस्था में सिखाती है और जैसे ही उम्र बढ़ती है, वैसे ही सम्बोधन के साथ गौरव, विश्वास, सेवात्मक आचरणों को सिखाती है। यहां पर मानव को, मानवीयता के नाते सम्बोधनों एवं आचरणों को सिखाना आवश्यक है। जिससे सभी समुदाय चेतना, मानव संचेतना में विलय हो सके। मानव में मानवीयता पूर्ण संस्कार पोषण, बुनियादी कार्य है। प्रत्येक व्यक्ति में यह महत्वपूर्ण कार्य मां से आरंभ होता है, यही मानव संस्कृति की अंकुरण क्रिया है। मानव जाति और धर्म, अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था रूपी सत्य को, स्थापित करना, मानव संस्कार है। सम्बन्धों की पहचान, शिष्टता का अभ्यास, मानव संस्कार है। मानव जाति, मानव में मानवीय सम्बन्ध, मानव समाज, मानवीय व्यवस्था (संविधान मानवीयता पूर्ण मानव का आचरण) के प्रति अवधारणाओं को स्थापित करना **शिक्षा संस्कार** है।

आरंभिक अथवा बुनियादी कार्य माता-पिता अथवा अभिभावकों और बंधुओं से सम्पन्न होता है। दूसरा, **शिक्षा** संस्थानों में दृढ़ होता है। राज्य व्यवस्था, संविधान पूर्वक पूर्ण एवं मूल्यांकित व प्रमाणित हो पाता है। इस प्रकार मां का पोषण कार्य शरीर, संस्कार, शिक्षा, व्यवहार, आचरण की बुनियाद है। (माता –पोषण) **(अध्याय:5.1, पृष्ठ नंबर:104-105)**

- पिता – संरक्षण

परिभाषा : संरक्षण :- जीवन जागृति के क्रम में निर्बाधता। सुगमता के अर्थ में है। संतान को, संतान के रूप में स्वीकार किये हो, ऐसी स्थिति में वे अभिभावक (अभ्युदय भावना सम्पन्न) अपने बच्चों का संरक्षण करते हैं यह एक सर्वसाधारण क्रिया है।

प्रधानत: पिता संरक्षण में, माता पोषण में सर्वाधिक रूप में प्रमाणित होते हैं या होना चाहते हैं। संरक्षण का प्रधान कार्य स्वास्थ्य, **शिक्षा- संस्कार**, संस्कृति-सभ्यता, आचरण और मूल्यों का आस्वादन, ये प्रधान मुद्दे हैं । **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर:105)**

संस्कार, नाम-जाति, धर्म, दीक्षा, **शिक्षा** सहज रूप में आवश्यक है। नाम संस्कार संबोधन के अर्थ में, जाति संस्कार - मानव जाति के अर्थ में, धर्म संस्कार मानव-धर्म (सर्वतोमुखी समाधान) के अर्थ में, दीक्षा-संस्कार जीवन जागृति, स्वानुशासन के अर्थ में सार्थक है। **शिक्षा संस्कार** पहले कहे चारों संस्कारों को सार्थकता प्रदान करते हुए -

1. अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी सहित
2. स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान

3. प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन का उदय।
4. व्यवहार में सामाजिक (धार्मिक) तथा व्यवसाय में स्वावलम्बी प्रमाणित होने के रूप में, मानवीय संस्कार सार्थक होता है।

फलस्वरूप सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह सहजता से संपन्न होता है। साथ ही मानवीय संस्कृति और सभ्यता स्वाभाविक रूप में सम्पन्न होती है। इसका आधार है अखंड समाज में भागीदारी, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी। इस प्रकार **मानवीय शिक्षा संस्कार** पूर्वक, पीढ़ी दर पीढ़ी सुरक्षित होना, सहज है। **(अध्याय:5.1, पृष्ठ नंबर: 106-107)**

- मानवीयता अपने कार्य-व्यवहार रूप में, वृत्ति (ऐषणात्रय) और निवृत्ति (स्वतंत्रता, स्वानुशासन) का अविभाज्य वर्तमान है। मूलत: वृत्तियां, जीवन शक्तियों का अथवा जीवन प्रभाव क्षेत्र का, प्रत्यक्ष प्रभावीकरण है। मनुष्य का सम्पूर्ण कार्य कायिक, वाचिक व मानसिक कृत-कारित व अनुमोदित प्रभेदों के रूप में सर्वेक्षित तथ्य है। जागृत मनुष्य के कायिक, वाचिक क्रिया कलाप के मूल में, आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा व प्रमाणिकता का होना पाया जाता है। यह समग्र रूप ही जागृत मानसिकता का तात्पर्य है। अस्तु, मानसिकता सहित ही प्रत्येक मनुष्य, सम्पूर्ण कार्य-कलापों को सम्पन्न करता है। ऐसे कार्यकलाप स्वयं व्यवस्था है व समग्र व्यवस्था में भागीदार हैं। इस रूप में कार्यरत होने की स्थिति में, मानवीय प्रवर्तन होना पाया जाता है। यह तभी सहज संभव होता है जब मानव परम्परा में मानवीयता को पहचानने, निर्वाह करने, व मूल्यांकन करने में, लोकव्यापीकरण हो गया हो। लोकव्यापीकरण का कार्यक्रम, **मानवीय शिक्षा**, मानवीय संस्कार और मानवीय राज्य-व्यवस्था, मानव परम्परा में सुलभ हो गई हो। इसका प्रमाण यही है (अर्थात यह जब कभी भी, मानव के लिए सुलभ होगा) कि उस स्थिति में अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था प्रमाणित होगी। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 119-120)**

- सम्पूर्ण सम्बन्धों में दया का प्रवाह होता है। मनुष्य, मनुष्य के साथ, सम्बन्धों को जब पहचानता है तब सेवा, अर्पण-समर्पण करने की उमंग अपने आप उमड़ती है। शांतिपूर्ण मानसिकता के धरातल पर ही ऐसा उद्गम होना पाया जाता है। यह केवल व्यक्ति में ही नहीं, परिवार समुदाय तक भी ऐसे कार्य-कलापों को देखा गया है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि प्रत्येक मनुष्य शान्ति कामी और गामी है। गामी होने के लिए किसी परिवार, शिक्षा, राज्य व धर्म संस्थाओं में अपने को अर्पित करता है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर:123)**

- ....जागृत मनुष्य में दया, कृपा, करूणा, सहज ही प्रवाहित होती है। जो स्वयं सुख, सुन्दर, समाधान है। ऐसी जीवन शैली व परम्परा को, मानव के लिए अनुसंधान करना आवश्यक रहा है। वह सुलभ हो गया है। इसके सर्व सुलभ होने के लिए ही **मानवीय शिक्षा-संस्कार परम्परा**, मानवीय संविधान, परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था, अखंड समाज और उसकी निरंतरता आवश्यक है। यह पूर्णतया कृपा, करूणा पूर्ण स्वभाव का ही कार्यक्रम है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर:125)**

- **कृतज्ञता - सौम्यता**

परिभाषा : **कृतज्ञता** :- जिस किसी की भी सहायता से उन्नति (विकास और जागृति) की प्राप्ति में सफलता मिली हो, उसकी स्वीकृति।

सौम्यता :- स्वेच्छा से स्वयं का नियंत्रण।

जीवन जागृति क्रम में (अथवा विकास में) जिस किसी से भी सहायता प्राप्त हुई हो, उसे स्मरण में रखना और स्वीकारना तथा स्वीकार किये हुए को अभिव्यक्त करना, कृतज्ञता है। यह समाधान में, से, के लिए सहायक प्रक्रिया है। जीवन ही जागृति पूर्वक, समाधान का धारक-वाहक होता है। सम्पूर्ण जागृति, समाधान और प्रामाणिकता के रूप में प्रमाणित हो जाना ही, मानव परम्परा की गरिमा व महिमा है। मानव समाधान पूर्वक ही, सुख और शांति का अनुभव करता है।

मानव में जीवन जागृति, जानने-मानने, पहचानने व निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित होता है। यह प्रत्येक मनुष्य की एक अपरिहार्यता है। मनुष्य जब भी संतुष्ट होता है तब दूसरे के साथ व्यवहार करना, एक आवश्यकीय प्रक्रिया है। असंतुष्टि आवेशपूर्वक मानव की परस्परता में होने वाला व्यवहार, समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व, चरितार्थ न होने से है। मनुष्य की व्यावहारिक सार्थकता की यही चार उपलब्धियां हैं। इन मानव सहज लक्ष्य के लिए मनुष्य कायिक, वाचिक, मानसिक, व कृत कारित, अनुमोदित प्रभेदों से कार्य करता है। मानव परम्परा की उपलब्धियां यही है। मानव परम्परा अर्थात अखंड समाज और सार्वभौम व्यवस्था का लक्ष्य यही है। लोक-न्याय सुलभता से अभय सार्थक होना अर्थात परस्परता में विश्वास होना, स्वयं अभयता है तथा सह-अस्तित्व का द्योतक है। मनुष्य जागृति और उसकी निरन्तरता में, समाधान सम्पन्न होता है। फलस्वरूप लोक न्याय (अभय और सह-अस्तित्व) तथा समाधान जीवन गत स्वत्व है। इसके व्यवहारान्वयन में सर्वतोमुखी समाधान ही, सम्प्राप्त होता है। इसी के आधार पर जीवन-विद्या व वस्तु-विद्या का, परिष्कृत ज्ञान की, धारक, वाहकता पूर्वक, **शिक्षा-पद्धति**, प्रणाली, नीति-संगत होकर, लोकव्यापीकरण होता है। यही **शिक्षा**, प्रकाशन, प्रदर्शन एवं प्रचार का तात्पर्य है। यही जागृति सहज मानव संचेतना का द्योतक है।

प्रत्येक व्यक्ति कृतज्ञता विधि से ही, सौम्य होना पाया जाता है। सौम्यता का तात्पर्य, स्वभाव गति-प्रतिष्ठा से है। स्वभाव गति प्रतिष्ठा ही दूसरे शब्दों में शिष्टता कहलाती है। सम्पूर्ण **शिक्षा** व लोक **शिक्षा** शिष्टता के अर्थ में अर्थात स्वभाव गति प्रतिष्ठा के अर्थ में सार्थक होना पाया जाता है। यह कृतज्ञता पूर्वक, सौम्यता पूर्वक सार्थक हो पाता है। मानव की सहज अभिलाषा अभ्युदय ही है, अथवा समाधान की आकांक्षा है। प्रत्येक मनुष्य समाधान की अपेक्षा में ही, सब कुछ करता है। उसके सफल होने की विधि में, कृतज्ञता व सौम्यता एक अनिवार्य बिंदु है और अभिव्यक्ति है।....**(अध्याय:5.21, पृष्ठ नंबर:129-130)**

- जागृति परम्परा ही, मानव का एक मात्र शरण है। इसकी संभावना नित्य समीचीन है। जागृति परम्परा में ही **मानवीय शिक्षा-संस्कार** सुलभ होता है। अध्ययन पूर्वक विकास और जागृति का लोकव्यापीकरण सहज है। जागृति क्रम में सहज ही कृतज्ञता-सौम्यता से प्रत्येक व्यक्ति व परिवार सम्पन्न होता है।

मानव परम्परा में प्रत्येक मनुष्य का जन्म से ही किसी परिवार का सदस्य होना नैसर्गिक है। यह सर्वत्र प्रमाणित है। मानव परम्परा में ही व्यक्ति में समझदारी सहित परिवार; समाधान-व्यवस्था, **शिक्षा** जैसी परम्परा में से प्रभावित, प्रेरित, प्रमाणित होता है यह एक अनिवार्य स्थिति है।

मूलत: दर्शन, सह-अस्तित्व मूलक, मानव-केन्द्रित चिंतन होने के कारण, रहस्य का समापन, वर्तमान में, सम्पूर्ण प्रमाण सहज सुलभ हो गया। यह प्रमाण, प्रयोग, व्यवहार व अनुभव में प्रमाणित होता है। यह अध्ययन गम्य होता है।

जहाँ तक सह-अस्तित्व वादी विचार शैली है, वह विगत से आयी तर्कों और विसंगतियों लक्ष्य, समझदारी, ईमानदारी और जिम्मेदारी में विरोधाभास को दूर कर देती है। साथ ही विज्ञान (विश्लेषण का तात्पर्य कालवादी, क्रियावादी, निर्णयवादी तथ्यों को स्पष्ट करना) सम्मत विवेक (प्रयोजन) तथा विवेक सम्मत विज्ञान-विधि से पूरी विचार शैली है। फलस्वरूप विसंगतियां दूर होती हैं। यह सह-अस्तित्व वाद है। जो अस्तित्व सहज है। यह अध्ययन के

लिए समर्पित है। इसके मूल में जो दर्शन है, उसका नाम **मध्यस्थ दर्शन** रखा गया है। यह अध्ययन की मूल वस्तु है। **(अध्याय:5.21, पृष्ठ नंबर:131-132)**

- "व्यवहारवादी जन चेतना"

यह मूलत: मानव कुल की शुभाकांक्षा के अनुरूप, मानव सम्बन्धों, नैसर्गिक सम्बन्धों को पहचानने और मूल्यों के निर्वाह करने के ध्रुव पर आधारित है। इसमें जिन जिन सम्बन्धों को, जैसा जैसा पहचानना है, वह भी जाने अनजाने, मानव-कुल में प्रचलित है, वह निश्चय का आधार है। साथ ही स्वयं कितने सम्बन्धों में, सूचित हो सकता है। उसको आकलित करने पर, उतने ही सम्बन्ध निकल आते हैं, जितना प्रचलित है। इन तथ्यों पर आधारित क्रम से जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में मानव का अध्ययन सहज हुआ। जीवन तृप्ति के लिए, शरीर यात्रा के लिए, सम्बन्ध प्रचलित होना पाया गया। (अथवा आवश्यकता होना पाया गया)। इसलिए व्यवहारवादी जनचेतना को पहचानना अनिवार्य हुआ। पता चला कि जीवन-ज्ञान और अस्तित्व दर्शन ही, जन चेतना है। जीवन ज्ञान के अनुसार जीवन-तृप्ति मूल्यों का परावर्तन व प्रत्यावर्तन ही है। यह समाधान को प्रमाणित करता है। यही समाधान का स्रोत है। इसका लोक-व्यापीकरण करने के लिए, **शिक्षा** में इसे सुलभ करने की संभावना है। **(अध्याय:5.21, पृष्ठ नंबर: 132)**

- व्यवस्था में न्याय सुरक्षा सुलभता, विनिमय कोष सुलभता, उत्पादन कार्य सुलभता, स्वास्थ्य संयम सुलभता और मानवीय **शिक्षा** संस्कार सुलभता का संयुक्त रूप है। इसी व्यवस्था में जीने की कला, सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, व्यवस्था में भागीदारी का, संयुक्त रूप में प्रकाशित होना पाया जाता है। यह मानव संस्कृति का मध्य बिंदु है। मानव अपनी संस्कृति को व्यक्त करता है। उस समय आवास, अलंकार, उत्सव, सम्मिलित उत्सव, मानवीयता का प्रकाशन, प्रदर्शन और प्रचार, ये सब प्रधान रूप में रहना स्वाभाविक है। **(अध्याय:5.21, पृष्ठ नंबर:140)**

- अस्तित्व में मानव परम्परा की एक सहज गति है। यह **मानवीय शिक्षा** सह-अस्तित्व सहज जीवन विद्या व वस्तु विद्या (वस्तु विद्या रासायनिक भौतिक क्रिया कलापों के रूप में प्रमाणित है) से परिपूर्ण, मानवीय संस्कार (सम्बन्धों व मूल्यों की पहचान व निर्वाह) परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था है, और मानवीयता पूर्ण आचार संहिता रूपी, समाधान है। ऐसी मानव परम्परा में प्रत्येक मनुष्य, परिवार में और परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में, भागीदारी सम्पन्न होता है। यही मानव परम्परा, अस्तित्व में सहज वर्तमान, प्रभावी होता है। अस्तित्व में जीवावस्था, प्राणावस्था व पदार्थावस्था में भी सहज परम्परा है। सहज परम्परा का तात्पर्य नियमित, नियंत्रित, सन्तुलित रूप में होने से है, जिसका प्रमाण, प्रत्येक एक अपने "त्व" सहित व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी से है। यह ही सह-अस्तित्व में होने का प्रमाण है। इस प्रकार सत्य, नित्य वर्तमान रूपी सह-अस्तित्व है। यही शाश्वत धर्म है।

(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर:146- 147)

- समझदार व्यक्ति, समझदार व्यक्ति के साथ पूरक होना परिवार में चिन्हित हो जाता है प्रमाणित होता है। फलस्वरूप समाधान समृद्धि हर जागृत परिवार में प्रमाणित होता ही है। ऐसे परिवार में हर व्यक्ति उपकार अर्थात् उपाय पूर्वक उत्थान (जागृति और विकास के अर्थ में किया गया तन, मन, धन रूपी अर्थ का प्रयोग उपयोग) से है। जागृति पूर्वक अर्थ का सदुपयोग होना प्रयोजनशील होना, प्रमाणित होता है। इसी तथ्यवश समझदार परिवार में भागीदारी करने वाले उपकार कार्य में प्रवृत और कार्यरत होते है। यह समाधान समृद्धि का वैभव रूपी प्रमाण है। वैभव का तात्पर्य स्वीकारने योग्य प्रयोजन, आचरण, और समझदारी से है। इस प्रकार उपकार करने वाले होने वाले का योग, संगीत अर्थात सार्थकता के अर्थ में उभय स्वीकृति के रूप में सम्पन्न होना पाया जाता है। इस प्रकार

प्रयोजनशील सार्थकवादी उपकार कार्यक्रम **शिक्षा संस्कार** के रूप में ही सार्थक होना पाया जाता है। हर मानव समझदारी से संपन्न होने के उपरांत ही स्वायत्त सम्पन्न होता गया। ऐसी स्वायत्तता को छ: प्रकार से पहचाना गया प्रमाणों के रूप में विदित कराया जा चुका है। ऐसे समझदार मानव की पहचान पहले समझाये गये छ: समाधान सहज गति के रूप में होने के आधार पर ही हर आयाम दिशा कोण के परिपेक्ष्यो में लिया गया निर्णय समाधानकारी होना स्वाभाविक है। स्वाभाविक का तात्पर्य व्यक्ति जो समझदार हुआ रहता है उनमें समाधानकारी न्यायकारी, प्रयोजनकारी निर्णय बिना दूसरे के सहायता के सम्पन्न होता है। फलत: उपकारकारी होता है। इस प्रकार समझदार परिवार में भागीदारी करने वाले सभी नर नारी उपकारकारी कार्य में प्रवर्तित होते हैं। उपकार कार्य में तीन स्वरूप को पहचाना गया है वह समझा हुआ को समझाना, किया हुआ को कराना, सीखा हुआ को सिखाना ही है। सीखा क्रिया के मूल में समझदारी ही सबल, सार्थक प्रवर्तन है। मानव का प्रवर्तन सह-अस्तित्ववादी विचार शैली के आधार पर सार्थक होना पाया गया। फलस्वरूप समझकर सीखने का सिद्धांत अपने आप सार्वभौम हो जाता है। सार्वभौमता का तात्पर्य सर्वमानव में स्वीकार होने से है। अतएव उल्लेखनीय बिन्दु यही है कि हर नर-नारी समझदारी पूर्वक ही परिवार में भागीदारी करता है। फलत: परिवार सार्थकता रूपी समाधान, समृद्धि रूपी उपकार हर समझदार परिवार में स्वस्फूर्त विधि से प्रमाणित होता है। उपकार विद्या ही मुख्य बिन्दु है। धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करुणा का प्रमाण सर्वविदित होने और सर्वसुलभ होने का तथ्य है। धीरता वीरता पूर्वक मानव सम्पूर्ण उपकार कार्य करता है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर:165-166)**

- अध्ययन के लिए, सह-अस्तित्ववादी, विश्व दृष्टिकोण, **अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन ज्ञान**, समीचीन हुआ है। इसके आधार पर जीवन ज्ञान सम्पन्न होकर, स्वयं के प्रति विश्वास, और श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा व व्यक्तित्व का संतुलित उदय, व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में (उत्पादन में) स्वावलम्बी बनता है। फलस्वरूप अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करने की अर्हता स्थापति हो पाती है और अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था, सहज सफल होती है। मानव सहज मौलिक भाव और संवेग पूर्वक इसी क्रम में जीवन अपने सम्पूर्ण वैभव को जानने, मानने के क्रम में भाव और संवेगों को पहचानने के क्रम में यह मनोविज्ञान प्रस्तुत है। इसीलिए मानवत्व रूपी भाव सहित, मानवीय आचरण व्यवहार को और **मानवीय शिक्षा संस्कार** को पहचानना ही एक मात्र उपाय है। इन सबके मूल में, अस्तित्व में मानव का अध्ययन ही प्रधान बिंदु है। सह-अस्तित्व रूपी अस्तित्व ही सम्पूर्ण भाव है। **शिक्षा** स्वयं में भाव है, वह सम्पूर्ण वस्तु (वास्तविकता) का स्रोत है। **जागृत शिक्षा** सहज अध्ययन से सम्पूर्ण भाव विदित होता है, विदित हुआ है। मूल्य स्वयं भाव है, अखंड समाज का यह सूत्र है। व्यवस्था एक भाव है। न्याय सुलभता, विनिमय सुलभता, उत्पादन सुलभता, स्वास्थ-संयम सुलभता और **मानवीय शिक्षा संस्कार** सुलभताएं उसके रूप, गुण, स्वभाव, धर्म, मात्रा, उपयोग, सदुपयोग प्रयोजनशीलता के आधार पर ध्रुवीकृत होता है, परम्परा में सार्थक होता है। हरेक क्रिया के मूल में रूप, गुण, स्वभाव व धर्म अविभाज्य है। रूप और गुण में से गुण ही अर्थात गति ही संवेग है, स्वभाव व धर्म भाव है।

स्वभाव व धर्म ही मानव परम्परा में, से, के लिए प्रयोजनीय है, रूप और गुण उपयोगी है। यह समझदारी से निर्धारित होता है। व्यवस्था, व्यवहार, आचरण, उत्पादन, उपयोग, सदुपयोग, सुरक्षा, अस्तित्व, सह- अस्तित्व, विकास, जीवन, जागृति और रासायनिक भौतिक रचना-विरचनाएं भाव हैं। सभी वस्तुएं, सहज रूप में, मानवीयता पूर्ण परम्परा में, से, के लिए प्रधान सार्थक सूत्र है। यही अध्ययन की सम्पूर्ण वस्तु है। मानव की सार्थकता अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में प्रमाणित होता है। सार्वभौमता व अखंडता भी भाव है। इस प्रकार भावों की अभिव्यक्ति, संप्रेषणा ही, प्रामाणिकता, प्रमाण के रूप में स्पष्ट होती है। भावों को, जीने की कला में सार्थक बनाने योग्य प्रारंभ और निरंतर प्रायोजित होने वाली मानसिकता ही, संवेग है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर:169-170)**

• 'स्वराज्य'' का तात्पर्य न्याय सुलभता, विनिमय सुलभता व उत्पादन सुलभता, स्वास्थ्य संयम सुलभता, मानवीय **शिक्षा** संस्कार सुलभता से है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर:179)**

• परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था की अक्षुण्णता के लिए **मानवीय शिक्षा संस्कार** व स्वास्थ्य संयम की अनिवार्यता है। तभी न्याय सुरक्षा, उत्पादन कार्य और विनियम कोष कार्य सुचारू रूप में संचालित हो पाता है, यही पाँचों आयाम परिवार मूलक स्वराज व्यवस्था की नित्य गति है। यह समझदारी और जागृति पूर्वक ही सार्थक होना पाया जाता है। मानवीय **शिक्षा** संस्कार अस्तित्व मूलक, मानव केन्द्रित चिन्तन-ज्ञान सहज उद्यम है, जिससे पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था व ज्ञानावस्था (मनुष्य) का अध्ययन, सह-अस्तित्ववादी विधि से सम्पन्न होता है।**(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर:181)**

• कर्म स्वतंत्रता का तृप्ति बिंदु स्वतंत्रता है जो स्वानुशासन के रूप में प्रमाणित होता है। स्वानुशासन जीवन-जागृति, मानव जागृति, अस्तित्व में जागृति का प्रमाण है। जबकि स्वतंत्रता, मानव परम्परा अर्थात **मानवीय शिक्षा संस्कार**, संविधान, राज्य व्यवस्था का सामरस्यता है। यही अस्तित्व में, मानव के जागृत होने का साक्ष्य है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर:181-182)**

• इस धरती में भौतिक व रासायनिक क्रियाकलाप परम्परा के रूप में स्थापित होने के उपरान्त तक, पदार्थावस्था व प्राणावस्था का समृद्ध होना, भ्रमित मनुष्य पहचानता है। इसी क्रम में जीवावस्था के जलचर, नभचर, भूचर जीवों को पहचानता है। इतना ही नहीं, मानव परम्परा को अथवा मानव प्रकृति को भी इस धरती पर होना, मानव भली प्रकार से पहचानता है। ऐसी भ्रमित अवस्था तक में भी मनुष्य शरीर सर्वाधिक विकसित है यह पहचानता है। अपनी परम्परा को अभी तक समुदाय चेतना में ग्रसित रहते हुये भी, संस्कृति, सभ्यता, विधि व्यवस्था के नाम पर (अर्थात **शिक्षा-संस्कार**, संविधान और राज्य व्यवस्था के रूप में) परस्परता को पहचानने का प्रयास सुदूर विगत से भ्रमित मानव ने किया। अभी जिस प्रकार से मनुष्य है, वह सर्वविदित है। मनुष्य की सम्पूर्ण संप्रेषणा, अनुभव, विचार, व्यवहार, उत्पादन व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी के रूप में है। इसलिए जागृति-विधि साधना को व्यवस्था में जीने के रूप में पहचानना एक अपरिहार्यता समीचीन है। संभावना और समझदारी सहज आपूर्ति के अर्थ में यह मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान शास्त्र है। **"जागृति विधि साधना"- अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन का फल है। यह "जीवन-विद्या" पूर्वक, जीवन-ज्ञान अस्तित्व दर्शन, मानवीयतापूर्ण आचरण पूर्वक संपन्न होने वाली प्रक्रिया है।** प्रत्येक मनुष्य, जीवन और शरीर के, संयुक्त साकार रूप में है, यह जीवन-विद्या में स्पष्ट हो जाता है। जीवन सहज रूप में चयन, आस्वादन, विश्लेषण, तुलन, चित्रण व चिंतन, संकल्प, बोध और प्रामाणिकता अनुभव है। यह अक्षय रूप मानव में है, यही जीवन विद्या का सार और स्वीकृत है। इसीलिए यह सार्वभौम होना स्पष्ट है, आवश्यक है। ये सभी क्रियाएं जीवन में अविभाज्य हैं। ऐसी अविभाज्यता को मानव परम्परा में प्रमाणित करना ही जीवन सहज न्याय, सुख, शांति, संतोष, आनंद के रूप में है और मानव सहज न्याय सूत्र, मानवीयतापूर्ण आचरण के रूप में सूत्र प्रमाणित होता है। जीवन क्रियाकलाप अविभाज्य रहते हुए न्याय अर्थात मानव धर्म (सर्वतोमुखी समाधान) और सत्यपूर्ण प्रणाली से कार्य करने की व्यवस्था प्रत्येक मनुष्य में, से, के लिए समीचीन है। **(अध्याय:5.21, पृष्ठ नंबर:183-184)**

• मानव का अध्ययन ही जागृत मानव परम्परा के लिए प्रमुख कार्य है। अस्तित्व में जागृत मनुष्य ही द्रष्टा पद में है। जागृत मनुष्य अपने जीवन के रूप में द्रष्टा है। शरीर के रूप में मानव परम्परा है। साथ ही परम्परा की संपूर्णता, **मानवीय शिक्षा संस्कार**, मानवीय संविधान और मानवीय परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था है, यह दृष्टा पद के आधार

पर ही सार्थक होता है। यही अध्ययन, अवधारणा, अनुभव योजना, कार्य योजना का फलन है।**(अध्याय:5.31, पृष्ठ नंबर:194)**

- जागृत मानव सहज स्वराज्य और स्वतंत्रता पूर्वक सम्पूर्ण प्रमाणों को प्रस्तुत करना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। स्वराज्य कार्य-कलाप में प्रमाणित होने के क्रम में स्वाभाविक रूप में हर मुद्दे, हर परिस्थिति संयोग योग वियोगों में सार्थकता को अनुभव करने योग्य हो जाता है। नियति सहज घटना क्रम में मंजिल अपने आप में विकास और जागृति ही है। मानव सहज अध्ययन क्रम में यह हमें समझ में आया है कि जीवन विकसित वस्तु है शरीर विकासशील वस्तु है। जीवन विकास के अनंतर जागृति मंजिल को पाना ही एक मात्र उद्देश्य नियति विधि से स्पष्ट है। जागृति सहज आवश्यकता मानव में सदा सदा निहित है ही। यही संस्कारानुषंगीयता का संभावना सहज सूत्र है। इसी सूत्र के अनुरूप शोध और अनुसंधान मानव के द्वारा ही संपादित करना नियति है। यही रहस्य मुक्त प्रणाली बद्ध निश्चित प्रक्रिया है। यह यांत्रिकता से भी मुक्त है। इसे संप्रेषित अभिव्यक्त करने के क्रम में श्रुति अपने महत्व को स्पष्ट करता ही है जैसे यह वांङमय अपने में एक मिसाल है ही। सह-अस्तित्ववादी श्रुति के अनुसार अस्तित्व सहज स्थिरता से बोध सुलभ हो जाता है। जैसे सत्ता में संपृक्त प्रकृति।

  सह-अस्तित्व सहज का मूल रूप यही है। यह बोध सुलभ होना आवश्यकता और समीचीनता है ही। श्रुति संयोजन पूर्वक यह बोध सुलभ होता हुआ अनेकानेक नर-नारियों के साथ अध्ययन विधि को प्रयोग कर चुके है यह सहज ही बोध होना पाया गया है। मानव जितना अधिकाधिक सार्थक विचार शैली के लिए जिज्ञासु बन चुका रहता है निरर्थकता का समीक्षा बन चुकी रहती है। ऐसे मन: पटल पर यह सह-अस्तित्व वादी मूल रूप तत्काल ही जानने-मानने में होता हुआ देखा गया है। देखा गया का तात्पर्य समझा गया है। इस तथ्य के आधार पर आगे और भी सफल कार्य गवाहित हुए है। इसे प्राथमिक **शिक्षा** के रूप में श्रुति बद्ध किया गया, प्रयोग किया गया है। यह हर मानव संतान में स्वीकृत होना, इंगित होना पाया गया है। आगे और भी प्रयोग श्रृंखला **शिक्षा** विद्या में संपन्न करने का उद्देश्य है ही यह मानव संचेतना वादी मनोविज्ञान रूपी श्रुति भी **जागृत मानव शिक्षा संस्कार** की कड़ी के रूप में सार्थक होने का उद्देश्य निहित है। **(अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर:195-196)**

- हर जागृत मानव परिवार में **शिक्षा संस्कार** प्रयोजन प्रयोग, प्रमाणों को स्मृति श्रुति पूर्वक मूल्यांकित किया करता है यह परिवार संतुष्टि के लिए अति आवश्यक प्रक्रिया है। **(अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर:199)**

- हर जागृत परिवार में कार्यरत नर-नारी **मानवीय शिक्षा,** मानवीयता को स्वीकार करने के रूप में संस्कारों को परीक्षण निरीक्षण किया करते है फलस्वरूप हर मानव संतान मानवीयता पूर्ण होने का अथवा जागृति पूर्ण होने का साक्ष्य प्रमाणित हो जाता है। **(अध्याय:5.31, पृष्ठ नंबर:199)**

- सर्वमानव जागृत रहने की स्मृति से ऊपर चिन्हित किये गये (पृष्ठ- 197-202) परिवारों के स्वरूप में होता। ऐसा परिवार, व्यवस्था में भागीदारी कर पाता है। इसलिए गांव या मोहल्ला में, कम से कम १०० परिवार, व्यवस्था के रूप में प्रमाणित होने की स्थिति में, ग्राम परिवार या मोहल्ला परिवार की व्यवस्था साकार होना सहज है। व्यवस्था के साकार होने का तात्पर्य, न्याय सुलभता व विनियम-सुलभता व उत्पादन सुलभता स्वास्थ्य संयम सुलभता, **मानवीय शिक्षा संस्कार** सुलभता होने से है। इस प्रकार स्वराज्य व्यवस्था के पांचों अवयव परस्पर पूरक और गति है। इसके विशद अध्ययन के लिए समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद और अनुभवात्मक अध्यात्मवाद, मानव के लिए अर्पित है। ये तीनों वाद विज्ञान सम्मत विवेक, विवेक सम्मत विज्ञान विधि से, तर्क प्रणाली पहचान सकते हैं। उसी विधि से तीनों वादों को अर्पित किया है। इसी के साथ मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान शास्त्र, आवर्तनशील अर्थ शास्त्र एवं व्यवहारवादी समाजशास्त्र अर्पित है। **(अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर: 202-203)**

- सम्बंधों का स्वीकार सहित जीने का क्रम **मानवीय शिक्षा संस्कार** पूर्वक ही स्पष्ट और स्वीकार हो पाता है फलत: निष्ठा होना स्वाभाविक प्रक्रिया है। मानव परम्परा की जागृति का पहला स्वरूप **शिक्षा संस्कार** ही है। यह विज्ञान क्रम विधि उपक्रम पूर्वक, जड़ चैतन्य प्रकृति का अध्ययन करना आवश्यक है। प्रधानत: चैतन्य प्रकृति का अध्ययन करना विज्ञान संसार में रिक्त रहा है। अभी इसको सुगम रूप में अपना लेना बनता है। परमाणु सहज ज्ञानार्जन अथवा भाषा विज्ञान संसार दावा के रूप में प्रस्तुत करता ही है। इसलिए विज्ञानियों को गठनपूर्ण परमाणु को स्वीकारने में कोई बाधा दिखाई नहीं पड़ती। बाधा न बाधा एक ही है कि दुष्ट सामरिकता के लिए तरफदारी जिसके आधार पर आजीविका बिताता हुआ अनेकानेक विज्ञानी कहलाने वाले मेघावियों को तकलीफ हो सकता है क्योंकि गठनपूर्ण परमाणु के आधार पर जागृति तूल पकड़ना आता ही है और परमाणु सहज वैभव सम्पूर्ण जड़ चैतन्य प्रकृति सहज व्यवस्था का मूलरूप होना प्रतिपादित हो जाता है।

सबसे बड़ा संकट यही है कि इसको पकड़ कर अर्थात जीवन परमाणु को पकड़ कर विघटित कर देखने के इरादे निष्फल इसलिए होते हैं कि परमाणु को पकड़ धकड़ कर उनमें निहित अंशों को घटा बढ़ाकर कुछ नई विपदाओं को पैदा करते हैं। यह हविश जीवन परमाणु के साथ पूरी नहीं होगी क्योंकि अभी तक जितने भी पकड़ धकड़ वाले है जीवन सहज अक्षय कल्पना के आधार पर ही किये है। यही सबसे बड़ा संकट है, इसे दोहराया गया।

व्यवस्था सहज विधियों को, निश्चयन सहज विधियों को, स्थिर सहज विधियों को आवश्यकता के रूप में स्वीकारने की स्थिति में विज्ञानी, सामाजिक चेतना में और जीवन जागृति और उसके प्रमाणीकरण क्रियाकलाप में विधिवत भागीदारी कर सकते है। काल क्रम संयोग प्रकृति जहां भी विज्ञान मानसिकता अपने को अतिमहत्वपूर्ण मानता है उसमें से दूरसंचार कार्य, कार्य योजना, तकनीकी मानव कुल के लिए सार्थक है अन्य सभी निरर्थक सिद्ध हो चुका है। जैसे बीजगुणन, इसकी स्थिरता होती नहीं है। नस्ल सुधार जिसकी स्थिरता होती नहीं है। कृत्रिम स्वाद, धरती को बर्बाद, विषाक्त करता है कीटनाशक खाद्य को विषाक्त बनाता है। खनिज तेल और कोयला धरती के वातावरण को क्षतिग्रस्त कर चुका है।

अस्तु, सामाजिक ज्ञान विवेक व्यवहार तंत्र जागृति प्रमाण सूत्रित होने के लिए आवश्यकता महसूस होने की स्थिति में चैतन्य पक्ष को समझने की आवश्यकता समीचीन है ही क्योंकि शरीर रचना विधि क्रम में मानव विश्लेषित नहीं हो पाया। इसलिए जीव मानसिकता के सदृश्य ज्ञान गलियारा सर्वाधिक सहायता किये रहा।

अस्तित्व मूलक, मानव-केन्द्रित चिंतन ज्ञान के अनुसार अस्तित्व में, विकास क्रम में, रासायनिक भौतिक रचनाएं-विरचनाएं स्पष्ट होती है। परमाणु विकास पूर्ण (गठनपूर्ण) होने के उपरान्त, चैतन्य पद में संक्रमित होता है यह समझ में आता है। ऐसी चैतन्य इकाई का जीवन पद में होना, समृद्ध मेधस युक्त शरीर को संचालित करना तथा मानव शरीर व जीवन के संयोग से जागृति को प्रमाणित करना ही, उद्देश्य है। इसी क्रम में मानव विकल्पात्मक विश्व-दृष्टि को विकसित करना, आवश्यक रहा। इसी तथ्यवश, अस्तित्व मूलक, मानव केन्द्रित विश्व दृष्टि का, लोक व्यापीकरण विधि से विवेक और विज्ञान का मानव व्यवहार में प्रमाणित होना ही विकल्प का प्रयोजन है।

मानव व्यवहार का तात्पर्य और प्रमाण है अखंड समाज और सार्वभौम व्यवस्था का वर्तमानित होना। "जीवन-विद्या" का लक्ष्य स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान है। जीवन-विद्या में पारंगत अधिकांश व्यक्तियों में इस प्रभाव को देखा गया है।

दूसरे चरण में मानववाद है जो अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था को, लोक व्यापीकरण करने के कार्यक्रम को प्रस्तुत करता है। इसके अध्ययन से मानव संस्कार सुलभ होता है। इसके अवगाहन से, मानवीय संस्कार से, देव-मानव व दिव्य मानव कोटि का संस्कार, स्वयं स्फूर्त होता है।

इसकी पुष्टि के लिए, जीवन सहज कार्य-कलापों को, परस्पर परीक्षण, निरीक्षण पूर्वक जागृत होने की विधि को सर्व सुलभ करता है। जिससे नि:श्रेयस की, आदिकालीन वांछा रही है, वह भ्रम-मुक्ति के रूप में सुलभ हो गया है। जिसका लोकव्यापीकरण करना शुरु किया है।

अभ्युदय ही सर्वतोमुखी समाधान के रूप में, सार्वभौम व्यवस्था के रूप में व्यवहारान्वित होता है। ऐसा सर्वतोमुखी समाधान सर्वसुलभ होने के लिए विवेक व विज्ञान का सम्मिलित रूप में **मानवीय शिक्षा संस्कार** के रूप में प्रमाणीकरण की आवश्यकता है।

विवेक व विज्ञान में सामरस्यता ही सर्वतोमुखी समाधान और न्याय सुलभता का सहज स्रोत है। यह प्रत्येक व्यक्ति में समीचीन है। जन जीवन में जागृति रूप देने के लिए विज्ञान व विवेक सम्मत **शिक्षा** क्रिया का लोकव्यापीकरण आवश्यक है। और न्याय, धर्म, सत्य को स्वीकार करने वाली क्रिया के रूप में, मेधा जीवन सहज रूप में सार्थक होता है (यह प्रत्येक व्यक्ति में समीचीन है)। **(अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर: 208-210)**

- मनुष्य के चारों आयामों की पूर्ण जागृति ही, प्रेमानुभूति योग्य क्षमता का सर्वसुलभ होना है। यही ऐतिहासिक उपलब्धि मानव में प्रतीक्षित है। यही मानव सहज इतिहास और गति है। ऐसी क्षमता से सम्पन्न व्यक्तियों के निर्माण योग्य कार्यक्रम ही अभ्युदय है। वह धार्मिक, आर्थिक, एवं राजनैतिक कार्यक्रम ही है। ऐसे अविभाज्य कार्यक्रम में निपुणता, कुशलता, पाण्डित्य सहित मानव जीवन-दर्शन सहज **शिक्षा**, जो सह-अस्तित्व विधि से प्रमाणित होता है यही पाण्डित्य है। इसका लोकव्यापीकरण होना ही मानवता सहज प्रमाण है। यही अभ्युदय है। अभ्युदय सहज प्रमाण ही प्रेमानुभूति है। यह सर्व मंगल कार्यक्रम है। **(अध्याय : 5.31, पृष्ठ नंबर : 228)**

- प्रेमानुभूति योग्य जन-मानस का निर्माण करने के लिए **मानवीय शिक्षा संरकार** की भूमिका अति महत्वपूर्ण है। **शिक्षा** ही जीवन विश्लेषण पूर्वक, यथार्थताओं वास्तविकताओं पर आधारित, जीवन के कार्यक्रम को स्पष्ट करती है। यही प्रत्येक मनुष्य में पाई जाने वाली कामना एवं उसकी आवश्यकता है। यही **शिक्षा** का दायित्व है। **शिक्षा** ही जीवन में गुणात्मक परिवर्तन का स्रोत है चरितार्थ होने का आधार है। अंततोगत्वा यही अनुभव के लिए प्रेरणा है। वरिष्ठ अनुभूति, प्रेमानुभूति ही है। यही पूर्णतया सामाजिक एवं व्यवहारिक है। **(अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर:228-229)**

- जागृति पूर्णता से सम्पन्न जीवन की आकांक्षा मानव में प्रसिद्ध है अथवा प्रसिद्ध होने योग्य है। उसके योग्य वातावरण निर्माण करना ही सामाजिक कार्यक्रम है। यही सर्वमंगल कार्यक्रम है। यही समाधान, विश्राम एवं स्वर्ग है। सम्पूर्ण प्रकार के संयम, प्रमाण, और प्रमाणिकता का संप्रेषण और अभिव्यक्ति है। यही अखंडता सार्वभौमता, अक्षुणता सहज स्रोत और गति है यही जागृति परम्परा है। प्रेमानुभूति की चरितार्थता है। **मानवीय शिक्षा संस्कार**, समझदारी, सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज, संस्कृति सभ्यता, विधि, मूल्यांकन, निरीक्षण, परीक्षण, संप्रेषणा, प्रकाशन, संगीत, स्वर, लय, श्रुति, उत्सव, मानव सम्बंध और नैसर्गिक सम्बंधों में जीने की कला, स्थिति, गति समुच्चय प्रेमानुभूति सहज है। समझदारी सहित जागृत मानव सहज किया गया प्रत्येक क्रिया प्रक्रिया एवं कार्यक्रम के फलन में मानव लक्ष्य, जीवन लक्ष्य सार्थक होता है।

प्रेमानुभूति लोकव्यापीकरण होने के अर्थ में सम्पूर्ण कार्यक्रम सम्पन्न होना ही मानव कुल में उसकी जागृति सहज चरितार्थता है। जागृत मानव कुल में चरितार्थता, सफलता एवं उज्जवलता सहज समाधान, समृद्धि अभयता एवं सह-अस्तित्व ही है। सदुपयोग सुरक्षा के अर्थ में सुविधाओं की तारतम्यता उसकी व्यवहारिकता सार्थकता को प्रमाणित कर देता है। स्थापित मूल्य सहित सम्पूर्ण मूल्यों का मूल्यांकन योग्य कार्यक्रम, मानवीयता सहज विधि से चरितार्थ होता है, सार्थक होता है। यही जागृति का प्रमाण है। ऐसी जागृत परम्परा को स्थापित, प्रस्थापित, गतित, सार्थक करना ही सम्पूर्ण **शिक्षा**, शिक्षण, राष्ट्र, राज्य, समाज, समाज सेवी, धर्म, कर्म, प्रायश्चित उद्धारकारी, प्रौद्योगिकी और व्यापार संस्थाओं तथा व्यक्तियों का सहज कर्तव्य है। ऐसे कर्तव्य को पहचानने के लिए ऐसी सभी संस्थाओं और सभी व्यक्तियों को जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन, मानवीयता पूर्ण आचरण सहज समझदारी में पारंगत होना अपरिहार्य स्थिति है। ऐसे सार्वभौम समझदारी को 'हम' पा चुके है। 'हम' का तात्पर्य हम जितने नर-नारी जीवन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण में पारंगत हो चुके है, से है। हमारी प्रतिज्ञा ही है कि समझदारी को लोकव्यापीकरण करना।

यही प्रेममय अभिव्यक्ति का साक्षी भी है। अस्तु, मानव कुल प्रेम और अनन्यता सहज विधि से कार्य, व्यवहार विन्यास, सर्वमानव सुलभ हो, ऐसी कामना है। इसे सार्थक बनाने का कार्यक्रम है। ।। नित्यम् यातु शुभोदयम्।।।**(अध्याय:5.31, पृष्ठ नंबर: 229-230)**

- वात्सल्यता अपने आप में भावी पीढ़ी में जागृति को सार्थक बनाने में निश्चयन के साथ उत्सवित रहने का उद्गार ही वात्सल्य कहलाता है। हर सम्बंधों के साथ उत्सव के साथ ही उद्गार होना देखा गया है। ऐसे उद्गार स्वयं भाषा के रूप में शब्द के रूप में स्वयं स्फूर्त होना पाया जाता है। हर मानव भाषा भाव भंगिमा, अंगहार समेत ही प्रस्तुत होता है इससे पता लगता है कि मानव परम्परा में भाषा भावों का संप्रेषित करने का एक सहज स्रोत है। भाव ही मौलिकता और मूल्य है। प्रमाणों में जितने भी तथ्य आये रहते है उसका भाषा तो बना ही रहता है जो आये नहीं रहते है उसके सम्बंध में पहले से भी भाषा बना ही रहता है यही मानव परम्परा का अत्यंत चमत्कारी अथवा अग्रिम गतिकारी अभिव्यक्ति है। सर्वाधिक विद्याओं में अनुसंधान न होने के पहले से ही अनुसंधान होने वाले वस्तु का नामकरण परम्परा में होना पाया जाता है जैसे अस्तित्व, सह-अस्तित्व, सत्य, धर्म, न्याय, समाधान, नियम ये सब शब्द हर भाषा में प्रकारान्तर से परंपराओं में प्रचलित है ही।

क्योंकि सह-अस्तित्व को परम सत्य के रूप में समझना, सम्बंध मूल्य मूल्यांकन उभय तृप्ति संतुलन को न्याय के रूप में, व्यवस्था में भागीदारी को समाधान के रूप में, सह-अस्तित्व, जीवन और मानवीयता पूर्ण आचरण को समझदारी के मूल तत्व के रूप में, मानव जाति को अखंड समाज के अर्थ में, मानवीयता पूर्ण व्यवस्था को सार्वभौम व्यवस्था के रूप, **मानवीयता पूर्ण शिक्षा संस्कार** को संस्कृति, सभ्यता, विधि व्यवस्था के रूप में, मानव लक्ष्य को समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व के रूप में, मानव सहज लक्ष्य पूर्ति के लिए दिशा को व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में समझा गया है। इसे समझाने की व्यवस्था भी प्राप्त कर ली है। इसलिए अब हमें यह भरोसा है कि मानव संतान में, से, के लिए मानव परम्परा को जागृति पूर्वक लक्ष्य और दिशा के रूप में पहचानना संभव हो गया है। इन्हीं आधारों पर अथवा प्रामाणिक आधारों पर यह मनोविज्ञान अध्ययन के लिए प्रस्तुत हुआ है। **(अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर: 233-234)**

- प्राकृतिक संतुलन के लिए आर्वतनशीलता भी आवश्यक प्रणाली है और धरती के ऊपरी सतह में जो कुछ भी वस्तुएं है उनका अनुपाती अर्थात प्राकृतिक संतुलन के साथ आहार, आवास, अलंकार, दूरश्रवण, दूरगमन, दूरदर्शन वस्तुओं का उत्पादन उपयोग सदुपयोग करना, प्रकृति के साथ मानव का पूरकता संपन्न होता हुआ प्रमाणित होता है। यह परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था विश्व परिवार के रूप में जागृत होने के उपरांत ही सार्थक सुलभ होना प्रमाणित होता है।

ऐसी परम स्थिति को पाने के लिए परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था को एक ग्राम या मुहल्ले में प्रमाणित करना ही शुभारंभ है इसके लिए हम कटिबद्ध है प्रयत्नशील है। परिवार से ग्राम परिवार के साथ ही नैसर्गिक और मानव सम्बंध का पहचान और निर्वाह आरंभ होता और विश्व परिवार सभा तक विस्तृत होता है इसी क्रम में मानव तथा नैसर्गिक सम्बंधों का निर्वाह और पूर्ण तृप्ति और संतुलन सर्वसुलभ होता है। जागृति पूर्वक ही परम्परा में जागृति की ओर **मानवीय शिक्षा संस्कार** पूर्वक लक्ष्य और दिशा निर्धारित और स्वीकृत हो जाता है फलस्वरूप इसका प्रमाण जागृति के रूप में हर पीढ़ी से पीढ़ी में सहज होता है। हर मानव **शिक्षा** संस्कारपूर्वक ही जीवन जागृत होता है, प्रमाणित होता है यही परम्परा है। उसी के साथ यथार्थता, वास्तविकता, व सत्यताओं को जानने, मानने, पहचानने व निर्वाह करने की अर्हता बना ही रहता है। जागृत जीवन सदा ही अक्षय बल, अक्षय शक्ति सम्पन्नता को जानता है, मानता है और पहचान लेता है। निर्वाह करने के लिए तत्पर रहता है। ऐसा होते हुए जीवन शक्तियों का दूर दूर तक फैलने बहने की क्रिया-कलापों के साथ, प्रवर्तन व्यवस्था जीवन में समाई रहती है।

जीवन जागृति ही, मानव का परम लक्ष्य है। दूसरा लक्ष्य स्वयं व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदार होना है। तीसरा लक्ष्य स्वयं समाजिक होना तथा अखंड समाज में भागीदारी का निर्वाह करना है। चौथा लक्ष्य समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व को प्रमाणित करना है। परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन करना समृद्धि का स्वरूप है। इन लक्ष्यों को पाने के लिए मानवीय **शिक्षा** संस्कारों को पाना (अथवा उसका सर्वसुलभ होना) और स्वास्थ्य संयम को बनाए रखना है।... **(अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर:239)**

- "स्थिति सत्य", "वस्तु स्थिति सत्य", "वस्तु गत सत्य" को जानना-मानना, अनुभव करना, अस्तित्व-दर्शन सूत्र है। कारण, गुण, गणितात्मक मानव भाषा को जानना, मानना, अनुभव करना यह मानवीयता पूर्ण संप्रेषणा सूत्र है। वास्तविकता, यथार्थता व सत्यता पूर्ण विधि से, सम्पूर्ण कायिक, वाचिक, मानसिक व कृत-कारित अनुमोदित कार्यक्रमों को परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था और प्रामाणिकता व स्वानुशासन रूपी कार्यक्रमों में जानना-मानना, अनुभव करना यह जागृति पूर्ण मानव परम्परा सूत्र है। निपुणता, कुशलता, पाण्डित्य पूर्ण **शिक्षा** संस्कार सहजता को जानना-मानना और अनुभव करना यही **मानवीय शिक्षा सूत्र** है। जीवन सहज सम्पूर्ण क्रियाकलापों को जानना-मानना और अनुभव करना जीवन विद्या सूत्र है और मानवीयता पूर्ण व्यवहार, स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता का सम्मान, प्रतिभा व व्यक्तित्व में संतुलन, को जानना-मानना व्यवहार सूत्र है। व्यवसाय, व्यवहार, विचार और अनुभव में सामरस्यता विधि को जानना, मानना, अनुभव करना यह मानव परिवार सूत्र है। **(अध्याय:5.5, पृष्ठ नंबर:252)**

सन्दर्भ: मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या

(संस्करण: प्रथम, मुद्रण: 14 जनवरी 2007)

- संविधान – पूर्णता के अर्थ में अनुभव-प्रमाण व्यवहार-कार्य रूप में संविधान है ।समझदारी के रूप में अनुभव प्रमाण मूलक **शिक्षा** संस्कार परंपरा सहज प्रावधान ही संविधान का प्रमुख भाग है। हर नर-नारी में-से-के लिए समझदारी सम्पन्न होने का अधिकार सहज मानवीय **शिक्षा** सहज प्रावधान फलस्वरूप मानव चेतना सहज प्रतिष्ठा सहित देव चेतना, दिव्य चेतना सहज प्रमाण ही संस्कार और यही संविधान। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर:31)**

- **मानवीय शिक्षा-संस्कार प्रकाशन परम्परा**

मानवीय शिक्षा = शिष्टता अर्थात् अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित विश्व दृष्टिकोण सम्पन्न अभिव्यक्ति संप्रेषणा।

संस्कार = समझदारी सहित ईमानदारी, जिम्मेदारी व भागीदारी में स्वतंत्रता।

हर जागृत मानव ही ज्ञान-विवेक-विज्ञान सम्पन्नता पूर्वक मानव लक्ष्य को सुनिश्चित करता है और जिम्मेदारी, भागीदारी सहित अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था सूत्र व्याख्या के रूप में कार्य-व्यवहार में प्रमाणित होता है यही स्वत्व, स्वतन्त्रता, अधिकार है।

स्वत्व = समझदारी सम्पन्नता और अभिव्यक्ति सम्प्रेषणा।

स्वतंत्रता = स्वयं स्फूर्त विधि से समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, भागीदारी में-से-के लिये प्रमाण परंपरा।

हर जागृत मानव समझदारी सहित मानवत्व रूपी अधिकार को प्रमाणित करने में स्वतंत्र है ।

अधिकार = समझदारी सहज समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व को वर्तमान में प्रमाणित करना, कराना, करने के लिए सहमत होना।

स्वराज्य = मानवत्व सहित व्यवस्था, समग्र व्यवस्था में भागीदारी परंपरा।

स्वराज्य अर्थात् मानवत्व सहित दस सोपान में सार्वभौम व्यवस्था के रूप में समाधान, समृद्धि , अभय, सहअस्तित्व सहज प्रमाण परम्परा है।

स्वतंत्रता = स्वयं स्फूर्त विधि से सर्वतोमुखी समाधान में-से-के लिये प्रमाण वर्तमान। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर: 59-60)**

- **मौलिक अधिकार**

परिचय संकेत- मानव चेतना सहज वैभव में-से-केलिए **मानवीयतापूर्ण शिक्षा-दीक्षा** शिक्षण पूर्वक परम्परा सहज मौलिक अधिकार फलन के रुप में जागृत मानव परंपरा है । यह **शिक्षा-संस्कार** परंपरा में पूर्णता सहज अभिव्यक्ति संप्रेषणा प्रकाशन है । **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 65)**

- **1. मानवीय शिक्षा-संस्कार का अधिकार**

तात्विक अर्थ में मानवीय शिक्षा = अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन सहज, ‘मध्यस्थ दर्शन’ सह- अस्तित्ववादी विधि पूर्वक चेतना विकास मूल्य **शिक्षा** का अध्ययन।

बौद्धिक अर्थ में मानवीय शिक्षा = ज्ञान-विवेक-विज्ञान सहज **शिक्षा** संस्कार परंपरा ।

व्यवहारिक अर्थ में मानवीय शिक्षा = अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी करने में प्रतिबद्धता पूर्ण शिक्षा।

तात्विक अर्थ में संस्कार = जीवन-मूल्य, मानव-मूल्य, स्थापित-मूल्य का धारक-वाहकता ।

बौद्धिक अर्थ संस्कार = शिक्षा संस्कारों में पारंगत रहना, करना और कराने के लिए सहमत रहना।

व्यवहारिक अर्थ में संस्कार = हर उत्सवों में मानव-लक्ष्य, जीवन-मूल्य संगत विधि से व्यवस्था व समग्र व्यवस्था में भागीदारी की दृढ़ता व स्वीकृति को संप्रेषित, प्रकाशित करना, कराना, करने के लिए सहमति होना, जिसमें गीत, संगीत, नृत्य, साहित्य, कला वैभव समाहित रहना।

सार्वभौम-व्यवस्था विधि से ही मानवीय शिक्षा-संस्कार का लोकव्यापीकरण होता है। यही मौलिक अधिकार का स्त्रोत है।

मानवीयतापूर्ण परंपरा, दस सोपानीय व्यवस्था यह सब मौलिक अधिकार है।

1.1 पर्यावरण सुरक्षा = धरती के वातावरण अर्थात् वायु मंडल को पवित्र रखने, धरती को पवित्र, ऋतु संतुलन सुरक्षित रखने, वन खनिज को सन्तुलित बनाये रखने में प्रमाणित होना यह मौलिक अधिकार है।
सर्व मानव मानवीयता पूर्ण आचरण सम्पन्न रहना ही समाधान-समृद्धि-अभय-सहअस्तित्व परंपरा के रूप में वर्तमान प्रमाण मौलिक अधिकार है।

1.2 मानवीय व्यवसाय = हर नर-नारी स्वयं में व्यवस्था समग्र व्यवस्था में भागीदारी क्रम में परिवार मूलक स्वराज्य, राज्य वैभव, आवश्यकता से अधिक उत्पादन करना यही समृद्धि का सहज सूत्र है। यह मौलिक अधिकार है।
उत्पादन मूल्य अर्थात् उत्पादित वस्तु श्रम नियोजन के आधार पर उपयोगिता सुंदरता मूल्य को श्रम-मूल्य के रूप में निश्चयन करना मौलिक अधिकार है।
मानवीयतापूर्ण व्यवहार मौलिक अधिकार है।

1.3 मानवीय व्यवहार = हर जागृत मानव मनाकार को साकार करने मन: स्वस्थता को प्रमाणित करने के क्रम में दस सोपानीय व्यवस्था में भागीदारी करना यह मौलिक अधिकार है।
मानव सम्बन्ध व मूल्यों का निर्वाह व मूल्यांकन परस्पर तृप्त रहना मौलिक अधिकार है।
मानवेत्तर प्रकृति यथा पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था का सम्बन्ध मूल्यों का निर्वाह करना, सन्तुलन सहित नियम-नियंत्रण को प्रमाणित करना जिसके लिए उत्पादन यथा -
सामान्य आकाँक्षा सम्बन्धी वस्तुऐं -आहार, आवास, अलंकार सम्बन्धी वस्तुऐं व उपकरण
महत्वाकाँक्षी सम्बन्धी वस्तुऐं - दूरगमन, दूर श्रवण, दूरदर्शन संबन्धी उपकरण व वस्तुऐं
उक्त दोनों प्रकार के वस्तुओं के उत्पादन में भागीदारी यह मौलिक अधिकार है।
पूर्णता के अर्थ में अनुबंध प्रमाण, संकल्प, प्रतिज्ञा, स्वीकृतियों, सहित आचरण, सम्बन्ध में मौलिक अधिकार है

1.4 पूर्णता = क्रियापूर्णता, आचरणपूर्णता (जागृति) सहज अभिव्यक्ति संप्रेषणा प्रकाशन यह मौलिक अधिकार है।

1.5 <u>संबंध</u> <u>प्रयोजन</u>

i. **माता-पिता** पोषण एवं संरक्षण सहज प्रयोजनों को जानना-मानना-पहचानना-निर्वाह करना मौलिक अधिकार है।
ii. **भाई-बहन** अभ्युदय के अर्थ में मूल्य निर्वाह करना मौलिक अधिकार है।
iii. **पुत्र-पुत्री** अभ्युदय नि:श्रेयश के अर्थ में संबंध निर्वाह करना मौलिक अधिकार है।
iv. **पति-पत्नी** परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था में भागीदारी करने के अर्थ में संबंध निर्वाह करना मौलिक अधिकार है।
v. **गुरु-शिष्य** गुरु शिष्य के साथ जीवन जागृति के अर्थ में, ज्ञान-विवेक-विज्ञान सहज पारंगत प्रमाणिकता के अर्थ में संबंध निर्वाह निरंतरता मौलिक अधिकार है।

vi. **साथी-सहयोगी** कर्तव्य दायित्वों को निष्ठापूर्वक निर्वाह करने के अर्थ में संबंधों का निर्वाह करना मौलिक अधिकार है।
vii. **मित्र-मित्र** अभ्युदय, सर्वतोमुखी समाधान सहज प्रामाणिकता सहित अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी करने के अर्थ में संबंध निर्वाह करना मौलिक अधिकार है ।

सभी सम्बन्धों को पूरकता-उपयोगिता प्रयोजनों के अर्थ में जानना-मानना-पहचानना-निर्वाह करना मौलिक अधिकार है।

सम्बन्ध सहज पहचान -

♦ पोषण प्रधान संरक्षण के रूप में माता का दायित्व-कर्तव्य के रूप में प्रमाण ।

♦ संरक्षण प्रधान पोषण रूप में पिता का दायित्व कर्तव्य प्रमाण मौलिक अधिकार है।

पोषण-संरक्षण = शरीर पोषण, स्वास्थ्य-संरक्षण, संस्कारों का पोषण-संरक्षण, भाषा का पोषण-संरक्षण, स्वच्छता का पोषण-संरक्षण, परिवार व्यवस्था का पोषण-संरक्षण । व्यवहार-व्यवस्था का पोषण संरक्षण ज्ञान विवेक विज्ञान सहज सूत्र व्याख्या रुप में अखण्डता सार्वभौमता वैभव का पोषण संरक्षण परंपरा के रुप में होना।

उत्सव = जन्म दिन उत्सव, नामकरण उत्सव, विद्यारम्भ उत्सव, स्नातक उत्सव, विवाह उत्सव, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त शिशिर कालोत्सव यह मौलिक अधिकार है ।

स्नातक- सनातन कालीन सत्य सहज वैभव में समझ को प्रमाणित करने हेतु सत्यापन ।

1.6 मानवीय संस्कार (मौलिकता) मानव चेतना सहज

अनुभव-प्रमाण

i. माना हुआ को जानना एवं जाना हुआ को मानना ।
ii. जानना-मानना, समझदारी-ईमानदारी, ज्ञान-विवेक-विज्ञान सम्पन्नता सहज प्रमाण वर्तमान ।

मानव होने का, प्रयोजनों को, सहअस्तित्व होने का, चार अवस्था होने का, चार पद होने का, सामाजिक अखण्डता सहज, व्यवस्था सहज, सार्वभौमता सहज, उपयोगिता सहज, पूरकता सहज, प्रयोजनों को जानना-मानना सहज अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन जागृति है। जागृति के आधार पर परस्परता में पहचानना, निर्वाह करना सहज है ।

i. नाम = पहचानने सम्बोधन करने के अर्थ में ।
ii. जाति = मानव जाति के अर्थ में अखण्ड समाज।
iii. धर्म = सुख-शांति के अर्थ में समाधान समृद्धि एवं सार्वभौम व्यवस्था के अर्थ में समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व में वर्तमान सहज प्रमाण ।
iv. कर्म = परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन के रूप में (समृद्धि)।
v. **शिक्षा** = ज्ञान-विवेक-विज्ञान सम्मत कार्य व्यवहार पूर्वक जिम्मेदारी भागीदारी के रूप में मानवत्व सहित व्यवस्था, समग्र व्यवस्था में भागीदारी स्पष्ट होना
vi. विवाह = समाधान-समृद्धि पूर्वक मानवीयता पूर्ण आचरण सहित अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी, एक पत्नी, एक पति के रूप में निर्वाह करने की प्रतिज्ञा संकल्प व निष्ठा के अर्थ में मौलिक अधिकार है।

1.7 भाषा-विधि

भाषा :- भास=परम सत्य रूपी सहअस्तित्व कल्पना में होना, वाचन व श्रवण भाषा के अर्थ रूप में सत्य स्वीकार होना।

आभास :- भाषा सहित अर्थ कल्पना अस्तित्व में वस्तु रूप में स्वीकार होना, अर्थ संगति होने के लिए तर्क का प्रयोग होना, अर्थ वस्तु के रूप में अस्तित्व में स्पष्ट तथा स्वीकार होना फलस्वरूप तर्क संगत होना।

प्रतीति :- तर्क संगत विधि से सहअस्तित्व रूपी वस्तु बोध होना। अर्थ अस्तित्व में वस्तु के रूप में समझ में आना ही प्रतीति है । फलत: बोध व अनुभव पूर्वक प्रमाण बोध चिंतन प्रणाली से अभिव्यक्ति होना सहज है।

तर्क :- अपेक्षा एवं संभावना के बीच सेतु।

तात्विकता प्रमाण समाधान, आवश्यकता, उपयोगिता, प्रयोजन शीलता के आधार पर सार्थक होता है। सम्पूर्ण संभावनाएं यथार्थता, सत्यता, वास्तविकता सहज प्रमाण है। अध्ययन पूर्वक स्पष्ट है।

1.8 भाषा-विधि = कारण, गुण, गणित

कारण = सहअस्तित्व विधि सहित स्थितिपूर्ण सत्ता में संपृक्त प्रकृति सहज डूबा, भीगा, घिरा स्पष्ट होना ।

गुण = उपयोगिता-पूरकता विधि से वस्तु-प्रभाव व फल-परिणाम स्पष्ट होना।

गणित = वस्तु मूलक गणना विधि जोड़ने-घटाने के रूप में स्पष्टता।

स्पष्ट होने का तात्पर्य तर्क समाधान संगत विधि सम्पन्नता पूर्वक समझ पाना और समझा पाने से है और जीने देने एवं जीने के रुप में प्रमाण वर्तमान। जीना अनुभव मूलक मानसिकता सहित कायिक-वाचिक-मानसिक, कृत-कारित-अनुमोदित रुप में। व्यापक वस्तु में सम्पूर्ण एक-एक चार अवस्था व चार पदों में स्पष्ट होना भाषा सहज अर्थ है, यह मौलिक अधिकार है।

1.9 साहित्य

साहित्य = यथार्थता-वास्तविकता-सत्यता को प्रयोजनों के अर्थ में कलात्मक विधि से स्पष्ट करने के लिए प्रयुक्त भाषा।

प्रयोजन= हर नर-नारी मानवत्व व्यवस्था एवं समग्र व्यवस्था में पूरकता, नियम-नियंत्रण-संतुलन, न्याय-धर्म-सत्य सहज प्रमाण परंपरा है।

निबंध= निश्चित अर्थ में किया गया एक से अधिक अनुच्छेद रचना।

प्रबंध= निश्चित समाधानवादी प्रयोजनों का सूत्र व्याख्या सहज वांगमय।

वास्तविकता-सत्यता को, यथार्थता को इंगित कराने के लिए प्रयुक्त भाव-भंगिमा, मुद्रा, अंगहार सहित भाषा सहज संप्रेषण सार्थक होता है। यथार्थता-वास्तविकता-सत्यता को स्पष्ट करने के लिए निर्मित वातावरण व परिस्थितियाँ भाषाकरण का स्रोत उत्प्रेरणा है ।

चित्र कला = किसी पृष्ठ भूमि पर किया गया चित्रण।

मूर्ति-कला, शिल्प = सभी ओर से निश्चित आकृति के रूप में मिट्टी, पत्थर और धातुओं से की गई रचना ।

कविता-संगीत-साहित्य = सर्वतोमुखी समाधान के लिए सुरीली शैली से प्रस्तुत सुरीली शब्द-रचना व वाक्य अनुच्छेदों की रचना।

गद्य साहित्य = शब्द व वाक्य रचनायें सच्चाई, यथार्थता-वास्तविकता, सत्यता सहज न्याय सम्बन्ध, समाधान श्रवण करने वालों को इंगित कराना ।

1.10 शास्त्र

i. जागृत मानव परंपरा में स्वानुशासित होने-रहने, में, से, के लिए हर परिवार समाधान-समृद्धि-अभय पूर्वक वर्तमान में विश्वास, सहअस्तित्व प्रमाण सहज न्याय-समाधान रूप में जीने का अध्ययन सहज प्रमाण ।
ii. सहअस्तित्व सहज सामाजिक अखण्डता सहित सार्वभौम व्यवस्था का अध्ययन व भागीदारी सहज रूप में आचरण।
iii. जागृत मानव परंपरा में जागृत मानसिकता प्रवृत्ति, अखण्ड सामाजिक सम्बन्ध मूल्य, मूल्यांकन, परस्परता में (उभयता में) तृप्ति, समाधान सहज निरन्तरता का अध्ययन आचरण प्रमाण ।
iv. सार्वभौम व्यवस्था क्रम में तन-मन-धन रूपी अर्थ इनमें अविभाज्यता, वस्तु रूपी धनोपार्जन, विनिमय, उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजन सहज सुनिश्चितता का अध्ययन सहज क्रियान्वयन ।

1.11 वाद-विचार

वाद-विचार = विचार, वाद-संवाद, आख्यान, व्याख्यान, उपदेश, भाषण, चर्चायें, भाव अर्थात् मूल्य सहज प्रयोजन तर्क संगत विधि से समाधान मानसिकता का अध्ययन, अभिव्यक्ति है ।
चर्चा = चिन्तन पूर्वक प्रयोजनों का स्पष्ट होना।
भाषण = मौलिकता, मूल्य, प्रयोजन सहज रूप में संप्रेषित होना।
व्याख्या = व्यवहार व व्यवस्था में प्रमाणित होने के अर्थ में स्पष्ट होना।
आख्यान = आवश्यकता-अनिवार्यता स्पष्ट होना।
संवाद = पूर्णता अर्थात् गठनपूर्णता, क्रियापूर्णता, आचरण पूर्णता के अर्थ में है एवं तर्क विधि से समाधान सुलभ होना है।
वाद = वास्तविकता पूर्वक समाधान सहज निष्कर्ष पूर्ण अध्ययन सुलभ रूप में प्रस्तुत करना।
विचार = विधिवत प्रयोजन के अर्थ में विवेचना, विश्लेषण करना, स्पष्ट करना, स्पष्ट होना।
मानव लक्ष्य को प्रमाणित करना ही जागृत मानव परंपरा में विचार प्रयोजन है।
विवेचना = विधिवत् प्रयोजन व लक्ष्य आवश्यकता सहज स्पष्टीकरण।
भाषा विधि प्रयोजन = भाषा सहज अर्थ में अस्तित्व में सह- अस्तित्व-पद, अवस्था-बोध होना।

पद	**अवस्था**	**बोध**
प्राणपद	पदार्थावस्था	वस्तु-बोध
भ्रांतिपद	प्राणावस्था	क्रिया-बोध
देवपद	जीवावस्था	स्थिति-बोध
दिव्यपद	ज्ञानावस्था	गति-बोध
		परिणाम-बोध
		फल प्रयोजन-बोध
		मानव में, से, के लिए जागृति-बोध

बोध = अध्ययन-पूर्वक अनुभवगामी क्रम में बोध, अनुभव मूलक विधि से प्रमाण बोध, अनुभव प्रमाण बोध सहअस्तित्व सहज अनुभव प्रमाणों को व्यवहार व प्रयोगों में प्रमाणित करना ही ज्ञान-विवेक-विज्ञान है ।

अनुभव = जानने-मानने-पहचानने-निर्वाह करने की संयुक्त क्रिया और जानने-मानने-पहचानने-निर्वाह पूर्वक कार्य-व्यवहार-व्यवस्था में भागीदारी प्रमाणित होने की क्रिया है।

1.12 इतिहास

i. विकास क्रम, विकास, जागृति क्रम, जागृति सहज परंपरा ।
ii. सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति सहज भौतिक, रासायनिक जीवन क्रिया-कलाप ।
iii. मानव परंपरा में-से-के लिए जागृति सहज वैभव सर्वशुभ रूप में समाधान-समृद्धि-अभय सहअस्तित्व प्रमाण परंपरा ।
iv. सर्व शुभ, नित्य शुभ सहज वैभव सार्वभौम व्यवस्था परंपरा में, से, के लिए है ।
v. सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व सहज वैभव रूप में प्रमाण परंपरा है । यही इतिहास का आधार है।

इस धरती पर मानव पीढ़ी से पीढ़ी परंपरा में घटित प्रवृत्ति क्रम का आंकलन सहित जागृति सहज परंपरा आवश्यक है।

जंगल युग से - शिला युग

शिला युग से - धातु युग

धातु युग से ग्राम-कबीला युग

ग्राम-कबीला युग से - राज्य शासन एवं धर्म शासन युग

राज्य शासन एवं धर्म शासन युग से - लोकतंत्र युग प्रधान रूप में ।

यह शक्ति केन्द्रित शासन युग रहा।

रहस्य मूलक आदर्शवाद में - भक्ति विरक्ति का प्रेरणा, रहस्यमय स्वर्ग मोक्ष के रूप में आश्वासन इसका प्रमाण रिक्त रहा, रहस्यमय देव कृपा, रहस्यमय ईश कृपा, वेद कृपा, गुरु कृपा से मुक्ति का आश्वासन रहा। प्रेरणा विधि रहस्यमय रहा ।

अस्थिरता-अनिश्चयता मूलक भौतिकवाद में-संग्रह सुविधा का प्रेरणा इसका तृप्ति बिन्दु नहीं मिलना प्रयोग क्रम में धरती बीमार होना रहा ।

राज युग से गणतंत्र विधि से जनप्रतिनिधियों का सहमति से शासन, सभी देश, राज्य, राष्ट्र के संविधान, व्यक्ति समुदाय चेतना से ग्रसित एवं शक्ति केन्द्रित शासन के रूप में है, जिसका विकल्प अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिंतन, ज्ञान, विवेक, विज्ञान रूप में मध्यस्थ दर्शन (सह-अस्तित्ववाद), शास्त्र अखण्डता, सार्वभौमता के अर्थ में प्रस्तुत है। यह प्रस्तुति रहस्य, भ्रम,अपराध मुक्ति के अर्थ में है।

1.13 जागृत मानव परंपरा का सहज वैभव

i. मानव चेतना विधि से मानवत्व सहज परिवार व्यवस्था से व्यवस्था, समग्र व्यवस्था में भागीदारी से है।
ii. मनाकार को साकार करने एवं मन:स्वस्थता का प्रमाण से है।
iii. खनिज, वन, वन्य जीव को संतुलित बनाये रखते हुए और घरेलू जीवों को पालते हुए कृषि के आधार पर आहार, वन खनिज के आधार पर आवास, इन्हीं आधार पर अलंकार, वस्तुओं का उत्पादन या निर्माण और उपयोग से है। प्रौद्योगिकी विधि से दूरश्रवण, दूरदर्शन, दूरगमन संबंधी सुविधा प्राप्त करना।
iv. कृषि व पशु पालन के आधार पर आहार संबंधी वस्तुओं से संपन्न होने से है। ग्राम-शिल्प-वन- खनिज के आधार पर आवास, अलंकार संबंधी वस्तुओं से सम्पन्न होने से है।

v. जागृत मानव के नृत्य : अंग हार, भंगिमा मुद्रा भेद से भाव-भाषा प्रकाशन।

नृत्य = मानव चेतना सहज प्रयोजन के अर्थ में नाट्य,गीत-संगीत, भाषा, भाव = मूल्य = मौलिकता = समाधान = सुख = मानवापेक्षा भाव-भंगिमा, मुद्रा-अंगहार सहज संयुक्त अभिव्यक्ति, संप्रेषणा प्रकाशन व्यवहारिक है।

सुख-शान्ति-सन्तोष व आनन्द सहज सम्प्रेषणायें आप्लावन सहज स्वीकृति में सार्थक होता है। सर्वतोमुखी समाधान ही सुख, समाधान-समृद्धि ही शान्ति, समाधान-समृद्धि-अभय ही संतोष, समाधान-समृद्धि-अभय-सहअस्तित्व प्रमाण ही आनन्द है। यही सर्वशुभ सूत्र है। यही सार्थक नृत्य भावों का आधार है। सर्व-शुभ में स्व-शुभ समाया है।

भाव = मौलिकता, मूल्य, मूल्य सम्प्रेषणा ।

भंगिमा = मूल्य में तदाकार-तद्रूपता भाषा विहिन मुखमुद्रा।

मुद्रा = मुख में मूल्य प्रभावी झलक, इसके अनुकूल मुद्रा अंगहार जिससे मूल्य व मूल्य संप्रेषणा दर्शकों में स्वीकृत व प्रभावी होना ही प्रयोजन है ।

श्रवण = श्रेष्ठता, सहजता को सुनने की क्रिया यह मौलिक अधिकार है ।

मौलिकता = जीव चेतना से मानव चेतना श्रेष्ठ, मानव चेतना से देव चेतना श्रेष्ठतर, देव चेतना से दिव्य चेतना श्रेष्ठतम होना स्पष्ट होना ।

1.14 शिक्षा-संस्कार व्यवस्था

शिक्षा = शिष्टता पूर्ण दृष्टि का उदय होना मूल्य-चरित्र-नैतिकता स्पष्ट एवं प्रमाणित होना।

शिष्टता

i. समझदारी-ईमानदारी-जिम्मेदारी-भागीदारी सहज प्रमाण होना।
ii. दृष्टा-पद प्रतिष्ठा का जागृति सहज प्रमाण होना ।
iii. मानवीयता पूर्ण आचरण सहज प्रमाण होना ।

संस्कार

i. जीवन जागृति एवं विधि स्वीकृति होना ।
ii. सहअस्तित्व नियति सहज विधि स्वीकार होना ।
iii. अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था व सम्पूर्ण विधि स्वीकार होना, प्रमाणित होना ।

व्यवस्था = उपयोगिता-पूरकता सहज मानवीयता पूर्ण आचरण वैभव को दस सोपानीय व्यवस्था में-से-के लिये प्रमाणित करने का कार्यक्रम में भागीदारी करना।

उद्देश्य = मानव-लक्ष्य, जीवन-मूल्य मानव परंपरा में प्रमाणित रहना, करना-कराना-करने के लिए सहमत होना।

1.15 शिक्षा-संस्कार व्याख्या स्वरूप

शिक्षा में वस्तु = सह अस्तित्व सहज ज्ञान-विवेक-विज्ञान सहित कायिक-वाचिक-मानसिक व कृत-कारित-अनुमोदित प्रमाण।

शिक्षक और अभिभावक = अस्तित्व दर्शन बोध ज्ञान प्रमाण, जीवन ज्ञान-बोध-प्रमाण सम्पन्न होना, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान प्रमाण होना रहना।

विवेक = मानव लक्ष्य, जीवन मूल्य बोध अनुभव प्रमाण।

विज्ञान = मानव लक्ष्य में, से, के लिए सुनिश्चित दिशा, व्यवहार व कर्माभ्यास नियम बोध अनुभव प्रमाण परम्परा में, से, के लिए सहज सुलभ होना।

शिक्षा वस्तु सहज ज्ञान-विवेक-विज्ञान-सहज विधि से सिद्धांतों का धारक-वाहक शिक्षक-अभिभावक होना-रहना है।

शिक्षा = अभिभावक-शिक्षकों के साथ विद्यार्थियों को अभ्युदय के अर्थ में सहमत सहित रूप में प्रमाणित रहना।

शिक्षक = पूर्णतया समझदार, ईमानदार, जिम्मेदार, भागीदार रहना **शिक्षा** प्रणाली सहज वैभव है। जागृति स्रोत व वर्तमान में प्रमाण रूप में होना वैभव है।

अभिभावक = अभ्युदय को भावी पीढ़ी में आवश्यकता अपेक्षा सहित स्वयं की उपयोगिता-पूरकता को प्रमाणित करने वाला अभिभावक है।

विद्यार्थी = भ्रम मुक्ति व समझदारी के लिए साक्षरता, भाषा व अध्ययन मानवीयता पूर्ण आचरण में पारंगत होने के लिए, करने के लिए, अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी सहित मानव लक्ष्य को साकार करने के लिए आशा, अपेक्षा, आवश्यकता व जिज्ञासु होना है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर:71-85)**

- **2. शिक्षा-संस्कार कार्य व्यवस्था समिति**

शिक्षा में वस्तु स्वरूप :- सहअस्तित्व सहज अर्थ में भौतिक रासायनिक एवं जीवन क्रिया-कलापों का अध्ययन सर्वसुलभ होना है - विकास क्रम, विकास, जागृति क्रम, जागृति में ही यथा स्थिति गति सहित परस्परता में उपयोगिता-पूरकता विधि सहित सिद्धांत, अस्तित्व मूलक मानव केंद्रित चिन्तन (नजरिया) सहज अध्ययन बोध, अनुभव प्रमाण मूलक अभिव्यक्ति-संप्रेषणा-प्रकाशन प्रबुद्ध परंपरा ।

संस्कार स्वरूप :- जागृति, जागृति सहज प्रमाण, जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह रूप में प्रमाण होना, रहना परंपरा है ।

समझदारी-ईमानदारी-जिम्मेदारी-भागीदारी को अखण्ड समाज सहज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी प्रमाण। प्राकृतिक, बौद्धिक, सामाजिक नियमों का पालन करते हुए मानव लक्ष्य को साकार करने के रूप में प्रमाण ।

2.1 उद्देश्य -

व्यवहारिक उद्देश्य

मूल उद्देश्य :- सम्पूर्ण मानव मानवत्व सहित व्यवस्था में होना-रहना और समग्र व्यवस्था में भागीदारी सहज प्रमाण परम्परा के रूप में होना । मन: स्वस्थता पूर्वक मनाकार को साकार करना-रहना ।

फलस्वरूप :- जीवन मूल्य और मानव लक्ष्य परंपरा प्रमाण के रूप में प्रमाणित होना, साथ ही साथ विकास विधि से ऊर्जा संतुलन एवं पर्यावरण संतुलन, पदार्थ, प्राण, जीव और ज्ञान अवस्था में सन्तुलन पूरकता-उपयोगिता सिद्धांत परंपरा के रूप में प्रमाणित होना-रहना है । यही सर्वकालीन सार्थक उद्देश्य है ।

मूल उद्देश्य को प्रमाणित करने के क्रम में न्याय, उत्पादन-विनिमय-सुलभता, सार्वभौम व्यवस्था विधि में समाहित रहता है । साथ में शिक्षा-संस्कार सुलभता, स्वास्थ्य संयम सुलभता भी समाहित रहेगा ही। इस विधि से जागृत मानव परंपरा की संभावना आवश्यकता सहज रुप में समीचीन है ।

मानव लक्ष्य :- समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व में प्रमाण परंपरा है। यही अनुभव सहज प्रमाण है।

अनुभव प्रणाली मानवीय शिक्षा सहज उद्देश्य में निहित है :-

भ्रम से निर्भ्रमता, जीव चेतना से मानव चेतना, अजागृति से जागृति, समस्या से समाधान, समुदाय से अखण्ड समाज, समुदाय राज्य से सार्वभौम राज्य, असत्य से सत्य, अन्याय से न्याय, अव्यवस्था से व्यवस्था, असंतुलन से संतुलन, आवेशित गति से स्वभाव गति, अभाव से भाव, अज्ञान से ज्ञान-विवेक-विज्ञान, विखण्डता से अखण्डता, विपन्नता से सम्पन्नता, संकीर्णता से विशालता, पराधीनता से स्वतंत्रता, भय से अभय, असत्य से सत्य चेतना में परिवर्तन, भोग मानसिकता से उपयोगी सदुपयोगी प्रयोजनशील मानसिकता, व्यापार लाभोन्मादी मानसिकता से लाभ-हानि मुक्त विनिमय प्रवृत्ति, मानव चेतना सहज समझदारी में पारंगत प्रमाण परंपरा ही मानव परंपरा है। यह चेतना विकास मूल्य शिक्षा-संस्कार से सार्थक होता है।

प्रलोभन भय के स्थान पर यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता सहज मौलिक, मौलिकता, जागृत मानव में न्याय, धर्म, सत्य सहज पहचान वर्तमान में विश्वास।

2.2 मानसिकता :- अनुभव मूलक प्रामाणिकता सहज प्रवृत्ति ।

1) वर्चस्व जागृति सहज मानसिकता पूर्वक मूल्यांकन = सम्बन्धों का निर्वाह करना समझदारी में, से, के लिए प्रमाण।
2) ज्ञान-विवेक-विज्ञान ही समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, भागीदारी व आचरण में श्रेष्ठता का सम्मान प्रतिष्ठा ।
3) प्रतिभा अनुभव मूलक प्रमाणों को प्रमाणित करने की गति ।
4) आहार-विहार-व्यवहार के आधार पर व्यक्तित्व ।
5) व्यवहार में सामाजिक, अखण्ड समाज सूत्र व्याख्या के रूप में आचरण।
6) व्यवसाय (उत्पादन कार्य) में स्वावलम्बन सम्पूर्ण वर्चस्व है।

   इस तरह सदा हर नर-नारी मूल्यांकन करने में समर्थ रहेंगे ही। ऐसी अर्हता मानवीय **शिक्षा** परंपरा में, से, के लिए सम्पन्न व सार्थक होता है।

हर नर-नारियों में-से-के लिए मूल्यांकन का आधार उपरोक्त बिन्दु है।

मूल्यांकन का उद्देश्य :- व्यवहार में सामाजिक, परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन में स्वावलम्बन पूर्वक समृद्धि सहित सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी के अर्थ में है।

2.3 मानवीय-शिक्षा संस्कार पाठ्यक्रम में गुणात्मक परिवर्तन सूत्र

सम्पूर्ण आयाम

1) सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व स्थिर, विकास एवं जागृति निश्चित है सिद्धान्त का अध्ययन विकास क्रम, विकास, जागृति क्रम, जागृति सहज बोध सुलभ होने का अध्ययन है ।
2) सहअस्तित्व में भौतिक-रासायनिक और जीवन पद, जीवनी क्रम, जीवन जागृति क्रम, जीवन जागृति व निरन्तरता सहज अध्ययन उपयोगिता-पूरकता सिद्धान्त जैसे तथ्यों के सभी आयामों के प्रधान मुद्दों को निम्नानुसार पहचाना गया है ।

प्रचलित (विषय) :- **जागृति के लिए वस्तु**

1) विज्ञान के साथ - चैतन्य पक्ष का अध्ययन
2) मनोविज्ञान शास्त्र के साथ - संस्कार (अनुभव मूलक-प्रमाण) पक्ष का अध्ययन
3) दर्शन शास्त्र के साथ - क्रिया पक्ष (प्रमाण) का अध्ययन
4) अर्थशास्त्र के साथ - प्राकृतिक एवं वैकृतिक ऐश्वर्य का (ग्राम स्वराज्य विधि से) सदुपयोग व सुरक्षात्मक पक्ष का अध्ययन
5) राजनीति शास्त्र के साथ - मानवीयता का संरक्षण एवं संवर्धनात्मक विधि व्यवस्था नीति पक्ष का अध्ययन
6) समाजशास्त्र के साथ - मानवीय संस्कृति अखंड समाज तथा सभ्यता पक्ष का अध्ययन
7) भूगोल, इतिहास के साथ - मानव तथा मानवीयता पक्ष का अध्ययन
8) साहित्य के साथ - तात्विकता का अर्थात् सहअस्तित्व रूपी परम सत्य का अध्ययन

उक्त सभी आयामों के विस्तृत अध्ययन हेतु 'मध्यस्थ दर्शन-सहअस्तित्व वाद' शास्त्र के रूप में प्रस्तावित है। यही जागृत चेतन परंपरा के लिए स्रोत है क्योंकि सहअस्तित्व नित्य वर्तमान और प्रभावी है।

2.4 मानवीय शिक्षा

1) कितना समझना - सहअस्तित्व में-से-के लिए सम्पूर्ण समझ, सहअस्तित्व चार पद, चार अवस्था के रूप में समझना प्रमाणित कराना ही जागृत अथवा समझदार परंपरा है ।
2) क्या समझना (जीना) - जीवन एवं जीवन मूल्य, मानव लक्ष्य प्रमाण सहज अभिव्यक्ति सम्प्रेषणा में-से-के लिए मानवीयतापूर्ण आचरण सहित व्यवस्था में जीना।
3) कब तक समझना - जागृत मानव परंपरा सहज रूप में प्रतिष्ठित, परम्परा होते तक, इसके अनन्तर निरन्तरता है ही होना रहना। इस प्रकार मानव परंपरा के रूप में से के लिए निरन्तर समझदारी होते ही रहना यही निरंतरता है। पीढ़ी से पीढ़ी में।

मैं क्या हूँ -

मैं मानव हूँ ।

कैसा हूँ -

मैं जीवन व शरीर का संयुक्त रूप हूँ। शरीर मानव परंपरा सहज प्रजनन विधि की देन है। जीवन सह- अस्तित्व में गठन पूर्ण परमाणु चैतन्य इकाई है ।

क्या चाहता हूँ -

सुख, समाधान, समृद्धि सम्पन्न रहना चाहता हूँ ।

क्या होना चाहता हूँ -

जागृत होना/ रहना चाहता हूँ । **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:101-107)**

- **शिक्षा-संस्कार में न्याय**

शिक्षा :- शिष्टता पूर्ण दृष्टि का उदय होना ।

शिष्टतापूर्ण दृष्टि :- अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन रूपी दृष्टि दृष्टा पद प्रतिष्ठा में पारंगत क्रियाशील रहना ।

संस्कार :- ज्ञान-विवेक-विज्ञान सहज स्वीकृति, अनुभव प्रमाण परंपरा, जिसका प्रमाण ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था सूत्र व्याख्या में पारंगत होना प्रमाण परंपरा है ।

परंपरा :- परंपरा में मानव सहज मानवीयता पीढ़ी से पीढ़ी में अन्तरित होना न्याय है।

मानवीयता :- मूल्य-चरित्र-नैतिकता सहज संयुक्त अभिव्यक्ति, सम्प्रेषणा, प्रकाशन परंपरा होना न्याय है।

1. **शिक्षा** में मानव का अध्ययन सम्पन्न होना न्याय है।
2. भौतिक-रासायनिक और जीवन वस्तु का अध्ययन होना न्याय है।
3. सहअस्तित्व में अध्ययन न्याय है ।
4. हर मानव में-से-के लिये आत्मनिर्भर होने योग्य **शिक्षा** सर्वसुलभ होना न्याय है ।
5. **शिक्षा-संस्कार** में मानव-लक्ष्य, जीवन मूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य व वस्तु मूल्य बोध होना न्याय है।
6. मानव संस्कृति-सभ्यता, विधि-व्यवस्था बोध होना न्याय है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 126 -127)**

- **मानवीय शिक्षा** का प्रयोजन संस्कार मानवीयता में,से,के लिए स्वीकृति को कार्य-व्यवहार में, कार्य-व्यवहार सामाजिक अखण्डता व सार्वभौम व्यवस्था के रूप में प्रमाणित होता है । यह दायित्व हर सदस्यों में समान रहेगा, यही सर्वशुभ है। यही न्याय है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:133)**

- **मानवीय-शिक्षा-संस्कार** पूर्वक हर मानव सन्तान का स्वयं में विश्वास, श्रेष्ठता का सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में सन्तुलन, व्यवहार में सामाजिक, उत्पादन में स्वावलंबी होना न्याय है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:133)**

- ज्ञानावस्था में **मानवीय शिक्षा-संस्कार** सम्पन्न मानव को, जीवावस्था में जीने की आशा सम्पन्न जीवों को, प्राणावस्था में रसायन-उर्मी, पुष्टि एवं रचना तत्व सहित प्राण कोषाओं से रचित रचना में पौधों के रूप में कार्य-विधियों को, यौगिक विधि से प्रकट रसायन द्रव्यों को, इनके ठोस-तरल-विरलता को, पदार्थावस्था में मृत-पाषाण-मणि धातु के ठोस व विरल रूप को जानना, मानना, पहचानना व निर्वाह करने में पारंगत होना न्याय है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:134)**

- **मानवीय शिक्षा** स्वीकृति अर्थात् सहअस्तित्व तथ्य को सहज जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करने के रूप में दायित्व होना न्याय है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:134)**

- निपुणता-कुशलता-पांडित्य सम्पन्नता सहित श्रम नियोजन के फलन में सामान्य व महत्वाकाँक्षा सम्बन्धी वस्तु व उपकरणों का फलित होना स्पष्ट है। यह मानव की परिभाषा में-से-के लिये मनाकार को साकार करने के सौभाग्य का फलन है, जो सुविधा-संग्रह जैसी प्रवृत्ति रहने के साथ भी सुलभ हुआ है। मनस्वस्थता: सर्वतोमुखी समाधान सर्व सुलभ होने के रूप में **मानवीय शिक्षा-संस्कार** चेतना विकास मूल्य **शिक्षा** रूप में सार्वभौम है।

  मानवीय शिक्षा का फलन ही मानवीय आचार संहिता रूपी संविधान-व्यवस्था व आचरण-मूल्यांकन परंपरा ही अखण्ड-समाज सूत्र सहित व्याख्या में पारंगत होना पाण्डित्य है। यही मन:स्वस्थता का प्रमाण है। यही दृष्टा-पद-प्रतिष्ठा का वैभव व जागृति सहज प्रमाण रूप में सौभाग्य है। **(अध्याय: 7, पृष्ठ नंबर: 136-137)**

- **स्वास्थ्य संयम कार्य व्यवस्था समिति**

ग्राम स्वास्थ्य समिति : कार्य एवं दायित्व

ग्राम के सभी व्यक्तियों के स्वास्थ्य एवं संयम की जिम्मेदारी ग्राम स्वास्थ्य समिति की होगी। यह समिति **शिक्षा** संस्कार समिति के साथ मिलकर कार्य करेगी। आवश्यकतानुसार स्वास्थ्य संयम संबंधी पाठ्यक्रम और कार्यक्रम को तैयार कर **शिक्षा** में सम्मिलित कराएगी। ग्राम में चिकित्सा केन्द्र की व्यवस्था, योगासन, व्यायाम, अखाड़ा, खेल कूद व्यवस्था, स्कूल के अलावा खेल मैदान (स्टेडियम), सांस्कृतिक भवन क्लब आदि व्यवस्था का दायित्व ग्राम स्वास्थ्य समिति का होगा। समिति स्थानीय रूप से उपलब्ध जड़ी-बूटियों द्वारा औषधि बनाने के लिए आवश्यकीय व्यवस्था करेगी। इसके साथ ही पशु चिकित्सा केन्द्र की व्यवस्था का दायित्व भी स्वास्थ्य समिति का होगा। समिति "समन्वित चिकित्सा" (आयुर्वेद, एलोपैथी, होम्योपैथी, यूनानी, योग, प्राकृतिक, मानसिक) के उन्नयन की व्यवस्था करेगी। **(अध्याय: 7, पृष्ठ नंबर: 161)**

- **ग्राम में शिक्षा संस्कार व्यवस्था**

ग्राम **शिक्षा** संस्कार व्यवस्था का संचालन "**शिक्षा** संस्कार समिति" करेगी। **शिक्षा** संस्कार समिति में कम से कम एक व्यक्ति होगा या अधिक से अधिक तीन अथवा आवश्यकतानुसार अधिक हो सकते हैं जिसका निश्चयन ग्राम सभा करेगी।

शिक्षा संस्कार समिति के सदस्य की अर्हता :-

शिक्षा संस्कार समिति के सदस्यों की अर्हताएँ निम्न प्रकार होंगी:-

1. प्रत्येक सदस्य जीवन-विद्या एवं वस्तु-विद्या ज्ञान- विवेक- विज्ञान में पारंगत रहेगा।
2. वह व्यवहार में सामाजिक व व्यवसाय में स्वावलम्बी होगा।

3. उसमें स्वयं में विश्वास व श्रेष्ठता के प्रति सम्मान करने का प्रमाण रहेगा ।
4. प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलित होने का प्रमाण रहेगा ।

शिक्षा संस्कार व्यवस्था के मूल उद्देश्य:-

प्रत्येक मानव को -

1. व्यवहार में सामाजिक
2. व्यवसाय में स्वावलंबी
3. स्वयं के प्रति विश्वासी
4. श्रेष्ठता के प्रति सम्मान करने में पारंगत, जिससे व्यक्तित्व व प्रतिभा का संतुलन प्रमाणित हो।

शिक्षा संस्कार व्यवस्था का स्वरूप :-

1. प्रत्येक मानव को व्यवहार **शिक्षा** में पारंगत बनाना।
2. प्रत्येक को व्यवसाय **शिक्षा** में पारंगत कर एक से अधिक व्यवसायों में स्थानीय आवश्यकताओं के आधार पर निपुण व कुशल बनाना।
3. प्रत्येक को साक्षर, समझदार बनाना।
4. ग्राम-सभा पाठशाला की व्यवस्था स्थानीय आवश्यकतानुसार करेगी।
5. आयु वर्ग के आधार पर **शिक्षा** प्रदान करने की व्यवस्था होगी ।

शिक्षा की व्यवस्था ग्रामवासियों के लिए निम्नानुसार की जावेगी-

1. बाल **शिक्षा** ।
2. बालक जो स्कूल छोड़ दिए हैं व दस वर्ष से अधिक आयु के हैं, ऐसे बच्चों को 30 वर्ष के अन्य अशिक्षित व्यक्तियों के साथ व्यवहार **शिक्षा** व व्यवसाय **शिक्षा** में पारंगत बनाने की व्यवस्था रहेगी ।
3. 30 वर्ष की आयु से अधिक स्त्री पुरुषों को साक्षर-समझदार बनाकर व्यवहार **शिक्षा** में पारंगत बनाने की व्यवस्था होगी।
4. स्थानीय परिस्थितियों केआधार पर आवश्यकता होने पर स्त्री पुरुषों के लिए अलग **शिक्षा** प्रदान करने की व्यवस्था होगी ।
5. अनावश्यक, अव्यवहारिक, असामाजिक आदतों को छुड़ाने के लिए अलग से **शिक्षा** व्यवस्था होगी जो कि "स्वास्थ्य संयम समिति" के साथ मिलकर कार्य करेगी।
6. व्यवसाय **शिक्षा** के लिए "**शिक्षा** संस्कार समिति" "उत्पादन सलाहकार समिति" एवं "वस्तु विनिमय कोष समिति" के साथ मिलकर कार्य करेगी व सम्मिलित रूप से यह तय करेगी कि ग्राम की वर्तमान व भविष्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर, किस-किस व्यक्ति को, किस-किस उत्पादन की **शिक्षा** दी जाए। "विनिमय कोष समिति" ऐसे उपायों की जानकारी देगी, जिनकी गाँव के बाहर अच्छी माँग है व जिसे वह अच्छी कीमत पर विनिमय कर सकती है ।
7. कृषि, पशुपालन, ग्राम शिल्प, कुटीर उद्योग, ग्रामोद्योग व सेवा में जो पहले से पारंगत हैं, उनके द्वारा ही अन्य ग्रामवासियों को पारंगत करने की व्यवस्था की जायेगी ।
8. यदि उपर्युक्त **शिक्षा** में कभी उन्नत तकनीकी विज्ञान व प्रौद्योगिकी को समावेश करने की आवश्यकता होगी तो उसको समाविष्ट करने की व्यवस्था रहेगी ।
9. व्यवहार **शिक्षा** के लिए "**शिक्षा** संस्कार समिति" "स्वास्थ्य संयम समिति" के साथ मिलकर कार्य करेगी।
10. मानवीयता पूर्ण व्यवहार (आचरण) व जीने की कला सिखाना व अर्थ की सुरक्षा तथा सदुपयोगिता के प्रति जागृति उत्पन्न करना ही, व्यवहार **शिक्षा** का मुख्य कार्य है।

रुचि मूलक आवश्यकताओं पर आधारित, उत्पादन के स्थान पर मूल्य व लक्ष्य-मूलक अर्थात उपयोगिता व प्रयोजनीयता मूलक उत्पादन करने की **शिक्षा** प्रदान करना। जिससे प्रत्येक नर –नारी में आवश्यकता से अधिक उत्पादन समृद्धि (असंग्रह), अभयता (वर्तमान में विश्वास), सरलता, दया, स्नेह, स्वधन, स्वनारी/स्वपुरुष, बौद्धिक समाधान, प्राकृतिक संपत्ति का उसके उत्पादन के अनुपात में सदुपयोग व उसके उत्पादन में सहायक सिद्ध हो ऐसी मानसिकता का विकास करना, व्यवहार **शिक्षा** में समाविष्ट होगा। इसके लिए **शिक्षा** के निम्न अवयवों का अध्ययन आवश्यक होगा:-

1. अस्तित्व, विकास, जीवन, जीवन-जागृति व रासायनिक-भौतिक रचना-विरचना के प्रति निर्भ्रम होना (जानना एवं मानना) रहेगा ।
2. मानव, मानव जीवन का स्वरूप, मानव अपने "त्व" सहित (मानवत्व सहित) व्यवस्था है, मानव संचेतना, अक्षय बल व अक्षय शक्ति की पहचान, अमानवीय चेतना से मानवीय चेतना में परिवर्तन व अतिमानवीय दृष्टियों स्वभाव व विषयों का स्पष्टता व ज्ञान सुलभ करना रहेगा ।
3. मानवीय स्वभाव गति, आवेशित गति की पहचान ।
4. मानव व नैसर्गिक संबंधों की पहचान, संबंधों के निर्वाह में निहित मूल्यों की पहचान व बोध कराने की **शिक्षा**। "संबंधों के निर्वाह से ही विकास होता है" इसकी **शिक्षा** सर्वसुलभ करना।
5. मूल्य, चरित्र व नैतिकता अविभाज्य वर्तमान है वह क्रम से अनुभव बल, विचार शैली व जीने की कला की अभिव्यक्ति है। इसकी पहचान होना सर्व सुलभ होना रहेगा।
6. रुचि मूलक प्रवृत्तियों के स्थान पर मूल्य मूलक, लक्ष्य मूलक कार्य-व्यवहार, विश्लेषण का स्पष्टीकरण सुलभ रहेगा।
7. आवर्तनशील अर्थ चिंतन व व्यवस्था की **शिक्षा** रहेगा।
8. उपयोगिता पूरकता, उदात्तीकरण सिद्धांत सर्वविदित होने का व्यवस्था रहेगा ।
9. न्याय पूर्ण व्यवहार (कर्तव्य व दायित्व) सर्व विदित रहेगा ।
10. नियम पूर्ण व्यवसाय सहज कर्माभ्यास परंपरा रहेगा ।
11. सामान्य आकाँक्षा व महत्वाकाँक्षा संबंधी उत्पादन कार्य में हर नर- नारी पारंगत होने का व्यवस्था रहेगा ।
12. संतुलित आहार पद्धति में प्रत्येक को जागृत करने की शिक्षा।
13. योगासन व व्यायाम सिखाने की **शिक्षा** एवं व्यवस्था ।
14. शरीर, घर, आसपास का वातावरण, मोहल्ला व ग्राम में स्वच्छता की आवश्यकता व उसको बनाए रखने का कार्यक्रम ।
15. शैशव अवस्था में रोग-निरोधी विधियों से हर परिवार में आवश्यक जानकारी और इसमें निष्ठा बनाए रखने की व्यवस्था।
16. सीमित व संतुलित परिवार के प्रति प्रत्येक व्यक्ति में विश्वास और निष्ठा को व्यवहार रूप देने का कार्यक्रम ।
17. स्थानीय रूप से उपजने वाली जड़ी-बूटियों की पहचान और औषधि के रूप में प्रयोग करने में पारंगत बनाने की **शिक्षा** ।

कालांतर में "ग्राम **शिक्षा** संस्कार समिति" क्रम से ग्राम समूह सभा, क्षेत्र सभा, मंडल सभा, मंडल समूह सभा, मुख्य राज्य सभा, प्रधान राज्य सभा व विश्व राज्य सभा की "**शिक्षा** संस्कार समिति" से जुड़ी रहेगी । अत: विश्व में कहीं भी स्थित कोई जानकारी "ग्राम-**शिक्षा** संस्कार समिति" को उपरोक्त सात स्रोतों से तुरंत उपलब्ध हो सकेगी । पूरी जानकारी का आदान-प्रदान कम्प्यूटर व्यवस्था द्वारा आपस में जुड़ा रहेगा । इसी प्रकार अन्य चारों समितियाँ भी ऊपर तक आपस में जुड़ी रहेगी। **(अध्याय: 8, पृष्ठ नंबर:172-176)**

- **शिक्षा संस्कार सुरक्षा :-**

1. न्याय सुरक्षा समिति यह सुनिश्चित करेगी कि प्रत्येक ग्रामवासी को मानवीय **शिक्षा** (व्यवहार **शिक्षा** व व्यवसाय शिक्षा) ठीक से मिल रही है या नहीं । जो स्कूल छोड़ दिए हैं, स्कूल में नहीं आते हैं, उनके लिए उनके परिवार वालों से मिल जुलकर **शिक्षा** संस्कार को सुलभ कराएगी ।
2. मानवीय **शिक्षा** में कहीं से भी व्यतिरेक उत्पन्न होता है तो उसको दूर करने की व्यवस्था करेगी ।
3. शिक्षकों का मूल्यांकन करेगी कि वे ठीक से **शिक्षा** प्रदान कर रहे हैं या नहीं ? समय-समय पर आकर निरीक्षण-परीक्षण पूर्वक मार्ग दर्शन देगी। **(अध्याय:8, पृष्ठ नंबर:186)**

- **शिक्षा संस्कार समिति के कार्यों का मूल्यांकन**

"ग्राम सभा" ग्राम के प्रत्येक व्यक्ति व परिवार में "**शिक्षा** संस्कार समिति" के कार्यों का मूल्यांकन निम्न आधारों पर करेगी :-

1. संबंधों का पहचान मूल्यों का निर्वाह, मानवीयतापूर्ण आचरण व व्यवहार का मूल्यांकन। परस्परता में समाधान।
2. स्वयं के प्रति विश्वास व श्रेष्ठता के प्रति सम्मान क्रिया, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक, उत्पादन कार्य में स्वावलंबन सहज विधि से मूल्यांकन।
3. मानवीय आचरण स्व धन, स्वनारी/स्वपुरूष, दया पूर्ण कार्य व्यवहार का मूल्यांकन।
4. ग्राम जीवन व परिवार व्यवस्था में विश्वास व निष्ठापूर्ण आचरण का मूल्यांकन।
5. ग्राम व्यवस्था व ग्राम जीवन में भागीदारी का मूल्यांकन।
6. प्रत्येक व्यक्ति व परिवार से किया गया तन, मन व धन रूपी अर्थ की सदुपयोगिता का मूल्यांकन।
7. मानव स्वयं व्यवस्था के रूप में संप्रेषित, अभिव्यक्त, प्रकाशित होने व समग्र व्यवस्था में भागीदारी होने व उसकी संभावना का मूल्यांकन।
8. किसी व्यक्ति में बुरी आदत हो तो उसके, उससे (बुरी आदत से) मुक्त होने के आधार पर सुधार का मूल्यांकन। **(अध्याय:8, पृष्ठ नंबर:190-191)**

- **शिक्षा-संस्कार-समिति से सत्यापन**

1. मानवीय-शिक्षा-संस्कार सर्व सुलभ होने का कार्यक्रम, प्रमाणित होने में से के लिए सत्यापन।
2. मानवीय **शिक्षा** का प्रमाण हर परिवार में वर्तमान होने का सत्यापन।हर परिवार-समूह-सभा सदस्य, निरीक्षण-परीक्षण विधि से सत्यापित करने का कार्यक्रम, ग्राम-सभा में सत्यापनों की प्रस्तुति सहज कार्यक्रम।
3. शिक्षा-संस्कार किसी परिवार में अपूर्ण रहने पर पूर्णता के लिए कार्यक्रम परिवार समूह सभा में निहित रहेगा। इसके लिए शिक्षा-संस्कार समिति दायी होगा। **(अध्याय:9, पृष्ठ नंबर:193-194)**

- **शिशु काल से जागृति यात्रा घोषणा**

1. शिशु कालीन लालन-पालन, पोषण-संरक्षण कार्यों का दायित्व व कर्तव्य अभिभावकों का है ।
2. मानव सन्तान का लालन-पालन, पोषण-संरक्षण का कार्य अभिभावक का है । इस परंपरा में उत्सव, प्रसन्नता, खुशियाली है। शैशवकाल के अनंतर पड़ोसी बन्धुओं का मानव संस्कार पक्ष में दायित्व रहेगा ।

3. मानव में सभी सम्बन्धों मे सम्बोधन सभी परिवार-परंपरा में प्रचलित है । इसे अखण्डता सहज प्रयोजन सार्थकता के अर्थ में प्रमाणित करना जागृति है ।

मानवत्व सहित व्यवस्था में जीना-

4. मानव परंपरा **शिक्षा संस्कार** सहित जागृति पूर्वक अपने सन्तानों को ज्ञान-विवेक-विज्ञान सम्पन्न बना सकते हैं, तद्अनुरूप संभाषण, अपेक्षानुरूप प्रमाण निर्देश सम्पन्न होना स्वभाविक है ।
5. सम्बन्धों का सम्बोधन, शिष्टता का दिशा निर्देशन सम्बोधन के साथ प्रयोजन भाव-भंगिमा, मुद्रा, अंगहार विधि से सन्तानों को निर्देशित करना हर अभिभावकों, पड़ोसी बन्धु, मित्रजनों का कर्तव्य-दायित्व होता है ।
6. शिशु कालीन **शिक्षा**, **शिक्षा-संस्कार** के दायी अभिभावक होंगे । जीते हुए के आधार पर स्वीकृति, जीने के आधार पर **शिक्षा संस्कार** सार्थक होता है ।
7. कौमार्य काल में ग्रामवासी, **शिक्षा**-संस्था व अभिभावकों का संयुक्त रूप में जीने के आधार पर सफल बनाने का कर्तव्य-दायित्व रहेगा ।
8. युवावस्था में मानवीय **शिक्षा-संस्कार** को विद्यार्थियों में-से-के लिये आचरण सहित प्रमाण रूप देना अनुभव प्रमाण सम्पन्न अध्यापकों में अनिवार्य रहेगा ।
9. हर मानव-सन्तान युवकों के फलन के रूप में अनुभव प्रमाण सम्पन्नता फलित होना ही **मानवीय-शिक्षा-संस्कार** की सफलता है । इसका सत्यापन अभिभावक, विद्यार्थी करेंगे । अध्यापक दृष्टा पद में वैभव सम्पन्न होगा ।
10. हर नर-नारी का **मानवीय-शिक्षा संस्कार** सम्पन्न रहना ग्राम-देश-धरती में मानव का वैभव है ।
11. जागृत मानव परंपरा में सम्पूर्ण मानव का अपने में सामाजिक अखण्डता और सार्वभौम व्यवस्था सूत्र व्याख्या में प्रमाण होना सहज है ।
12. जागृत मानव परंपरा में ही समाधान-समृद्धि-अभय-सहअस्तित्व प्रमाण सहित नियम-नियंत्रण-संतुलन समेत सर्व सुख-शान्ति सहज विधि से जीना होता है । यही स्वराज्य है ।
13. कम से कम सोलह-अठ्ठारह अधिक से अधिक बीस वर्ष की अवस्था में श्रम-साध्य कार्यों को करने का दायित्व-कर्तव्य होना आवश्यक है ।
14. प्राकृतिक-ऐश्वर्य पर उपयोगिता मूल्य के अर्थ में श्रम-नियोजन फलस्वरुप समृद्धि सार्थक होना पाया जाता है।
15. श्रम-कार्य हर नर-नारी में-से-के लिये स्वस्थता समृद्धि सेवा के लिए आवश्यक है।
16. खेल,व्यायाम एवं श्रम स्वस्थ रहने का उपाय है । आवश्यकता व समय के अनुसार श्रम नियोजन हर ग्राम-सभा, परिवार समूह सभा के निश्चित सामूहिक कार्य और परिवार से स्वीकृत होना भी रहेगा।
17. श्रम-नियोजन हर मानव में-से-के लिये आवश्यक है ।
18. श्रम-नियोजन पूर्वक उपयोगिता व कला मूल्य ही प्रमाणित होता है । स्वास्थ्य सन्तुलन के लिए भी श्रम, समय नियोजन होता है ।
19. सम्पूर्ण उपयोगितायें सामान्य व महत्वाकाँक्षा सम्बन्धी उपलब्धि होगी ।
20. हर नर-नारी युवा काल से प्रौढ़ावस्था के फलन तक श्रम-नियोजन योग्य होते हैं । श्रम करने की प्रवृत्ति जागृति पूर्वक सफल विधिवत् होता है ।
21. शरीर की सभी अवस्थायें सदा दृष्टव्य है ।
22. **मानवीय शिक्षा-संस्कार** पूर्वक ही हर नर-नारी में-से-के लिए मानवत्व सहज मानसिकता प्रमाणित होना पाया जाता है ।
23. हर मानव का समझने के लिए ध्यान देना आवश्यक है और समझा हुआ को प्रमाणित करने के लिए ध्यान देना बना रहता है।
24. हर मानव का ज्ञानावस्था में होना ही समझदारी में-से-के लिए प्रवृत्ति व अध्ययन व समझ प्रमाण है । यही परंपरा है ।
25. सर्वमानव सहअस्तित्व में ही समझदार होना नित्य समीचीन है।

26. सर्व मानव अपने वैभव को समझदारी-ईमानदारी-जिम्मेदारी-भागीदारी सहज विधि से प्रमाण पहचान होना ही मानवीय परंपरा इतिहास वर्तमान है। **(अध्याय:9, पृष्ठ नंबर:202-205)**

- **स्वराज्य व्यवस्था सहज गति -** "अखण्ड समाज सूत्र व्याख्या पर आधारित ग्राम मोहल्ला स्वराज्य है"

ग्राम स्वराज्य की मूलभूत इकाई समझदार परिवार है। परिवार स्वयं मानव चेतना मूल्य **शिक्षा** सम्पन्न मानवीयता पूर्ण व्यवस्था सहज मौलिक रूप है। मानवीयता स्वयं स्वराज्य एवं स्वतंत्रता का सूत्र स्वरुप है। स्वराज्य का तात्पर्य न्याय-सुलभता, उत्पादन-सुलभता और विनिमय-सुलभता है। इसके पूरकता में **शिक्षा – संस्कार**, स्वास्थ्य-संयम आवश्यक है। स्वतंत्रता का तात्पर्य प्रत्येक मानव का स्वानुशासन सहज प्रामाणिकता और समाधान पूर्वक अभिव्यक्त, संप्रेषित व प्रकाशित होने से है, जो सहअस्तित्व रूपी परम सत्य अनुभव पूर्वक विधि से जानने व मानने से है अर्थात् सह-अस्तित्व में परस्पर संबंधों व मूल्यों को पहचानने व निर्वाह करने से है। यही **शिक्षा-संस्कार**, न्याय–सुरक्षा सुलभता स्त्रोत है। **(अध्याय:10, पृष्ठ नंबर: 216)**

- **शिक्षा सम्बन्धी आंकलन :-** पाठशाला है या नहीं। यदि है तो कहाँ तक पढ़ाई होती है? कितने विद्यार्थी हैं? कितने शिक्षक हैं? आयु, वर्ग के आधार पर **शिक्षा** का सर्वेक्षण। **शिक्षा** पाठ्यक्रम कैसा? स्थानीय आवश्यकतानुसार **शिक्षा** दी जाती है या केवल किताबी ज्ञान दिया जाता है? **शिक्षा** प्राप्त कर कितने व्यक्ति गाँव में रह रहे हैं? कितने गाँव छोड़ दिए हैं? महिलाओं व बच्चों में जागरूकता कैसी है? कितने साक्षर हैं? कितने साक्षर होना शेष हैं? आयु वर्ग के अनुसार, शिक्षक स्थानीय हैं या बाहर के हैं?

निकटवर्ती तकनीकी व अन्य समाज सेवी संस्थाओं के सहयोग की संभावना। ग्राम स्वराज्य कार्यक्रम सहज स्पष्टता। **(अध्याय:10, पृष्ठ नंबर: 221-222)**

- **अपने –पराए की दीवाल हटाये बिना मानव सुख पूर्वक नहीं जी पाएगा। इसके लिए न्याय-धर्म-सत्य की दृष्टि विकसित होना तथा उसके लिए चेतना विकास मूल्य शिक्षा की आवश्यकता है। (अध्याय:11, पृष्ठ नंबर: 226)**

- विचार - मन: स्वस्थता का प्रमाण-परंपरा-सुलभ होना आवश्यक हो गया है क्योंकि धरती बीमार हो रही है। धरती की ताप-ग्रस्तता, जंगल का कम होना, खनिज-कोयला-तेल का शोषण आदि सर्वविदित है । इसके फलस्वरूप प्रदूषण प्रभाव, मानव में व्यापार मानसिकता, शोषण संघर्ष-वंचना के लिए शिक्षण-प्रशिक्षण व प्रौद्योगिकी प्रवृत्तियों में वृद्धि हुई है ।

मानव के द्वारा मनाकार को साकार करने में इतनी लम्बी अवधि बीत गई है और मानव अपने कार्यों के फलस्वरूप घोर विपदाओं से घिर गया है । इससे छूटने के लिए मानव को केवल मन: स्वस्थता को अपनाना ही शेष है। यह प्रस्ताव मानव के सम्मुख आ चुका है। इसके लिए सर्वप्रथम शिक्षा-संस्कार-संस्थायें, द्वितीय समाज सेवी संस्थायें, तृतीय धर्म-संप्रदाय पंथ-मतवादी संस्थायें, चतुर्थ सभी राजनीतिक संस्थायें दायी है । वरीयता क्रम भले बदले पर **शिक्षा** संस्थाओं से लेकर अन्य संस्थाओं का लोक व्यापीकरण होना अवश्यंभावी है । ......**(अध्याय:11, पृष्ठ नंबर: 232-233)**

- परम्परा का तात्पर्य **शिक्षा संस्कार** अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था व सार्वभौम समाधान जो बीसवीं शताब्दी तक स्थापित नहीं हो पाया । भौतिक विचार परम्परा के अनुसार, संरचना के आधार पर चेतना निष्पत्ति बताई जाती है जबकि ईश्वर वादी विचार के अनुसार चेतना से वस्तु निष्पत्ति बताई जाती है । इन दोनों का शोध

करने के उपरान्त, अनुसन्धानपूर्वक पता लगा कि सह-अस्तित्व नित्य वर्तमान, परम सत्य होना पाया गया । इसमें उत्पत्ति की कल्पना ही गलत निकली। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 239)**

- जागृत परम्परा में ही **मानवीय शिक्षा संस्कार**, मानवीय आचरण संहिता रूपी संविधान, मानवीयता पूर्ण परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था सहित सह-अस्तित्व में अनुभव मूलक व्यवहार व प्रयोग उत्पादन कार्य, विनिमय कार्य, स्वास्थ्य संयम कार्य, न्याय सुरक्षा कार्य, **मानवीय शिक्षा -संस्कार कार्य** सहज प्रमाण सम्पन्नता का बोध सहित स्वयं में विश्वास पूर्वक श्रेष्ठता का सम्मान सम्पन्न होना है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 245)**

- मानव ही जागृति सहज **शिक्षा** - संस्कार पूर्वक मानवीय संस्कृति-सभ्यता, विधि-व्यवस्था का धारक-वाहक है । यही मानवीयता पूर्ण परंपरा है । **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 260)**

- समझदारी का वैभव सुख, समाधान, समृद्धि, परस्परता में विश्वास और नित्य उत्सव होता ही रहता है। इसके लिए समझदारी बौद्धिक प्रयोग, विवेकपूर्वक तथा समाधान, समृद्धि, अभय सह अस्तित्व प्रमाणित होने की विधि से सर्व मानव सुखी होते हैं। इसका प्रयोग न्याय व समाधानपूर्वक – सार्थक सुखी होना पाया जाता है। धन का प्रयोग उदारतापूर्वक करने से सार्थक सुखी होते हैं। बल का प्रयोग दया पूर्वक जीने देने व जीने के रूप में सार्थक होता है। रूप के साथ सच्चरित्रता, यथा-स्वधन, स्वनारी, स्वपुरुष, दयापूर्वक किया गया कार्य-व्यवहार विचार से ही सार्थक सुखी होना होता है। यह सर्व शुभ होने की विधि है जो लोक **शिक्षा** और **शिक्षा-संस्कार** पूर्वक सार्थक होता है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 267)**

- **दृष्टापद**: मानव में शून्याकर्षण ही नियंत्रित संवेदना सम्पन्न प्रभाव समेत सह-अस्तित्व में अनुभव प्रमाण बोध संकल्प सहित, बोध संकल्प चिंतन चित्रण सहित, चिंतन चित्रण क्रम सहित तुलन विश्लेषण पूर्वक आस्वादन चयन क्रिया-कलाप सहित दृष्टा पद में होना रहना है। यही समझदारी संपन्नता है। इसके लिए स्त्रोत चेतना विकास मूल्य **शिक्षा –संस्कार** है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 273)**

- मानवीय **–शिक्षा** संस्कार अनुभव प्रमाणमूलक होना समाधान है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 286)**

- मानवत्व **शिक्षा** संस्कार का सूत्र व्याख्या है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 291)**

- मानवीय **शिक्षा** संस्कार का प्रमाण मानवत्व है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर:292)**

- मानवीय **शिक्षा** संस्कार ही जागृत परंपरा में,से, के लिए सार्थक सूत्र व्याख्या प्रक्रिया है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर:294)**
- जागृति पूर्ण मानव परंपरा में ही **शिक्षा** – संस्कार, संविधान, व्यवस्था, संस्कृति, सभ्यता सार्थक रूप में प्रमाण मानवत्व है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 300)**

- ज्ञान-विवेक-विज्ञान पूर्ण **शिक्षा** संस्कार परंपरा ही मानवत्व है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 301)**

- अनुपातीय रूप में खानिज वनस्पतियों का सुरक्षित किया जाना मानवत्व है। दश सोपानीय परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था, यथा विश्व परिवार सभा से परिवार सभा का दायित्व व कर्तव्य है। परिवार सभा से यह विश्व राज्य परिवार-सभा का कर्तव्य और दायित्व है। **शिक्षा** में इसका सार्थक अध्ययन आवश्यक है। यह मानवत्व है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 302)**

- मानवीय **शिक्षा-संस्कार** का दायित्व–कर्तव्य परिवार-सभा से विश्व परिवार-सभा में दायित्व-कर्तव्य रूप में निहित रहता है। इसका निर्वाह योग्य होना मानवीयता है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर:302)**

- **शिक्षा-संस्कार** सर्वतोमुखी समाधानकारी ज्ञान-विवेक-विज्ञान सम्पन्न होने का प्रमाण मानवत्व है। यह परंपरा का कर्तव्य हर मानव संतान का अधिकार है। यह मानवत्व है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर:302)**

- जागृत **शिक्षा** परंपरा अखंड सार्वभौम व्यवस्था के अर्थ में सम्पन्न होना मानवत्व है।**(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर:302)**

- अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन ही मध्यस्थ दर्शन सह-अस्तित्ववाद है । इस पर **शिक्षा** संस्कार में सह-अस्तित्व रूपी अस्तित्व दर्शन ज्ञान बोध, जीवन ज्ञान बोध, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान बोध परंपरा होना मानवत्व है।**(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर:303)**

- **शिक्षा** में, से, के लिए व्यापक वस्तु रूपी साम्य ऊर्जा में सम्पूर्ण एक एक वस्तु संपृक्त ऊर्जा सम्पन्न नित्य वर्तमान क्रियाशील विकास क्रम, विकास, जागृति क्रम, जागृति के रूप में होने की परम सत्य सहज अवधारणा सहित अनुभव सम्पन्न रहना मानवत्व है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 302-303)**

- सह-अस्तित्ववादी **शिक्षा** संस्कार पूर्वक प्रत्येक एक विद्यार्थी अपने "त्व" सहित व्यवस्था है। समग्र व्यवस्था में भागीदार करने का अध्ययन व प्रमाण मानवत्व है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर:303)**

- मानवीय **शिक्षा** –संस्कार में सह-अस्तित्व नित्य प्रमाण होने के लिए बोध सम्पन्न होना, करना-कराना, करने के लिए सहमत होना मानवत्व है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर:303)**

- **शिक्षा** में मानवत्व का बोध होना सर्व मानव संतान में,से, के लिए मौलिक अधिकार है। यह मानवत्व है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर:303)**

सन्दर्भ: जीवन विद्या – एक परिचय

(संस्करण: 2010, मुद्रण: जनवरी 2017)

- ...दूसरी योजना है- **शिक्षा** का मानवीकरण। समझदार होना सबकी आवश्यकता है ही। इसलिये समझदारी की सारी वस्तुओं को **शिक्षा** में समावेश किया जाये। उसके लिये पाठ्यक्रम (सिलेबस) बनाया गया, स्कूल में प्रयोग किया गया। वह स्कूल है बिजनौर जिले के गोविन्दपुर में। वहाँ पर एक बहुत अच्छा अनुभव हुआ। पहले सारे शिक्षाविद् यह बोलते रहे कि विद्यार्थियों पर वातावरण का प्रभाव पड़ता है। पर गोविन्दपुर में अनुभव किया गया कि विद्यार्थियों का प्रभाव वातावरण पर पड़ता है। इसको विशालरूप में देखने का अरमान है उसके लिये प्रयत्न जारी है।...**(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर: 22)**

- अभी तक परंपरा से हमको जो कुछ **शिक्षा** मिली है वह है शरीर सापेक्ष जीना इसका गवाही है लाभोन्माद, कामोन्माद और भोगोन्माद के लिए पढ़ाते हैं जबकि मानव, जीवों पशुओं से भिन्न है, भिन्न प्रकार की प्रवृत्ति वाला है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 36)**

- वर्तमान **शिक्षा** में जब व्यक्ति पढ़कर तैयार होता है स्वयं को सबसे बुद्धिमान मानता है। संसार को मूर्ख मानता है। ऐसे स्नातक हर वर्ष करोड़ों बनते हैं। एक-एक ऐसे स्नातक को कैसे समझदार बनाया जाए? कहाँ से इतने डॉक्टर लाया जाए जो इनको ठीक कर सके। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 38)**

- समझदारी के बाद ज़िम्मेदारी आ ही जाती है। जब ज़िम्मेदारी के पास जाते हैं तो स्वाभाविक रूप में हम परिवार मानव हो जाते हैं, सामाजिक हो जाते हैं। फलस्वरूप हम सार्वभौम होते हुए प्रमाणित होते हैं। इस वैभवशाली परंपरा की आवश्यकता है। आशा के रूप में हर व्यक्ति व्यवस्था चाहता है। आकांक्षा के रूप में भी व्यवस्था चाहता है। हमारे अनुसार इच्छा के रूप में भी व्यवस्था चाहता है किन्तु इच्छा में उसकी वरीयता क्रम नीचे है, इसके ऊपर और बहुत सी चीजें है। इसलिए व्यवस्था की तीव्र इच्छा नहीं हो पाती। फलस्वरूप आदमी समर्पित होए में असमर्थ रहता है। जीव चेतना विधि से मानव विवश हो जाता है। क्या किया जाए? जो तत्काल समझने को तैयार हैं उन्हीं को पारंगत बनया जाए। उन्हीं से शिक्षण संस्थाओं में मानवीय **शिक्षा** का व्यवहारान्वय किया जाए, बच्चो में संस्कार डाला जाए।बच्चों में संस्कार डालने से घर परिवार में स्वभाविक रूप में परिवर्तन होना ही है। इस **शिक्षा** का मानवीकरण की आवश्यकता है **शिक्षा** सार्थक होना ही व्यवस्था दूसरी योजना है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर:40)**

- हर मानव चेतना विकास मूल्य **शिक्षा** से ही समझदार होकर प्रमाणित परंपरा हो सकता है। हर मानव के आचरण में आ सकता है और मानव त्व मूल्यांकित हो पाता है। मानव को समझदारी को सफल बनाना है यही उसका वैभव है, यही मानव का ऐश्वर्य है इसी ऐश्वर्य के साथ मानव अपनी परंपरा को निरंतर सुखमय बना सकता है। सभी पशु संसार, जीव संसार, वनस्पति संसार, पदार्थ संसार के साथ संतुलनपूर्वक व्यवहार कर सकता है उससे जो पूरकता है उसके लिए स्वयं कृतज्ञ होकर उसका उपयोग, सदुपयोग कर सकता है। प्रयोजनशील बन सकता है। **(अध्याय:2, पृष्ठ नंबर: 41-42)**

- संवेदनशीलता पूर्वक जीने की जो पराकाष्ठा है वह जीव संसार में पूरा हो जाता है। यदि संवेदशीलता में ही अंतिम मंजिल होती तो मानव के होने की जरूरत ही नहीं बनती है। अस्तित्व में निष्प्रयोजन की कोई स्थिति नहीं है। पूरे अस्तित्व में, संपूर्णता में एक तालमेल, एक सूत्रता, एक संगीतमयता पूर्वक व्यवस्था का स्वरूप है। हर गति, हर

स्थिति, हर अवस्था एक सार्थकता सूत्र से जुड़ा ही है। सार्थकता क्या है व्यवस्था में आचरण होना और समग्र व्यवस्था में भागीदारी करना। जीवन जब जागृत होता है अनुभव और प्रामाणिकता मूलक हमारा बोध संकल्प होता है और उसी के अनुरूप में चिंतन, चित्रण संपादित करना शुरू करता है। उसी आधार पर तुलन, विश्लेषण और चयन, आस्वादन होता है। उसी आधार पर तुलन, विश्लेषण और चयन, आस्वादन होता है। अभी हम संवेदनशीलता को सर्वोपरि मूल्यवान मान करके हर विचार हर योजना को तैयार करते हैं। जबकि जागृति में मूल्य और मूल्यांकन ही आता है। यही जागृति का व्यवहारिक स्वरूप है। संवेदन-शीलता मूलक विधि से हमने जीने की कला को विकसित कर लिया है। इस विधि से जीने के लिए जो जरूरत की वस्तुएँ है वे मानव को छोड़कर बाकी संसार है। जिसमें जीव, वनस्पति और पदार्थ संसार है। इन तीनों को आदमी ने कैसा उपयोग किया, आप सबको विदित है। इसमें कैसे ज्यादा से ज्यादा सफल हुए हैं ये भी विदित है। हम ये सब सफलता के लिए किसी को विफल होने की बात करते हैं तो असंतुलन होता है। हमने अभी तक जो सुविधा संग्रह का काम किया हौ उसमें धरती तंग हो गई है। धरती को बचा पाना संभव है कि नहीं ये भी एक प्रश्न चिन्ह है। इस क्रम में जो कुछ भी अपराध धरती पर कर रहे हैं उसको रोकना ही पड़ेगा और अपराध विहीन विधि को समझना पड़ेगा। उसके लिए अभी जितनी भी विज्ञान की बात किया हैं अथवा कला और **शिक्षा** में प्रवेश हो चुकी है इसमें अपराध मुक्ति नहीं हो सकता। इसमें डूबने की जगह है।इसमें धरती को नाश करने की जगह है, मानव एक दूसरे को तंग करने की जगह है। अभी तक हम बड़े-बड़े राज्य मिलकर के कोई सभा बना दिये हैं, संयुक्त राष्ट्र संघ। जिसमें बहुत से सम्मेलन हुए पर आज तक यह निर्णय नहीं हो पाया कि सामरिक शक्ति अधिकार इस संघ में होना चाहिए या राष्ट्रों में होना चाहिए या नहीं होना चाहिए। इसी प्रकार **शिक्षा** के लिए हर वर्ष में चार बार समीक्षा होती है। पुन: विचार, पुन; समीक्षा किन्तु आज तक यह तय नहीं हुआ कि मानव के लिए सुखद **शिक्षा** क्या होना चाहिए। **(अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर: 50-51)**

- ....तो पहला मुद्दा समझदारी सहज **शिक्षा** –संस्कार विधि से सर्वसुलभ हो जाए। समझदारी के साथ जीने की कला को अपनाया जाए। जीने की कला में धरती जल व वायु के साथ कैसे जिया जाए, वनस्पति के साथ कैसे जिया जाए, पशु संसार के साथ कैसा जिया जाए और मानव के साथ कैसे जिया जाए। इनमें से किसी एक को भी नहीं छोड़ा जा सकता, सबके साथ जीना ही है। हर व्यक्ति अनुभव कर सकता है, मूल्यांकन कर सकता है। यह दावा हर मानव करता ही है। हर मानव में दावा करने की यह प्रवृत्ति सहज है, थोपा हुआ किसी को स्वीकार नहीं है, हर व्यक्ति में यह मूल रूप में है, उत्साह है, स्वयं स्फूर्त है। हर मानव की ये आवश्यकता है। इतना सहज स्रोत रहते हुए भी हम कैसे अपेक्षा कर लिए कि हम दूसरों को तारूँगा। यह एक आश्चर्यजनक घटना है और इसमें हम सब भी आस्था करते रहते हैं अब यह सोचना है कि आश्वासन के ऊपर आस्था करना है या प्रमाणों के आधार पर विश्वास करना है। मुझे आरंभिक काल से जैसे ही प्रवृत्ति हुई, प्रमाणों के आधार पर विश्वास करने के लिए हमारा विचार हुआ। हमारा स्वाभाविक रूप में उत्साह बढ़ा। प्रमाणों को खोजने के आधार में ही ये सब पुनर्विचार करने की प्रवृत्ति बनी उसके परिणाम स्वरूप जो कुछ हुआ उसे मानव सम्मुख रखने के लिए हम प्रवृत्त है, जैसे सात सौ करोड़ आदमी के सम्मुख रास्ता बंद हो चुका है, उसी भांति मेरे साथ भी रहा होगा। इसको आप अंदाज कर सकता हैं।

सभी मानवों जैसे ही स्थिति में मैं भी था। संसार में प्रचलित **शिक्षा** संस्कार,कर्मकांड संस्कार, इसी जंगल से मैं भी गुजरा हूँ। गुजरने के बावजूद हमारी स्वीकृति ना तो मेकाले **शिक्षा** के साथ रही ना परंपरागत आदर्शवादी संस्कार के साथ रही। हमारी आस्था इसमें स्थिर नहीं हो पाई। यह हमारा सम्पूर्ण उद्देश्यों की ओर दौड़ने का आधार और कारण बना। हमारी आस्था ना **शिक्षा** परंपरा में, न संस्कार परंपरा में बनी इसलिए हम शायद रिक्त हो गए और यही हमारा अपने ढंग से दौड़ने का आधार बना। दो घटनाएँ तो घट चुकी। इसमें एक घटना जीवन को समझना महत्वपूर्ण रही। जीवन में ही समझदारी समाई है एवं समझदारी पूर्ण विधि हमारे हाथ लगी।.... **(अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर: 54-55)**

- समझदारी, बोध पूर्वक प्रमाणित करने के लिए जो कार्य है उसका नाम है शिक्षा। समझदारी, प्रमाण बोध हुए बिना शिक्षण कार्य होता नहीं। समझदारी के लिए, शिक्षण संस्थाएं जिम्मेदार हैं, हर अभिभावक जिम्मेदार है। हर परिवार **शिक्षा** के लिए सूत्र है। इसलिए शिक्षण संस्था के लिए एकीकरण, निजीकरण, सरकारीकरण ये सब सोचने से कुछ होगा नहीं और ना कुछ हुआ है। सीधे सीधे अभिभावक शिक्षण संस्था के रूप में देखा जाना चाहिए। इसी में मानव का कल्याण होगा। समझदारी से यही रूप निकलता है। हमें न्यायप्रदायी क्षमता से निष्णात होना होगा। न्यायप्रदायी क्षमता स्वयं में प्रमाणित होना होगा। ये दोनों चीजों से सम्पन्न होते हैं तभी हम न्याय कर पाएंगे। दोनों चीजों से सम्पन्न होते है तभी हम समझते हैं जब समझेंगे नहीं तब न्याय कैसे करेंगे।....**(अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर: 69)**

- यदि हमारी संप्रेषणा में अगले व्यक्ति को तात्विकता छू गई तो हमारी संप्रेषणा सार्थक है। यदि वही तत्व व्यवहार की सार्थकता को इंगित कराता है (व्यवहार में सार्थकता है, मानव का प्रयोजन समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व इन चारों को इंगित करा देना) और बोध कराता है तो व्यवहार ज्ञान अनुभव होता है। इसमें तात्विक ज्ञान हो गया। तात्विक ज्ञान के लिए भी तर्क चाहिए, व्यवहार ज्ञान के लिए भी तर्क चाहिए।पहली उपलब्धि यही है अपना मूल्यांकन, परिवारजनों का मूल्यांकन किस आधार पर होगा। मूल्यों के आधार पर, सम्बन्धों के आधार पर, उभयतृप्ति के आधार पर। व्यवहार में हम न्यायिक हो गए यही प्रमाणित कर सकते हैं। तब आदमी मानव हो गया। पहले मानव हुआ फिर समझदारी के आधार पर स्वायत्त हो गया और छः गुण आ गए:-

1. स्वयं में विश्वास
2. श्रेष्ठता का सम्मान
3. प्रतिभा में संतुलन
4. व्यक्तित्व में संतुलन
5. व्यवहार में सामाजिक
6. व्यवसाय में स्वावलंबी ।

ये छह अर्हताएं जब मेरे समझ में आई तब मैं स्वयं को स्वायत्त अनुभव किया हूँ। वैसे ही हम परिवार में अपनी समझदारी, समृद्धि को प्रमाणित करने में समर्थ रहे। इसी सत्यतावश आपके सम्मुख प्रस्तुत हुए। हर व्यक्ति सज्जन बनना चाहता ही होगा, सज्जनता के लिए न्यूनतम अर्हता न्याय है। न्याय को जैसा मैं देखता हूँ वह संबंध, मूल्य, मूल्यांकन और उभयतृप्ति ही है। इसके बाद हमारे समझ में बात आई है कि हर व्यक्ति जन्म से ही न्याय का याचक है। सही कार्य-व्यवहार करना चाहता ही है। सत्य वक्ता होता ही है, इस आधार पर **शिक्षा** में क्या होना चाहिए? हर मानव संतान को सत्य बोध होना चाहिए, सही कार्य व्यवहार करने के लिए अभ्यास होना चाइए। विधि होनी चाहिए, न्याय प्रदायी क्षमता होनी चाहिए। तीनों चीजें ही शिक्षा-संस्था में हो सकती हैं और तब मानव परंपरा अपने आप बन जाती है। इससे पहले मानव परंपरा बनेगी नहीं। मानव परंपरा की शुरुआत न्याय से ही करना पड़ेगा। न्याय के लिए मुख्य मुद्दा है नैसर्गिक संबंध जो शाश्वत है एवं मानव संबंध निरंतर है। जब मानव कोई गलती करता है तब मार्गदर्शन के लिए कहाँ जाता है? हमने देखा है परिवार में कोई व्यक्ति जो न्याय को सत्यापित किया तो वो मार्गदर्शन देगा। परिवार में न हो तो गाँव में कोई होगा जो मार्गदर्शन देगा। गाँव में भी न हो तो देश धरती में कोशिश करेगा यह सहज प्रवृत्ति है। यह स्वाभाविक है कि हर मानव में नहीं न कहीं सुधार की प्रवृत्ति है। संसार में परिवर्तन चाह रहे हैं ऐसा तो गवाही हो चुकी है। क्या परिवर्तन चाहिए यह पकड़ में नहीं आता रहा, उसके लिए यह प्रस्ताव है। शिक्षा-संस्कार से ही लोकव्यापीकरण होगा। **शिक्षा** में भी मानवीय **शिक्षा** को प्रावधानित किया जाना चाहिए। हर व्यक्ति को न्यायपूर्वक जीकर प्रमाणित होने के लिए हमको समझदारी को देना ही पड़ेगा। इसके लिए **शिक्षा** में विज्ञान के साथ चैतन्य का भी अध्ययन कराना होगा। चैतन्य को हम समझेंगे नहीं, तो अस्तित्व हमको समझ में नहींआ सकता और अस्तित्व नहीं समझेंगे तो व्यवस्था कैसे समझ में आएगी? अस्तित्व को समझने वाला जीवन (चैतन्य) ही है इसलिए चैतन्य वस्तु का भी अध्ययन **शिक्षा** में समावेश होना जरूरी है।

मनोविज्ञान में संस्कार पक्ष (समझदारी) का समावेश होना चाहिए, मानव संचेतना का समावेश, पहचान होना चाहिए। मानव संचेतना में संवेदनशीलता, संज्ञानशीलता दोनों वैभवित है। दर्शनशास्त्र को प्रामाणिकता के साथ पढ़ाना चाहिए। जब प्रामाणिकता के साथ पढ़ाएंगे तो मानवता विधि ही आएगी, भौतिक और आध्यात्मिक विधि नहीं। **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर: 70-72)**

- विकल्प रूप में यहाँ मानव के उद्धार का मूल स्रोत है समझदारी। सबसे बड़ी गद्दी है शिक्षण संस्था। उसमें विज्ञान के साथ चैतन्य का अध्ययन होना चाहिए। चैतन्य के अध्ययन के बिना सह-अस्तित्व का अध्ययन कैसे होगा? ये दोनों भाग **शिक्षा** संस्थानों में **शिक्षा** वांगमय में, **शिक्षा** प्रक्रिया में अछूता है। दूसरा, मनोविज्ञान में मानव के अध्ययन के लिए मानव संचेतना समझ में आता है, प्रमाणित हो जाता है, आवश्यकता भी समझ में आती है इसलिए संस्कार पक्ष का अध्ययन मनोविज्ञान में होना चाहिए। तीसरा, दर्शन शास्त्र के साथ प्रामाणिकता होनी चाहिए। अभी तक हम मानते रहे हैं कि मानव पढ़ा और पढ़कर सुनाया तो विद्वान हो गया। जबकि ये विद्वान हुआ नहीं रहता। विद्वान, समझदारी का स्वरूप है और विद्या अपने आप में अस्तित्व सहज है। सह-अस्तित्व को समझे बिना, जीवन को समझे बिना मानवीयतापूर्ण आचरण के बिना विद्वान होता नहीं। ये समझ में आता है विचार शैली भी बनता है, योजना भी बनता है, कार्ययोजना भी बनता है फलस्वरूप प्रमाणित भी होता है। **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर:73)**

- परिवार में, हर आदमी में, हर बच्चे में समझदारी का सूत्र देना ही **शिक्षा-संस्कार** व्यवस्था है। इसे समझदारी का लोकव्यापीकरण करना भी कह सकते हैं। पहले आपको बताया दर्शन; दर्शन के बाद विचार; विचार के बाद शास्त्र; शास्त्र के बाद योजना। योजना में एक है जीवन विद्या योजना जिसमें मानव परिवार मानव चेतना सम्पन्न होने के लिए पूरी गुंजाइश है। इस समझ से आदमी परिवार में व्यवस्था के रूप में जी सकता है। दूसरी योजना है मानवीय **शिक्षा-संस्कार** का मानवीकरण। इसमें बच्चों के लिए **शिक्षा** व्यवस्था है। ऐसी **शिक्षा** को हम एक स्कूल में (बिजनौर, उ. प्र.) प्रयोग किए। यह पाँच वर्ष का अनुभव है। जीवन विद्या के आधार पर **शिक्षा** का मानवीकरण करने गए उसका क्या प्रभाव पड़ा वहाँ देखा गया। लोग कहते रहे हैं कि विद्यार्थियों के ऊपर वातावरण का प्रभाव पड़ता है जिसे हम नकारते रहे। यदि वातावरण का प्रभाव पड़ता तो हम अनुसंधान कैसे कर पाते? इस स्कूल से यह प्रमाण मिलने लगा है कि बच्चों का प्रभाव परिवार पर एवं उनके परिवार वालों का प्रभाव वातावरण पर पड़ने लगा है। बच्चे जीवन के रूप में अपने को पहचानने लगे और व्यवस्था में जीना अति आवश्यक है इसे स्वीकारने लगे। इसके फलस्वरूप बहुत से बच्चे टीवी, व्यर्थ वार्तालाप आदि में अरूचि दिखाये जाने वाले चीजों का मूल्यांकन करने लगे और यह सब निस्सार है ऐसा समझने लगे। साथ ही गाँव में एक परिवार में दूसरे परिवार के साथ बैर भाव था, मारपीट, मुकदमा होता था। व भी धीरे-धीरे शमन होने लगा। अब उन गांवों में मेरी जानकारी के अनुसार झगड़ा –झंझट कम हो गया है। इसी को हम कहते हैं बच्चों का आचरण रूपी वातावरण का प्रभाव पड़ा और इसी के अनुसार हम कहते हैं कि इस **शिक्षा** में दम खम है।

शिक्षा के मानवीकरण में हम विज्ञान के साथ चैतन्य पक्ष का अध्ययन कराएंगे। चैतन्य पक्ष का अध्ययन का मतलब है जीवन। जीवन का, जीवन जागृति का अध्ययन कराएंगे। रासायनिक-भौतिक रचना-विरचना का अध्ययन कराएंगे। मानव के लिए रचना-विरचना में पूरकता तथा मानव इस संसार के लिए कैसे पूरक, कैसे उपयोगी होगा, यह सब अध्ययन कराएंगे। इसके साथ ही विकल्पात्मक दर्शन शास्त्र में क्रिया पक्ष का अध्ययन कराएंगे। क्रिया पक्ष का अर्थ है मानव की समझदारी के लिए दर्शन है।..**(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर:77-79)**

• इसके बाद आती है मानव की परिभाषा: "मनाकार को साकार करने वाले को मानव कहते हैं।" अर्थात मानव के मन में जो भी आता है (यथा यंत्र बनाना, घर बनाना आदि) उसको साकार करने वाला तथा मन: स्वस्थता का आशावादी है अर्थात सुख की आशा में ही हर मानव जीता रहता है। मानव सुख धर्मी है। इस तरह मूल्य, नैतिकता, चरित्र का स्वरूप समझ में आता है। परिभाषा के अनुसार जहाँ तक मनाकार को साकार करने वाली बात है उसको मानव पा गया है। मनाकार को साकार करने वाली बात दो विधा होता है। एक सामान्य आकांक्षा (आवास, आहार, अलंकार) और दूसरा महत्वाकांक्षा (दूरश्रवण, दूरदर्शन, दूरगमन)। जहाँ तक आचरण की बात है वह कहीं नहीं मिलता है। न तो **शिक्षा** में, न संविधान में मिलता है। संविधान में मानवीयता पूर्ण आचरण को मूल्यांकित करने की कोई व्यवस्था नहीं है। शक्ति केन्द्रित किसी भी संविधान में मानवीयता पूर्ण आचरण को प्रमाणित करने का प्रावधान होता नहीं है क्योंकि यह मानवीय संविधान होता नहीं है। इसलिए इसमें मानवीय आचरण हो ही नहीं सकता। मानवीयतापूर्ण आचरण को कोई प्रमाणित कर नहीं पाये। ऐसा मूल्यांकित करने का साहस जुटा नहीं पाये, ऐसे समझदारी को जोड़ नहीं पाये। इन कमियों को पूरा किए बिना मानव सुख से जी नहीं पाएगा और लड़ाई झगड़ा करता ही रहेगा। इस कचड़े से छूटने के लिए समझदारी ही एक उपाय है। इसके लिए **शिक्षा** का मानवीकरण करना अति आवश्यक है। **शिक्षा** में विज्ञान के साथ चैतन्य प्रकृति का, दर्शन के साथ क्रिया पक्ष का, मनोविज्ञान के साथ संस्कार पक्ष का, भूगोल और इतिहास में मानव तथा मानवीयता का समावेश करेंगे। इस ढंग से **शिक्षा** में मानवीयता के समावेश होने से मानव की प्रवृत्ति सहज रूप से व्यवस्था में जीने की, अपने को प्रमाणित करने की होगी। अपने पहचान के साथ समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व में जीने के अवसर आवश्यकता सफलता के स्थान पर हम पहुँच जाएंगे। इसलिए शिक्षा-संस्कार मानवीयता के साथ ही पूर्ण होता है, दूसरी विधि से नहीं होता। अभी हम जिन संस्कारों की बात करते हैं वे हमारी प्रचलित मान्यताओं पर आधारित हैं उनमें सार्वभौमता नहीं है। **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर:79-80)**

• व्यवस्था का बोध होने के बाद व्यवस्था में निष्ठा, संकल्प होना स्वाभाविक है। निष्ठा, संकल्प होने के उपरांत मानव व्यवस्था में जीता है इस प्रकार जीकर हम अच्छी परिस्थिति को निर्मित कर सकते हैं। अत: मानवीय **शिक्षा** विधि को अपनाना होगा फलस्वरूप सद्बुद्धि उदय होगी। इसके बिना कोई उपाय है नहीं, जो इस धरती को सर्वनाश से बचा सके। इस बात को हमको समझना चाहिए। इसकी जरूरत है। नहीं समझने से परिस्थिति बाध्य करेगी समझने के लिए। **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर:85)**

• **शिक्षा** में मानवीयता पूर्ण समाजशास्त्र को लाने की जरूरत है। मानव कैसे समझदार होगा, मानवीयतापूर्ण मानव क्या वैभव है। मानवीयता पूर्ण मानव परिवार में, समाज में, व्यवस्था में कैसे जीता है यह पूरा समाजशास्त्र है इसको अलग से अध्ययन करने की जरूरत है। मनुष्य बहुत अच्छे ढंग से वर्तमान में विश्वास रखते हुए जी पाता है। अस्तित्व न घटता है न बढ़ता है इस रूप में परम सत्य के रूप में अस्तित्व को पहचान सकते हैं। सत्ता में संपृक्त प्रकृति ही अस्तित्व है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 90)**

• व्यवस्था में जीना शुरू करते हैं तो हमारी भागीदारी व्यवस्था में होती है। **शिक्षा** संस्कार में भागीदारी करते हैं तो निरंतर उपकार विधि से हम **शिक्षा** संस्कार सम्पन्न कर पाते हैं। **शिक्षा** संस्कार उपकार विधि से ही सार्थक होता है प्रतिफल विधि से सार्थक होता नहीं। प्रतिफल विधि से **शिक्षा** संस्कार देकर हम सत्य बोध, यथार्थता का बोध नहीं करा पाते हैं।

मैं इस विधि से **शिक्षा** संस्कार सम्पन्न करता हूँ। प्रतिफल (भौतिक वस्तु) मिलने का कभी मन में खाका आया ही नहीं। समझदारी को समझाने के लिए भौतिक द्रव्य की आवश्यकता नहीं है। **शिक्षा** कार्यक्रम में जो अध्यापक है वह अपने में स्वायत्त रहने, स्वालम्बी रहने की आवश्यकता है। समझदारी से यह आता है कि जो मानव स्वायत्त रहेगा उसका

स्वावलंबी रहना स्वाभाविक है तो आवश्यकीय वस्तुओं को निर्मित करेगा, समर्थ रहेगा, उपकार करेगा ही। हर मनुष्य में सहयोग, उपकार प्रवृत्ति रहती है। इसका सर्वेक्षण कर सकते हैं यही उपकारवादी विधि की उपज स्थली है। स्वाभाविक रूप में बचपन की सहयोगी प्रवृत्ति को सुदृढ़ करते जाएँ तो प्रौढ़ावस्था में वह उपकारी हो ही जाता है। इतना ही हमको करना है **शिक्षा** में ये स्त्रोत को सार्थक बनाने की आवश्यकता एवं प्रावधान चाहिए जिसे मानवीय **शिक्षा** ही सार्थक बनाएगा। यांत्रिक **शिक्षा** एवं व्यवसायी **शिक्षा** इसे सार्थक बनाएगा नहीं। इस ओर ध्यानकर्षण होने पर संभव है व्यवहार और व्यवस्था **शिक्षा** की ओर, प्रमाण **शिक्षा** की ओर आपकी प्रवृत्ति हो जाए। प्रमाण का आधार मनुष्य को होना है। यांत्रिक **शिक्षा** से, व्यवसायी **शिक्षा** से मानव सामाजिक होना तो बनेगा नहीं। इससे मानव के साथ अनाचार अत्याचार हो न हो किन्तु धरती के साथ अनाचार अत्याचार अवश्यंभावी है। यांत्रिक और व्यवसायक **शिक्षा** से यह धरती बर्बाद हुई है। अत: इसके विकल्प में मानवीय शिक्षा, व्यवहार शिक्षा, समाधान सम्पन्न शिक्षा, प्रमाण **शिक्षा** चाहिए। ऐसी **शिक्षा** के लिए मानवीयता पूर्ण आचरण को मध्य में रखा जाए। मानवीयता पूर्ण आचरण को संरक्षित करने केलिए मानव को समझदार बनाने के लिए सम्पूर्ण वाङ्ग्मय तैयार किया जाए। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 93-94)**

- वस्तु मूल्य सतत एक सा बना रहता है जैसे 1 किलो तिल में जो भी मूल्य (उपयोगिता मूल्य) है, वह हमेशा ही बना रहता है। इसी प्रकार औषधि,धान, गेहूं, वनस्पति में उनका मूल्य बना ही रहता है। उसे उपयोगिता मूल्य कहते हैं। इसके बाद मनुष्य जो उत्पादन करते हैं उसमें सुंदरता मूल्य जैसे कार बनाते हैं, रेल बनाते हैं उसमें कला से सुंदरता जुड़ जाती है। उपयोगिता के साथ सुविधा के अर्थ में सुंदरता जुड़ती है तो सार्थकता है। इस ढंग से हमारा विश्लेषण का स्वरूप बनता है। हम उपयोगी हो जाते हैं, सार्थक हो जाते हैं, सुंदर भी हो जाते हैं। मूल्यों के मुद्दों पर जीवन मूल्य सुख, शांति, संतोष, आनंद के नाम से जाने जाते हैं। जो जीवन की तारतम्यता का ही नाम है। मन और वृत्ति में संगीत होने पर सुख, वृत्ति और चित्त में संगीत होने पर संतोष, चित्त और बुद्धि में संगीत होने पर शक्ति एवं बुद्धि और आत्मा में संगीत होने पर आनंद नाम दिया है। यह कुल मिलाकर जीवन संगीत है। जब हम अनुभव मूलक पद्धति से जीते हैं तो जीवन संगीत सहज है, स्वाभाविक है। जीवन की सहज अपेक्षा है, जीवन की सहज उपलब्धि, सार्थकता है। आस्वादन में जब मूल्यों का सुख होने लगता है उन मूल्यों में से मानव के साथ प्रेम, विश्वास, स्नेह, कृतज्ञता, वात्सल्य, ये सब नाम दिया। सार्थकता के साथ संबंध को जब हम पहचानते हैं तो ऐसे मूल्य अपने आप जीवन में से निकलने लगते हैं। इसका उदाहरण जब माँ अपने बच्चे को पहचान लेती है तब ममता अपने आप उमड़ने लगती है इसके लिए पंचवर्षीय योजना की जरूरत नहीं पड़ती। मूल्य खोजने की या इकट्ठा करने की जरूरत नहीं है। मूल्य जीवन में भरे हैं वह सम्बन्धों को पहचानने से नियोजित होंगे। सम्बन्धों की पहचान परिवार के अर्थ में है, समाज के अर्थ में है, व्यवस्था के अर्थ में है और सह- अस्तित्व के अर्थ में है यह चारों प्रकार से संबंध का खूंटा बना ही हुआ है। हमको पारंगत होने की जरूरत है। जीतने हम पारंगत होते हैं उतने ही विशाल रूप में हम अपने को प्रमाण प्रस्तुत करने में, सार्थकता प्रस्तुत करने में समर्थ होते हैं। इस प्रकार मूल्यों का आस्वादन करने लगता हैं। जीवन अपने से निष्पन्न मूल्यों का मूल्यांकन करता ही है। वस्तु मूल्य सब जगह फैला है जबकि जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य हमारे में (जीवन में) ही है और जीवन अपने से इनका मूल्यांकन करता है कितना सहज कार्य है कितना महिमापूर्ण है। इसके लिए कहीं बाहर से संयंत्र लगाने की जरूरत नहीं है। स्वयं को, स्वयं से, स्वयं के लिए ही परीक्षण की बात है। इसकी सबको जरूरत है। इसकी संभावना को सर्वसुलभ बनाने में विधि की बात आती है, नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय के मुद्दे पर ही **शिक्षा** संस्कार कार्य संपादित होता है। जब यह विधिवत संपादित होता है जीवन जागृत हो जाता है फलस्वरूप संबंधों को पहचानने में समर्थ हो जाता है। संबंधों को प्रयोजनों के अर्थ में पहचानता है फलस्वरूप आदमी सुखी हो जाता है। इस विधि से हम आस्वादन तक पहुँचे। फिर आता है तुलन। प्रिय, हित, लाभ विधि से तुलन जीव जानवर करते हैं मानव की तुलन विधि है न्याय, धर्म, सत्य। ये ध्रुव बिन्दु हैं इसे पकड़ने की, स्वीकारने की आवश्यकता है। जैसे ही इसे हम स्वीकारते हैं तो हमारा प्रयत्न इस दिशा में होता है। अभी

तह शिक्षा, संस्कार, मूल्यांकन जो भी मानव ने किया संवेदनाओं के आधार पर किया और पूरा नहीं पड़ा इसलिए परंपरा बनी नहीं। इसलिए तुलन में से प्रिय, हित लाभ को न्याय, धर्म, सत्य में विलय करने की आवश्यकता है।

अर्थात न्यायपूर्ण प्रिय, न्याय पूर्ण हित और न्यायपूर्ण समृद्धि। न्याय दृष्टि से लाभ की जगह समृद्धि आ जाती है। न्याय पूर्वक उत्पादन से हम समृद्धि के मंजिल पर पहुँचते हैं। शोषण से हम स्वयं भी क्षतिग्रस्त होते हैं और संसार को भी क्षतिग्रस्त करते हैं। इसे सटीकता पूवक अध्ययन करने की आवश्यकता है, स्वीकारने की आवश्यकता है और इस पर दृढ़ संकल्प को स्थापित करने की आवश्यकता है इसलिए मानवीय **शिक्षा** की आवश्यकता है। जिससे हर बञ्चा स्वायत्त होगा और छः गुणों सद्गुणों से पूर्ण होगा :-

1. स्वयं में विश्वास
2. श्रेष्ठता का सम्मान
3. प्रतिभा में संतुलन
4. व्यक्तित्व में संतुलन
5. व्यवहार में सामाजिक
6. व्यवसाय में स्वावलंबी

ऐसा स्वायत्त मानव, परिवार में अपने आप समृद्धि को प्रमाणित करेगा फलस्वरूप समाज सूत्र और व्यवस्था सूत्र अपने आप से निष्पन्न होता है। व्यवस्था और समाज का उद्गम स्थली है परिवार। इसको मैंने देखा है यह भली प्रकार से सार्थक होता है इसके बाद आता है व्यवस्था का स्वरूप। समझदारी के बाद व्यवस्था अपने आप उद्गमीत होता ही है, बहता ही है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 97-99)**

शिक्षा-सन्दर्भ: विकल्प

(संस्करण:2011,मुद्रण: 14 जनवरी 2016)

- जीव चेतना का प्रमाण धरती पर सभी संविधानों में गलती को गलती से रोकना, अपराध को अपराध से रोकना, युद्ध को युद्ध से रोकना के स्वरुप में देखने को मिला। इसे वैध माना।

- **शिक्षा** में लाभोन्माद, कामोन्माद, भोगोन्मादी कार्य व्यवहार के लिए प्रोत्साहन देना।

- सभी प्रकार के प्रचार माध्यम भय और प्रलोभन के अर्थ में कार्यरत है यही मानव जाति की हैसियत है ऐसा मुझे समझ में आया। **(पृष्ठ नंबर:6)**

- चेतना विकास मूल्य **शिक्षा** संस्कार सहित तकनीकी शिक्षण विधि से ही हर परिवार अखण्ड समाज सूत्र व्याख्या तथा सार्वभौम व्यवस्था सूत्र व्याख्या रुप में जीना ही समाधान समृद्धि अभय सहअस्तित्व सहज परंपरा वैभवित होना यही अपराध मुक्त परम्परा होना समीचीन है।

  हर नर नारी स्वयं में नियम नियंत्रण संतुलन न्याय धर्म सत्यसहज प्रमाणरुप में वर्तमान वैभव होना आवश्यक है। **(पृष्ठ नंबर: 9)**

- 23. **चेतना विकास मूल्य शिक्षा रुप में अध्ययन के लिए अस्तित्वमूलक मानव केंद्रित चिंतन ही मध्यस्थ दर्शन चार भागों में -**

1. मानव व्यवहार दर्शन
2. मानव कर्म दर्शन
3. मानव अभ्यास दर्शन
4. मानव अनुभव दर्शन

24. **दर्शनों पर आधारित विचार-वाद तीन भागों में -**

1. समाधानात्मक भौतिकवाद
2. व्यवहारात्मक जनवाद
3. अनुभवात्मक अध्यात्मवाद

25. **दर्शन-वाद के आधार पर शास्त्र तीन भागों में -**

1. आवर्तनशील अर्थशास्त्र
2. व्यवहारवादी समाजशास्त्र
3. मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान शास्त्र

26. **चिंतन - दर्शन-वाद-शास्त्र के आधार पर**

जीवन विद्या प्रबोधन प्रणाली स्पष्ट है।
मानवीय आचार संहिता रुपी 'संविधान व्यवस्था' (प्रकाशन प्रक्रिया में) अध्ययन के लिए प्रावधानित है, प्रस्तुत है।

27. इसी के साथ 'परिभाषा संहिता' प्रस्तुत है। **(पृष्ठ नंबर: 9-10)**

- 79. **मूल्य शिक्षा** :- जीवन मूल्य, मानवमूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य, उपयोगिता मूल्य, कला मूल्यों का कर्माभ्यास व्यवहाराभ्यास कराने वाला शिक्षा कार्यक्रम। **(पृष्ठ नंबर: 43)**

- 125. **शास्त्र** :-कायिक - मानसिक -वाचिक, कृत-कारित-अनुमोदित भेदों में एक सूत्रात्मकता (एक से अधिक कड़ियाँ)।

- 126. **शिक्षा-संस्कार** :- ज्ञान, विवेक विज्ञान सम्पन्नता । **(पृष्ठ नंबर: 48)**

- 127. **शिक्षण** :- तकनीक, उत्पादन कार्य के लिए आवश्यकीय कारीगरी का कर्माभ्यास। **(पृष्ठ नंबर: 48)**

सन्दर्भ: जीवन विद्या- अध्ययन बिन्दु

(संस्करण:2011, मुद्रण:14 जनवरी 2016)

- ऐसे ज्ञान (अस्तित्व दर्शन ज्ञान, जीवन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान) का लोकव्यापीकरण करने के क्रम में कार्यक्रम:-

    1. लोक शिक्षा के रूप में जीवन विद्या
    2. मानवीय शिक्षा संस्कार के लिए-शिक्षा का मानवीकरण
    3. परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था सहज प्रमाण **(पृष्ठ नंबर:15)**

- शिक्षा-संस्कार व्यवस्था **(पृष्ठ नंबर:27)**
- मानवीय शिक्षा संस्कार सुलभता **(पृष्ठ नंबर:28)**
- मानवीय शिक्षा संस्कार कार्य **(पृष्ठ नंबर:29)**
- मानवीय शिक्षा संस्कार समिति **(पृष्ठ नंबर:30)**

• मानवीय शिक्षा-नीति का प्रारूप

1. आधार –

1-1 यह प्रारूप मध्यस्थ दर्शन (सह-अस्तित्व वाद) पर आधारित है। यह दर्शन चार भागों में है-

1. मानव व्यवहार दर्शन
2. मानव कर्म दर्शन
3. मानव अभ्यास दर्शन
4. मानव अनुभव दर्शन

2. मानवीय शिक्षा प्रवर्तन कारण-

2-1 वर्तमान में मनुष्य में पाई जाने वाली सामाजिक (धार्मिक), आर्थिक एवं राजनैतिक विषमताएं ही समरोन्मुखता का कारण है।

3.प्रस्तावना-

जीव चेतना से मानव चेतना में परिवर्तन

3-1 मानवीयता की सीमा में धार्मिक (सामाजिक), आर्थिक, राज्यनैतिक समन्वयता रहेगी, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य प्राप्त अर्थ का सदुपयोग एवं सुरक्षा चाहता है। अर्थ की सदुपयोगात्मक नीति ही धर्म नीति, सुरक्षात्मक नीति ही राज्यनीति है। अर्थ के सदुपयोग के बिना सुरक्षा एवं सुरक्षा के बिना सदुपयोग सिद्ध नहीं है। इसी सत्यतावश मानव धार्मिक, आर्थिक, राज्यनैतिक पद्धति व प्रणाली से सम्पन्न होने के लिए बाध्य है।

4. उद्देश्य-

4-1 मानवीय चेतनवादी शैली को स्थापित करना।

4-2 मानवीयता की अक्षुण्णता हेतु मानवीय संस्कृति, सभ्यता तथा उसकी स्थापना एवं संरक्षण हेतु विधि व व्यवस्था का अध्ययन पूर्वक प्रमाणित कराना है इससे मनुष्य के चारों आयामों (व्यवसाय, व्यवहार, विचार एवं अनुभूति) तथा पाँचों स्थितियों (व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र एवं अंतर्राष्ट्र) की एक सूत्रता, तारतम्यता एवं अनन्यता प्रत्यक्ष हो सकेगी। फलस्वरूप समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद एवं अनुभवात्मक अध्यात्मवाद मनुष्य जीवन में चरितार्थ एवं सर्वसुलभ हो सकेगा। यही प्रत्येक मनुष्य की प्रत्येक स्थित में बौद्धिक समाधान एवं भौतिक समृद्धि है और साथ ही यह मानव का अभीष्ट भी है।

4-3 व्यक्तित्व एवं प्रतिभा के संतुलित उदय को पाना।

4-4 समस्त प्रकार की वर्ग भावनाओं को मानवीय चेतना में परिवर्तन करना।

4-5 सहअस्तित्व एवं समाधानपूर्ण सामाजिक चेतना को सर्वसुलभ करना।

4-6 प्रत्येक व्यक्ति जन्म से ही न्याय का याचक है एवं सही करना चाहता है। उसे न्याय प्रदायी क्षमता तथा सही करने की योग्यता प्रदान करना।

4-7 प्रत्येक मनुष्य जीवन में अनिवार्यता एवं आवश्यकता के रूप में पाये जाने वाले बौद्धिक समाधान एवं भौतिक समृद्धि की समन्वयता को स्थापित करना।

4-8 शिक्षा प्रणाली, पद्धति एवं व्यवस्था की एक सूत्रता को मानवीयता की सीमा में स्थापित करना।

4-9 प्रकृति में विकास क्रम, विकास, जागृति क्रम, जागृति एवं इतिहास के आनुषंगिक मनुष्य, मनुष्य जीवन लक्ष्य, जीवन में समाधान तथा जीवन के कार्यक्रम को स्पष्ट तथा अध्ययन सुलभ करना।

4-10 विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, विद्यालय, शाला एवं शिक्षा मंदिरों की गुणात्मक एकता एवं एक सूत्रता को स्थापित करना।

4-11 उन्नत मनोविज्ञान के संदर्भ में निरंतर शोध एवं अनुसंधान व्यवस्था को प्रस्थापित करना।

4-12 प्रत्येक विद्यार्थी और व्यक्ति को अखंड समाज के भागीदार के रूप में प्रतिष्ठित करना।

4-13 शिक्षक, शिक्षार्थी एवं अभिभावक की तारताम्यता को व्यवहार शिक्षा के आधार पर स्थापित करना।

4-14 विगत वर्तमान एवं आगत पीढ़ी की परंपरा के प्रतीक स्तर में तारताम्यता, एकसूत्रता, सौजन्यता, सहकारिता, दायित्व तथा कर्तव्यपालन योग्य क्षमता का निर्माण करना।

4-15 मानवीय संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था संबंधी शिक्षा को सर्वसुलभ बनाना।

4-16 प्रत्येक मनुष्य में अधिक उत्पादन एवं कम उपभोग योग्य क्षमता को प्रस्थापित करना।

4-17 व्यक्तित्व व प्रतिभा सम्पन्न स्थानीय व्यक्तियों के संपर्क में शिक्षार्थियों एवं शिक्षकों को लाने की व्यवस्था प्रदान करना।

5 वस्तु विषय प्रणाली

5-1 शिक्षा के सभी विषयों को सभी स्तरों में उद्देश्य की पूर्ति हेतु बोधगम्य एवं सर्व सुलभ बनाने, सार्वभौम नीतित्रय (धार्मिक, आर्थिक, राज्यनैतिक) में दृढ़ता एवं निष्ठा स्थापित करने तथा वर्तमान में पढ़ाये जाने वाले प्रत्येक विषय को समग्रता से संबद्ध रहने के लिए:-

क. विज्ञान के साथ चैतन्य पक्ष का।

ख. मनोविज्ञान के साथ संस्कार पक्ष का।

ग. दर्शनशास्त्र के साथ क्रिया पक्ष का।

घ. अर्थशास्त्र के साथ प्रकृतिक एवं वैकृतिक ऐश्वर्य की सदुपयोगात्मक एवं सुरक्षात्मक नीति पक्ष का।

ङ. राज्यनीति शास्त्र के साथ मानवीयता के संरक्षणात्मक तथा संवर्धानात्मक नीतिपक्ष का।
च. समाज शास्त्र के साथ मानवीय संस्कृति व सभ्यता पक्ष का।
छ. भूगोल और इतिहास के साथ मानव तथा मानवीयता का।
ज. साहित्य के साथ तात्विक पक्ष का अध्ययन अनिवार्य है।

6 तकनीकी शिक्षण-

6-1 उत्पादन एवं निर्माण शक्ति की विपुलता के लिए निपुणता एवं कुशलता को पूर्णतया प्रशिक्षित कराने के लिए समृद्ध प्रणाली, व्यवस्था एवं अध्ययन रहेगा जिससे मनुष्य की समान्य आकांक्षा एवं महत्वाकांक्षा से संबन्धित वस्तुओं का निर्माण सुगमता पूर्वक हो सके।

6-2 तकनीकी शिक्षण के साथ सामाजिकता तथा व्यक्ति में निष्ठा को व्यवहारिक रूप देने की व्यवस्था एवं व्यवस्था एवं प्रणाली अध्ययन के रूप में रहेगी।

6-3 शिक्षा के स्तर में अतिमानवीयता पूर्ण जीवन की संभावना को स्पष्ट करने योग्य अध्ययन रहेगा।

6-4 प्रत्येक विद्यार्थी को उत्पादन क्षमता में निष्णात बनाने के लिए अध्ययन होगा, जिससे अधिक उत्पादन एवं कम उपभोग सम्पन्न हो सके।

6-5 तकनीकी अध्ययन के साथ व्यवहारिक अध्ययन अनिवार्य रूप में रहेगा जिससे प्रत्येक व्यक्ति उद्‌यमशील एवं सामाजिक सिद्ध हो सके।

6-6 कृषि, उद्योग व स्वास्थ्य संबंधी पूर्ण तकनीकी शिक्षा प्रत्यक्ष रूप से रहगी न कि औपचारिक रूप में रहेगी।

7 शिष्ट मण्डल-

7-1 प्रत्येक राष्ट्रीय स्तर में एक शिष्ट मण्डल रहेगा जिसमें शोध एवं अनुसंधान कर्ताओं का समावेश रहेगा। यही राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय शिष्टमंडल शिक्षा नीति प्रणाली तथा पद्धति की पूर्णता एवं दृढ़ता के प्रति दायित्व वहन का सजगता पूर्वक निर्वाह करेगा।

7-2 यही मण्डल वैध सीमा में शिक्षण संस्थाओं के दायित्वों का निर्धारण, दिशा-निर्देश, पद्धति तथा प्रणाली संबंधी आदेश देने का अधिकारी होगा।

7-3 इनके द्वारा दी गई प्रस्तावनाएं शासन- सदन द्वारा सम्मति पाने के लिए बाध्य रहेगी।

7-4 शिक्षा संबंधी गुणात्मक परिवर्तन के लिए उपयुक्त प्रस्तावनाधिकार इसी मंडल में समाहित रहेगा।

7-5 व्यक्तिगत रूप में प्राप्त प्रस्तावनाओं को अवगाहन करने की व्यवस्था रहेगी। साथ ही उनके लिए सम्मान व पुरस्कार प्रदान करने की व्यवस्था भी रहेगी। जिससे व्यक्तिगत प्रतिभा के प्रति विश्वास हो सके।

7-6 प्रत्येक राष्ट्र का शिष्ट मंडल मानवीयता की सीमा में ही शिक्षा नीति, प्रणाली एवं पद्धति का प्रस्ताव करेगा जिससे मंडलों में परस्पर विरोध न हो सके।

7-7 शिक्षा की सार्वभौमिकता की अक्षुण्णता के लिए अंतर्राष्ट्रीय शिष्ट मंडल रहेगा जिससे अखंड समाज की निरंतरता बनी रहे।

8 व्यवस्था –

8-1 प्रत्येक शिक्षण संस्था अपने क्षेत्र में प्रौढ़ व्यक्तियों को साक्षर बनाने तथा प्रत्येक बालक-बालिका को शिक्षा प्रदान करने के लिए उत्तरदाई होगा।

8-2 प्रत्येक पद में दायित्व शिष्ट मंडल द्वारा निर्धारित रहेगा।

8-3 संस्थाओं का दायित्व व निर्वाह्-पद्धति, प्रत्येक शिक्षण संस्था अपने कार्यक्षेत्र में पाई जाने वाली सामाजिक, आर्थिक, राज्यनैतिक और व्यवहारिक व्यवस्था की परस्परता में समस्याओं का सर्वेक्षण करने की व्यवस्था करेगी। साथ ही वैध प्रणाली पद्धति नीति व व्यवस्था का पालन करने के लिए उत्तरदायी रहेगी।
8-4 स्थानीय स्थिति के चित्रणाधिकार का दायित्व स्थानीय संस्था का होगा।

8-5 प्रत्येक सर्वेक्षण पूर्ण चित्रण स्तर के अधिकारियों द्वारा सम्पन्न किया जाएगा उसका परीक्षण करने का अधिकार उनसे वरिष्ठ अधिकारी को होगा। जिससे ही-

भूमि स्वर्ग होगी । मनुष्य ही देवता होंगे ।।
धर्म सफल होगा । नित्य मंगल ही होगा ।।

(पृष्ठ नंबर: 32-36)

सन्दर्भ: मानवीय आचरण सूत्र

(संस्करण: प्रथम, मुद्रण: 2003)

- समझदारी पाँच प्रकार अर्थात् मानवीय **शिक्षा-संस्कार**, न्याय-सुरक्षा, उत्पादन-कार्य, विनिमय-कोष, स्वास्थ्य-संयम कार्य से - पहचान प्रकट रहता है। यह हर नर-नारियों में, से, के लिए मौलिक अधिकार व समाधान है। समझ न होने की स्थिति में भ्रम प्रवृत्तियाँ प्रभावकारी रहती हैं जो हर नर-नारियों में, से, के लिए समस्या, क्लेश, कष्ट के रूप में पाई जाती हैं। **(पृष्ठ नंबर: 2)**
- मानव-लक्ष्य मानवत्व के योगफल में ही जागृति मूलक शिक्षा, न्याय सुरक्षा, उत्पादन कार्य, विनिमय कार्य स्वास्थ्य संयम कार्य है।

संतुलन	नियंत्रण	नियम	(न्याय, धर्म, सत्य)
↓	↓	↓	↓
स्वास्थ्य के रूप में	उत्पादित वस्तुओं के मूल्यांकन के	उत्पादन कार्य में	शिक्षा संस्कार न्याय, सुरक्षा में

(पृष्ठ नंबर: 13)

- समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व सूत्र व्याख्या रूपी आचरण-व्यवहार-कार्य-व्यवस्था ही सर्व शुभ परम्परा है। स्वान्त: सुख वाद, सुविधा संग्रहवाद, व्यक्ति वाद, मनोगत मनोकामना वाद प्रवृत्ति से किया गया कार्य व्यवहार से मानव समाधानित नहीं हुआ, अस्तु सह-अस्तित्व वादी नजरिया से किया गया कार्य-व्यवहार, शिक्षा-संस्कार, संविधान-व्यवस्था ही मानव के लिये शरण है।**(पृष्ठ नंबर: 14)**
- सर्व मानव में, से, के लिये जागृति सहज शिक्षा संस्कार नियति सहज विधि से होता है। ।**(पृष्ठ नंबर: 16)**
- जागृत परम्परा में ही मानवीय शिक्षा संस्कार, मानवीय आचार संहिता रूपी संविधान मानवीयता पूर्ण परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था सहित सह-अस्तित्व में अनुभव मूलक व्यवहार व प्रयोग उत्पादन कार्य, विनिमय कार्य, स्वास्थ्य संयम कार्य, न्याय सुरक्षा कार्य, मानवीय शिक्षा-संस्कार कार्य सहज प्रमाण सम्पन्नता का बोध सहित स्वयं में विश्वास सम्पन्न होना है। **(पृष्ठ नंबर: 18)**
- जागृत परम्परा में ही जीवन ज्ञान, सह-अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण-ज्ञान स्वीकृत रहता है और स्वीकार योग्य शिक्षा संस्कार प्रणाली पद्धति नीति स्पष्ट रहती है। **(पृष्ठ नंबर: 18)**
- मानव ही जागृत शिक्षा-संस्कार पूर्वक मानवीय संस्कृति-सभ्यता, विधि-व्यवस्था का धारक-वाहक है। यही मानवीयता पूर्ण परंपरा है। **(पृष्ठ नंबर: 39)**
- समझदारी का वैभव सुख, समाधान, समृद्धि, परस्परता में विश्वास और नित्य उत्सव होता ही रहता है। इसके लिए समझदारी, बौद्धिक प्रयोग, विवेकपूर्वक तथा समाधान, समृद्धि, अभय, सह अस्तित्व प्रमाणित होने की विधि से सर्व मानव सुखी होते हैं। इसका प्रयोग न्याय व समाधानपूर्वक-सार्थक सुखी होना पाया जाता है। धन का

प्रयोग उदारतापूर्वक करने से सार्थक सुखी होते हैं। बल का प्रयोग दया के साथ जीने देने के रूप में सार्थक होता है। रूप के साथ सच्चरित्रता, यथा - स्व-धन, स्व-नारी, स्व-पुरुष, दयापूर्वक कार्य-व्यवहार विचार से ही सार्थक सुखी होना होता है। यह सर्व शुभ होने की विधि है जो लोक-**शिक्षा** और **शिक्षा-संस्कार** पूर्वक सार्थक होता है। **(पृष्ठ नंबर: 48)**

- **मानवीय-शिक्षा-संस्कार** प्रमाणमूलक होना समाधान है। **(पृष्ठ नंबर: 71)**
- मानव के अध्ययन के आधार पर मानवीय संविधान शिक्षा व्यवस्था व उत्पादन कार्य-व्यवहार विधि स्पष्ट होती है। **(पृष्ठ नंबर: 78)**
- मानवत्व **शिक्षा** संस्कार का सूत्र है। **(पृष्ठ नंबर: 79)**
- **मानवीय शिक्षा-संस्कार** का प्रमाण मानवत्व है। **(पृष्ठ नंबर: 79)**
- सर्व शुभ के अर्थ में ही मानव सहज परिभाषा मानवीयता की व्याख्या, मानवीयता पूर्ण आचरण संविधान सह-अस्तित्ववादी दृष्टिकोण से शिक्षा संस्कार सुलभ है। **(पृष्ठ नंबर: 82)**
- मानवीय **शिक्षा** संस्कार ही जागृत परम्परा में, से, के लिये सार्थक सूत्र व्याख्या है। **(पृष्ठ नंबर: 82)**
- ज्ञान-विज्ञान-विवेक पूर्ण **शिक्षा** संस्कार ही मानवत्व है। **(पृष्ठ नंबर: 90)**
- अनुपातीय रूप में खनिज वनस्पतियों का सुरक्षित किया जाना मानवत्व है। दस सोपानीय परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था, यथा विश्व परिवार सभा से परिवार सभा का दायित्व व कर्तव्य है। परिवार सभा से यह विश्व राज्य परिवार-सभा का कर्तव्य और दायित्व है। शिक्षा में इसका सार्थक अध्ययन आवश्यक है। यह मानवत्व है। **(पृष्ठ नंबर: 92)**
- मानवीय **शिक्षा-संस्कार** का दायित्व-कर्तव्य परिवार-सभा से विश्व पारिवार-सभा में दायित्व-कर्तव्य रूप में निहित रहता है। इसका निर्वाह योग्य होना मानवीयता है। **(पृष्ठ नंबर: 92)**
- **शिक्षा-संस्कार** सर्वतोमुखी समाधानकारी ज्ञान-विज्ञान-विवेक सम्पन होने का प्रमाण मानवत्व है। यह परम्परा का कर्तव्य हर मानव सन्तान का अधिकार है। यह मानवत्व है। **(पृष्ठ नंबर: 92)**
- जागृत **शिक्षा** परम्परा अखण्ड सार्वभौम व्यवस्था के अर्थ में सम्पन्न होना मानवत्व है। **(पृष्ठ नंबर: 92)**
- अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन ही 'मध्यस्थ दर्शन' सह-अस्तित्ववाद है। इस पर **शिक्षा** संस्कार में सह-अस्तित्व रूपी अस्तित्व दर्शन ज्ञान बोध, जीवन ज्ञान बोध, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान बोध परम्परा होना मानवत्व है। **(पृष्ठ नंबर: 93)**
- शिक्षा में, से, के लिये व्यापक वस्तु रूपी ऊर्जा में सम्पूर्ण एक-एक वस्तु सम्पृक्त नित्य वर्तमान क्रियाशील विकास क्रम, विकास, जागृति क्रम, जागृति के रूप में होने की अवधारणा समाहित अनुभव सम्पन्न रहना मानवत्व है। **(पृष्ठ नंबर: 93)**
- सह-अस्तित्ववादी **शिक्षा** संस्कार में प्रत्येक एक अपने-अपने 'त्व' सहित व्यवस्था है। समग्र व्यवस्था में भागीदारी करने का अध्ययन मानवत्व है। **(पृष्ठ नंबर: 93)**
- मानवीय **शिक्षा-संस्कार** में सह-अस्तित्व नित्य प्रमाण होने का बोध सम्पन्न होना, करना-कराना, करने के लिये सहमत होना मानवत्व है। **(पृष्ठ नंबर: 93)**
- **शिक्षा** में मानवत्व का बोध होना सर्व मानव सन्तान में, से, के लिये मौलिक अधिकार है। यह मानवत्व है। **(पृष्ठ नंबर: 93)**

सन्दर्भ: संवाद भाग १

(संस्करण: प्रथम, मुद्रण: अक्टूबर 2011)

शिक्षा के लिए विकल्प

आदिकाल से ही मनुष्य-परंपरा में **शिक्षा** की बात है। यह जंगल-युग से ही है। **शिक्षा** के बारे में आदमी चर्चा करते ही आया है। इस क्रम में हमारे देश में वैदिक-**शिक्षा** की बात आयी। दूसरे देश में बाइबिल को **शिक्षा** में लाने की बात हुई। तीसरे देश में कुरान को **शिक्षा** में लाने की बात हुई। ऐसे ही विभिन्न प्रकार की शिक्षा-परम्पराएं धरती पर स्थापित हुई। यह क्रम चलते-चलते आज के समय में विज्ञान-**शिक्षा** का सभी देशों में लोकव्यापीकरण हो चुका है। विज्ञान-**शिक्षा** से अपेक्षा थी कि इससे सबको तृप्ति मिलेगी, लेकिन इससे तृप्ति मिला नहीं।

अभी तक जो कुछ भी **शिक्षा** में आया, उसके "विकल्प" के रूप में मध्यस्थ-दर्शन का "चेतना-विकास, मूल्य-शिक्षा" का प्रस्ताव है। जंगल युग से आज तक आदमी जीव-चेतना में जिया है। मनुष्य ने जीव-चेतना में जीते हुए, जीवों से अच्छा जीने के क्रम में शरीर-सुविधा से सम्बंधित सभी वस्तुएं प्राप्त कर लीं। इसमें खाने-पीना, कपड़ा, मकान, यान-वाहन, दूर-संचार की सभी वस्तुएं शामिल हैं। यह सब होने के बावजूद मनुष्य को **शिक्षा** से संतुष्टि नहीं मिली। इसका मूल कारण यह है - मनुष्य ज्ञान-अवस्था का है, और उसको जीव-चेतना की **शिक्षा** से संतुष्टि मिल नहीं सकती।

इसलिए "विकसित चेतना" के अध्ययन को **शिक्षा** में लाने के लिए प्रस्ताव है। मानव-चेतना, देव-चेतना, दिव्य-चेतना "विकसित चेतना" है। इस तरह जी कर मनुष्य "कृत-कृत्य" हो सकता है। "कृत-कृत्य" होने का मतलब है - मानव जिस बात के लिए ज्ञान-अवस्था में उदय हुआ है, वह सार्थक होना। इस प्रस्ताव के संपर्क में जो भी आये हैं, उनका यह स्वीकृति है - ऐसा होना बहुत ज़रूरी है।

परिवार में हर व्यक्ति मानव-चेतना में पारंगत हों, देव-चेतना में जी सकें, दिव्य-चेतना को प्रमाणित कर सकें - ऐसा "अधिकार" बन सके। कितने लोग इस तरह पारंगत हुए, कितने लोग इस तरह प्रमाणित हो सकें - इसको पहचानने के लिए इस अनुभव-शिविर का आयोजन है।

"चेतना-विकास" से आशय है - मानव-चेतना में जीने के लिए विश्वास स्वयं में पैदा होना।मानव के लिए मानवत्व ही स्वत्व के रूप में पहचानने की आवश्यकता है। देवत्व और दिव्यत्व श्रेष्ठतर और श्रेष्ठतम हैं। मानवत्व से श्रेष्ठता की शुरुआत है। इस आधार पर इसके लिए पारंगत होने की बात आती है।

मानवत्व का क्रिया-स्वरूप है - मानव के साथ न्याय-धर्म-सत्य पूर्वक जी पाना, और मनुष्येत्तर प्रकृति के साथ नियम-नियंत्रण-संतुलन पूर्वक जी पाना। यदि ऐसे जीना बन पाता है तो हम परिवार में व्यवस्था पूर्वक जी पाते हैं। मानव-चेतना पूर्वक मनुष्य समाधानित होता है, और परिवार में "समाधान-समृद्धि" प्रमाणित करने योग्य होता है। इस प्रकार मनुष्य के जीने में विषमता समाप्त होता है। विषमता समाप्त होने का पहला मुद्दा है - "नर-नारी में समानता"। समझदारी को ही नर-नारियों में समानता के बिंदु के रूप में पहचाना जा सकता है। यदि इस बिंदु को पाना है, तो मानव-चेतना को अपनाना ही होगा। मानव-चेतना के इस प्रस्ताव को लेकर हम इस घर के बाहर तक तो पहुच गए हैं, पर यह संसार तक पहुँच गया - मैं इस पर अभी विश्वास नहीं करता हूँ। अब हमारी सभी की जिम्मेदारी है - यह प्रस्ताव संसार में जल्दी से जल्दी कैसे पहुंचे। "जल्दी" इसलिए आवश्यक है - क्योंकि धरती बीमार हो चुकी है, प्रदूषण छा गया है, अपराध-प्रवृत्ति बढ़ गयी है, अपने-पराये की दूरियां बढ़ गयी हैं।

आज की स्थिति में सभी देशों को यह चेतावनी हो चुकी है - इसी तरह हम चलते रहे तो धरती बचेगा नहीं! धरती को बचाना है तो मनुष्य का भ्रम-मुक्त, अपराध-मुक्त, और अपने-पराये की दीवारों से मुक्त होना आवश्यक है। अधिकाँश लोग धरती को बचाने के पक्ष में हैं। इने-गिने लोग ही धरती को न बचाने के पक्ष में होंगे। धरती को बचाने के लिए मानव-चेतना के प्रस्ताव को हरेक व्यक्ति के पास ले जाने की ज़रुरत है।

इस प्रस्ताव को स्वीकारने में वृद्ध पीढ़ी को सबसे ज्यादा तकलीफ़ है, प्रौढ़ पीढ़ी को उससे कम, कौमार्य पीढ़ी को उससे कम, और बाल्य- पीढ़ी को सबसे कम तकलीफ है। यह हमारे सर्वेक्षण में आया है। तकलीफ का कारण है - उनके पूर्वाग्रह और पूर्वाभ्यास।

विज्ञान-**शिक्षा** के लोकव्यापीकरण क्रम में सभी देशों में शिक्षा-संस्थाएं स्थापित हो चुके हैं। इस प्रस्ताव को शिक्षा-संस्थाओं में पहुंचाने की आवश्यकता है।

इस प्रस्ताव को शिक्षा-संस्थाओं में पहुंचाने का स्वरूप क्या होगा? इस प्रस्ताव को शुद्धतः पहुंचाने की आवश्यकता है। छत्तीसगढ़ में राज्य-**शिक्षा** संस्थानों में इस प्रस्ताव को समझाने की शुरुआत की गयी - जिससे "सफलता" की शुरुआत हुई। शिक्षा-संस्थानों के अध्यापक और अधिकारी दोनों इससे सहमत हुए। सहमत होने के बाद अध्ययन शुरू किये। अध्यापकों द्वारा बच्चों तक यह **शिक्षा** पहुँचने लगेगी तो हम इस बात का प्रमाण हुआ मानेंगे। यदि छत्तीसगढ़ में यह पूरा पहुँचता है तो आगे दूसरे राज्यों में भी पहुंचेगा।

- अनुभव शिविर, अमरकंटक - जनवरी २०१० - में बाबा श्री नागराज शर्मा के उदबोधन से
(अध्याय: , पृष्ठ नंबर: 188-190)
http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2010/02/blog-post_7536.html

• विकल्पात्मक अनुसन्धान से प्राप्त ज्ञान का शिक्षा में समावेश - सम्मलेन २००९, हैदराबाद

मेरे बंधुओं!

मैं स्वयं को आप सभी के बीच पा करके सुख का अनुभव कर रहा हूँ। बहुत दूर-दूर से आप आए हैं। बहुत ध्यान लगा कर एक दूसरे की बात समझ रहे हैं। कहीं न कहीं अन्तिम निष्कर्ष निकलेगा ही, ऐसा विश्वास करके मैं उत्सवित हूँ।

विकल्पात्मक अनुसंधान से प्राप्त ज्ञान शिक्षा में किस प्रकार पहुंचेगा? - उसको सुनने के लिए यहाँ इच्छा व्यक्त किया गया है। आप सब बहुत जिज्ञासा से इस बात को सुनना चाह रहे हैं, ऐसा मेरा स्वीकृति है।

मैं इस बात को बहुत अच्छी तरह से परखा हूँ, किसी आयु के बाद हर व्यक्ति - चाहे नर हो या नारी हो - अपने आप को "समझदार" मानता ही है। अभी तक की सोच से कुछ ऐसा निकलता है - "पैसा पैदा कर सकने वाला समझदार है। पैसा पैदा नहीं कर सकने वाला समझदार नहीं है।" इसके पहले "बलशाली" को समझदार मानते रहे। उसके पहले "रूपवान" को समझदार मानते रहे। "बल" और "रूप" के आधार पर समझदारी को पहचानने की कोशिशों को आदमी नकार चुका है। लेकिन ज्यादा "धन"और "पद" अर्जन करने वाले को ज्यादा समझदार आज भी मानते रहे हैं। "धन" और "पद" एक दूसरे के पूरक हो गए। पद से धन, और धन से पद मिलने की बात हो गयी। रूप, बल, पद, और धन के आधार पर हम समझदारी को पहचान नहीं पायेंगे। यह हमारा निष्कर्ष निकला। मानव-चेतना पूर्वक जीना समझदारी है - यह निष्कर्ष निकला।

मानव-चेतना को मानव-परम्परा में लाने के लिए मैंने **शिक्षा** विधि को शोध किया। शिक्षाविदों को समझाने का कोशिश किया। वह कोशिश होते-होते आज छत्तीसगढ़ राज्य **शिक्षा** संस्थान इस प्रस्ताव को अध्ययन करने के लिए तैयार हो गया। वह बुद्धि, समय, और साधन लगा कर अध्ययन कर रहा है। यह आपको सूचना देना चाहा।

इस अध्ययन की क्या वस्तु है?

इस अनुसंधान के फलस्वरूप **"मानव व्यवहार दर्शन"** नामक पुस्तिका तैयार हुआ - जिसको "शोध-ग्रन्थ" भी कह सकते हैं। मानव-व्यवहार-दर्शन में मानव-चेतना विधि से व्यवहार का क्या स्वरूप होता है? न्याय का क्या स्वरूप होता है? इसका वर्णन है। उसको अध्ययन कराते हैं। "मानव व्यवहार दर्शन" में मानव के कर्तव्य और दायित्व को तय किया। मानव का कर्तव्य और दायित्व तय होना ज़रूरी है या नहीं है - इस पर आप ही निर्णय लीजिये। यह निर्णय लेना हर व्यक्ति का अधिकार है।

"मानव कर्म दर्शन" में मानव के करने-योग्य और न करने-योग्य कर्मो का विभाजन होता है। इसकी भी आवश्यकता या अनावश्यकता पर आप अच्छे से विचार कर सकते हैं। यदि यह हमारी आवश्यकता बनता है तो उसके लिए हम तत्पर हो ही जाते हैं। जिसकी आवश्यकता हम स्वीकार नहीं करते, उसके लिए हम तत्पर नहीं हो पाते हैं। **"मानव अभ्यास दर्शन"** में व्यवहार और व्यवसाय में अभ्यास कैसे करेंगे - इसका निर्धारण किया गया है।

"अनुभव दर्शन" में प्रमाणित होने के अधिकार को ज्यादा से ज्यादा स्पष्ट किया गया है।

इन चारों भागों की आवश्यकता है या नहीं है - इसको सभी परिशीलन कर सकते हैं, समझ सकते हैं, प्रमाणित कर सकते हैं।

दर्शन के बाद आता है - वाद। वाद में चारों अवस्थाओं के साथ कैसे हम जी पायेंगे - यह वर्णन किया है।

पहला - **समाधानात्मक भौतिकवाद।** भौतिक वस्तुएं कैसे समाधान के अर्थ में काम कर रहे हैं, इसका बोध कराते हैं।

दूसरा - **व्यवहारात्मक जनवाद**। मानव व्यवहार में जागृति को कैसे प्रमाणित करता है, इसका बोध कराते हैं। मानव का व्यवहार मानव के साथ न्याय, धर्म, और सत्य पूर्वक होता है। मानव का व्यवहार मनुष्येत्तर प्रकृति के साथ नियम, नियंत्रण, संतुलन पूर्वक होता है। इसको स्पष्ट किया है।

अनुभवात्मक अध्यात्मवाद में - अध्यात्म (व्यापक) में समाई सम्पूर्ण जड़-चैतन्य प्रकृति का हमको अनुभव होता है। फलस्वरूप मानव सह-अस्तित्व में सह-अस्तित्व को प्रमाणित करने वाला हो जाता है। पदार्थ न हो, केवल व्यापक वस्तु हो - उसका कोई अनुभव नहीं है। केवल पदार्थ हो, व्यापक न हो - तब भी मानव के अनुभव करने का कोई रास्ता नहीं है।

अनुभव के लिए प्रकृति और व्यापक वस्तु साथ-साथ में होना आवश्यक है। ज्ञान-अवस्था की प्रकृति ही व्यापक वस्तु को अनुभव करता है। फलस्वरूप परम-सत्य को प्रमाणित करता है। इसीको मैंने अनुभव किया है। उसी अनुभव के आधार पर ही पूरे बात को प्रस्तुत किया है।

उसके बाद आते हैं - "शास्त्र"। शास्त्र में पहला है - **मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान**। "चेतना" का मतलब है - ज्ञान। "संचेतना" का मतलब है - सत्य को प्रकट करने वाला ज्ञान। मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान में मानवीयता पूर्वक प्रमाणित होने वाले १२२ आचरणों को बताया गया है। इन आचरणों के आधार पर मानव व्यवस्था में जी पाता है।

व्यवहारवादी समाजशास्त्र में मानव-संचेतना के व्यवहार में प्रमाणित होने की बात है।

आवर्तनशील अर्थशास्त्र में उत्पादन के लिए नियोजित होने वाले प्राकृतिक-ऐश्वर्य के स्रोत को बनाए रखते हुए उत्पादन और विनिमय व्यवस्था के स्वरूप को बताया गया है।

इन सब की आवश्यकता है या नहीं - इसको आप शोध कर सकते हैं, समझ सकते हैं, स्वीकार सकते हैं, नकार भी सकते हैं। जो आपकी "इच्छा" हो - आप वही करिए। आप यही स्वीकारो - ऐसा मेरा कोई "आग्रह" नहीं है। किंतु है ऐसा ही! - ऐसा बताने की "धृष्ठता" कर रहे हैं। या "साहस" कर रहे हैं। या "अनुग्रह" कर रहे हैं। इन तीन में से जो आप स्वीकारें - वही ठीक है।

इस ढंग से दर्शन, वाद, और शास्त्र का प्रयोजन स्पष्ट हुआ। अभी तक हमारे साथ जितने भी लोग अध्ययन किए हैं - इसकी अत्यन्त आवश्यकता है, ऐसा मान कर स्वीकारे हैं। आगे यहाँ कैसे होगा, और जगहों पर कैसे होगा, धरती पर और राज्यों पर कैसा होगा - इसको आगे भविष्य बतायेगा। अभी छत्तीसगढ़ राज्य में जो स्वीकृति बनी है, वहाँ कहने लगे हैं - "इस प्रस्ताव को समझे बिना कोई आदमी के स्वरूप में जी नहीं सकता।" इसको लेकर यहाँ भी प्रयोग हो सकता है। और जगह में भी प्रयोग हो सकता है।

मानव-संचेतना पूर्वक मानव मानव के साथ न्याय-धर्म-सत्य पूर्वक प्रकट होता है और मनुष्येत्तर प्रकृति के साथ नियम-नियंत्रण-संतुलन पूर्वक प्रकट होता है। नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म, और सत्य - इन ६ भागों में हर समझदार व्यक्ति प्रकट होता है। इसमें कोई "झगड़ा" करने की जगह है या नहीं - इसको हर व्यक्ति शोध कर सकता है, हर व्यक्ति समझ सकता है, हर व्यक्ति जी सकता है, हर व्यक्ति प्रमाणित हो सकता है। यह ऐसा "इच्छा" होने पर ही सम्भव है। जीव-चेतना में ही जिसके जीने की इच्छा हो - तो वह इस बात पर ध्यान भी नहीं देगा, इसको करेगा भी नहीं। "इच्छा" हो तो - हर व्यक्ति इस प्रस्ताव को समझ कर, जी कर प्रमाणित कर सकते हैं। "इच्छा" हो तो - आप इसको देख सकते हैं, अध्ययन कर सकते हैं। मेरी स्वीकृति है - यहाँ हम जितने भी लोग हैं, वे समझने के अर्थ में ही एकत्र हुए हैं, समझा हुआ को प्रकट करने के अर्थ में ही एकत्र हुए हैं।

इस प्रकार दर्शन, विचार, और शास्त्र जो तैयार हुए उसको **शिक्षा** में देने का स्वरूप दिया - "चेतना विकास - मूल्य शिक्षा"।

दर्शन, विचार, शास्त्र के साथ "मानवीय आचार संहिता स्वरूपी संविधान" लिख कर दिया। "मानवीयता पूर्ण आचरण" के स्वरूप के आधार पर यह संविधान लिखा। उसको भी आप लोग देख सकते हैं।

शिक्षा में इस विकल्पात्मक प्रस्ताव के "अध्ययन" की बात रहेगी।

अध्ययन का मतलब है - अधिष्ठान के साक्षी में, अर्थात अनुभव के साक्षी में स्मरण पूर्वक हम जो कुछ भी क्रिया करते हैं - वह सब का सब अध्ययन है।

अनुभव कहाँ रहता है? अध्ययन कराने वाले के पास रहता है। अध्ययन कराने वाले के अनुभव की रोशनी में हम जो कुछ भी सोचते हैं, समझते हैं, स्वीकारते हैं - वह सब का सब अध्ययन है।

अध्ययन कैसे कराते हैं?

यहाँ जितने भी लोग बैठे हैं, सभी को "पठन" करना आता है - ऐसा मैं मानता हूँ। पठन भर करने से काम नहीं चलता है। अध्ययन करना ज़रूरी है। अध्ययन के लिए प्रस्तावित किया है - हर शब्द का अर्थ होता है। अर्थ के स्वरूप में अस्तित्व में वस्तु होता है। अस्तित्व में वस्तु को हम समझ लेते हैं, तो हमने अध्ययन किया। वस्तु का साक्षात्कार होने से हम अध्ययन किया। यदि वस्तु का साक्षात्कार नहीं हुआ - मतलब हमने अध्ययन नहीं किया। यह बात स्पष्ट हुआ। इस प्रकार हमने अध्ययन किया या नहीं किया - उसको हर दिन हम सोच सकते हैं, समझ सकते हैं, स्वीकार सकते हैं, प्रमाणित कर सकते हैं।

यह कैसे होता है? कहाँ पर होता है? इसका उत्तर है - यह कल्पनाशीलता से होता है। हर व्यक्ति में - बच्चे से बूढ़े में कल्पनाशीलता समाई है। कल्पनाशीलता और कर्म-स्वतंत्रता के योगफल में "तदाकार-तद्रूप विधि" आती है। तदाकार-तद्रूप विधि से मनुष्य द्वारा अस्तित्व में वस्तु को पहचानना बनता है। तदाकार विधि से मनुष्य में वस्तु की पहचान होती है। तद्रूप विधि से मनुष्य प्रमाणित होता है। तद्रूप विधि से प्रमाण आत्मा (गठन-पूर्ण परमाणु का मध्यांश) में अनुभव होने के बाद है। इस विधि से अध्ययन कराते हैं।

यह अध्ययन हर मानव-संतान को स्वीकार होता है। इसका सर्वप्रथम प्रयोग बिजनौर में हुआ। वहाँ पाया - यह बात मानव-संतान को स्वीकार होता है। वहाँ अभिभावकों से हमने पूछा - "आप क्या चाहते हो, आपके बच्चे समझदार बन कर समझदारी पूर्वक जियें या नौकरी करें?" उसके उत्तर में ९०% अभिभावक कहे - "नौकरी करना चाहिए!" १०% लोग कहे - "नौकरी भी करना चाहिए, समझना भी चाहिए।"

उसके बाद अभी छत्तीसगढ़ में राज्य-**शिक्षा** के अधिकारियों और अध्यापकों के साथ हम एक कार्य-गोष्ठी किए। उस कार्य-गोष्ठी का मूल मुद्दा था - **"वेतन-भोगी क्या वास्तविक रूप में प्रमाणित हो सकता है या नहीं?"** इसका उत्तर मैंने दिया - वेतन-भोगी "प्रमाण" नहीं हो सकता। वेतन-भोगी दूसरा वेतन-भोगी को ही तैयार करेगा - दूसरा कुछ भी नहीं करेगा। प्रमाणित व्यक्ति ही प्रमाणित-व्यक्ति को तैयार करेगा। वेतन-भोगी "प्रेरक" हो सकता है। उस आधार पर वे लगभग १०० अध्यापक-गण वहाँ अध्ययन कर रहे हैं। उनको अध्ययन करते हुए २ महीना हो चुका है, तीसरा महीना पूरा होने वाला है। उनको अध्ययन कराने वाले दो व्यक्ति यहाँ इस सभा में ही बैठे हुए हैं।

मध्यस्थ-दर्शन के वांग्मय के मूल-प्रबंधों (दर्शन, वाद, शास्त्र) को स्नातक-कक्षा में पढ़ाने का सोचा जा रहा है। उसके पहले दसवीं कक्षा तक पाठ्य-पुस्तकों को तैयार किया जा रहा है। कक्षा-१ से कक्षा-५ तक की पाठ्य-पुस्तकों को तैयार करके राज्य-**शिक्षा** को दे दिया है - जिसको वे छपवाने के काम में लगे हैं। अगले वर्ष तक वह प्रभाव-शील हो जायेगी। इस ढंग से इस प्रस्ताव को **शिक्षा** में समावेश करने की एक प्रक्रिया चल रही है, अध्ययन चल रहा है, कार्य चल रहा है, प्रयत्न चल रहा है।

यह तो बच्चों तक इस बात को पहुंचाने की बात थी। अब सवाल आता है - बड़े-बुजुर्गों का क्या करोगे? उनको भी तो इस **शिक्षा** की जरूरत है। उसका उत्तर है - "लोक शिक्षा"। इस पूरी बात को "लोक-शिक्षा" विधि से हम बड़े-बुजुर्गों को विदित करायेंगे। विदित कराने का कार्यक्रम अभी शुरू नहीं किए हैं। वह एक आवश्यकता है।

अभी जितना बात आपको बताया, उसमें कोई शंका हो - तो आप मुझसे पूछ सकते हैं। मध्यस्थ-दर्शन को **शिक्षा** के स्वरूप में प्रस्तुत करने की विधि के बारे में जो कुछ भी मैंने बताया - उसको लेकर कुछ भी शंका हो तो आप मुझसे पूछ सकते हैं।

प्रश्न: इस ज्ञान के अर्थ में शिक्षा कब तक सम्भव हो पायेगी?

उत्तर: समझने पर सम्भव हो पायेगी। ज्ञान के आधार पर हमको जीना है या नहीं जीना है - उसको तय करिए। जीव-चेतना में समस्या पूर्वक जीना होता है। मानव-चेतना में समाधान-पूर्वक जीना होता है। आपको कैसे जीना है? - आप सोचिये। जीव-चेतना में समस्या के अलावा कुछ होता नहीं। मानव-चेतना में समाधान के अलावा कुछ होता नहीं। जो करना है, वही करिए।

धरती का बीमार होना मानव की करतूत से हुआ या और कोई भूत किया? इसको भी सोचिये। यदि आपको यह स्वीकार होता है यह मानव ने किया - तो आप यह भी स्वीकार सकते हैं कि मानव ने जीव-चेतना वश यह अपराध

किया। इस बात को स्वीकारना या नहीं स्वीकारना आपके हाथ में है। इसमें मेरा कोई "आग्रह" नहीं है। जैसा आपका विचार हो - वैसा ही करिए।

"कब तक, कितनी देर में समझेंगे" वाली बात के उत्तर में - यह सब सकल कुकर्म करने में जिसमें धरती को बरबाद किया, उसमें इतना दिन लगा है। अब इस प्रस्ताव को पूरी **शिक्षा** में समावेश होने में भी कुछ समय तो लगेगा।

प्रश्न: "अध्ययन" और "अध्यापन" को समझाइये।

उत्तर: अध्ययन और अध्यापन संयुक्त रूप में होता है। अध्ययन करने वाले और अध्यापन कराने वाले के योग में अध्ययन होता है। (अध्यापक के) अनुभव की रोशनी में विद्यार्थी जितनी भी समझने की प्रक्रिया करते हैं - उसका नाम है "अध्ययन"। उसके समर्थन में बताया - हर शब्द का अर्थ होता है। अर्थ के स्वरूप में अस्तित्व में वस्तु होता है। वस्तु का साक्षात्कार होने से हम अध्ययन किए।

अध्ययन "तदाकार-विधि" से होता है। तदाकार कैसे होता है? हर व्यक्ति के पास कल्पनाशीलता और कर्म-स्वतंत्रता स्वत्व के रूप में रखा है। आज पैदा होने वाले बच्चे में भी, कल मरने वाले वृद्ध में भी। कल्पनाशीलता के प्रयोग से तदाकार होता है। चाहे जीव-चेतना में चोरी-डकैती का काम सिखाना हो - वह भी तदाकार विधि से सम्भव होता है। मानव-चेतना का न्याय-धर्म-सत्य समझाना हो - वह भी तदाकार-विधि से सम्भव होता है।
- बाबा श्री ए नागराज के उदबोधन पर आधारित (२ अक्टूबर २००९, हैदराबाद)

(पृष्ठ नंबर: 256-263)

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2009/10/blog-post_2746.html

सन्दर्भ: संवाद भाग २

(संस्करण: प्रथम, मुद्रण: अक्टूबर 2013)

- ## शिक्षा में विकल्प

जय हो! मंगल हो! कल्याण हो!

मैं स्वयं को अपने बंधुओं के बीच पा कर प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ। आप हम जो यहाँ मिले हैं यह एक संयोग और सद्बुद्धि की बात है। सद्बुद्धि के पक्ष में आगे बढ़ने का यहाँ प्रस्ताव है। सद्बुद्धि के पक्ष में आगे बढ़ने का प्रस्ताव है। सद्बुद्धि चाहने वाले यहाँ सब बैठे हैं ऐसा मेरा स्वीकृति है। कल आपके साथ बात हुई थी विकल्प कैसे आया, क्यों आया और यह किस बात का विकल्प है? उसमे बताया था यह आदर्शवाद और भौतिकवाद का विकल्प है और समाधि संयम विधि से निष्पन्न हुआ है। अब आगे इसका **शिक्षा** में क्या स्वरूप होगा। उसको मुझे प्रस्तुत करने को कहा गया है। उसको मैं स्वीकारा हूँ उचित समझ हूँ। आप लोग भी उसको उचित समझते हैं ऐसा मेरा विश्वास है।

वेद विचार में 30 वर्ष तक जो मैं पला बढ़ा, उसमें सुनने सुनाने को श्रुति नाम दिया। मैं भी उसको मान कर वैदिक ऋचाओं को उच्चारण करते रहा। मुझको जो लोग सुने रहे वे मेरी प्रशंसा करते रहे, उससे जो लोग सुनते रहे वे मेरी प्रशंसा करते रहे, उससे मुझे अभिमान होता रहा। जब वेद विचार के अर्थ में गए तो मैंने उसे निरर्थक पाया। पहले ब्रह्म को ही सत्य और अनंत बताया। दूसरे ब्रह्म से ही जीव जगत पैदा हुआ, यह बताया। तीसरे लाइन में लिखा ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या है। सत्य से मिथ्या कैसे पैदा हो गया? इस प्रश्न से मुझको पीड़ा हुई। जिसके नीरकरण के लिए मैंने स्वयं स्फूर्त विधि से अनुसंधान किया। उसके फल में जो पाया वह मुझे सम्पूर्ण मानव जाती की संपदा लगा इसलिए उसे मानव जाती को समझने के लिए मैंने प्रयास शुरू किया। यहाँ उपदेश विधि को छोड़ करके **शिक्षा** विधि से इसको प्रस्तुत शुरू किया। **शिक्षा** में उसके स्वरूप को बताने के लिए मैं यहाँ प्रस्तुत हूँ। शिष्टता से सम्पन्न होने के लिए **शिक्षा** है। उसके लिए प्रक्रिया है अध्ययन। अनुभव के प्रकाश में स्मरण पूर्वक किया गया क्रियाकलाप अध्ययन है। अध्यापन करने वाले के पास अनुभव का प्रकाश (रौशनी, समझ) रहता है। अनुभव का प्रकाश लोहे के पास रहेगा, जानवर के पास रहेगा या मानव के पास रहेगा? मैंने यह निर्णय लिया अनुभव का प्रकाश मानव के पास रहेगा। इसको आप सभी शोध करने योग्य हैं। सभी को शोध करना चाहिए। निर्णय लेना चाहिए। मनुष्य ही मनुष्य को समझाएगा। न जानवर समझाएगा, न पत्थर समझाएगा , न मणि समझाएगा। इसमें यदि आप सहमत नहीं होते तो आप मुझसे प्रश्न कर सकते हैं, पूछने समझने और समझने के लिए पाँच ही सूत्र हैं। पहला है- सह अस्तित्व को समझना और समझाने योग्य होना। सह-अस्तित्व में अनुभव करने पर सह अस्तित्व समझ में आत है। उससे पहले सह अस्तित्व को समझ नहीं पाएंगे। मानव परंपरा अनुभवमूलक विधि से जिंदा रह सकता है। मानव परंपरा अनुभवमूलक विधि से जिंदा रह सकता है। मानव का सारी मानव जाति के साथ सह अस्तित्व, सारी जीव जाति के साथ सह अस्तित्व, सारी वनस्पति जाति के साथ सह अस्तित्व, सारी पदार्थ जाति के साथ सह अस्तित्व पूर्वक जीने की बात होती है।

इस धरती पर ही आप हम बैठे हैं हवा को लेते हैं, पानी को पीते हैं, वनस्पतियों और जीवों का उपयोग करते ही हैं। अब मानव का मानव को समझदारी के अर्थ में प्रबोधित करने की बात है। इसको समाधान पूर्वक और समृद्धि पूर्वक और समृद्धि पूर्वक जी सकने की बात कही है। इसको मैं स्वयं जी कर प्रमाणित हूँ। मैं किसी को घायल नहीं करता हूँ । किन्तु घायल करने वाले मानव धरती पर हूँ। जैसे यह प्रकाश जो इस बल्ब से है, जो बिजली है, वह धरती को घायल किए बिना आया नहीं है। धरती सूर्य के ताप को अपने में पचाए के लिए पहले कोयला बनाया, उसके बाद धरती अपने को अभी के संसार के जीने योग्य हवा आदि नैसर्गिकता को बनाया। उसके बाद ही जीव संसार प्रगत हुआ, मनुष्य संसार प्रगट हुआ। मानव अरण्य युग से जंगल को बर्बाद करने में लगा ही है। अत्याधुनिक विज्ञान के साथ मानव खनिज संसार पर टूट पड़ा, खनिज तेल, खनिज कोयला और विकिरणीय धातुओं के अपहरण करने से ही यह धरती बीमार हुई। इनके ईंधन अवशेष से ही धरती तापग्रस्त हो गई है।

अब धरती और कितने दिन बची रहेगी उसके लिए विज्ञानी लोग अपनी अपनी भविष्यवाणीयां कर रहे हैं। ये सब सुनने बोलने के लिए हमारा कोई विरोध नहीं है। हमारा अनुरोध इतना ही है हमारे बोलने सुनने से प्रयोजन सिद्ध होना चाहिए। प्रयोजन है मानव का व्यवस्था में जीना। व्यवस्था में जीने का मतलब है मानव का अपराध मुक्त होना, भ्रम मुक्त होना। सकारात्मक भाषा में नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म, सत्य पूर्वक जीना। दूसरे तरह से कहें समाधान, समृद्धि, अभय, सह अस्तित्व पूर्वक जीना। मानव का मानवत्व पूर्वक जीना, अर्थात मानव चेतना में जीना। **शिक्षा** में ये सभी सार्थकता का अध्ययन है। इसी के आधर पर आप इसका स्रवण करेंगे, उसमें कोई शंका हो तो हमसे पूछेंगे। उसका समाधान हमारे पास है।

अभयता

अभयता का मतलब है – विश्वास। मानव ही मानव के लिए भय का स्वरूप है, तथा मानव ही मानव के लिए विश्वास का स्वरूप है। परस्परता में विश्वास सबको स्वीकार होता है – ऐसा मेरा स्वीकृति है। मैंने डाकुओं, अपराधियों, व्यभिचारियों से भी इस बारे में बात किया – वे भी विश्वास के प्रति ही सहमत होते हैं। साधू, संत, यति-सती, योग्य, बुद्धिमान लोग तो विश्वास के प्रति पहले से ही सहमत है। मानव-जाति के साथ संपर्क से मैंने ऐसा पाया।

अत्याधुनिक-विचार हो या अर्वाचीन विचार हो – उसमे नाश करने की प्रवृत्ति बनी हुई है। पहले ऐसे सोचा गया था – यदि आपके पास में पत्थर हो तो दूसरा आप पर अपनी चलाएगा नहीं। पत्थर चल गया तो फिर सोचा गया - जिसके आपके पास डंडा हो, दूसरा आप पर अपनी चलाएगा नहीं। दूसरे ने डंडा चला दिया, तो फिर बन्दूक आ गया। फिर तोप आया, मिसाइल आया। ये सब कहाँ अंत होगा? समाधान पूर्वक जीने से ही नाश की प्रवृत्ति का अंत होता है। हमारे जैसे समाधान सबको हो सकता है। इसीलिये **शिक्षा** से समाधान की बात किया।

हमारे अनुसार - हर बच्चा जन्म से ही न्याय का याचक, सही कार्य-व्यवहार करने का इच्छुक, और सत्य-वक्ता होता है। जबकि अत्याधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार बच्चे जन्म से ही कामुक होते हैं। हम आदमी हैं, जानवर हैं, या भूत-प्रेत हैं? हम क्या सीख रहे हैं, क्या कर रहे हैं, क्या बोल रहे हैं? यह एक-दूसरे के लिए भ्रम फ़ैलाने की बात है या नहीं? यह एक सोचने का मुद्दा है।

शिष्टता पूर्वक जीने के लिए **शिक्षा** है। समाधान-समृद्धि-अभय-सह-अस्तित्व पूर्वक जीना ही शिष्टता है। समाधान समझदारी से आता है. समझदारी सह-अस्तित्व, सह-अस्तित्व में विकास-क्रम, विकास, जागृति-क्रम, और जागृति को समझने से होती है. इन पाँच सूत्रों को समझाने के लिए ४ दर्शन, ३ वाद, ३ शास्त्रों, और संविधान को लिखा. यह कुल ३६०० पेज हैं। इससे ज्यादा मुझे कुछ लिखना नहीं है। यही शिक्षा/अध्ययन की वस्तु है। लोकव्यापीकरण होने पर जीने की जगह इन पाँच सूत्रों में ही है। उसका व्यवहार रूप बहुत विस्तार में है। अभी हम बहुत ज्यादा भाषा का प्रयोग करते हैं, थोडा समझा पाते हैं। लोकव्यापीकरण क्रम में आगे चल कर थोड़ी भाषा में ज्यादा समझाना बन जाएगा। ये भविष्य के लिए आशा है।

पूरा इसको लिखने के बाद मैंने यह निर्णय किया – जो इसको समझना चाहते हैं, उनके पास इसको जाना चाहिए। उससे समझने वालों को खोजना शुरू किया। धीरे-धीरे लोगों की इसमें स्वीकृति और प्रयासों से **शिक्षा** के इस स्वरूप पर हमारा विश्वास हुआ। अखंड-समाज होने के लिए इस **शिक्षा** का सारे विश्व में लोकव्यापीकरण होना होगा। एक गाँव में हर परिवार यदि समाधान-समृद्धि पूर्वक जीता है तो यह व्यवस्था का एक प्रारूप बनता है। गाँव में ऐसे सबको बनाने का दायित्व अध्यापकों का है. हर गाँव में अध्यापक होंगे ही। हर गाँव में अध्यापक बच्चों को पढायेंगे, और बड़ों को समझायेंगे। यह ज़रूरत है या नहीं? गाँव में सभी समझदार होने पर ग्राम-स्वराज्य व्यवस्था की शुरुआत होती है। हर परिवार में इस तरह सभ्यता और संस्कृति का धारक-वाहकता होता है। और परिवार-सभा में विधि और व्यवस्था की धारक-वाहकता होती है। परिवार और परिवार-सभा में इस तरह पूरकता का अंतर-सम्बन्ध है। हर नर-नारी यदि समझदार होते हैं, तो परिवार में ही न्याय होता है। परिवार-सभा में श्रम-विनिमय के सामान्यीकरण की व्यवस्था होती है।

अकेले परिवार में ही आधा मानव-लक्ष्य (समाधान और समृद्धि) प्रमाणित हो जाता है। इसको आप वर सकते हैं, प्रयोग कर सकते हैं, प्रमाणित कर सकते हैं। तुरंत प्रमाणित करने का क्षेत्र परिवार ही है. धीरे-धीरे प्रमाणित करने वाली जगह अखंड-समाज है। अखंड-समाज होता है तो सार्वभौम-व्यवस्था होती ही है। सर्व-देश में यदि समझदारी आती है तो सार्वभौम-व्यवस्था होती है। सार्वभौम-व्यवस्था होना ही अंतिम मंजिल है। इस ढंग से हम एक अच्छी बात के लिए तुल सकते हैं, अच्छी बात के लिए जोर लगा सकते हैं, अच्छी बात के लिए समर्पित हो सकते हैं, हम स्वयं को प्रमाणित कर सकते हैं।

जय हो! मंगल हो! कल्याण हो!

- बाबा श्री ए नागराज के जीवन-विद्या राष्ट्रीय सम्मलेन २०१० में उदबोधन पर आधारित

(पृष्ठ- 24-29)

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2011/05/blog-post_4318.html

- **प्रचलित-शिक्षा का विकल्प**

अभी की प्रचलित-**शिक्षा** कामोंमादी, भोगोंमादी, और लाभोंमादी है। जबकि हर अभिभावक - चाहे डाकू हों, दरिद्र हों, समर्थ हों, असमर्थ हों - चाहते हैं उनके बच्चे नैतिकता पूर्ण बने, चरित्रवान बनें। आप स्वयं सोचिये – इन तीनो उन्मादों को पाते हुए क्या बच्चे नैतिक बन सकते हैं, चरित्रवान बन सकते हैं? इस ढंग से हम अभी तक क्या किये, किस बात के लिए भागीदारी किये – इसका मूल्याँकन होने लगता है। इस मूल्याँकन के होने के बाद हम विकल्पात्मक स्वरूप में जीने के लिए तैयार होते हैं। विकल्पात्मक स्वरूप है – सह-अस्तित्व में जीना. विकल्पात्मक **शिक्षा** के स्वरूप के बारे में हम आगे चर्चा करेंगे।

सह-अस्तित्व में स्वयम जीने के स्वरूप को लेकर विकल्पात्मक-**शिक्षा** की शुरुआत करते हैं। सह-अस्तित्व में स्वयं जीने के लिए जब पारंगत हो जाते हैं, तो उसके सत्यापन को हम इस विकल्पात्मक-**शिक्षा** की पूर्णता मानते हैं। इसके उपरान्त समाधान-समृद्धि पूर्वक जीने, अन्य लोगों की सहायता करने, और उपकार करने की शुरुआत होती है। आगे पीढ़ी में पिछली पीढ़ी से और अच्छा करने तथा अच्छा प्रस्तुत होने की कल्पना रहता ही है। अभी की अपराध-परंपरा में भी इस को देखा जा सकता है। मानव ने अपराध की शुरुआत जंगल को विनाश करने और हिंसक पशुओं का वध करने के रूप में की। उनकी संतान और ज्यादा विनाश करने, और ज्यादा वध करने की ओर गयी। यह चलते-चलते लाभोन्माद, भोगोन्माद, कामोन्माद तक पहुँच गया। अभी प्रचलित व्यापार-**शिक्षा** में लाभोन्माद, भोगोन्माद, कामोन्माद ही मिलता है। इसके अलावा दूसरा कुछ उसमे पा ही नहीं सकते। इसके अलावा उस **शिक्षा** में कोई ध्वनि ही नहीं है, सूत्र ही नहीं है, न व्याख्या है। यहाँ बैठे कुछ लोग नौकरी करते हुए भी हैं, व्यापार करते हुए भी हैं। वे सभी सोच सकते हैं, ऐसा ही है या नहीं? यदि मैं जो कह रहा हूँ वास्तविकता उससे भिन्न कुछ है तो उसको आप मुझे सुझाव के रूप में दे सकते हैं, आग्रह के रूप में दे सकते हैं – कैसे भी दीजिए, वह सब स्वागतीय है।

अभी मानव बहु-रुपिये जैसा जीता है. समझदारी पूर्वक मानव एक निश्चित आचरण (मानवीयता पूर्ण आचरण) के साथ जीता है। क्या इस बात से किसी का विरोध है, असहमति है? यह जीव-चेतना और मानव-चेतना का विश्लेषण है। इस विश्लेषण के आधार पर मनुष्य पुनर्विचार करने का अधिकार प्राप्त करता है। पुनर्विचार कि – अपराध-मुक्ति कैसे हो? गलतियों से मुक्ति कैसे हो? भ्रम से मुक्ति कैसे हो? दरिद्रता से मुक्ति कैसे हो? पुनर्विचार के लिए सुझाव है – सह-अस्तित्व-वादी विधि से इन सभी मुद्दों का समाधान प्राप्त कर सकते हैं। जिससे अपराध-मुक्त हो सकते हैं, गलतियों से मुक्त हो सकते हैं, भ्रम से मुक्त हो सकते हैं,दरिद्रता से मुक्त हो सकते हैं।

- बाबा श्री ए नागराज के जीवन-विद्या राष्ट्रीय सम्मलेन २०१० में उदबोधन पर आधारित **(पृष्ठ- 31)**

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2011/05/blog-post_02.html

- **शिक्षा में इस प्रस्ताव को ले जाने का सही तरीका**

प्रश्न: अभी के प्रचलित शिक्षा व्यवस्था में इस प्रस्ताव को ले जाने का सही तरीका क्या है?

उत्तर: आज के समय व्यवसायिक शिक्षा प्रचलित है, व्यवहारिक शिक्षा नहीं है. व्यवसायिक शिक्षा का मतलब है - व्यापार और नौकरी. अभी के सभी शिक्षित लोग व्यापार और नौकरी के अर्थ में ही हैं. जो अशिक्षित हैं वे भी व्यापार और नौकरी ही करना चाहते हैं. अब यहाँ हम समाधान-समृद्धि पूर्वक जीने को कह रहे हैं. इस दर्शन को जब भी शिक्षा में प्रस्तुत करें - विकल्प स्वरूप में ही करें. विकल्प नहीं रखते हैं तो गुड-गोबर ही होगा.

प्रश्न: हम सोचते हैं जितने के लिए अभी के लोग राजी हैं उतने को अभी रख देते हैं, आगे चल के पूरी बात बता देंगे! लेकिन आप कहते हैं - पहले विकल्प रखो! पूरी बात को स्पष्ट करो! तो क्या ऐसे देर नहीं हो जायेगी?

उत्तर: विकल्प की स्पष्टता के साथ ही लोकस्वीकृति होगी. स्पष्टता के साथ प्रस्तुत करने की बात है. अभी आप सोचते हो - विकल्प को स्पष्ट करोगे तो लोकस्वीकृति नहीं होगी! यही अंतर है आप में और मुझ में.

लोगों की मंशा के अनुसार अगर आप इस प्रस्ताव को ले जाना चाहते हो, तब तो इसकी ज़रुरत ही नहीं है. इसको विकल्प स्वीकारते हो तो इसकी ज़रुरत है. यदि इसको विकल्प स्वीकारते नहीं हो तो ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी जिसको मूल्य शिक्षा माना है, उसे ही आप भी बताओगे. जबकि हमारे अनुसार वह लफंगाई है. अपनी बात को स्पष्ट रखने की आवश्यकता है या नहीं?

मानव का अध्ययन होना चाहिए और मानवीयता का संरक्षण होना चाहिए. भौतिकवाद और आदर्शवाद से यह हो नहीं पाया. इसके बावजूद यदि हम उसी पृष्ठभूमि में चलेंगे तो वह महान गलती होगी या नहीं?

विकल्प को प्रस्तुत नहीं कर पा रहे हैं तो यह गलती है. विकल्प को प्रस्तुत करने के लिए हिम्मत चाहिए. इस प्रस्ताव को सम्मानजनक विधि से संसार में ले जाना होगा.

आदर्शवाद और भौतिकवाद के चलते सम्पूर्ण मानव जाति अपराध में फंस चुका है. इसीलिये इस प्रस्ताव को प्रस्तुत करते समय पूछना आवश्यक है - "अपराध से छूटना चाहते हैं या नहीं?"

हमारे प्रस्ताव का लक्ष्य क्या है, यह पहले स्पष्ट करना आवश्यक है. फिर वो लक्ष्य सुनने वाले की ज़रुरत है या नहीं? - उससे यह पूछना आवश्यक है. उसके बाद यह पूछना है - इस लक्ष्य के अर्थ में हमारा प्रस्ताव पूरा पड़ता है या नहीं?

- श्रद्धेय नागराज जी के साथ संवाद पर आधारित (सितम्बर २००९, अमरकंटक)

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2018/01/blog-post_3.html

- **विश्वविद्यालयों का दायित्व**

जितने भी विश्वविद्यालय इस धरती की छाती पर कोदो दर रहे हैं - वे यदि स्वीकार पाते हैं कि उन्ही के चलते यह धरती बीमार हुई है और अब इस धरती को बचाने का दायित्व भी उन्ही का है, इस जगह में आने के बाद ही वे मध्यस्थ दर्शन के इस प्रस्ताव को सही से वहन कर सकते हैं. तब हम उनके लिए इस प्रस्ताव का पूरा पाठ्यक्रम प्रस्तुत करेंगे. अभी इन्टरनेट में इसका जो बीज डाले हो, उसका वह अगली कड़ी होगा. इसमें हम

मानव के मापदंड (Model of a Man) को मानवीयता पूर्ण आचरण में ध्रुवीकृत करेंगे. ऐसी शिक्षा को प्राप्त करके मानव जाति अपराध-मुक्त होगी और अपने-पराये की दीवारों से मुक्त होगी. मानव के अपराध मुक्त हुए बिना उसका धरती को तंग करने का प्रवृत्ति समाप्त नहीं हो सकता. मानव जाति में अपराध प्रवृत्ति का अंकुरण और पोषण इन्ही विश्वविद्यालयों द्वारा हुआ है. इन्ही विश्वविद्यालयों ने लाभोंमाद, कामोन्माद और भोगोंमाद स्वरूपी भूतों को पूरी मानव जाति पर चढ़ाया है. वही सबकी खोपड़ी में घुसा है और नचा रहा है. इसको हमे उभार कर आगे लाना है. विश्वविद्यालय स्वयं अपराध के प्रवर्तक रहे हैं, फलस्वरूप मानव अपराध में लग गए. अभी वही विश्वविद्यालय यदि अपराध मुक्त होने के लिए संकल्पित हों तो उनके लिए प्रस्ताव है - जिसमे मानव का अध्ययन है और अस्तित्व का अध्ययन है, जिससे मानवीयता पूर्ण आचरण स्पष्ट होना है और जीने में प्रमाणित होना है. इसको इतने पैनेपन से प्रस्तुत करो कि एक बार सुनने पर ही वह भीतर घुस जाए! यह सही है! - स्वीकार हो जाये.

यदि विश्वविद्यालयों में तकनीकी शिक्षा के साथ चेतना विकास - मूल्य शिक्षा का समावेश होता है तो उनके स्नातक उत्सव में विद्यार्थी स्वयं अपने समझे होने का सत्यापन करेंगे, साथ ही सत्यापन करेंगे कि वे प्रमाणित हैं या प्रमाणित होने के योग्य हैं. स्नातक कक्षा में तकनीकी शिक्षा और मानव चेतना सहज मूल्यों को प्रमाणित करने का प्रावधान रहेगा. अभी इसको मैं स्नातक कक्षा में कह रहा हूँ, आगे चल के इससे पहले ही यह योग्यता हासिल हो जायेगी. इस रास्ते में आगे चल के शिक्षा की अवधि घटेगी, जबकि अभी के ढाँचे-खांचे शिक्षा की अवधि को बढाए जा रहे हैं. चेतना विकास होने से सहीपन को समझने में देर नहीं लगती. गलती का ताना-बाना दीर्घकाल तक भी पूरा नहीं होता. जीव चेतना में हर बात विवादित रहती है, विवाद की गलती का पुलिंदा बढ़ता ही जाता है. सार्थकता की बात संतुष्टि तक पहुँचता है, जो एक बिंदु है. अब आपको तय करना है - संतुष्टि के लिए जीना है या गलती/विवाद में जीना है.

- श्रद्धेय नागराज जी के साथ संवाद पर आधारित (जनवरी २००७, अमरकंटक)

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2018/01/blog-post_5.html

श्रद्धेय श्री ए. नागराज जी द्वारा दिया गया पाठ्यक्रम

मूल्यांकन : चेतना विकास व मूल्य शिक्षा संबन्धित वस्तु मानवीय आचरण कक्षा -1				
शिक्षा पाठ	**शिक्षा वस्तु**	**शिक्षा नीति**	**शिक्षा वस्तु**	**शिक्षा पाठ**
शरीर, अवयव, मानवीय गुण, स्वभाव, संबंध, कर्तव्य, दायित्व, आवश्यकता, उपयोगिता एवं प्रयोजन नियतिवादी शब्दों के साथ जैसे –अभय करुणा आदि। अधिकाधिक सम्बन्धों में वर्तने वाले शब्दों की सूचना जैसे –अभय रहना, आदर करना, इंगीत करना, उदय होना, इतिहास बनाना।	अक्षर बोध	कक्षा 1 से 5 तथा आज्ञा पालन पद्धति रहेगी। मूल्य – 1) धीरता 2) वीरता 3) उदारता	संख्या बोध	शरीर इंद्रिय संबंध सहित संख्या बोध कराना जैसे- पाँच उंगली, पाँच इंद्रीय आदि, तीन मानवीय मूल्यों आदि के द्वारा।

मूल्यांकन : पुस्तक ही को सुरक्षा व सदुपयोग का किया गया प्रबोधन उसका आज्ञा पालन का मूल्यांकन। कक्षा -2				
संबंधो में वर्तने वाली चरित्र रूपी पाठ जैसे माता बच्चों के समय समय पर प्यार से सेवा करती है। बच्चे माँ का आज्ञा पालना करते हैं आदि। इसी प्रकार पिता और गुरु का आज्ञा पालन करने के संबंध में और माता-पिता और गुरु का आज्ञा पालन करने के संबंध में और माता-पिता और गुरु से मिलने से मिलने वाली सच्चरित्रवादी पाठ।	सम्बन्धों की पहचान, सम्बन्धों में वर्तने वाली चरित्र रूपी पाठ जैसे- माता बच्चों को समय –समय पर सेवा करती है। बच्चे माँ का आज्ञा पालन करते हैं आदि।	मूल्य-धीरता, वीरता, उदारता	वस्तुओं का सामान्य पहचान	पाठ्य सामग्रियाँ की पहचान उसकी उपयोगिता का बोध, धीरे धीरे पौधों की पहचान और उसका सामान्य उपयोग, इसी के साथ संख्या का विस्तार बोध जैसा वस्तुओं की संख्या घटाने-बढ़ाने के क्रम में पाठ।

मूल्यांकन: पुस्तिका सामग्री, स्थान की सुरक्षा और सदुपयोग आज्ञा का मूल्यांकन।

कक्षा-3

स्नेह, कृतज्ञता, विश्वास जैसा व्यवहारकारी वाक्य रचना जैसे-साथियों के साथ विश्वास, निर्वाह, गुरु, माता-पिता के साथ सम्बोधन कृतज्ञता का निर्वाह, भाई व बहन के साथ गौरव सम्मान का निर्वाह। सम्बन्धों में वर्तने वाली मूल्य और चरित्रकारी पाठ।	सम्बन्धों का सम्बोधन	मूल्य –धीरता, वीरता, उदारता	वस्तुओं की सामान्य उपयोगिता का प्रबोधन, का प्रवबोधन, उपयोग क्रम का पहचान।	विद्यार्थियों के उपयोग में आने वाली व्यवहार में आने वाली जैसा –पुस्तिका आदि। पाठ्य सामग्री, वस्त्र, आवास, अलंकार और वाहन आदि।

मूल्यांकन: वस्तुएँ सामग्री, वस्त्र, अलंकार, क्रम का सदुपयोग सुरक्षा और आज्ञा पालन पूर्ण व्यवहार का मूल्यांकन।

कक्षा-4

सम्बन्धों में वर्तने वाली व्यवहारवादी पाठ-जैसे समय के साथ कोई बीमार पड़ने पर, स्कूल जाने के साथ, किसी से मिलने के संबंध में भोजन, शयन के संबंध में पाठ आदि। मूल्य, चरित्र और नैतिकता का अविभाज्य, उसका नीति वर्तमानवादी पाठ जैसे – माँ विश्वासपूर्वक अधिकाधिक बच्चों को संरक्षण पोषण करने के रूप में चरित्र को अधकाधिक वस्तुओं को बच्चों के हित में सदुपयोग और उसकी रख-रखाव के रूप में सुरक्षा और नैतिकता का इत्यादि।	सम्बन्धों में वर्तने वाली चरित्र और व्यवहारवादी पाठ, कर्तव्यों का प्रबोधन	मूल्य- धीरता, वीरता, उदारता	वस्तुओं की सामान्य उपयोगिता का परिचय आवश्यकता का प्रबोधन	मनुष्येत्तर प्रकृति की पहचानने की क्षमता, प्रत्येक विद्यार्थी में होने की सत्यतों का पाठ जैसा जीव जानवर, पौधे, वृक्ष जलवायु, अग्नि आदि सभी प्रकृति का दृष्टा मनुष्य है।

मूल्यांकन: शिक्षा सामग्री, अलंकार व कक्षा समग्रियों की सुरक्षा सदुपयोग कार्य-व्यवहार का मूल्यांकन कक्षा 5				
व्यवहार संचेतना का स्पष्ट रूप जैसे माता-पिता, भाई-बहन, पिता-पुत्र, गुरु – शिष्य और मित्र सम्बन्धों में। वर्तमानकारी पाठ, वर्तमान के लिए प्रवर्तन। व्यवहार, संचेतना की अनिवार्यता जैसे – सह-अस्तित्व के लिए सहकारिता और सहभागिता की अपरिहार्यता कर्तव्य और दायित्व की पहचान जैसा उत्पादन कार्यों में कर्तव्य का व्यवहार कार्य सेवा में दायित्व की पहचान स्वीकृति के लिए प्रवर्तन उसकी वहन करने की आवश्यकता उपयोगिता तथा प्रयोजनियता पाठ।	सम्बन्धों में वर्तने वाली स्थापित मूल्य एवं शिष्ट मूल्यों का बोध परस्पर व्यवहार में वर्तने वाली चरित्र अर्थात मानव संचेता वादी चरित्र का पाठ।	मूल्य वीरता, धीरता, उदारता	वस्तुओं की आवश्यकता एवं उनकी उपयोगिता का बोध रासायनिक एवं भौतिक सीमा का ज्ञान।	भौतिक और रासायनिक परिवर्तन, प्राणावस्था से पदार्थावस्था, पदार्थावस्था से प्राणावस्था में परिवर्तनशील, रासायनिक एवं भौतिक सीमावर्ती प्रकृति का बोध मानव उसका दृष्टा होने का ऐश्वर्य सम्पन्न ईकाई के रूप में प्रबोधन।

मूल्यांकन: शाला कक्षा, सामग्री, शिक्षा, अलंकार समग्रियों की सुरक्षा व सदुपयोग, शाला और शाला से बाहर विद्यार्थियों का चरित्र चित्रण का मूल्यांकन। कक्षा-6				
कर्तव्य और दायित्व को वहनकारी पाठ जैसा उत्पादन की आवश्यकता, परस्पर सम्बन्धों में व्यवहार की अनिवार्यता। व्यवसाय और चरित्रकारी पाठ जैसा कृतज्ञता आदि स्थापित मूल्यों पूर्वक और शिष्ट मूल्यों सहित संबंधों के साथ वर्तने वाली पाठ चरित्र का आंकलन व्यवहार और व्यवसाय में प्रकाशित होने की तथ्यपूर्ण पाठ समाज के चारों आयाम जैसे- संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था का अविभाज्य वर्तमान का प्रबोधन।	सम्बन्धों को वर्तने वाली शिष्टता का पाठ, व्यवसाय मूल्य में अर्पित, समर्पित होने का पाठ।	मूल्य- वीरता, धीरता, उदारता व दया नोट- 6 वीं से 10 वीं कक्षा तक अनुशासनपूर्वक पाठ, पठन कार्य होगी।	प्राण व निष्प्राण कोशिकाओं का स्पष्ट ज्ञान, कोशिका परस्पर संगठित होने का गुण, उसी में अर्थात कोशिकाओं में समाहित रहने का स्पष्ट ज्ञान	पदार्थावस्था में निष्प्राण कोशिकाओं के रूप में होने की सत्यता को स्पष्ट करना, पदार्थावस्था का तात्पर्य मृद, पाषाण, मणि, धातु और उसके समस्त विकारों से है। पदार्थावस्था, विकसित होकर प्राणावस्था में होना और प्राणावस्था ह्रास होकर पदार्थावस्था में होने की यथार्थता को स्पष्ट करने वाली पाठ। उसकी साक्षी में वनस्पतियां ह्रास होकर पदार्थों में अर्थात मिट्टी आदि में परिवर्तित होता हुआ दिखाने, प्रत्येक बीज इसी मिट्टी, गोबर, हवा, पानी और उजालों को पाकर अंकुरित, पल्लवित एवं परिवर्तित होता हुआ दृष्टांतवादी पाठ।

मूल्यांकन: शाला और शालेय सामग्री, परिवार और पारिवारिक और पारिवारिक कार्य –व्यवहार, सामग्रियों का सदुपयोग व सुरक्षा अनुशासन। कक्षा-7				
धीरता, वीरता, उदारता और दया की पहचान जैसे प्रत्येक व्यवसाय व व्यवहार कार्य और सेवा की दृढ़ता के रूप में धीरता को। ऐसी दृढ़ता से विचलित व्यक्ति को दृढ़ता प्रदान करने के रूप में वीरता को, स्वयं की सुविधाओं को आवश्यकतानुसार दूसरों को प्रदान कर प्रसन्न होने के स्वरूप में उदारता को प्रवर्तित करने वाली पाठ और प्रवर्तन जीवन शक्तियों का सामान्य परिचय जैसे मन में होने वाली आशा, वृत्ति में होने वाली तुलन, चित्त में होने वाली चित्रण, बुद्धि में होने वाली संकल्प और आत्मा में होने वाली अनुभूति।	मानव मूल्य का परावर्तन ही स्थापित मूल्य और शिष्ट मूल्य में परावर्तित होने का प्रबोधन	मूल्य –वीरता, धीरता, उदारता दया।	परमाणु की पहचान, गठनपूर्वक परमाणु होने की पहचान, एक से अधिक परमाणुओं से रचना, अणु अणुओं से रचित पदार्थ पिंड की पहचान।	परमाणु में विकास होना ही सत्यता का पाठ, प्रत्येक परमाणु गठनपूर्वक परमाणु में एक से अधिक अंशों का गठन होने की सत्यता का स्पष्ट स्वरूप, प्रत्येक परमाणु में मध्यांश और उसके आश्रित अंश होने की सत्यता का पाठ। जो जिससे बना रहता है अर्थात रचनाए होती हैं। वह उससे अधिक नहीं होती है। इस सिद्धान्त पर प्राण कोशिकाएं और निष्प्राण कोशिकाओं की रचना का पाठ प्रबोधन और कर्माभ्यास विचार शक्तियों का परावर्तन में व्यवसाय अर्थात उपयोगिता एवं कला मूल्यों को स्थापित करने का पाठ।

<table>
<tr><th colspan="5">मूल्यांकन: शाला और शालेय सामग्रियों का सदुपयोग व सुरक्षा परिवार, संपर्क एवं गुरुजनों के साथ किए गए व्यवहार का मूल्यांकन।
कक्षा- 8</th></tr>
<tr><td>मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि और आत्मा जैसे अक्षय बल और आशा, विचार, इच्छा, संकल्प और अनुभव प्रमाण जैसी अक्षय शक्तियों संयुक्त स्वरूप जीवन शक्तियों का परावर्तन एवं प्रत्यावर्तन की विशालता, आवश्यकता, उपयोगिता व प्रयोजनीयता का पाठ।
देखना ही समझना, समझना ही देखना, सिद्धान्त के आधार पर पहचान क्षमता और उसकी अक्षयता का पाठ।
अक्षयबल और अक्षय शक्तियों का संयुक्त स्वरूप ही संचेतना होने का पाठ। संज्ञानशीलता और संवेदनशीलता का संयुक्त प्रभावशीलन ही जीवन का परावर्तन और प्रत्यावर्तन होने का पाठ। समाज के चारों आयाम और जीवन के चारों आयाम के संबंध में व्यवहारिक पाठ।</td><td>जीवन की पहचान जीवन की जागृति की पहचान</td><td>मूल्य –धीरता, वीरता, उदारता, दया।</td><td>परमाणु में गठनपूर्ण होने ही सत्यता का पाठ</td><td>मनुष्येत्तर प्रकृति के साथ संतुलित संबंध की पहचान, व्यवसाय ही अनिवार्यता व्यवसाय पद में मनुष्य ही विशेषता व्यवसायकर्ता दृष्टा और निर्माता मनुष्य ही होने ही वैभव का पाठ, मनुष्य मनुष्येत्तर प्रकृति का ज्ञाता होने के मूल कारण में चैतन्य इकाई होने का पाठ। चैतन्य इकाई गठनपूर्णता से सम्पन्न एक परमाणु होने की पाठ, विचार शक्ति ही व्यवसाय पूर्वक मनुष्येत्तर प्रकृति में उपयोगिता मूल्य और कला मूल्य को (निपुणता और कुशलतापूर्वक) स्थापित करने की व्यवस्था का पाठ। उसकी अनिवार्यता का प्रबोधन।</td></tr>
</table>

मूल्यांकन: गाँव, मोहल्ला, शाला परिवार में किया गया व्यवहार और चरित्र का मूल्यांकन, शालेय एवं शाला परिसर परिवारीय वस्तुओं का सदुपयोग व सुरक्षा का मूल्यांकन। कक्षा- 9				
चैतन्य शक्तियाँ अर्थात आशा, विचार, इच्छा, संकल्प और अनुभूतियों, शरीर के द्वारा प्रकाशित होने की व्यवस्था का पाठ जैसा, चैतन्य शक्तियों का संकेत मेधस में होना, मेधस के द्वारा सम्पूर्ण शरीर का संचालित होना, फलत: कार्य व्यवहार संपादित होने का जो यथार्थ है उसे स्पष्ट करने का पाठ। अधिक गति और शक्ति, कम गति और शक्ति के माध्यम से प्रकाशित होने की व्यवस्था का पाठ। संचेतन का परिष्कृत कम में मानव संचेतना का स्वरूप और न्यायपूर्ण व्यवहार का आधार होने का पाठ, समाज मूल्यों का निर्वाह ही न्यायिक होने का पाठ। और न्यायिकता ही दायित्व होने का पाठ। जीवन का परिचय, जीवन मूल्य का परिचय, जीवन मूल्य के अर्थ में मानव मूल्य, मानव मूल्य के अर्थ में व्यवहार मूल्य , व्यवहार मूल्य के अर्थ में व्यवसाय मूल्य सार्थक होना ही सदुपयोग और सुरक्षा होने का तथ्यपूर्ण पाठ, तन-मन-धन रूपी अर्थ का सदुपयोग यही धर्मनीति समाजगति होने की तथ्य का पाठ फलत: तन-मन-धन रूपी अर्थ का सदुपयोग और सुरक्षा ही नैतिकता होना, यह चरित्र और मूल्य से अविभाज्य होना यह तथ्य का प्रबोधन।	मनुष्य जड़ चैतन्यात्मक प्रकृति का संयुक्त साकार रूप में होने का पाठ। न्यायपूर्ण जीवन कार्य व्यवहार विन्यास का प्रबोधन।	मूल्य– धीरता, वीरता, उदारता, दया।	चैतन्य इकाई मूलत: एक परमाणु होने के कारण परमाणु स्थापन-विस्थापन से मुक्ति ही गठनपूर्णता का अर्थ होने के कारण गठन पूर्ण इकाई में अक्षुण्णता स्वयं सिद्ध हो जाते हैं।	गठनपूर्ण परमाणु की (चैतन्य इकाई) रचना उसकी सीमा, उसकी पहचान उसकी अक्षयशीलता का पाठ। सम्पूर्ण रचनाएँ यांत्रिक होने का तथ्य, यांत्रिक अक्षयशील होने का तथ्य, सम्पूर्ण यांत्रिक क्रिया का दृष्टा, सृष्टा और कर्ता का स्वरूप मनुष्य होने ही सत्य का प्रतिपादन, मनुष्य संचेतनाशील होने का तथ्य, वह संचेतनापूर्वक ही उक्त सभी कार्य को संपादित करने का तथ्य, अक्षय बल, अक्षय शक्तियों का संयुक्त रूपी संचेतना होने के कारण। संज्ञानशीलता व संवेदनशीलता का सिद्ध होने का पाठ, संचेतना के अभाव में दृष्टापद अर्थात अनुभव ही प्रमाण परम होने ही पाठ।

मूल्यांकन: तन, मन, धन, रूपी अर्थ की सुरक्षा और सदुपयोग, संबंधों में कृतकारिक व अनुमोदित व्यवहार व्यवसाय के प्रति कर्तव्य की जागृति मूल्यांकन कक्षा- 10				
विवेक की परिभाषा और इसकी आवश्यकता एवं प्रयोजनीयता का पाठ, बौद्धिक नियम, सामाजिक नियम और प्रकृतिक नियम का पाठ, मूल प्रवृत्तियों के स्पष्ट स्वरूपों का प्रबोधन, आवेशित गति और स्वभाव गति का प्रबोधन, जीवन की अविरित क्रियाशीलता और उसका लक्ष्य का बोध, शक्तियों का परावर्तन, प्रत्यावर्तन के फलस्वरूप जीवन कृति की नित्य अभीष्ट की पहचान, राष्ट्र चेतना और समाज संचेतना का अविभाज्य वर्तमान का पहचान समाज का सार्वभौम अभीष्ट जैसा समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व का पहचान। जीवन तृप्ति का पहचान जैसा समाधान व प्रमाणिकता, प्रमाण और प्रामाणिकता, नित्य प्रबोधन उसकी निरंतरता, आवश्यकता, उपयोगिता और प्रयोजनियता का पाठ। समाज संचेतना के अर्थ में समाज संचेतना की पहचान जैसा व्यक्ति का परिचय समाज, राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय नित्य सामरस्यता का सूत्र प्रामाणिकता व समाधान होने का पाठ। अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था की सूत्र, व्याख्या। परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था- 5 आयाम दस सोपान। मनुष्य का चारों आयाम व्यवसाय, व्यवहार, विचार और अनुभूति में सामरस्यता का आधार प्रामाणिकता व समाधान होने की व्यवस्था का पाठ। जीवन सामरस्यता पूर्ण मनुष्य ही पूर्ण तथा सामाजिक होने का पाठ। सामाजिकता मूल्य और मूल्यांकन न्याय सुलभ एवं विनिमय सुलभ होने की व्यवस्था का पाठ। न्याय सुलभता व विनिमय सुलभतापूर्वक ही समाज का चारों आयाम, संस्कृति सभ्यता विधि व व्यवस्था में परिपूर्ण और उसका निरंतरता होने का पाठ।	जीवन की नित्यता और शरीर की नश्वरता का बोध व्यवहारिक जीवन के लिए आवश्यकीय नियमों का बोध।	मूल्य – धीरता, वीरता, उदारता, दया।	विकास के क्रम में चारों अवस्था की पहचान, चारों अवस्थाओं में विकास का क्रम संबंध	विज्ञान की परिभाषा समझकर ही आदमी देखता है, जैसा जिसको जो देखता है उसकी संपूर्णता उनके आँखों में नहीं आती, प्रत्येक ईकाई में रूप, गुण, स्वभाव, धर्म, वर्तने का प्रबोधन। 1) आँखों में केवल रूप उसमें भी दो आयाम अर्थात रूप में आकार, आयतन, घन तीन आयाम होती है। उसमें से आकार, आयतन ही आँखों में आती है। आकार, आयतन में ज्यादा से ज्यादा 180 ° देखने में आता है, का पाठ। देखने से अधिक समझ प्रत्येक मनुष्य में होने का प्रबोधन। जो जितना जानता है वह उतना चाह नहीं पाता, जो जितना चाहता है वह उतना कर नहीं पाता, जो जितना करता है, यह उतना भोग नहीं पाता का पाठ। प्रत्येक रचना भौतिक और रासायनिक सीमा में सम्पन्न होने का पाठ, इन सबका दृष्टा जीवन होने का पाठ। 2) वस्तु स्थिति सत्य में देश काल दिशा। 3) वस्तु गत सत्य में रूप, गुण, स्वभाव, धर्म का अध्ययन। 4) विज्ञान तकनीकी संबंधी उत्पादन कुशलता व निपुणता का प्रबोधन और कर्माभ्यास।

मूल्यांकन: व्यवहार में चरित्र अर्थात शिष्टता, व्यवसाय में कर्मण्यता तथा स्वानुशासनपूर्वक किया गया तन, मन, धनात्मक अर्थ का सदुपयोग और सुरक्षा का मूल्यांकन। कक्षा- 11				
मानवीयता की सीमा में मनुष्य अपव्ययों से मुक्ति होने तन, मन, धनात्मक अर्थ का सदुपयोग व सुरक्षा करने योग्य है का पाठ। मानवीयता की सीमा में मनुष्य संयत होने के कारण आवश्यकताएं सीमित होने की सत्यता का पाठ। मानवीयता की सीमा में मनुष्य संयत होने के कारण आवश्यकताएं सीमित होने की सत्यता का पाठ, मानवीयता की सीमा मनुष्य की आवश्यकताएं सीमित होने के कारण अधिक उत्पादन कम उपभोग योग्य होने की व्यवस्था का पाठ, प्रत्येक मनुष्य का अभीष्ट और लक्ष्य समन्वय और प्रामाणिकता होने की यथार्थ का पाठ।	मानवीयता ही मानव का स्वत्व होने का प्रबोधन, स्वत्व ही स्वतन्त्रता और अधिकार का आधार होने का प्रबोधन रहेगी।	मूल्य – धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करुणा नोट-11वीं से 14वीं कक्षा तक स्वानुशासन व्यवस्था	विकास के क्रम में क्रिया पूर्णता और आचरण पूर्णता होने और उसकी निरंतरता होने की सत्यता का प्रबोधन	कारण, गुण, गणित पूर्वक निर्णय पाने की व्यवस्था का पाठ, आँखों में जितना देखने को मिलता है उससे अधिक समझ में आता है, का पाठ। जो जैसा है उसे वैसा समझना ही स्पष्ट समझ अथवा सार्थक समझ होने का प्रबोधन। स्थिति सत्य, वस्तु स्थिति सत्य, वस्तुगत सत्य का प्रबोधन फलत: अस्तित्व कैसा है, का पाठ साथ ही कितना है की आवश्यकतानुरूप होने का पाठ। 1) स्थिति सत्य सत्ता में संपृक्त प्रकृति ही अस्तित्व सर्वस्व होने का पाठ।

मूल्यांकन: व्यवहार में चरित्र अर्थात शिष्टता, व्यवसाय में कर्माभ्यासिता तथा स्वानुशासनपूर्वक किया गया तन, मन, धनात्मक अर्थ का सदुपयोग और सुरक्षा का मूल्यांकन। कक्षा- 12				
गुणात्मक विकास अमानवीयता से मानवीयता से अतिमानवियता की ओर। विकास के इतिहास में तीन व चार पद जैसा प्राणपद, स्तरों में प्रकाशित होने की सत्यता का पाठ। परिष्कृत चेतना ही मानव संचेतना होने, मानव संचेतना ही संज्ञानशीलता और संवेदनशीलता का संतुलित होने का पाठ। संचेतना ही जागृत, अर्धजागृत, अल्पजागृत प्रभेदों में प्रकाशित होने की व्यवस्था का पाठ। जीवन जागृति ही जीवन का परम लक्ष्य होने का पाठ। जीवन जागृति आचरण पूर्णता और जागृति क्रम में ही क्रिया पूर्णता के व्यवस्था का पाठ। मानव संचेतना पूर्वक ही सह-अस्तित्व होने का पाठ। फलत: तन, मन, धनात्मक अर्थ का सदुपयोग व सुरक्षा सम्पन्न होने का पाठ। जीवन जागृति ही स्वानुशासन का जागृति की अपेक्षा ही अनुशासन का और जागृति का भास ही आज्ञा पालन का आधार होने का पाठ।	जीवन संचेतना के स्तरों का समरूप गुणात्मक परिवर्तन के क्रम में क्रिया व आचरण पूर्णता का प्रबोधन	मूल्य- 1-धीरता 2- वीरता 3- उदारता 4- दया, 5- कृपा 6- करुणा	सामान्य आकांक्षा व महत्वाकांक्षा की सीमा में वस्तुओं के निर्माण करने की आवश्यकता उसकी उपयोगिता व प्रयोजनियता का प्रबोधन।	उपयोगिता मूल्य व सुंदरता मूल्य, उपयोगिता आहार, आवास, अलंकार, दूरस्रवण, दूरगमन, दूरदर्शन के प्रयोजन होने का पाठ। उपयोगी वस्तुओं के निर्माण में विज्ञान और तकनीकी पूर्वक प्रबोधन और कुशलता निपुणता पूर्वक कर्माभ्यास।

मूल्यांकन: स्वानुशासन व उत्पादन क्षमता का मूल्यांकन। कक्षा- 13				
सत्ता में संपृक्त प्रकृति अस्तित्व सर्वस्व। अस्तित्व न बढ़ती है अरूपात्मक अस्तित्व में ही सम्पूर्ण रूपात्मक अस्तित्व क्रियाशील है। सम्पूर्ण ईकाइयों की परस्परता में अरूपात्मक दिखाई पड़ती है। मूल्य स्वयं में जैसा विश्वास स्वयं में अरूपात्मक अस्तित्व है। विश्वासपूर्वक ही परस्पर मनुष्य सह-अस्तित्वशील है। मनुष्य ही मनुष्य का विकास और ह्रास का प्रधान कारण है, जड़ चैतन्यात्मक प्रकृति सत्ता में नियंत्रित है। सत्ता ही व्यवसायकाल में नियम, व्यवहारकाल में न्याय, विचार काल में समाधान, अनुभवकाल में सत्य के नाम से जाना जाता है का प्रबोधन का पाठ। शिक्षा प्रदान करने के लिए योग्यतानुसार उचित कक्षाओं में अवसर प्रदान करने की व्यवस्था का पाठ और अभ्यास।	सत्य-सत्ता में संपृक्त प्रकृति, में गर्भित होने फलत: सत्य में अनुभूत होने पर्यंत विकास के लिए बाध्य होने का पाठ।	मूल्य- 1- धीरता 2- वीरता 3- उदारता 4- दया 5- कृपा 6- करुणा	मध्यस्थ क्रिया और मध्यस्थ शक्ति का प्रबोधन	प्रत्येक परमाणु के मध्य में स्थित अंश मध्यस्थ क्रिया होने का पाठ। मध्यस्थ क्रिया में ही मध्यस्थता शक्ति का नित्य प्रसारण होने का पाठ। प्रत्येक ईकाई सत्ता में संपृक्त होने के कारण ऊर्जामय फलत: आकर्षण विकर्षण वादी गति कार्य विन्यास प्रबोधन। आकर्षणवादी कार्य विन्यास ही अंशों को परमाणु में गठित होने, परमाणुवें, अणुवें, कण और कई कण का संयुक्त स्वरूप, संगठित पदार्थ पिंड के रूप में होने का पाठ चाहे प्राण कोशिकाएं हो या निष्प्राण कोशिकाएं। यह सभी रसायनिक भौतिक सीमा में होने और जड़ चैतन्य का संयुक्त आकार मनुष्य इस सबका दृष्टा होने का पाठ तथा सम्पूर्ण माप दंड का निर्माण मनुष्य होने का पाठ। उत्पादन कम में विज्ञान व तकनीकी पूर्वक कुशलता निपुणतावादी पद्धति से कर्माभ्यास।

मूल्यांकन: स्वानुशासन तथा उत्पादन क्षमता का मूल्यांकन व शिक्षित करने का पाठ। कक्षा- 14				
मध्यस्थ क्रिया मध्यस्थ शक्ति के आधार पर सम विषम का संतुलित होने का पाठ। प्रत्येक आवेश सामान्य होने की स्थितियों का पाठ। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आवेशित गतियाँ मूल प्रवृत्तियाँ न होने का पाठ, मूल प्रवृत्तियाँ जीवन का ऐश्वर्य होने का पाठ। मनुष्य में मूल प्रवृत्तियाँ असंग्रह स्नेह, विद्या, सरलता और अभय (विश्वास) का पाठ, परिष्कृत जीवन संचेतना में इन सभी मूल प्रवृत्तियाँ वर्तमान होने का पाठ। विकास, विकास का इतिहास जीवन घटना, जीवन, जीवनी क्रम में जीवन जागृति का कार्यक्रम ही जीवन का कार्यक्रम होने का पाठ। प्रमाण ही पाठ, पाठ ही प्रबोधन की वस्तु, प्रबोधन ही समाधान के रूप में बोध होने का पाठ।	समाधानात्मक भौतिक व व्यवहारात्मक जनवाद, अनुभावात्मक, अध्यात्मवाद का पाठ।	मूल्य – 1- धीरता 2- वीरता 3- उदारता 4- दया 5- कृपा 6- करुणा	अस्तित्व की स्थिरता विकास व जागृति की निश्चयता का पाठ।	सत्ता में संपृक्त प्रकृति ही अस्तित्व सर्वस्व अस्तित्व कैसा है? सिद्ध हो जाता है। और अस्तित्व कितना है कि आवश्यकता सिद्ध नहीं होती। आवश्यकता उपयोगिता और प्रयोजनियता के अर्थ में ही पहचान होती है। सत्ता अरूपात्मक अस्तित्व, संपृक्त प्रकृति रूपात्मक अस्तित्व, प्रकृति अनंत इकाइयों का समूह है। किसी भी एक ईकाई का नाश नहीं होती। सत्ता में संपृक्त प्रकृति सत्ता में अनुभव पर्यंत विकास के लिए बाध्य है। विकास स्वयं में क्रम है। क्रम स्वयं में नियति है।नियति स्वयं व्यवस्था है। सत्ता में सम्पूर्ण प्रकृति नियंत्रित है। नियम ही न्याय, न्याय ही धर्म, नियंत्रित है। नियम ही न्याय, न्याय ही धर्म, धर्म ही सत्य, सत्य ही ईश्वर, ईश्वर ही आनंद है। आनंद ही जीवन है। जीवन ही नियम है।

मूल्यांकन: स्वानुशासन उत्पादन क्षमता और शिक्षा प्रदान करने की अर्थात आज्ञा पालन कराने की क्षमता का मूल्यांकन।

चेतना विकास मूल्य शिक्षा का लघु प्रस्ताव

127 पाठ्यक्रम मुद्दों के आधार पर

यह प्रस्ताव अभ्युदय {सर्वतोमुखी समाधान के अर्थ में } के संदर्भ में है, जिसका प्रत्यक्ष रूप प्रतिभा एवं व्यक्तित्व का संतुलित उदय है। यह आपकी स्वीकृति हेतु प्रस्तुत है।

मानवीय शिक्षा नीति का आधारभूत मध्यस्थ दर्शन, विकास के क्रम में वास्तविकताओं के आधार पर नि:सृत जीवन दर्शन है जिसमें द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के स्थान पर समाधानात्मक भौतिकवाद, संघर्षात्मक जनवाद के स्थान पर व्यवहारात्मक जनवाद, रहस्यात्मक अध्यात्मवाद के स्थान पर अनुभवात्मक अध्यात्मवाद प्रतिपादित हुआ है। इसी में सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक-राज्यनिती का विश्लेषण है। यह भौतिक समृद्धि एवं बौद्धिक समाधान को बोधगम्य एवं हृदयंगम कराता है। जिसके लिए मानव में चिर प्रतीक्षा रही है। यही “विकल्प” है।

इस प्रस्ताव के संबंध में आपके द्वारा उठाए गए कदम एवं की गई प्रक्रिया की जानकारी अविलंब प्रदान कर अनुग्रहित करें।

भवदीय

ए. नागराज शर्मा

अमरकंटक

मानवीय शिक्षा-नीति का प्रारूप

1. **आधार –**

1.1 यह प्रारूप मध्यस्थ दर्शन (सह-अस्तित्व वाद) पर आधारित है। यह दर्शन चार भागों में है-

1. मानव व्यवहार दर्शन
2. मानव कर्म दर्शन
3. मानव अभ्यास दर्शन
4. मानव अनुभव दर्शन

2. **मानवीय शिक्षा प्रवर्तन कारण-**

2.1 वर्तमान में मनुष्य में पाई जाने वाली सामाजिक (धार्मिक), आर्थिक एवं राजनैतिक विषमताएं ही समरोन्मुखता का कारण है।

3. **प्रस्तावना-**

जीव चेतना से मानव चेतना में परिवर्तन

3.1 मानवीयता की सीमा में धार्मिक (सामाजिक), आर्थिक, राज्यनैतिक समन्वयता रहेगी, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य प्राप्त अर्थ का सदुपयोग एवं सुरक्षा चाहता है। अस्तु अर्थ की सदुपयोगात्मक नीति ही धर्म नीति, सुरक्षात्मक नीति ही राज्यनीति है और साथ ही अर्थ के सदुपयोग के बिना सुरक्षा एवं सुरक्षा के बिना सदुपयोग सिद्ध नहीं है। इसी सत्यतावश मानव धार्मिक, आर्थिक, राज्यनैतिक पद्धति व प्रणाली से सम्पन्न होने के लिए बाध्य है।

4. **उद्देश्य-**

4.1 मानवीय चेतनवादी शैली को स्थापित करना।

4.2 मानवीयता की अक्षुण्णता हेतु मानवीय संस्कृति, सभ्यता तथा उसकी स्थापना एवं संरक्षण हेतु विधि व व्यवस्था का अध्ययन पूर्वक प्रमाणित कराना है इससे मनुष्य के चारों आयामों (व्यवसाय, व्यवहार, विचार एवं अनुभूति) तथा पाँचों स्थितियों (व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र एवं अंतर्राष्ट्र) की एक सूत्रता, तारतम्यता एवं अनन्यता प्रत्यक्ष हो सकेगी। फलस्वरूप समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद एवं अनुभवात्मक अध्यात्मवाद मनुष्य जीवन में चरितार्थ एवं सर्वसुलभ हो सकेगा। यही प्रत्येक मनुष्य की प्रत्येक स्थित में बौद्धिक समाधान एवं भौतिक समृद्धि है और साथ ही यह मानव का अभीष्ट भी है।

4.3 व्यक्तित्व एवं प्रतिभा के संतुलित उदय को पाना।

4.4 समस्त प्रकार की वर्ग भावनाओं को मानवीय चेतना में परिवर्तन करना।

4.5 सहअस्तित्व एवं समाधानपूर्ण सामाजिक चेतना को सर्वसुलभ करना।

4.6 प्रत्येक व्यक्ति जन्म से ही न्याय का याचक है एवं सही करना चाहता है। उसे न्याय प्रदायी क्षमता तथा सही करने की योग्यता प्रदान करना।

4.7 प्रत्येक मनुष्य जीवन में अनिवार्यता एवं आवश्यकता के रूप में पाये जाने वाले बौद्धिक समाधान एवं भौतिक समृद्धि की समन्वयता को स्थापित करना।

4.8 शिक्षा प्रणाली, पद्धति एवं व्यवस्था की एक सूत्रता को मानवीयता की सीमा में स्थापित करना।

4.9 प्रकृति में विकास क्रम, विकास, जागृति क्रम, जागृति एवं इतिहास के आनुषंगिक मनुष्य, मनुष्य जीवन लक्ष्य, जीवन में समाधान तथा जीवन के कार्यक्रम को स्पष्ट तथा अध्ययन सुलभ करना।

4.10 विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, विद्यालय, शाला एवं शिक्षा मंदिरों की गुणात्मक एकता एवं एक सूत्रता को स्थापित करना।

4.11 उन्नत मनोविज्ञान के संदर्भ में निरंतर शोध एवं अनुसंधान व्यवस्था को प्रस्थापित करना।

4.12 प्रत्येक विद्यार्थी और व्यक्ति को अखंड समाज के भागीदार के रूप में प्रतिष्ठित करना।

4.13 शिक्षक, शिक्षार्थी एवं अभिभावक की तारताम्यता को व्यवहार शिक्षा के आधार पर स्थापित करना।

4.14 विगत वर्तमान एवं आगत पीढ़ी की परंपरा के प्रतीक स्तर में तारताम्यता, एकसूत्रता, सौजन्यता, सहकारिता, दायित्व तथा कर्तव्यपालन योग्य क्षमता का निर्माण करना।

4.15 मानवीय संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था संबंधी शिक्षा को सर्वसुलभ बनाना।

4.16 प्रत्येक मनुष्य में अधिक उत्पादन एवं कम उपभोग योग्य क्षमता को प्रस्थापित करना।

4.17 व्यक्तित्व व प्रतिभा सम्पन्न स्थानीय व्यक्तियों के संपर्क में शिक्षार्थियों एवं शिक्षकों को लाने की व्यवस्था प्रदान करना।

5. कांक्षा

5.1 वर्तमान बिन्दु में वास्तविकताएं यह स्पष्ट करती है कि प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी न्यूनतम बुनियादी शिक्षा प्राप्त हो जिससे मानवीयता की सीमा में व्यक्ति की स्वतन्त्रता, स्वत्व, अधिकार, सामाजिक दायित्व एवं कर्तव्य क्षमता को स्थापित कर सके ताकि व्यक्तित्व और प्रतिभा का संतुलित उदय हो सके। इसके फलस्वरूप सामाजिक समानता, अधिक उत्पादन, कम उपभोग पूर्वक अर्थ विषम प्रभाव का उन्मूलन होगा और साथ ही प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक अभ्युदय में भागीदार हो सकेगा।

6. नीति

6.1 शिक्षा प्रणाली एवं पद्धति राष्ट्रीय सीमावर्ती रहेगी।

6.2 जाति, वर्ग एवं संप्रदाय विहीन अखंड समाज को पाने के लिए सार्वभौमिक सामाजिक, (धार्मिक) आर्थिक एवं राज्यनैतिक नीति रहेगी।

6.3 नियति क्रम में पाई जाने वाली प्रकृति के विकास एवं इतिहास में मानव जीवन, जीवनीक्रम एवं जीवन के कार्यक्रम को अनुसरण करने वाली नीति रहेगी जो समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक अध्यात्मवाद पर आधारित है।

6.4 प्राकृतिक एवं वैकृतिक ऐश्वर्य के संपत्तिकरण नीति के स्थान पर साधनीकरण करने वाली नीति रहेगी।

6.5 ग्रामीण एवं शहरी जीवन की दूरी मिटाने वाली ग्रामीण जीवन में जो दयनीय भावनाएं है उसे समाप्त करने वाली एवं ग्रामीण जीवन के प्रति गौरव एवं अनिवार्यता को स्थापित करने वाली नीति रहेगी।

6.6 शिक्षा में औपचारिकता गौण रहेगी, उसके स्थान पर प्रतियोगिकता एवं व्यवहारिकता प्रधान शिक्षा नीति रहेगी।

7. वस्तु विषय प्रणाली

7.1 शिक्षा के सभी विषयों को सभी स्तरों में उद्देश्य की पूर्ति हेतु बोधगम्य एवं सर्व सुलभ बनाने, सार्वभौम नीतित्रय (धार्मिक, आर्थिक, राज्यनैतिक) में दृढ़ता एवं निष्ठा स्थापित करने तथा वर्तमान में पढ़ाये जाने वाले प्रत्येक विषय को समग्रता से संबद्ध रहने के लिए:-

क. विज्ञान के साथ चैतन्य पक्ष का।

ख. मनोविज्ञान के साथ संस्कार पक्ष का।

ग. दर्शनशास्त्र के साथ क्रिया पक्ष का।

घ. अर्थशास्त्र के साथ प्रकृतिक एवं वैकृतिक ऐश्वर्य की सदुपयोगात्मक एवं सुरक्षात्मक नीति पक्ष का।

ङ. राज्यनीति शास्त्र के साथ मानवीयता के संरक्षणात्मक तथा संवर्धानात्मक नीतिपक्ष का।

च. समाज शास्त्र के साथ मानवीय संस्कृति व सभ्यता पक्ष का।

छ. भूगोल और इतिहास के साथ मानव तथा मानवीयता का।

ज. साहित्य के साथ तात्विक पक्ष का अध्ययन अनिवार्य है क्योंकि इसके बिना इसकी पूर्णता सिद्ध नहीं होती।

7.2 इतिहास में उन मौलिक घटनाओं व प्रेरणाओं को वरीयता के रूप में अध्ययन करने की व्यवस्था रहेगी जो मानवीयता पूर्ण जीवन के लिए प्रेरणादाई होगी।

7.3 शिक्षा के द्वारा उस वस्तु एवं विषय का प्रबोधन किया जाएगा जिसका प्रत्यक्ष रूप व्यवहार एवं व्यवस्था होगी।

8. पद्धति

8.1 प्रयोग, व्यवहार एवं अनुभवपूर्वक सिद्ध होने वाली शिक्षा पद्धति रहेगी ।

8.2 प्रारम्भिक शिक्षा पाँच वर्ष की आयु के अनंतर आरंभ होगी।
शिक्षा का स्तर समय व अवधि

क.	प्रारंभिक शिक्षा	5 वर्ष
ख.	पूर्व माध्यमिक शिक्षा	3 वर्ष
ग.	उच्चत्तर मध्यमिक शिक्षा	3 वर्ष
घ.	स्नातक	3 वर्ष
ङ.	स्नातकोत्तर	2 वर्ष

शिक्षा की उचित अवधि सोलह वर्ष रहेगी।
अनुसंधान एवं आविष्कार विषय वस्तु अनुसार।
प्रशिक्षण व विशिष्ट शिक्षा- विषय वस्तु के अनुसार रहे।

9. शिक्षा की समग्रता

9.1 शिक्षा की पूर्णता केवल निपुणता, कुशलता एवं पांडित्य में ही है जो आर्थिक धार्मिक राज्यनीति को स्पष्ट करती है।

9.2 स्तर के अनुसार पढ़ाने का समय तथा समय खंड तदानरूप रहना आवश्यक है, वह निम्न प्रकार है:-

स्तर	प्राथमिक	पूर्व माध्य.	उच्च माध्य.	स्नातक	स्नातकोत्तर
समय खंड	30 मि.	40 मि.	50 मि.	1 घंटा	1 घंटा
समय खंड स.	6	6	6	7	7
पढ़ाने का दैनिक समय	3 घंटा	4 घंटा	5 घंटा	7 घंटा	7 घंटा
खेलने का दैनिक समय	3 घंटा	2.30 घंटा	2 घंटा	1 घंटा	1 घंटा
योग समय	6 घंटा	6.30 घंटा	7 घंटा	8 घंटा	8 घंटा

9.3 निरीक्षण-परीक्षण क्रम पद्धति:-

प्राथमिक	पूर्व माध्यमिक	उच्च माध्यमिक	स्नातक	स्नातकोत्तर
उपस्थिति	उपस्थिति	उपस्थिति	उपस्थिति	उपस्थिति
खेल	पठन	निर्माण	व्यक्तित्व	व्यक्तित्व
बोल	लेखन	आचरण	आचरण	आचरण
लेखन	खेल	पठन	लेखन /उत्पादन	लेखन /उत्पादन
आज्ञा पालन	निर्माण	लेखन	निबंध-पठन	प्रबंध पठन
आचरण	आचरण	खेल	कला	कला
कला	कला	कला	खेल	खेल

9.4 शिक्षा के स्तर के अनुसार प्रत्येक शिक्षक की क्षमता के प्रति अनुमान विद्यार्थियों की संख्या सहित, अधिकतम न्यूनतम के रूप में निम्न है:-

प्राथमिक		पूर्व माध्यमिक		उच्च. माध्यमिक		स्नातक		स्नातकोत्तर	
अधिकतम	न्यूनतम	अधिकतम	न्यूनतम	अधिकतम	न्यूनतम	अधिकतम	न्यूनतम	अधिकतम	न्यूनतम
30	15	40	20	50	25	60	30	80	40

यह अनुमान मनोविज्ञान पर आधारित है।

इसके अतिरिक्त शिक्षा के स्वत्व में एक ऐसी व्यवस्था रहेगी जिसमें साहस, शौर्य एवं प्रतिभा को पुरस्कार तथा पारितोषिक पूर्वक प्रोत्साहित करने का प्रावधान रहेगा और साथ ही इन सबका मानवीयता की सीमा में उपादेयी सिद्ध होना अनिवार्य होगा।

10. पात्रता की निर्णय पद्धति

10.1 प्रत्येक स्तर में शिक्षक, प्रशिक्षक एवं व्यवस्थापक का उनके व्यक्तित्व, उत्पादन क्षमता, शिक्षण एवं प्रशिक्षण की क्षमता तथा स्वास्थ्य एवं आयु पर पात्रता को निर्धारित करने वाली पद्धति रहेगी।

10.2 प्रत्येक कार्यकर्ता अपने निकटतम वरीय अधिकारी के आदेशनुसार कार्य करेगा।

10.3 प्रत्येक कार्यकर्ता द्वारा किए गए कार्य को दैनंदिनी में आदेश एवं संदर्भ सहित लिखेगा। यह दैनंदिनी उसकी कार्य कुशल दक्षता को स्पष्ट करेगी फलत: अग्रिम पात्रता उसके आधार पर सिद्ध होगी। मौखिक आदेश के प्रमाण में आदेशकर्ता दैनंदिनी पर हस्ताक्षर करेगा। पात्रता अनुरूप नियुक्तियाँ, प्रतिफल मान, उन्नति, प्रोत्साहन, पारितोषिक एवं सम्मान, पूरे राष्ट्र में एक सा रहेगा।

11. प्रारम्भिक शिक्षा

11.1 प्रत्येक विद्यार्थी को प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने का अवसर एवं व्यवस्था बिना भेदभाव के रहेगी।

11.2 प्रत्येक निर्धन विद्यार्थी को वित्तीय सहायता का प्रावधान रहेगा जिससे उनमें निर्धनता का खलन न हो एवं व्यक्तित्व और प्रतिभा के विकास के लिए अवसर पूर्णतया एक सा प्राप्त हो, यह व्यवस्था शिक्षा के प्रत्येक स्तर में रहेगी।

11.3 पाँचवी कक्षा के शिक्षा पर्यंत प्रधानत: कृतज्ञता, धैर्य साहस, उदारता, उत्तम आचरण एवं उद्देश्य की ओर निश्चित दिशादायी शिक्षा सम्पन्न होगी।

11.4 प्रत्येक विद्यार्थी को इस स्तर में खेल, बोल, लेखन, पठन, कला-निर्माण एवं उत्पादन में प्रवृत्त करने वाली शिक्षा समाविष्ट रहेगी।

11.5 प्रारम्भिक शिक्षा में ही प्रारम्भिक गणित की शिक्षा भी सम्मिलित रहेगी।

11.6 व्यवहार एवं आचरण संबंधी प्रारम्भिक शिक्षा को मानवीयता की सीमा में प्रदान किया जावेगा।

11.7 प्रत्येक विद्यार्थी की क्षमता एवं संभावना का प्रमाणीकरण उनके आचार्यों द्वारा निरीक्षण पूर्वक ही होगा।

12. पूर्व माध्यमिक शिक्षा

12.1 पूर्व माध्यमिक शिक्षा में व्यवहार-विज्ञान एवं भौतिक विज्ञान का प्रारूप समाविष्ट रहेगा। व्यवसाय व उत्पादन में दिशा – दर्शन रचना एवं कला- प्रदर्शन की क्षमता को विकसित करने की शिक्षा रहेगी।

12.2 इसी स्तर में व्यवसाय, व्यवहार, विचार एवं अनुभूति की समन्वयात्मक शिक्षा रहेगी।

13. उच्चतर माध्यमिक शिक्षा

13.1 उच्चतर माध्यमिक कक्षा में प्रवेशरत विद्यार्थियों की क्षमता, योग्यता, पात्रता, संभावना एवं आचरण प्रमाणीकरण के आनुषंगिक विषयों के चयन का अवसर रहेगा।

13.2 इस स्तर की शिक्षा, व्यवहारिक स्थायी मूलवत्ता एवं उसकी अनिवार्यता को आचरण एवं व्यवहार पूर्वक स्पष्ट करने वाली तथा व्यवसायिक मूल्यों की उपयोगिता एवं उसकी आवश्यकता को प्रयोग पूर्वक मूल्यों की उपयोगिता एवं उसकी आवश्यकता को प्रयोग पूर्वक सिद्ध करने वाली रहेगी।

13.3 स्वभाव, आचरण एवं प्रवृत्तियों का मूल रूप संस्कार ही है। इसके गुणात्मक परिवर्तन-प्रक्रिया का मानवीयता पूर्ण पद्धति से सर्वसुलभ बनाने की शिक्षा रहेगी जिससे व्यक्तित्व का निर्माण होगा। इसका प्रत्यक्ष रूप बहू-भोग वादी प्रवृत्ति से परिवर्तित होकर संयत भोग में विश्वास एवं दृढ़ता से परिपूर्ण होना है क्योंकि "स्वभाव ही आचरण के रूप में प्रत्यक्ष होता है, स्वभाव का गुणात्मक परिवर्तन ही संस्कार परिवर्तन है।"

13.4 मानवीयता की सीमा में व्यवहारिक एवं व्यवसायिक कुशलता तथा निपुणता प्रदान करने की शिक्षा रहेगी।

13.5 उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के अंत तक व्यवहार दक्ष एवं व्यवसाय में स्वावलंबन एवं परिश्रम के प्रति निष्ठा जागृत करने वाली शिक्षा रहेगी जिसको प्रोत्साहित करने के लिए जो व्यवस्था रहेगी वह उनके व्यक्तित्व एवं उत्पादन क्षमता पर भी निर्भर रहेगी।

14. उच्च शिक्षा

14.1 अनिवार्य विषय के अतिरिक्त स्नातक शिक्षा के विषयों का चयन रहेगा।

14.2 स्नातक शिक्षा में कम से कम तीन विषयों का चयन एच्छिक रहेगा।

14.3 स्नातक शिक्षा में दर्शन शास्त्र अनिवार्य रूप में रहेगा।

14.4 दर्शनशास्त्र में प्रमुखत: सामाजिक (धार्मिक), आर्थिक एवं राज्यनैतिक तथ्यों का बोधगम्य अध्ययन कराया जाएगा।

14.5 व्यक्तित्व की महत्ता, उत्पादन एवं उसमें संभवना की विशालता, आचरण की विशिष्टता तथा अपरिहार्यता के परिपूर्ण ज्ञान का अध्ययन किया जाएगा।

15. स्नातकोत्तर

15.1 अनिवार्य विषय के अतिरिक्त स्नातकोत्तर शिक्षा के विषय का चयन एच्छिक रहेगा।

15.2 स्नातकोत्तर शिक्षा में कम से कम 2 विषय रहेंगे जिसमें स्नातकीय स्तर की उत्तीर्णता प्राप्त होगी।

15.3 स्नातकोत्तर शिक्षा में दर्शन शास्त्र अनिवार्यतम रूप में रहेगा।

15.4 दर्शनशास्त्र में पूर्णतया समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद एवं अनुभावात्मक अध्यात्मवाद का अध्ययन रहेगा।

15.5 उत्पादन एवं व्यक्तित्व के संतुलनात्मक व समन्वयात्मक क्षमता को उद्घाटित करने योग्य अध्ययन होगा।

15.6 मानवीयता की सीमा में विधि शिक्षा का अध्ययन होगा।

16. तकनीकी शिक्षण-

16.1 उत्पादन एवं निर्माण शक्ति की विपुलता के लिए निपुणता एवं कुशलता को पूर्णतया प्रशिक्षित कराने के लिए समृद्ध प्रणाली, व्यवस्था एवं अध्ययन रहेगा जिससे मनुष्य की समान्य आकांक्षा एवं महत्वाकांक्षा से संबन्धित वस्तुओं का निर्माण सुगमता पूर्वक हो सके।

16.2 तकनीकी शिक्षण के साथ सामाजिकता तथा व्यक्ति में निष्ठा को व्यवहारिक रूप देने की व्यवस्था एवं व्यवस्था एवं प्रणाली अध्ययन के रूप में रहेगी।

16.3 शिक्षा के स्तर में अतिमानवीयता पूर्ण जीवन की संभावना को स्पष्ट करने योग्य अध्ययन रहेगा।

16.4 प्रत्येक विद्यार्थी को उत्पादन क्षमता में निष्णात बनाने के लिए अध्ययन होगा, जिससे अधिक उत्पादन एवं कम उपभोग सम्पन्न हो सके।

16.5 तकनीकी अध्ययन के साथ व्यवहारिक अध्ययन अनिवार्य रूप में रहेगा जिससे प्रत्येक व्यक्ति उद्दमशील एवं सामाजिक सिद्ध हो सके।

16.6 कृषि, उद्योग व स्वास्थ्य संबंधी पूर्ण तकनीकी शिक्षा प्रत्यक्ष रूप से रहगी न कि औपचारिक रूप में रहेगी।

17. प्रौढ़ शिक्षा

17.1 साक्षरता के साथ ही मानवीयतापूर्ण जीवन की सीमा में आचरण, व्यवहार एवं उत्पादन में प्रोत्साहन प्रदान करने वाली प्रणाली रहेगी।

17.2 प्रौढ़ शिक्षा में भी कला एवं एवं व्यक्तित्व को प्रोत्साहित करनेवाली पद्धति रहेगी।

17.3 जनजाति की पठन क्षमता के निर्माण के लिए उनके अनुकूल समय में ही शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था रहेगी। साथ ही प्रकृति के विकास एवं इतिहास तथा मानव, मानव जीवन एवं जीवन के कार्यक्रम संबंधी प्रणाली रहेगी।

17.4 शिक्षा व्यवहार, व्यवसाय तथा व्यक्तित्व की समन्वयता के तारतम्य में रहेगी।

17.5 व्यक्तित्व एवं कला की वरीयता रहेगी साथ ही साहसिकता के पुरुस्कार की व्यवस्था रहेगी।

17.6 परस्पर संबंध में स्थापित मूल्यों को अध्ययन कराने की व्यवस्था रहेगी, ताकि वर्ग विहीन समाज भावना स्थापित हो सके।

17.7 स्थानीय संपदा का उपयोग करने योग्य क्षमता निर्माण करने की व्यवस्था रहेगी ताकि आर्थिक विषमता दूर हो सके एवं आत्मनिर्भर हो सके।

17.8 स्थानीय समस्या (व्यावहारिक एवं व्यावसायिक) का सर्वेक्षण पूर्वक समाधान हेतु पर्याप्त व्यवस्था रहेगी।

17.9 शिक्षा में व्यवसाय, व्यवहार, विचार एवं अनुभूति को एकसूत्रता का पूर्णतया ध्यान रहेगा।

17.10 प्रौढ़ शिक्षा में व्यावसायिक आत्मनिर्भरता तथा व्यक्तित्व एवं ग्राम जीवन में विश्वास उत्पन्न करने की व्यवस्था रहेगी।

17.11 ग्रामोद्योग एवं कुटीर उद्योग संबंधी सार्थक शिक्षा की व्यवस्था रहेगी।

18. स्नातक पूर्व

18.1 माध्यमिक शिक्षा के अनंतर दो वर्ष या उससे कम समय में दी जाने वाली समस्त शिक्षा स्नातक पूर्व में गण्य होगी।

18.2 इस शिक्षा में उत्पादन क्षमता या उत्पादन में सहायक क्षमता में गुणात्मक रूप प्रदान करने योग्य व्यवस्था रहेगी और साथ ही व्यावहारिक शिक्षा का समावेश रहेगा जिससे व्यक्तित्व सर्वसुलभ हो सके।

19. शोध अनुसंधान

19.1 स्नातकोत्तर शिक्षा के अनंतर शोध एवं अनुसंधान की व्यवस्था रहेगी।

19.2 अनुसंधान कर्ता का विषय एच्छिक रहेगा।

19.3 व्यवहार व्यवसाय एवं स्वास्थ्य की सीमा में शोध अनुसंधान प्रयास सम्पन्न होगा।

19.4 वैयक्तिक रूप में किए गए शोध व अनुसंधान के स्वागत हेतु व्यवस्था होगी। इस व्यवस्था में वर्तमान में पाई जाने वाली व्यवहारिक एवं व्यावसायिक समस्याओं के परिहार संबंधी उपलब्धि रहेगी।

19.5 व्यावहारिक अनुसंधान अखंड समाज के परिप्रेक्ष्य में तथा व्यावसायिक अनुसंधान मानव की सामान्य आकांक्षाओं एवं महत्वाकांक्षाओं की सीमा में रहेंगे जो शिक्षा और व्यवस्था में समाविष्ट होने योग्य होंगे।

20. शिष्ट मण्डल-

20.1 प्रत्येक राष्ट्रीय स्तर में एक शिष्ट मण्डल रहेगा जिसमें शोध एवं अनुसंधान कर्ताओं का समावेश रहेगा। यही राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय शिष्टमंडल शिक्षा नीति प्रणाली तथा पद्धति की पूर्णता एवं दृढ़ता के प्रति दायित्व वहन का सजगता पूर्वक निर्वाह करेगा।

20.2 यही मण्डल वैध सीमा में शिक्षण संस्थाओं के दायित्वों का निर्धारण, दिशा-निर्देश, पद्धति तथा प्रणाली संबंधी आदेश देने का अधिकारी होगा।

20.3 इनके द्वारा दी गई प्रस्तावनाएं शासन- सदन द्वारा सम्मति पाने के लिए बाध्य रहेगी।

20.4 शिक्षा संबंधी गुणात्मक परिवर्तन के लिए उपयुक्त प्रस्तावनाधिकार इसी मंडल में समाहित रहेगा।

20.5 व्यक्तिगत रूप में प्राप्त प्रस्तावनाओं को अवगाहन करने की व्यवस्था रहेगी। साथ ही उनके लिए सम्मान व पुरस्कार प्रदान करने की व्यवस्था भी रहेगी। जिससे व्यक्तिगत प्रतिभा के प्रति विश्वास हो सके।

20.6 प्रत्येक राष्ट्र का शिष्ट मंडल मानवीयता की सीमा में ही शिक्षा नीति, प्रणाली एवं पद्धति का प्रस्ताव करेगा जिससे मंडलों में परस्पर विरोध न हो सके।

20.7 शिक्षा की सार्वभौमिकता की अक्षुण्णता के लिए अंतर्राष्ट्रीय शिष्ट मंडल रहेगा जिससे अखंड समाज की निरंतरता बनी रहे।

21. व्यवस्था –

21.1 प्रत्येक शिक्षण संस्था अपने क्षेत्र में प्रौढ़ व्यक्तियों को साक्षर बनाने तथा प्रत्येक बालक-बालिका को शिक्षा प्रदान करने के लिए उत्तरदाई होगा।

21.2 प्रत्येक पद में दायित्व शिष्ट मंडल द्वारा निर्धारित रहेगा।

21.3 संस्थाओं का दायित्व व निर्वाह-पद्धति, प्रत्येक शिक्षण संस्था अपने कार्यक्षेत्र में पाई जाने वाली सामाजिक, आर्थिक, राज्यनैतिक और व्यवहारिक व्यवस्था की परस्परता में समस्याओं का सर्वेक्षण करने की व्यवस्था करेगी। साथ ही वैध प्रणाली पद्धति नीति व व्यवस्था का पालन करने के लिए उत्तरदायी रहेगी।

21.4 स्थानीय स्थिति के चित्रणाधिकार का दायित्व स्थानीय संस्था का होगा।

21.5 प्रत्येक सर्वेक्षण पूर्ण चित्रण स्तर के अधिकारियों द्वारा सम्पन्न किया जाएगा उसका परीक्षण करने का अधिकार उनसे वरिष्ठ अधिकारी को होगा। इस प्रस्ताव के अध्ययन के लिए मध्यस्थ दर्शन सह-अस्तित्ववाद प्रस्तुत हो चुके है जिसका कार्यक्रम रायपुर अछोटी में साकार होने की व्यवस्था है। जिससे ही-

भूमि स्वर्ग होगी । मनुष्य ही देवता होंगे ।।
धर्म सफल होगा । नित्य मंगल ही होगा ।।

ए. नागराज शर्मा

श्री भजनाश्रम, श्री नर्मदांचल

अमरकंटक, जिला-शहडोल (म. प्र.)

10 सोपानीय व्यवस्था के अंतर्गत शिक्षा संस्कार

व्यवहारात्मक जनवाद (संस्करण: 2009, मुद्रण: 2017)

1. तीसरे सोपान में शिक्षा संस्कार

शिक्षा-संस्कार की मूल वस्तु अक्षर आरंभ से चलकर सहअस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान सम्पन्न होने तक क्रमिक शिक्षा पद्धति रहेगी। हर गाँव में प्राथमिक शिक्षा का प्रावधान बना ही रहेगा। गाँव के हर नर-नारी समझदार होने के आधार पर **स्वयं स्फूर्त विधि** से प्राथमिक शिक्षा को सभी शिशुओ में अन्तस्थ करने का कार्य कोई भी कर पायेंगे। इस विधि से प्राथमिक शिक्षा के कार्य के लिए कोई अलग से वेतन या मानदेय की आवश्यकता नहीं रहती है। गाँव के हर नर-नारी शिक्षित करने का अधिकार सम्पन्न होगें।

दूसरे विधि से हर गाँव में प्राथमिक शिक्षा शाला के साथ हर अध्यापक के लिए एक निवास साथ में ग्राम शिल्प का एक कार्यशाला, हर अध्यापक के लिए 5-5 एकड़ की जमीन और 5-5 गाय की व्यवस्था रहेगी यह पूरे गाँव के संयोजन से सम्पन्न होगा। यह शाला, अभिभावक विद्याशाला के रूप में कार्यरत रहेगी। इस दोनो विधि से शिक्षा-संस्कार कार्य को पूरे गाँव में उज्जवल बनाने का कार्यक्रम सम्पन्न होगा। मानवीय शिक्षा मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्व वाद पर आधारित रहेगी। शिक्षा सहअस्तित्व दर्शन जीवन ज्ञान के रूप में प्रतिपादित होगी। इस प्रकार हम एक अच्छी स्थिति को पायेंगे। जिससे सहअस्तित्ववादी मानसिकता बचपन से ही स्थापित होने की व्यवस्था रहेगी। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 113-114)**

2. चौथे सोपान में शिक्षा संस्कार (ग्राम समूह परिवार सभा, ग्राम के लिए शिक्षा)

इसमें दस गाँव के लिए शिक्षा संस्था रहेगी। पहले की तरह से दो विधियों से इसे क्रियान्वयन करना बन जाता है। स्वायत्त परिवार में से विद्वान नर नारी को भागीदारी करने का अवसर बना रहेगा। इसमें सामर्थ्यता की पहचान है। पढ़ाई लिखाई रहेगी समझदारी भी रहेगी और प्रतिभा की छ: महिमाएँ प्रमाणित रहेगी। ऐसे कोई भी व्यक्ति के किये स्वयं स्फूर्त विधि से शिक्षा संस्था में उपकार के मानसिकता से कार्य करने के लिए अवसर रहेगा। दूसरे विधि से हर दस गाँव से अर्थात 1000-1000 परिवार के श्रम सहयोग से अथवा योगदान से अभिभावक विद्याशाला बनी रहेगी।

इस विद्या शाला में दस गाँव से विद्यार्थियों को पहँुचने के गतिशील साधन को ग्राम समूह सभा बनाए रखेगा। इन साधनो का उपार्जन 1000 परिवार के योगदान से बना रहेगा। हर परिवार उपने श्रम नियोजन के फलस्वरूप उपार्जित किये (धन) गये में से प्रस्तुत किये गये अंशदान के फलस्वरूप विद्यालय सभी प्रकार से सम्पन्न हो पाता है। इसी ग्राम समूह परिवार से संचालित शिक्षा संस्थान में जो भागीदारी करते हैं यह अध्यापक, विद्वान, संस्कार कार्यों को, समारोहो को, उत्सवो को सम्पादित करने का कार्य करेंगे। जैसे जन्म उत्सव, नामकरण उत्सव, अक्षराभ्यास उत्सव, विवाह उत्सव आदि संस्कार कार्यो को सम्पन्न करायेंगे। जहाँ स्वतंत्र उत्सव, मूल्यांकन उत्सव, कार्यक्रम उत्सव को ग्राम परिवार सभा, ग्राम समूह परिवार सभा संचालित करेंगे। हर उत्सव में विद्यार्थियों और अध्यापको के प्रेरणादायी वक्तव्यों को प्रस्तुत करायेंगे। प्रेरणा का आधार समझदार होने, समझदारी के अनुसार ईमानदारी, ईमानदारी के अनुसार जिम्मेदारी रहेगी। जिम्मेदारी के अनुसार भागीदारी रहेगी। इसी मंतव्य को व्यक्त करने के लिए साहित्य का प्रस्तुतिकरण रहेगा। स्वास्थ्य संयम प्रेरणादायी प्रस्तुतियाँ स्वागतीय रहेगी। शोध अनुसंधान का स्वागत और मूल्यांकन करता रहेगा। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 117-118)**

3. पांचवे सोपान में शिक्षा संस्कार

इसकी भी प्रथम कड़ी शिक्षा-संस्कार कार्यक्रम है। इन शिक्षा संस्कार कार्यो में यथावत एक विद्यालय रहेगा। इसके पहले की सीढ़ी में जो प्रौद्योगिकी बनी रहती है उसके योगदान पर उत्तर माध्यमिक शालाएँ और स्नातक शालाएँ क्रम विधि से कार्य करेगी। क्रम विधि का तात्पर्य हर इन्सान चाहे नारी हो, नर हो समझदार होने के लिए कार्य करेगा। समझदारी का किसी उँचाई इस क्षेत्र परिवार सभा के अन्तर्गत प्रमाणित होना स्वाभाविक है। ऐसे प्रमाण के लिए तमाम व्यक्ति प्रशिक्षित रहेंगे। इसी कारणवश स्नातक पूर्व और स्नातक विद्यालय किसी क्षेत्र सभा के अन्तर्गत

संचालित रहेंगे। जिसमें मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद की रोशनी में ज्ञान, विज्ञान, विवेक सम्पन्न विधि से हर विद्यार्थी की मानसिकता में स्थापित करने का कार्य होगा। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:119)**

4. छठवें सोपान में शिक्षा संस्कार

शिक्षा-संस्कार कार्य स्नातक व स्नातकोत्तर रूप में प्रभावित रहेगी। स्नातकोत्तर शिक्षा-संस्कार में जीवन ज्ञान सहअस्तित्व दर्शन में पारंगत बनाने की व्यवस्था रहेगी। इसी के साथ साथ अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी का सम्पूर्ण तकनीकी विज्ञान विवेक कर्माभ्यास सम्पन्न कराना बना रहता है। ऐसी संस्था में कार्यरत सारे अध्यापक संस्कार कार्यो के लिए जहाँ-जहाँ जरूरत पड़े वहाँ-वहाँ पहुँचेगे और कार्य सम्पन्न कराने के दायी रहेंगे। उत्सव सभा मूल्याँकन प्रक्रिया सब ग्राम सभा सम्पन्न करेगी।**(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:120)**

5. सातवें सोपान में शिक्षा संस्कार

मंडल समूह परिवार सभा दस मंडल परिवार सभा में से एक एक व्यक्ति निर्वाचित होकर मंडल समूह परिवार सभा कर्णधार रहेंगे। सभी प्रकार के कार्यकलापो को तथा पांचों कड़ियो के कार्यक्रमों को इस सातवीं सोपान में प्रमाणित करने का दायित्व रहेगा इसमें सम्पूर्ण मानव प्रयोजनो को स्पष्ट रूप से प्रमाणित किया जाना कार्यक्रम रहेगा।

ऐसे मानव अधिकार परिवार सभा से ही प्रमाणरूप में वैभवित होते हुए शनै: शनै: पुष्ट होते हुए मंडल समूह परिवार सभा में मानव अधिकार का सम्पूर्ण वैभव स्पष्ट होने की व्यवस्था रहेगी। समान्यत: मानव अर्थात समझदार मानव शनै: शनै: दायित्व के साथ अपनी अर्हता की विशालता को प्रमाणित करता ही जाता है। अपनी पहचान का आधार होना हर व्यक्ति पहचाने ही रहता है। समूचे अनुबंध समझदारी से व्यवस्था तक को प्रमाणित करने तक जुड़ा ही रहता है। प्रबंधन इन्हीं तथ्यो में, से, के लिए होना स्वाभाविक है। समझदारी में परिपक्व व्यक्तियों का समावेश मंडल समूह सभा में होना स्वाभाविक है। ऐसे देव मानव दिव्य मानवता को प्रमाणित करते हुए दृढ़ता सम्पन्न विधि से शिक्षा विधा में शिक्षा-संस्कार कार्य को सम्पादित करते है।

शिक्षा-संस्कार एक प्रथम कड़ी है इसमें अति सूक्ष्मतम अध्ययन, शोध प्रबंधो को तैयार करने की व्यवस्था रहेगी। शोध प्रबंधो का मूल उद्देश्य मानवीय संस्कृति, सभ्यता, विधि व्यवस्था को और मधुरिम सुलभ करना ही रहेगा। इसके लिए सारी सुविधाएँ जुटाने का कार्यक्रम मंडल समूह सभा बनाये रखेगा। इसका प्रबंधन मंडल सभा के जितने भी प्रौद्योगीकी रहेगी उसकी समृद्धि के आधार पर व्यवस्थित रहेगा। ऐसी व्यवस्था के तहत में और विशाल विशालतम रूप में व्यवस्था सूत्रों को सुगम बनाने का उपाय सदा-सदा शोध विधि से व्यवस्थापन रहेगा। ऐसे शोध कार्यो के लिए सामग्री में सातो सीढ़ियों की गतिविधियाँ रहेगी इस प्रकार शोध प्रबंधन का स्रोत बनी रहेगी। ऐसे शोध प्रबंधन स्वाभाविक रूप में दसो सीढ़ी और पाँचों कड़ियो की समग्रता के साथ नजरिया बना रहेगा। इस विधि से मंडल समूह सभा की प्रथम कड़ी का लोक उपकारी और मानव उपकारी होने के रूप में प्रमाणित रहेगी।**(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:121-122)**

6. आठवें सोपान में शिक्षा संस्कार

आठवीं सोपान में मुख्य राज्य सभा होगी। जिसके लिए मंडल समूह सभा से एक एक निर्वाचित सदस्य रहेंगे। जिनके आधार पर समूचे कार्यकलाप सम्पन्न होगे। जिसमें पहली कड़ी शिक्षा-संस्कार कार्य की गतिविधियों में सर्वोत्कृष्ट समाज गति, सर्वोत्कृष्ट न्याय-सुरक्षा कार्य, सर्वोत्कृष्ट उत्पादन कार्य, सर्वोत्कृष्ट विनिमय कार्य गति और सर्वोत्कृष्ट स्वास्थ्य-संयम का शोध संयुक्त रूप में होता रहेगा। ये सभी सोपानीय परिवार सभाओं के लिए प्रेरणा के रूप में प्रस्तुत होती रहेगी। इस विधि से अपनी गरिमा सम्पन्न शिक्षण कार्य, कर्माभ्यास पूर्ण कार्यक्रम को सम्पन्न करता रहेगा। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:123-124)**

7. नवें सोपान में शिक्षा संस्कार

इस सभा की पहली कड़ी शिक्षा-संस्कार ही रहेगी। प्रधान राज्य परिवार सभा से संचालित शिक्षा समूचे दसो मुख्य राज्यों की संस्कृति, सभ्यता, विधि व्यवस्था की सार्थकता और समग्र व्यवस्था की सार्थकता के आँकलन पर आधारित श्रेष्ठता और श्रेष्ठता के लिए अनुसंधान, शोध, शिक्षण, प्रशिक्षण, कर्माभ्यासपूर्वक रहेगी। प्रौद्योगिकी विधा

का कर्माभ्यास प्रधान रहेगा। व्यवहार अभ्यास प्रक्रिया में प्रमाणीकरण प्रधान रहेगा। इस प्रकार यह उन सभी जनप्रतिनिधियो के लिए प्रेरणादायी शिक्षा व्यवस्था रहेगी और लोकव्यापीकरण करने के नजरिये से चित्रित करने की प्रवृत्ति रहेगी। इसी मानवीय शिक्षा कार्यक्रम में साहित्य कला की श्रेष्ठता के संबंध में प्रयोजन के अर्थ में मूल्यांकन रहेगी। श्रेष्ठता प्रबंध, निबंध, कला प्रदर्शन, साहित्य, मूर्ति कला, चित्रकलाओं के आधार पर मूल्यांकन और सम्मान करने की व्यवस्था रहेगी। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:124-125)**

8. दसवें सोपान में शिक्षा संस्कार

इस सभा की पहली कड़ी शिक्षा संस्कार कार्य रहेगी। शिक्षा संस्कार कार्य में प्राकृतिक संतुलन, (उद्योग वन व खनिज) जीव संतुलन, मानव न्याय संतुलन का कार्य सम्पादित होगा। साथ में जलवायु संतुलन, ऋतु संतुलन, धरती का संतुलन, वन खनिज का संतुलन सम्बंधी अध्ययन करने की व्यवस्था रहेगी। ऐसे अध्ययन के लिए किसी भी सोपानीय सभा के सीमा में किसी भी व्यक्ति को भेज सकते हैं विद्वान बना सकते हैं और लोकव्यापीकरण के लिए प्रावधानित कर सकते है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर:126)**